मसीही आध्यात्मिक शिक्षामाला क्र. २१ : सामान्य टीका ग्रंथ १
संपादक : पा. डा. सी. डबल्यु. डेविड, एम. ए., डी. डी.

पुराना-नियम की भूमिका

लेखक
पा. डा. सी. स्टेन्ली थोबर्न, ए. एम., टीएच. डी., डी. डी.
प्राचार्य, उत्तर भारत धर्मविज्ञान महाविद्यालय, बरेली

भाषांतर

पा. डा. सी. डबल्यु. डेविड, एम. ए., डी. डी.

प्रकाशक
मसीही आध्यात्मिक साहित्य समिति
प्राप्ति स्थान
एन. आई. सी. ट्रैक्ट एण्ड बुक सोसायटी
१८ क्लाइव रोड, इलाहाबाद—१

प्रथम संस्करण १००० प्रतियां १९६८

Masihi Adhyatmik Shikshamala No 21 : General Commentary 1
Editor—Rev. Dr. C. W. DAVID, M.A.,D.D.

पुराना-नियम की भूमिका
INTRODUCTION TO THE OLD TESTAMENT

by
Rev. Dr. C. Stanley Thoburn, A. M., TH. D., D. D.

Translated by
Rev. Dr. C. W. David, M. A., D. D.

Grateful Acknowledgment
Grateful acknowledgment is made of a grant from the Theological Education Fund of the Division of World Mission and Evangelism of the World Council of Churches for the publication of this book.

Published by
The Hindi Theological Literature Committee

Available from
The N. I. C. Tract and Book Society
18, Clive Road, Allahabad-1

First Edition 1000 Copies 1968 Price Rs. [illegible]0 18/-

विषय सूची

विषय-सूची

संपादक का वक्तव्य

नया नियम में परमेश्वर के चरम एवं सर्वोत्तम प्रकाशन, यीशु ख्रिस्त के दर्शन के पश्चात वह सब कुछ जो ख्रिस्त से पूर्व हुआ और वह सब कुछ जो उसके पश्चात होता है कुछ फीका सा लगता है। अतः यह भय रहता है कि पुराने नियम के गहन अध्ययन को महत्वहीन समझा जाए। उस प्रकाशन के अदर्शन से जो कुछ उसके पूर्व हुआ वह अपने में पूर्ण और जो कुछ उसके पश्चात होता है वह भी भला ही लगता है। अतः यह भय रहता है कि पुराना नियम को ही पूर्ण आदर्श मान लिया जाए। ये दोनों अनुभव अपूर्ण हैं। सच तो यह है कि यीशु ख्रिस्त की जीवन-ज्योति में अतीत भी दीप्तिमान हो उठता है और भविष्य भी जगमगाने लगता है। यीशु के प्रकाश में प्राचीन और नवीन में जो सत्य है वह झलकने लगता है। जो यीशु से पृथक करके अतीत, बर्तमान और भविष्य को देखते हैं, उन्हें बुरा भला सब कुछ सत्य, सुन्दर और मंगलकारी लग सकता है। यीशु गर्भित दृष्टि पूर्वाग्रही दृष्टि नहीं, सच्ची पैनी दृष्टि है। इसीलिये अतीत के संबंध में सत्य का जितना सच्चा उद्‌घाटन हुआ है और हो रहा है वह अधिकांशतया उन विद्वानों के द्वारा हुआ और हो रहा है जिन्होंने यह दृष्टि अपनाई है। मान्य धर्मशास्त्रों का इस सत्य दृष्टि से अध्ययन सरल कार्य नहीं है, परंतु इसी दृष्टि से ही प्राचीन धर्मशास्त्रों के अध्ययन का कार्य सरल भी होता है। इस पुस्तक के लेखक में वह दृष्टि है। इस पुस्तक के पढ़ने से ही मुझे इस दृष्टि का आभास हुआ। लेखक में न केवल इस पैनी दृष्टि की शक्ति है अपितु इसके प्रशिक्षण की क्षमता भी है।

अनेक अन्य कारणों से भी पुराने नियम का अध्ययन बहुत कठिन कार्य है। ३९ पुस्तकों का यह धर्मशास्त्र एक विशाल सागर है। इसे पुराना नियम कौन कहता है और क्यों कहता है? पुराने नियम में नया नियम निहित है, तो दोनों का क्या संबंध है? ३९ पुस्तकों का क्रम एक ही है अथवा उनके क्रम अनेक हैं? इन पुस्तकों का चयन कैसे हुआ? इनका रचयिता दिव्य है अथवा मानवीय? इसको प्रामाणिक धर्मशास्त्र कैसे और कब माना गया? इसमें कितने प्रकार की रचनाएं हैं? इसकी भाषा कौन सी है? लिपि कौन सी है? इसके अध्ययन की कौनसी पद्धतियां संभव हैं? इसकी प्रमुख विचारधाराएं और धर्म-दर्शन क्या हैं? विज्ञान तथा इस ग्रंथ में प्रस्तुत विचारों का सामंजस्य

हो सकता है अथवा नहीं ? ये तथा अन्य जटिल समस्याएं संपूर्ण ग्रंथ की समस्याएं हैं। जब हम प्रत्येक पुस्तक पर विचार करने लगते हैं, तो उसके नाम, सारतत्व, विषय-सामग्री, रचना, रचयिता, रचना तिथि, निर्वचन या व्याख्या, समीक्षात्मक प्रश्न, धर्मशिक्षा, इतिहास एवं कल्पना, शैली और टेकनीक आदि महत्वपूर्ण प्रश्न हमारे समक्ष उपस्थित होते हैं। फिर आज पुरातत्व की खोज के साथ इस ग्रंथ का समंजन होता है अथवा नहीं यह भी एक गंभीर समस्या है। इतिहास, भूगोल राजनीति, दर्शन, नीति, धर्मविज्ञान, भाषा आदि शास्त्रों के साथ इस विशाल सागर का क्या संबंध है—यह प्रश्न भी बड़ा महत्वपूर्ण है। अतः इस महान ग्रंथ की भूमिका लिखने के लिये उच्च कोटि की विद्वत्ता, विस्तृत ज्ञान, अनेक भाषाओं का ज्ञान, इतिहास की भावना, धर्म के प्रति आस्था, वैज्ञानिक तथा धर्म विज्ञान की दृष्टि एवं प्रतिभा की आवश्यकता है। साथ ही ख्रिस्तीय कलीसिया तथा मानव जाति के कल्याण के निमित्त उस सत्य दृष्टि की भी आवश्यकता है जो ख्रिस्त के प्रेम एवं पवित्रात्मा की सामर्थ से प्राप्त होती है।

इस पुस्तक 'पुराना नियम की भूमिका' के मूल लेखक डा. सी. स्टेनली थोबर्न इन गुणों से संपन्न हैं। आप अंग्रेजी, हिन्दी, उर्दू, यूनानी, लतीनी, अरबी, उगरित आदि भाषाओं के अच्छे ज्ञाता हैं। पुराने नियम के उच्च कोटि के विद्वान और शिक्षक हैं। आप ऐसे मिशनरी परिवार के हैं जिनका नाम उत्तर भारत और पाकिस्तान की मेथोडिस्ट कलीसिया में जादू है। आपने पलिश्तीन का भ्रमण किया। उसके इतिहास से मौलिक जानकारी प्राप्त की। आपने बॉस्टन विश्वविद्यालय से ए. एम. तथा पी. एच. डी. की उपाधियां प्राप्त कीं। १९६३ में सीरामपुर कॉलेज ने आपको डी. डी. की उपाधि से सम्मानित किया। १९२८ से लगातार इस देश में सेवा कर रहे हैं। १९२८–३० तक बरेली धर्मविज्ञान महाविद्यालय में, और १९३६–१९६४ तक लेनर्ड थियोलॉजिकल कॉलेज, जबलपुर में प्राध्यापक रहे और आपका प्रमुख अध्यापन विषय पुराना नियम ही रहा। पिछले तीन वर्षों से आप उत्तर भारत धर्मविज्ञान महाविद्यालय, बरेली के प्राचार्य हैं। १९३० से १९३६ तक आप नैनीताल अंग्रेजी कलीसिया के पास्टर रहे। आपकी विद्वत्ता एवं बहुमुखी प्रतिभा के संबंध में जितना भी कहा जाए थोड़ा ही है। आपने नया और पुराना नियम दोनों के नये हिन्दी अनुवाद में अपूर्व योगदान किया है। दोनों अनुवाद समितियों के आप अध्यक्ष हैं। भारत में ही आप का जन्म हुआ। कुमाऊं की पहाड़ियों के प्राकृतिक सौंदर्य, भारत की जनता और अपने आराध्य यीशु ख्रिस्त के प्रति प्रेम की त्रिवेणी का संगम आपके व्यक्तित्व में है, जिससे आप के विचारों एवं लेखन शैली में भव्यता एवं सरलता का अद्भुत मिश्रण हुआ

है। इस पुस्तक में आपने समस्त सामान्य एवं प्रत्येक पृथक पुस्तक संबंधी समस्याओं एवं प्रश्नों का गहन विचार किया और उनका संक्षिप्त विवेचन किया है। आपने गागर में सागर भर दिया है और पुराने नियम के सागर से रत्न राजियां बिखेर दी हैं। मूल पुस्तक अंग्रेजी में लिखी गई। यदि आप से पहले हिन्दी में लिखने को कहा जाता तो आप हिन्दी में ही लिख देते। श्रद्धेय डा. सी. एस. थोबर्न के लिये दो शब्द लिखने का अभिप्राय यह है कि पाठक जान लें कि उनका कितना बड़ा सौभाग्य है कि इस विद्वान लेखक की पुस्तक उनको पठनार्थ प्राप्त हो रही है।

मूल पुस्तक का हिन्दी अनुवाद इंदौर क्रिश्चियन कॉलेज के भूतपूर्व प्राचार्य, अध्यक्ष हिन्दी विभाग, मसीही आध्यात्मिक क्षिक्षामाला के वर्तमान संपादक डा. सी. डबल्यु. डेविड ने किया और डा. सी. एस थोबर्न ने सहयोग प्रदान किया। अपने विषय और डा. थोबर्न के विषय में क्या कहूं ? इतना कहना पर्याप्त होगा कि मूल पुस्तक का इससे अच्छा अनुवाद संभव नहीं। मैं इसे प्रभु की अनुकंपा मानता हूं कि मुझे अनुवाद करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

अनुवाद का प्रत्येक शब्द मैंने और डा. थोबर्न ने साथ-साथ पढ़ा है। पुस्तक के अंत में 'पुरातत्व और पुराना नियम' पर एक परिशिष्ट है जो मूल पुस्तक में नहीं है। एक दृष्टि से यह पुस्तक मौलिक पुस्तक ही है।

एल. टीएच. एवं बी. डी. के अध्यापकों एवं छात्रों के अध्यापन अध्ययन के लिये यह पुस्तक अनुपम देन है। प्रत्येक पास्तर और प्रचारक के लिये इसका मनन आवश्यक है। हिन्दी भाषी ख्रिस्तियों के लिये इसका अध्ययन लाभप्रद है। अख्रिस्ती बिद्वानों के लिये यह पुस्तक अपने धर्मशास्त्रों के समीक्षात्मक अध्ययन में प्रेरणा प्रदान करेगी। इसमें व्यापक विचारधाराओं का––परमेश्वर धार्मिक, न्यायी और करुणामय है; उसने वाचा के अन्तर्गत स्वयं को प्रकाशित किया है; वाचा के अंतर्गत रहने में मानव का कल्याण है; परमेश्वर इतिहास का प्रभु है; दु:ख की समस्या के विभिन्न रूप हैं; स्थानापन्न दु:ख उठाने की परिकल्पना कितनी भव्य है, जीवन का आदर्श और अंतिम आशा के चित्र एवं संदेश की रेखाएँ क्या हैं—इन विचारधाराओं एवं अनुभूतियों का दर्शन प्रत्येक पाठक को इस पुस्तक में होगा और वह पुकार उठेगा कि 'उनके लिये जो परमेश्वर का भय मानते हैं धर्म का सूर्य उदय होगा और उसकी किरणों के द्वारा सब चंगे हो जाएँगे'। यह धर्म का सूर्य यीशु ख्रिस्त है जिसकी प्रेमल किरणों से समस्त मानव जाति चंगी होती है।

मसीही आध्यात्मिक शिक्षामाला के अंतर्गत सामान्य टीका के आठ ग्रंथ प्रकाशित हो रहे हैं, चार पुराने नियम पर, चार नये नियम पर। इन ग्रंथों में

अभी तक ग्रंथ संख्या पांच 'नया नियम की पृष्ठभूमि' और संख्या छः 'नया नियम की भूमिका' प्रकाशित हुए हैं। यह पुस्तक ग्रंथ संख्या एक है। वर्ल्ड कौंसिल ऑफ चर्चेज़ के वर्ल्डमिशन एवं इवेंजेलेज़्म विभाग के थियोलॉजिकल एजुकेशन फंड से वित्तीय सहायता तथा उसके पदाधिकारियों, विशेषकर मिस डी. टेरी के प्रोत्साहन के लिये हम हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। हम अनुवादक और डा. सी. एस. थोवर्न के आभारी हैं। विद्वान लेखक, श्रीरामपुर की सीनेट और क्रिश्चियन लिटरेचर सोसायटी को हम धन्यवाद देते हैं कि उन्होंने अनुवाद की अनुमति प्रदान की। हम श्रीमती पर्ल सी. थोवर्न तथा श्रीमती मिरियम सी. डेविड के प्रति आभार व्यक्त करते हैं कि उन्होंने लगातार प्रोत्साहन दिया और मुझे और डा. थोवर्न को कार्य करने में सब प्रकार की सुविधाएँ की और प्रतिदिन प्रार्थना एवं वचन पाठ का संबल उपलब्ध किया।

सी. डबल्यु. डेविड
संपादक, मसीही आध्यात्मिक शिक्षामाला

उत्तर भारत धर्मविज्ञान महाविद्यालय
६७ सिविल लाइंस, बरेली
फरवरी १६६८

यह पुस्तक गॉस्पल एण्ड प्लाउ स्कूल
ऑफ थियोलॉजी को सप्रेम भेंट
द्वारा
June 2010
रेव॰ डॉ॰ विमलकान्त सिंह
एसो॰ प्रोफेसर [illegible]

प्रथम भाग

पुराना नियम की सामान्य भूमिका

पहला अध्याय

पुराना नियम की परिभाषा

पुराना नियम लेखों के उस समूह को कहा जाता है जो नया नियम की साहित्यिक और प्रकाशनात्मक पृष्ठभूमि के रूप में मान्य किया जाता है। मानव मन पर धर्म के अधिकार की दृष्टि से ऐसे लेखों को 'धर्मशास्त्र' की संज्ञा दी जाती है। धर्मशास्त्र उसे कहते हैं जो किसी मंडली अथवा धर्म-समाज द्वारा अपने विश्वास के लिये मूल आधार स्वीकार किया जाता है। पुराना नियम इस दृष्टि से धर्मशास्त्र है क्योंकि वह उन लेखों के पूर्ण समूह का एक भाग है, जिनको कलीसिया ने आधारभूत अथवा प्रामाणिक माना है। पुराना नियम की एक और परिभाषा यह है कि वह अधिकृत ख्रिस्तीय धर्मशास्त्र का प्रथम भाग है। अधिकृत शास्त्र के लिये अँग्रेजी में कानोन (Canon) शब्द काम में लिया जाता है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से कानोन का अर्थ है 'मापने का डंडा'। यहाँ पर उसका अर्थ है 'प्रामाणिक लेखों का मानक या मानदंड'। अत: हम अधिकतर ख्रिस्तीय धर्मशास्त्र के दो भाग करते हैं, अर्थात् पुराने नियम का अधिकृत शास्त्र और नए नियम का अधिकृत शास्त्र।

ऐसी सामान्य परिभाषाओं के क्षेत्र से आगे बढ़कर जब हम यह प्रश्न उठाते हैं कि कौन से विशेष लेख प्रामाणिक अथवा अधिकृत माने जाते हैं तो यह पता चलता है कि विभिन्न मसीही समुदायों में इस संबंध में मतैक्य नहीं है। कुछ तो 'पुराना नियम' के अन्तर्गत अधिक और कुछ कम लेखों को स्थान देते हैं। कुछ हैं जो मध्यम दृष्टिकोण अपनाते हैं और प्रामाणिक लेख और ज्ञानवर्धक लेख ऐसे दो विभाग करते हैं। कम लेखोंवाला धर्मशास्त्र यहूदियों के धर्मशास्त्र के अनुरूप है। अधिक लेखोंवाला धर्मशास्त्र वह है जो प्रैरितिक काल में पलीश्तीन देश से बाहर रहने वाले खिस्ती लोग काम में लेते थे। इनमें से अधिकांश खिस्ती यूनानी भाषा बोलते थे और पुराने यूनानी अनुवाद,

जिसे सप्तति-अनुवाद (सेपत्वांगिता) कहते हैं, के रूप में पुराने नियम का प्रयोग करते थे। यही कारण है कि नए नियम में जो उद्धरण पुराने नियम से दिए गए हैं उनमें अधिकांश सेपत्वांगिता पर अवलंबित हैं। अधिक लेखों वाला पुराना नियम हेलेनी धर्मशास्त्र कहलाते हैं, क्योंकि वे हेलेनी या यूनानी भाषा-भाषी यहूदियों द्वारा उपयोग में लाए जाते थे जिनमें से कई खिस्ती हो गए थे। अधिक लेखोंवाला पुराना नियम सिकन्द्रिया का कानोन भी कहलाता है, क्योंकि मिस्र के सिकन्द्रिया निवासी यहूदी उसका प्रयोग करते थे। वहीं इब्रानी धर्मशास्त्र का यूनानी अनुवाद हुआ था। इस संबंध में कानोन शब्द का प्रयोग कुछ भ्रामक है, क्योंकि सिकन्द्रिया में जो लेख सम्मिलित किए गए थे, उनका पूर्णतया निर्धारण नहीं किया गया था। साधारण प्रचलन के आधार पर ही लेखों के समूह को स्वीकार कर लिया गया था जो प्रामाणिक धर्मशास्त्र के लगभग ही था। दूसरी ओर, वे यहूदी जो पलीश्तीन में रहते थे कम लेखों वाले धर्मशास्त्र को मान्य करते थे। परन्तु इस संबंध में भी कानोन शब्द के अर्थ को उतने ही संकोच के साथ ग्रहण करना आवश्यक है, जितना सिकन्द्रिया के कानोन को, क्योंकि पलीश्तीन का कानोन भी ई. स. दूसरी शताब्दि के मध्य तक पूर्णरूपेण निर्धारित नहीं हो पाया। दीर्घकाल तक कम लेखोंवाला और अधिक लेखोंवाला दोनों ही धर्मशास्त्र खिस्तीय कलीसिया में सामान्य उपयोग के रूप में प्रचलित रहे। कभी कभी वादविवाद और तर्कवितर्क इस संबंध में हो जाते थे कि कौन से लेखों को अधिकृत या प्रामाणिक माना जाए। परन्तु तीसरी शताब्दी के पश्चात् ही कलीसिया की परिषदों ने खिस्तीय कानोन का पूर्ण निर्धारण करना प्रारंभ किया।

यह मानना अनुचित होगा कि खिस्तीय कलीसिया ने यहूदी धर्मशास्त्र को तद्नरूप ही अपना लिया, क्योंकि स्वयं यहूदियों ने अपने धर्मशास्त्र की प्रामाणिकता को खिस्तीय कलीसिया की स्थापना की दो तीन पीढ़ियों पश्चात् ही अंतिम रूप दिया। इन वर्षों में कलीसिया अपने धर्मशास्त्र के प्रचलन की स्थापना करती जा रही थी। खिस्तीय मंडली के शास्त्र का प्रचलन एक नये विश्वास पर केन्द्रित था। विश्वास यह था कि 'यीशु मसीह' 'परमेश्वर पुत्र' और 'संसार का उद्धारकर्त्ता' है। अतः यह स्वाभाविक था कि उसके धर्मशास्त्र का प्रचलन यहूदियों से पृथक् हो, क्योंकि वे यीशु और उसके अनुयायियों के दावे को स्वीकार नहीं करते थे। इसलिये यद्यपि खिस्तीय पुराना-नियम धर्मशास्त्र, विषय सामग्री में यहूदी धर्मशास्त्र के प्रायः समान ही है, तथापि पुराने नियम की यहूदी परिभाषा पर अवलंबित नहीं है, वरन् अपने ही मूलाधार पर स्थित है, अर्थात् कलीसिया के उस जीवित विश्वास पर जो पुराने नियम की

भावना से लगा हुआ है । 'पुराना-नियम' शब्द में ही यह सत्य व्यक्त है, जिसमें हमारे प्रभु और उद्धारकर्त्ता यीशु ख्रिस्त के 'नया-नियम' में विश्वास निहित है । यहूदी लोग अपने धर्मशास्त्र को कभी-भी पुराना-नियम नहीं कहते हैं; क्योंकि उसका अर्थ ख्रिस्तीय धर्म के दावे को स्वीकार करना होगा । वे अपने धर्मशास्त्र को 'व्यवस्था, नबी और लेख' की संज्ञा देते हैं । यहूदियों ने अपना कानोन द्वितीय शताब्दी के मध्य में (लगभग १५० ई. स.) अंतिम रूप में निर्धारित किया । इस निर्धारण की ठीक तिथि एवं परिस्थिति की जानकारी नहीं मिलती । यह निर्धारण उपरोक्त पलीश्तीन कानोन के निर्धारण के अनुरूप ही था । ख्रिस्तीय कलीसिया ने प्रामाणिक धर्मशास्त्र का निर्धारण ई. स. ३९७ में काथज की परिषद् में किया, जिसमें ३६५ ई. स. में अथनासियस द्वारा प्रामाणिकरण को बहुत महत्त्व दिया गया था । प्रामाणिक धर्मशास्त्र के स्वरूप निर्धारण के संबंध में आगे और विवेचन किया जाएगा । यहाँ इतना कहना पर्याप्त होगा कि रोमन केथोलिक कलीसिया और प्राच्य कलीसियाएँ[१] पुराना-नियम को अधिक लेखोंवाले यूनानी धर्मशास्त्र के अर्थ में; प्रोतेस्तंत कलीसियाओं में कालविन की परम्परा कम लेखोंवाले पलीश्तीन कानोन के अर्थ में (अर्थात् यहूदियों के धर्मशास्त्र के समान); और अन्य, विशेषकर लूथरन और एँग्लिकन कम लेखोंवाले को (पुराना नियम) प्रामाणिक, और शेष (अपक्रिफा) को ज्ञानवर्धक शास्त्र के अर्थ में स्वीकार करते हैं ।

दूसरा अध्याय

धर्मशास्त्र का दिव्य रचयिता

उपरोक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि विकास की प्रक्रिया से ही धर्मशास्त्र अपने वर्तमान रूप को प्राप्त हुए हैं । उनका विकास किसी भी अन्य साहित्य के समान है, और किसी प्रकार की चयन-पद्धति के आधार पर कुछ पुस्तकों का चुनाव और अन्य का अस्वीकरण किया गया है । इस प्रकार की मानवी प्रक्रिया के कारण यह प्रश्न उपस्थित होता है कि इन्हीं लेखों को ही क्यों परमेश्वर का वचन कहा जाए, और अन्य लेखों को क्यों नहीं ? बाइबल

---

१. प्राच्य कलीसियाओं में यूनानी ऑर्थोदोक्स, रूसी ऑर्थोदोक्स, सिरियन, आरमीनियन, जार्जियन, कोप्तिक, इथियोपिक, जेकोबाइट, खल्दियन कलीसियाएं सम्मिलित हैं ।

के परे भी विशाल सत्साहित्य मिलता है और उसमें भी पर्याप्त साहित्य प्रेरणाप्रद है और हमारे संकल्पों को भलाई के प्रति सशक्त बनाने वाला है। क्या मानव ही इस बात का समीक्षक और निर्णायक नहीं रहा कि कौन से लेख धर्मशास्त्र माने जाएं अथवा न माने जाएं ? इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि यह कलीसिया का विश्वास रहा है--पहले इब्रानी मंडली का, तत्पश्चात् ख्रिस्तीय कलीसिया का--कि कुछ ऐतिहासिक घटनाओं की शृंखला में परमेश्वर का हाथ विशेष रूप से प्रकट होता रहा है, और उसी संदर्भ में उसकी वाणी कुछ विशिष्ट दिव्यवाणियों में सुनाई दी--'उसने मूसा को अपनी गति, और इस्राएलियों पर अपने काम प्रगट किए'।[१] अतएव घटनाओं की इस शृंखला के आसपास जो साहित्य एकत्रित हुआ, उसमें ईश्वरीय प्रेरणा की छाप मिलती है। यह स्वाभाविक है कि इस सत्य का ग्रहण सदा विश्वास के द्वारा ही होता है, क्योंकि परमेश्वर यदि सच्चा परमेश्वर है तो वह पूर्णतया हमारी बुद्धि में समा नहीं सकता। पीढ़ी से पीढ़ी यह विश्वास किया जाता रहा, और उत्तरोत्तर यह अनुभव होता गया कि उसमें एक अखंडता है, एक विशिष्टता है, और मानव से परे जो कुछ है उसकी ओर संकेत है। विश्वास यह था कि परमेश्वर ने इस्राएल को चुना और संपूर्ण सृष्टि की योजना के अंग स्वरूप इस जाति के साथ विशेष रूप से वाचा बांधी। प्रत्येक पीढ़ी में यह विश्वास उत्तरोत्तर सत्य प्रमाणित होता रहा, इसलिए नहीं कि वह औचित्य संबंधी मानवीय धारणाओं के अनुरूप रहा, वरन इसलिये कि घटनाओं की यह शृंखला संसार की गतिविधियों के लिये एक पूर्णतया नवीन केन्द्र और समस्त मूल्यों के लिये भी एक नवीन केन्द्र के रूप में अधिकाधिक स्पष्ट रूप से ग्रहण होती रही। अतएव इन लेखों की एक अपनी विशिष्टता यह है कि वे इस विश्वास के साथ लिखे गए कि परमेश्वर एक निश्चित दिक् और काल में एक विशेष कार्य कर रहा है।

इन धर्म पुस्तकों का केवल एक नायक है। वह है इस्राएल का परमेश्वर। कुलपति, न्यायी, नबी, पुरोहित और राजा ये सब इब्रानियों के इस इतिहास में गौण पात्र हैं। एक ही सत्य परमेश्वर उन्हें बुलाता है। उनका उपयोग करता है, अपनी प्रकाशित वाचा के प्रति उनके आज्ञापालन के अनुसार उन्हें आशिष अथवा दंड देता है। परंतु वह सदा एकसा है--सर्वशक्तिमान, धर्मी, विश्वास योग्य, दयावंत, समय पर अपने अनंत अभिप्राय में कार्यरत। मानवीय प्रक्रियाओं से धर्मशास्त्रों का विकास हुआ, इसका यह अर्थ नहीं कि उनका उद्गम मानवीय है। उसका अर्थ केवल यह है कि नई ज्योति के आदी होने के लिये मानव को

१. भजन १०३ : ७

समय की आवश्यकता थी। उसका अर्थ यह भी है कि परमेश्वर ने नई ज्योति संबंधी इन अभिलेखों के स्वरूपनिर्धारण एवं चयन के लिये व्यक्तियों के साथ-साथ समस्त विश्वासी कलीसिया का उपयोग किया। विश्वासियों ने अपने विश्वास के और परमेश्वर के उन कार्यों के संबंध में लिखा जिन पर उनका विश्वास आधारित था। विश्वासियों ने उन लेखों का उपयोग किया जो उन्हें अपने विश्वास के मूल आधारों का स्मरण कराते और उसके प्रति भक्तिनिष्ठ होने की प्रेरणा उन्हें देते थे। विलोमतः, ये लेख स्वयं उनके विश्वास के लिये वास्तविक कसौटी एवं आधार-स्तंभ थे। दोनों प्रक्रियाओं का विश्वासियों के साथ ही संबंध था। अतः कलीसिया को सशक्त बनाने तथा विविध लेखों में स्वास्थ्यप्रद और अस्वास्थ्यप्रद लेखों के बीच अन्तर की पहिचान के लिये परमेश्वर का आत्मा क्रियाशील था। इस प्रकार धर्म शास्त्रों का वास्तविक रचयिता पवित्र आत्मा है, यद्यपि कि उसने अनेक मानवीय लेखकों तथा अनेक मानवीय समीक्षकों को अपने साधन स्वरूप काम में लिया। धर्म शास्त्रों के देने में परमेश्वर ने किसी एक व्यक्ति विशेष का उपयोग नहीं किया, वरन् सम्पूर्ण कलीसिया को माध्यम बनाया जिसमें उसने व्यक्तियों की विशेष प्रतिभा का तथा साधारण विश्वासी के अनुभवों की कसौटी का भी उपयोग किया। यह केवल थोड़े समय के लिये ही नहीं, वरन एक दीर्घकाल के लिये, जिससे निश्चय के साथ यह पता लग जाय कि कलीसिया ने अपने विश्वास की वास्तविक साहित्यिक निधि के रक्षण में कोई भूल नहीं की।

इस प्रकार यद्यपि एक ऐतिह सिक प्रक्रिया तथा मानवी माध्यमों से इन धर्म लेखों का निर्माण हुआ, तथापि वे मनुष्यों में परमेश्वर का एक विशिष्ट कार्य हैं, और इसलिये परमेश्वर के प्रेरणा-वचन हैं। यह बात स्वयं एक ऐसा सत्य है, जो विश्वास से ग्रहण किया जाता है। वह वस्तुवादी विज्ञान की पद्धतियों द्वारा सिद्ध नहीं किया जा सकता, क्योंकि विज्ञान अपनी प्रकृति के अनुसार अतिप्राकृतिक तत्वों के संदर्भ में किसी वस्तु की व्याख्या नहीं करते। विश्वास के द्वारा हम अतिप्राकृतिक अर्थात् परमेश्वर को और मानवीय क्षेत्र में उसके कार्यों को देखते हैं। इस प्राक्कल्पना का हम दैनिक जीवन के व्यापक क्षेत्र में, उद्देश्य, कर्तव्य, बोध, मेल-मिलाप, सहयोग, प्रलोभन, अपराध और नैराश्य के अनुभवों में परीक्षण करते हैं। इनके द्वारा उस विश्वास की और अधिक पुष्टि होती है और उत्तरोत्तर यह निश्चय बढ़ता जाता है कि यह प्राक्कल्पना सच्ची है, और सत्य का नवीन दर्शन कराती है। धर्म लेखों में इस प्राक्कल्पना को साकार रूप मिला है। वे परमेश्वर के वचन हैं।

तीसरा अध्याय

विस्तृत साहित्यिक संदर्भ में धर्मशास्त्र पर दृष्टि

अधिक लेखोंवाले और कम लेखोंवाले पुराने नियम का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। कम लेखोंवाले पुराने नियम में, जो विषय सामग्री में यहूदी धर्मशास्त्र के अनुरूप है परंतु क्रम में नहीं, निम्नलिखित पुस्तकें सम्मिलित हैं :

उत्पत्ति, निर्गमन, लैव्यव्यवस्था, गिनती, व्यवस्थाविवरण, यहोशु, न्यायियों, रूत, शमूएल पहली और दूसरी, राजा पहली और दूसरी, इतिहास पहली और दूसरी, एज्रा, नहेम्याह, एस्तेर, अय्यूब, भजन संहिता, नीतिवचन, सभोपदेशक, श्रेष्ठगीत, यशायाह, यिर्मयाह विलापगीत, यहेजकेल, दानिबेल, होशे, आमोस, ओबद्याह, योना, मीका, नहूम, हबक्कक्, सपन्याह, हाग्गै, जकर्याह और मलाकी। सुविधा के लिये हम इन पुस्तकों के समूह को उत्पत्ति-मलाकी समूह कहेंगे।

अधिक लेखोंवाले पुराने नियम में उत्पत्ति-मलाकी समूह के अतिरिक्त निम्नांकित पुस्तकें भी हैं : तोबित, यूदित, शेष एस्तेर, सुलेमान का प्रज्ञा ग्रंथ, सभोपदेशक, यिर्मयाह की पत्री सहित बारूक, तीन पवित्र बालकों का गीत, सोसन्न की कहानी, बेल और अजगर, मकाबी पहली और दूसरी। सुविधा के लिये हम इसे तोबित-मकाबी समूह कहेंगे।

इन दोनों समूहों के अतिरिक्त इब्रानी अथवा यहूदी धार्मिक साहित्य में कुछ और अधिक लेख हैं। इनके उद्गम स्थान की दृष्टि से साहित्य की विधा के आधार पर ये लेख दो समूहों अथवा तीन समूहों में विभाजित होते हैं। उद्गम स्थान की दृष्टि से उनके पलीश्तीनी अथवा हलीनी अर्थात् यूनानी उद्गम इन दो भागों में विभाजित किए जाते हैं। साहित्य की विधा के आधार पर वे हलाकी, हग्गादी अथवा अपोकलिप्टिक में विभाजित किए जाते हैं। हलाकी (इ ानी शब्द हलाक से है, जिसका अर्थ है अपना आचरण) का अर्थ गह है कि उन लेखों में यहूदी विश्वास के निहित आचार पक्ष अथवा नैतिक भावनाओं के प्रतिपादन का प्रयास किया गया है। हग्गादी (इब्रानी शब्द हगद से, जिसका अर्थ है विवरण देना) का अर्थ है कि उन लेखों में अतीत की धार्मिक कथानकों को सुन्दर कथात्मक रंगों से रंजित करने का प्रयास किया गया है। हलाकी और हग्गादी व्य ख्या की प्रणालियाँ थीं जिनका विकास शास्त्रियों और रब्बियों ने किया था। अपोकलिप्टिक (यूनानी शब्द अपोकलिप्टो

से, जिसका अर्थ है उदघाटन करना या प्रकाशन करना) का अर्थ है कि उन लेखों में रहस्यवादी दर्शनों एवं प्रतीकों द्वारा भविष्य के रहस्यों का उद्घाटन का संकेत किया जाता है। इन लेखों के विभाजन के एक और आधार पर इनको प्रकाशनात्मक, इतिहासात्मक एवं शिक्षात्मक भागों में बाँटा जाता है। इतिहासात्मक तथा शिक्षात्मक समूह के अंतर्गत हलाकी और हग्गादी लेख आ सकते हैं।

पलीश्तीन उद्गत लेखों में निम्नलिखित सम्मिलित हैं ; हनोक अथवा इथियोपी हनोक (प्रका०), जुबिली (हला०), बारह कुलपतियों की वाचाएं (हग्ग०), सुलेमान के भजन (हग्ग०), सादोकी प्रलेख (हल० एवं हग्ग०), मूसा का स्वर्गोत्कर्ष (प्रका०), यशायाह का स्वर्गारोहण (हल०), ४ एस्द्रस (प्रका०), बारूक का सूरियाती अपोकलिप्स (प्रका०)। सुविधा के लिये हम इस समूह को हनोक समूह के लेख कहेंगे।

यूनानी उदगत लेखों में निम्नाँकित सम्मिलित हैं : यहूदी सिबिल (प्रका०) ३ मकाबी (हल०), ३एस्द्रस (हल०), मनस्से की प्रार्थनाएँ (हग्ग०) ४मकाबी (हग्ग०), स्लाविक हनोक (जिसे हनोक के रहस्य भी कहते हैं) (प्रका०), तथा कई खंड हैं जिनमें निम्नलिखित सम्मिलित हैं—यिर्मयाह का इतिहास (हल०), अय्यूब की वाचा (हल०), सुलेमान की वाचा (हल०), इलीशा एवं सपन्याह का प्रकाशन (प्रका०), यहेजकेल की ज्ञानवर्धक पुस्तकें (प्रका०) आदम एवं हव्वा की जीवनी (जिसे मूसा का प्रकाशन भी कहते हैं) (हल०), आदम की वाचा (हल०), अब्राहाम का प्रकाशन (प्रका०), अब्राहाम की वाचा (प्रका०), और असेनथ की पुस्तक (हग्ग०) सुविधा के लिये हम इनको सिबिल समूह के लेख कहेंगे।

उपरोक्त समूहों को ध्यान में रखते हुए हम पुराने नियम के प्रामाणिक धर्मशास्त्र की अधिक ठीक रीति से परिभाषा कर सकते हैं।

यहूदियों के लिये उत्पत्ति-मलाकी समूह ही प्रामाणिक धर्मशास्त्र था। अन्तर केवल इतना ही है कि जो क्रम ख्रिस्ती रखते हैं उससे उनका क्रम भिन्न है। आगे कहीं यहूदी क्रम दिया गया है। यह स्मरण रखना चाहिये कि यद्यपि इस समूह को वे प्रामाणिक धर्मशास्त्र मानते हैं परन्तु उसे कभी पुराना नियम नहीं कहते। पुराना नियम संज्ञा ख्रिस्तियों द्वारा दी गई है। वे अपने धर्मशास्त्र को व्यवस्था, नबी और लेख' की पुस्तक कहते हैं (सेपेर तोरा नबयीम उ-कतुबीम)।

रोमन केथोलिक कलीसिया उस समूह को अपना धर्मशास्त्र कहती है जो ३७४ ई०स० में कार्थेज की परिषद में स्वीकृत हुआ था। १५४६ में सक्रो-सांक्ता नामक अधिकृत घोषणा से त्रेंतीनो की परिषद में कार्थेज की परिषद के निर्णय की पुनः पुष्टि की गई। इस घोषणा के अनुसार प्रामाणिक धर्मशास्त्र में उत्पत्ति-मलाकी समूह तथा तोबित-मकाबी समूह सम्मिलित हैं। यें दोनों समूह अलग इकाइयों के रूप में नहीं हैं परन्तु संकलन में मिले जुले हैं। अन्य सब पुस्तकें, अर्थात् हनोक समूह एवं सिविल समूह की पुस्तकें अप्रामाणिक अथवा अपक्रिफा के नाम से अभिहित की गई हैं। यहूदियों के प्रभाव के कारण उत्पत्ति-मलाकी समूह की सार्वजनिक स्वीकृति तोबित-मकाबी समूह के पूर्व हो चुकी थी अतएव उत्पत्ति-मलाकी समूह प्रथम-प्रामाणिक तथा तोबित-मकाबी द्वितीय-प्रामाणिक धर्मशास्त्र कहे जाते हैं। इस प्रकार रोमन केथोलिक कलीसिया का प्रामाणिक धर्मशास्त्र प्राचीन कलीसिया के अधिक धर्म लेखोंवाले यूनानी अर्थात हेलेनी प्रचलन के अनुरूप है।

अधिकांश प्राच्य कलीसियाएं इसी विस्तृत यूनानी पुराने नियम को स्वीकार करती हैं। केवल कुछ बातों में थोड़ा बहुत वे भिन्न हैं। सूरियानी भाषी कलीसियाएं अपने ही क्षेत्र में थोड़ी बहुत भिन्नताएं प्रदर्शित करती हैं। मोपसुएस्तिया का थियोदोर, यद्यपि वह यूनानी विद्वान था, तथापि नेस्तोरी संप्रदाय द्वारा शास्त्राधिकारी माना जाता था। उसने समस्त पुस्तकों को पूर्ण प्रामाणिक, आंशिक प्रामाणिक और अप्रामाणिक, इन वर्गों में पृथक किया। यह वर्गीकरण लगभग वही है जो ऊपर प्रथम-प्रामाणिक, द्वितीय-प्रामाणिक तथा अ-प्रामाणिक धर्मशास्त्र का वर्गीकरण है। फिर भी मोपसुएस्तिया के थियोदोर ने तोबित-मकाबी समूह के साथ अय्यूब, एस्तेर, श्रेष्ठगीत, इतिहास, एज्रा और नहेम्याह को भी आंशिक प्रामाणिक ग्रन्थों में सम्मिलित किया। जेकोबाइट बाइबलों में एक पुस्तक है जिसका नाम 'स्त्रियों की पुस्तक' है। उसमें एस्तेर, यूदित, रूत एवं सुसन्ना सम्मिलित हैं। बार हेब्राइकस नोमो कानोन (Nomocanon) में पुराने नियम में उत्पत्ति-मलाकी समूह, और तोबित को छोड़कर अधिकांश तोबित-मकावी समूह सम्मिलित है। बार सीरख़ उसमें सम्मिलित नहीं है, परन्तु तरुणों की शिक्षा के लिये प्ररोचित है।

आरमीनिया का धर्मशास्त्र लगभग यूनानी धर्मशास्त्र के अनुरूप है। अन्तर बहुत ही कम है। अबीसीनिया का धर्मशास्त्र अभी तक अधिकृत रूप

से निर्धारित नहीं किया गया है। प्रचलित रूप से उसमें उत्पत्ति-मलाकी और तोबित-मकाबी समूहों के अतिरिक्त कुछ अन्य लेख भी सम्मलित हैं : असेनथ, उज्जियाह, हनोक, २ एस्द्रस (४)। कोप्तिक धर्मशास्त्र में निम्नलिखित सम्मिलित हैं : यूनानी धर्मशास्त्र और ३ मकाबी। यूनानी ऑरथोदोक्स और रूसी ऑरथोदोक्स धर्मशास्त्र, हेलेनी अथवा यूनानी धर्मशास्त्र के समान हैं अर्थात उनमें उत्पत्ति-मलाकी और तोबित-मकाबी समूह हैं।

आंग्ल कलीसियाएं उत्पत्ति-मलाकी समूह को पक्की रीति से प्रामाणिक धर्मशास्त्र मानती हैं परन्तु वे तोबित-मकाबी को ज्ञानवर्धक मानती हैं। लूथरन कलीसियाओं की मान्यता भी ऐसी ही है।

पाश्चात्य प्रोतेस्तंत कलीसियाओं पर काल्विन की परंपरा का प्रभाव पड़ा है। अतः वे केवल उत्पत्ति-मलाकी समूह को ही प्रामाणिक धर्मशास्त्र मानती हैं। इस विस्तृत वर्ग में प्रेस्बितीर्यन, रिफॉर्मड् मेथोदिस्त कॉंग्रि-ग्रेशनलिस्त, बपतिस्त एवं अन्य बहुत से प्रोतेस्तंत समाज सम्मिलित हैं। ये कलीसियाएं बाइबल के प्रकाशन में सर्वाधिक सशक्त रही हैं, अतएव सामान्यतया जो बाइबल जनता को उपलब्ध है, उसमें उत्पत्ति-मलाकी समूह का धर्मशास्त्र ही सम्मिलित है। तोभी धर्मशास्त्र के प्रयोग करने में सभी कलीसियाएं एकसी नियमबद्ध नहीं हैं। उदाहरणार्थ, अमरीकी मेथोदिस्त कलीसिया यद्यपि उत्पत्ति-मलाकी समूह को ही पुराने नियम के रूप में स्वीकार करती हैं, तथापि अपने अधिकृत उत्तरदायी पाठों में तोबित-मकाबी समूह के अंशों का भी प्रयोग करती हैं।

प्रामाणिकधर्मशास्त्रेतर पुस्तकों के निर्देशन के लिये अपक्रिफ़ा शब्द का प्रयोग किया जाता है। चूँकि भिन्न-भिन्न ख्रिस्तीय संगठनों द्वारा पुराना-नियम धर्म-शास्त्र की परिभाषा भिन्न भिन्न रूप में की गई है, इसलिए अपक्रिफा शब्द का अर्थ भी संदर्भ पर अवलंबित है और इस प्रकार अपने में द्विअर्थी है। रोमन कैथोलिक कलीसिया के लिये अपक्रिफा का अर्थ है—हनोक और सिबिल समूहों के लेख। प्राच्य कलीसियाओं के लिये भी उस शब्द का यही अर्थ होगा। प्रोतेस्तंत के लिये, जिनमें आंग्ल एवं लूथरन कलीसियाएं भी सम्मिलित हैं अपक्रिफा का अर्थ है–तोबित-मकाबी समूह और साथ ही १ एवं २ एस्द्रस (जिन्हें २ और ३ एस्द्रस भी कहा जाता है) और मनस्से की प्रार्थनाएं। इस कारण हनोक और सिबिल समूहों को एक दूसरा ही नाम दिया है। उन्हें सूडे-एपिग्रफा (pseudepigrapha) अर्थात अप्रामाणिक लेख कहा जाता है।

रोमन केथोलिक कलीसिया उस समूह को अपना धर्मशास्त्र कहती है जो ३७४ ई०स० में कार्थेज की परिषद में स्वीकृत हुआ था। १५४६ में सक्रो-सांक्ता नामक अधिकृत घोषणा से त्रेंतीनो की परिषद में कार्थेज की परिषद के निर्णय की पुनः पुष्टि की गई। इस घोषणा के अनुसार प्रामाणिक धर्मशास्त्र में उत्पत्ति-मलाकी समूह तथा तोबित-मकाबी समूह सम्मिलित हैं। यें दोनों समूह अलग इकाइयों के रूप में नहीं हैं परन्तु संकलन में मिले जुले हैं। अन्य सब पुस्तकें, अर्थात् हनोक समूह एवं सिविल समूह की पुस्तकें अप्रामाणिक अथवा अपक्रिफा के नाम से अभिहित की गई हैं। यहूदियों के प्रभाव के कारण उत्पत्ति-मलाकी समूह की सार्वजनिक स्वीकृति तोबित-मकाबी समूह के पूर्व हो चुकी थी अतएव उत्पत्ति-मलाकी समूह प्रथम-प्रामाणिक तथा तोबित-मकाबी द्वितोय-प्रामाणिक धर्मशास्त्र कहे जाते हैं। इस प्रकार रोमन केथोलिक कलीसिया का प्रामाणिक धर्मशास्त्र प्राचीन कलीसिया के अधिक धर्म लेखोंवाले यूनानी अर्थात हेलेनी प्रचलन के अनुरूप है।

अधिकांश प्राच्य कलीसियाएं इसी विस्तृत यूनानी पुराने नियम को स्वीकार करती हैं। केवल कुछ बातों में थोड़ा बहुत वे भिन्न हैं। सूरियानी भाषी कलीसियाएं अपने ही क्षेत्र में थोड़ी बहुत भिन्नताएं प्रदर्शित करती हैं। मोपसुएस्तिया का थियोदोर, यद्यपि वह यूनानी विद्वान था, तथापि नेस्तोरी संप्रदाय द्वारा शास्त्राधिकारी माना जाता था। उसने समस्त पुस्तकों को पूर्ण प्रामाणिक, आंशिक प्रामाणिक और अप्रामाणिक, इन वर्गों में पृथक किया। यह वर्गीकरण लगभग वही है जो ऊपर प्रथम-प्रामाणिक, द्वितीय-प्रामाणिक तथा अ-प्रामाणिक धर्मशास्त्र का वर्गीकरण है। फिर भी मोपसुएस्तिया के थियोदोर ने तोबित-मकाबी समूह के साथ अय्यूब, एस्तेर, श्रेष्ठगीत, इतिहास, एज्रा और नहेम्याह को भी आंशिक प्रामाणिक ग्रन्थों में सम्मिलित किया। जेकोबाइट बाइबलों में एक पुस्तक है जिसका नाम 'स्त्रियों की पुस्तक' है। उसमें एस्तेर, यूदित, रूत एवं सुसन्ना सम्मिलित हैं। बार हेब्राइकस नोमो कानोन (Nomocanon) में पुराने नियम में उत्पत्ति-मलाकी समूह, और तोबित को छोड़कर अधिकांश तोबित-मकाबी समूह सम्मिलित है। बार सीरख़ उसमें सम्मिलित नहीं है, परन्तु तरुणों की शिक्षा के लिये प्ररोचित है।

आरमीनिया का धर्मशास्त्र लगभग यूनानी धर्मशास्त्र के अनुरूप है। अन्तर बहुत ही कम है। अबीसीनिया का धर्मशास्त्र अभी तक अधिकृत रूप

से निर्धारित नहीं किया गया है। प्रचलित रूप से उसमें उत्पत्ति-मलाकी और तोबित-मकाबी समूहों के अतिरिक्त कुछ अन्य लेख भी सम्मलित हैं : असेनथ, उज्जियाह, हनोक, २ एस्द्रस (४)। कोप्तिक धर्मशास्त्र में निम्नलिखित सम्मिलित हैं : यूनानी धर्मशास्त्र और ३ मकाबी। यूनानी ऑरथोदोक्स और रूसी ऑरथोदोक्स धर्मशास्त्र, हेलेनी अथवा यूनानी धर्मशास्त्र के समान हैं अर्थात उनमें उत्पत्ति-मलाकी और तोबित-मकावी समूह हैं।

आंग्ल कलीसियाएं उत्पत्ति-मलाकी समूह को पक्की रीति से प्रामाणिक धर्मशास्त्र मानती हैं परन्तु वे तोबित-मकाबी को ज्ञानवर्धक मानती हैं। लूथरन कलीसियाओं की मान्यता भी ऐसी ही है।

पाश्चात्य प्रोतेस्तंत कलीसियाओं पर काल्विन की परंपरा का प्रभाव पड़ा है। अतः वे केवल उत्पत्ति-मलाकी समूह को ही प्रामाणिक धर्मशास्त्र मानती हैं। इस विस्तृत वर्ग में प्रेस्बितीर्यन, रिफॉर्मड् मेथोदिस्त कॉंग्रि-ग्रेशनलिस्त, बपतिस्त एवं अन्य बहुत से प्रोतेस्तंत समाज सम्मिलित हैं। ये कलीसियाएं बाइबल के प्रकाशन में सर्वाधिक सशक्त रही हैं, अतएव सामान्यतया जो बाइबल जनता को उपलब्ध है, उसमें उत्पत्ति-मलाकी समूह का धर्मशास्त्र ही सम्मिलित है। तोभी धर्मशास्त्र के प्रयोग करने में सभी कलीसियाएं एकसी नियमबद्ध नहीं हैं। उदाहरणार्थ, अमरीकी मेथोदिस्त कलीसिया यद्यपि उत्पत्ति-मलाकी समूह को ही पुराने नियम के रूप में स्वीकार करती हैं, तथापि अपने अधिकृत उत्तरदायी पाठों में तोबित-मकाबी समूह के अंशों का भी प्रयोग करती हैं।

प्रामाणिकधर्मशास्त्रेतर पुस्तकों के निर्देशन के लिये अपक्रिफ़ा शब्द का प्रयोग किया जाता है। चूँकि भिन्न-भिन्न ख्रिस्तीय संगठनों द्वारा पुराना-नियम धर्म-शास्त्र की परिभाषा भिन्न भिन्न रूप में की गई है, इसलिए अपक्रिफा शब्द का अर्थ भी संदर्भ पर अवलंबित है और इस प्रकार अपने में द्विअर्थी है। रोमन कैथोलिक कलीसिया के लिये अपक्रिफा का अर्थ है---हनोक और सिबिल समूहों के लेख। प्राच्य कलीसियाओं के लिये भी उस शब्द का यही अर्थ होगा। प्रोतेस्तंत के लिये, जिनमें आंग्ल एवं लूथरन कलीसियाएं भी सम्मिलित हैं अपक्रिफा का अर्थ है--तोबित-मकावी समूह और साथ ही १ एवं २ एस्द्रस (जिन्हें २ और ३ एस्द्रस भी कहा जाता है) और मनस्से की प्रार्थनाएं। इस कारण हनोक और सिबिल समूहों को एक दूसरा ही नाम दिया है। उन्हें सूडे-एपिग्रफा (pseudepigrapha) अर्थात अप्रामाणिक लेख कहा जाता है।

पुराने नियम के अध्ययन के संबंध में कभी कभी कुछ अन्य लेखों की ओर भी संकेत किया जाता है । इनका यहाँ उल्लेख केवल एक उद्देश्य से किया जा रहा है कि पुराने नियम के व्यापक साहित्यिक क्षेत्र का संपूर्ण चित्र हमारे समक्ष उपस्थित हो जाए । ई० पूर्व प्रथम सदी के अंत में जब इब्रानी भाषा बोलचाल की भाषा न रही, तब आराधनाघरों में इब्रानी धर्मशास्त्र के पढ़े जाने के साथ उस युग की बोलचाल की भाषा में भी शब्दानुवाद अथवा भावानुवाद किया जाता था । यह भाषा अरामी भाषा थी । इन शब्द अथवा भावानुवादों से एक नवीन साहित्य का निर्माण हुआ जिसे तरगुम कहते हैं (तुलना कीजिए उर्दू भाषा का शब्द तरजुमा जो उसी मूल से है) । इब्रानी मूलपाठ के अनुवाद के रूप में इन तरगुम से इस बात पर प्रकाश पड़ता है कि ई० पू० पहली और दूसरी सदी के लोग इब्रानी मूल पाठ से क्या समझते थे । सर्वाधिक प्रचलित तरगुम निम्नलिखित हैं :

(१) आंकेलास (अर्थात, अक्विला) का तरगुम । इसे बाबुल का तरगुम भी कहा जाता है क्योंकि यह विशेषकर बाबुल के यहूदियों द्वारा काम में लिया जाता था । आंकेलास द्वितीय शताब्दी ई० स० में हुआ । यद्यपि यह बाबुल का तरगुम कहलाता है, तथापि पंचग्रंथ पर यह तरगुम पलीश्तीन की बोली में है ।

(२) पंचग्रंथ पर योनातान का तरगुम । इसे पंचग्रंथ पर पलिश्तीन का का तरगुम भी कहते हैं ।

(३) नबियों पर बाबुल का तरगुम । उज्जिएल के पुत्र योनातान को इसका लेखक माना जाता है । यद्यपि यह बाबुल का कहलाता है, तथापि इसका उद्गम स्थान पलिश्तीन है ।

(४) नबियों पर पलिश्तीन का तरगुम ।

इस प्रकार ये तरगुम पलिश्तीन और बाबुल से संबंधित हैं जो रब्बियों के दो प्रधान ज्ञान-केन्द्र थे, और उनका संकलन इब्रानी धर्मशास्त्र की इकाइयों, अर्थात् व्यवस्था (पंचग्रंथ), नबी और लेखों, के संदर्भ में किया गया है । 'लेखों' पर तरगुम का उल्लेख नहीं किया गया है क्योंकि पुराने नियमों के अध्ययन के लिये उनका महत्व नगण्य है । व्यवस्था और नबियों पर जो अनुवाद उपलब्ध हैं उनसे कहीं अधिक स्वतंत्रता लेखों के तरगुमों में ली गई है ।

ई० स० प्रथम शताब्दी के फरीसियों ने लिखित व्यवस्था अथवा पंचग्रंथ के अतिरिक्त धार्मिक शिक्षा की एक परंपरा को भी प्रश्रय दे रखा था । जिसे "मौखिक व्यवस्था" कहा जाता था । यह प्राचीनों की परंपरा थी जिसका

सुसमाचार में भी उल्लेख है (मरकुस ७:३)। ये मौखिक परंपराएं भी लेखनी पर उतारी गईं और ई० स० २०० के लगभग इस साहित्य के एक विशाल संकलन का निर्माण हुआ, जिसे मिशना (इब्रानी 'पुनरावृत्ति' अर्थात् पुनरावृत्ति द्वारा मौखिक शिक्षा) कहते हैं। इसके बाद विद्वानों ने इस मिशना के हासिये पर टिप्पणियाँ एवं स्पष्टीकरण किये हैं। मूल पाठ के आसपास काफी हाशिया छूटा हुआ है जिसमें ये टिप्पणियाँ लिखी गई हैं। सीधी पंक्तियों में लिखे हुये मूल पाठ तिरछी लिखी हुई पंक्तियों के चौखटे में जड़े हुए से प्रतीत होते हैं। ये टिप्पणियाँ प्रचुर मात्रा में हैं। सीधी पंक्तियों में लिखे हुए मूल पाठ को मिशना कहते हैं और इन टिप्पणियों को गेमारा (यह शब्द आरामी भाषा का है जिसका अर्थ 'पूर्ण करना' अथवा 'टीका' है)। मिशना और गेमारा दोनों मिलकर तालमुद कहलाते हैं। तालमुद आरामी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ शिक्षा अथवा सिद्धान्तत है। तालमुद का भी एक पलिश्तीनी और एक बाबुली संपादन किया गया है।

चौथा अध्याय

पुराना नियम का क्रम

पुराना-नियम धर्मशास्त्र की विषय-सूची के उपरोक्त विवरण के आधार पर यह स्पष्ट है कि उसके अंतर्गत पुस्तकों या लेखों का क्रम एक-रूप नहीं हो सकता। चार प्रकार के क्रम महत्वपूर्ण माने जाते हैं और उन पर यहाँ विचार किया जाएगा। ये इब्रानी धर्मशास्त्र, सेपत्वांगिता, बुल्गाता और अँग्रेजी (प्रोतेस्तंत) बाइबल के क्रम हैं। उन सब बाइबलों के लिये, जिनका संसार की विभिन्न भाषाओं में बाइबल सोसायटी के तत्वाधान में अनुवाद किया गया है, अँग्रेजी अनुवाद का क्रम स्वीकृत है। इसमें भारत की बाइबल सोसायटी के प्रकाशन भी सम्मिलित हैं।

१. इब्रानी धर्मशास्त्र

यहूदी धर्मशास्त्र के कानोन का इब्रानी नाम उसके प्रमुख विभागों का साररूप है। वह तोरा नबीयम उ-कतुबीम (व्यवस्था, नबी और लेख) कहलाता है। इन तीनों विभागों के यूनानी नाम भी साधारणतया प्रचलित हैं: पेंटाट्यूक, प्रोफेट्स, एवं हेगिओग्रफा ('पवित्र लेख')। इन विभागों के अंतर्गत पुस्तकों के विषय एवं क्रम निम्नानुसार हैं। जिस रूप में पुस्तकें आराधनाघर के कुण्डल-पत्र (scrolls) को निर्दिष्ट की गई हैं उनका भी संकेत यहाँ किया गया है।

तोरा (व्यवस्था)		पांच कुण्डल-पत्र
बरेशीत (उत्पत्ति)		१
बएल्ले शमोत या शमोत (निर्गमन)		२
वयिक्रा (लैव्यव्यवस्था)		३
वमिदबार (गिनती)		४
दवारीम (व्यवस्था विवरण)		५
नबीईम (प्रोफेट्स) नबी		आठ कुण्डल-पत्र
नबीईम रिशोनीम (पूर्व नबी)		चार कुण्डल-पत्र
यहोशू	(यहोशू)	६
शोपटीम	(न्यायियों)	७
शमूएल	(१ शमूएल)	८ ⎫ छपे इब्रानी धर्मशास्त्र में ये दो पुस्तकें हैं, परंतु आराधनाधर कुण्डल-पत्र में एक ही है।
,,	(२ शमूएल)	८ ⎭
मलाकीम	(१ राजा)	९ ⎫ छपे इब्रानी धर्मशास्त्र में ये दो पुस्तकें हैं, परंतु आराधनाधर कुण्डल-पत्र में एक ही है।
	(२ राजा)	९ ⎭
नबीईम अहरोनीम (उत्तरकालीन नबी)		चार कुण्डल पत्र
यशायाह	(यशायाह)	१०
यिर्मयाह	(यिर्मयाह)	११
यहेजकेल	(यहेजकेल)	१२
होशे	(होशे)	१३ आराधनाधर कुण्डल-पत्र में एक कुण्डलपत्र है और सामूहिक रूप में 'बारह की पुस्तक' कहलाती है।
योएल	(योएल)	
आमोस	(आमोस)	
ओबद्याह	(ओबद्याह)	
योना	(योना)	
मीका	(मीका)	
नहूम	(नहूम)	
हब्बकूक	(हबक्कूक)	
सपन्याह	(सपन्याह)	
हाग्गै	(हाग्गै)	
जकर्याह	(जकर्याह)	
मलाकी	(मलाकी)	

कतुबीम	(लेख	ग्यारह कुण्डल-पत्र	
तहिल्लीम	(भजन)	१४	
मिशले शलोमो	(नीतिवचन)	१५	
इययोब	(अय्यूब)	१६	
शीर हशीरीम	(श्रेष्ठ गीत)	१७	ये पाँच मेगिलोथ अथवा छोटे कुण्डलपत्र हैं जो पाँच प्रमुख पर्वों पर पढ़े जाते थे ।
रूत	(रूत)	१८	
एका	(विलापगीत)	१९	
कोहलत	(सभोपदेशक)	२०	
एस्तेर	(एस्तेर)	२१	
दानिय्येल	(दानिय्येल)	२२	
एज्रा	(एज्रा)	२३	छपे इब्रानी धर्मशास्त्र में दो पुस्तकें हैं, परंतु आराधनाघर कुण्डलपत्र में एक पुस्तक है ।
नहेम्याह	(नहेम्याह)	२३	
दिब्रे हैयोमीम	(१ इतिहास)	२४	,,
,, ,,	(२ इतिहास)	२४	,,

इस तालिका से दृष्टिगोचर होता है कि इब्रानी धर्मशास्त्र चौबीस कुण्डल-पत्रों में है—पाँच व्यवस्था के, आठ नबियों के और ग्यारह लेखों के । २ एस्द्रस (४) १४ : ४४–४५ में इस चौबीस की संख्या का उल्लेख किया गया है जहाँ एज्रा को धर्मशास्त्र की पुस्तकों को लेखबद्ध करने का आदेश दिया गया है । कहा जाता है कि ९४ पुस्तकें लिखी गईं, जिनमें से ७० तो विद्वानों के लिये थीं और चौबीस खुले रूप से प्रकाशित होनी चाहिये थीं। योसेपस केवल बाईस पुस्तकों का उल्लेख करता है । यह संख्या इब्रानी वर्णमाला की है । रूत और न्यायियों तथा विलापगीत और यिर्मयाह को मिला देने से बाईस संख्या आ जाती है ।

२. सप्तति-अनुवाद (सेपत्वांगिता, संकेत चिह्न LXX)

पुराने नियम का प्रारंभिक यूनानी अनुवाद सेपत्वांगिता कहलाता है । उसका पूरा शीर्षक है 'सत्तर प्राचीनों की व्याख्या' । यह शब्द 'सेपत्वांगिता' सत्तर के लिये लतीनी शब्द है । प्रारम्भ में सेपत्वांगिता से पंचग्रंथ के अनुवाद का ही संकेत होता था परंतु अब समग्र पुराना-नियम के लिए होता है । परंपरा यह है कि पंचग्रंथ का यूनानी में अनुवाद ७२ प्राचीनों ने किया था । इस्राएल के प्रत्येक कुल से छः इनमें थे । सेपत्वांगिता की पुस्तकें निम्नानुसार हैं :

गनेसिस	(उत्पत्ति)
एक्सुदूस	(निर्गमन)
ल्यूइतिकुन	(लैव्य-व्यवस्था)
अरिथमुइ	(गिनती)
द्युतुरुनुम्युन	(व्यवस्था विवरण)
इएसुस	(यहोशू)
क्रितै	(न्यायी)
रूथ	(रूत)
१ बसिलेयोन अर्थात् राजा	(१ शमूएल)
२ बसिलेयोन ,,	(२ शमूएल)
३ ,, ,,	(१ राजा)
४ ,, ,,	(२ राजा)
१ परलेपोमनन	(१ इतिहास)
२ ,,	(२ इतिहास)
१ एस्द्रस	(एज्रा)
२ एस्द्रस	(,, -नहेम्याह)
एस्तेर	(एस्तेर)
इऊदिथ, यूदित	(यूदित)
तोबित	(तोबित)
१ मकवी	(१ मकाबी)
२ ,,	(२ ,,)
३ ,,	(३ ,,)
४ ,,	(४ ,,)
प्सल्मुइ	(भजन)
ओदुई	(गौरव गीति)
परुयमय	(नीतिवचन)
इक्कलेसिअस्तेस	(सभोपदेशक)
इओब	(अय्यूब)
सुफीआ सलोमुनुस	(सुलैमान की प्रज्ञा)
सूफीआ सिरक, आमुख सहित	(सिरक की प्रज्ञा)
प्सल्मुइ सलोमुनुस	(सुलैमान के भजन)
ओसेस	(होशे)
आमुस	(आमोस)

मिकैअस	(मीका)
इखोउल	(योएल)
अबद्यू	(ओबद्याह)
इओन्नुस	(योना)
नऊम	(नहूम)
अम्बकुम	(हब्बकूक)
सफनीअस	(सपन्याह)
जकरीअस	(जकयहि)
मलकीआस	(मलाकी)
एसईआस	(यशायाह)
इअरर्मायास	(यिर्मयाह)
बारूक	(बारूक)
थ्र`नुय	(विलापगीत)
अपिस्तुले इअरमीआस	(यिर्मयाह की पत्री)
इअजकीएल	(यहेजकेल)
सूसन्ना	(सूसन्ना)
दानिएल (जिसमें तीन पवित्र युवकों का गीत है)	(दानिय्येल)
बेल के द्रकुन	(बेल और अजगर)

सेपत्वांगिता का सामान्य क्रम चार समूहों में विभाजित होता है : विधानात्मक (व्यवस्था की पांच पुस्तकें जो प्रंचग्रंथ कहलाती हैं), इतिहासात्मक (यहोशू से ४ मकाबी तक), काव्यात्मक तथा प्राज्ञिक (नीति) (भजन से सुलेमान के भजन तक), और नबूवतात्मक (होशे से अंत तक)।

३. वुल्गाता (Vulgate) या लातीनी प्रचलित अनुवाद

ई० स० चौथी शताब्दी के अंत में पोप दमास्कुस के अधिकार से येरोम ने बाइबल का एक मानक लतीनी अनुवाद प्रस्तुत किया। अनुवाद का कार्य संपन्न करने के लिये वह बैतलहम गया। वहाँ यीशु के जन्म स्थान के निकट वह एक गुफा में रहा। उसने पुराना-नियम का अनुवाद सीधे इब्रानी से किया परन्तु उसने यूनानी अनुवाद का भी उपयोग किया। येरोम का अनुवाद 'वलगत एदितिओ' (Vulgate Edition) (साधारण संस्करण) अथवा वुल्गाता कहलाया। यूरोप में कोई १००० वर्ष तक यह अकेली ही एकछत्र प्रामाणिक बाइबल रही। वुल्गाता में निम्नलिखित पुस्तकें हैं :

Genesis	(उत्पत्ति)
Exodus	(निर्गमन)
Leviticus	(लैव्यव्यवस्था)
Numeri	(गिनती)
Deuteronomium	(व्यवस्था विवरण)
Iosue	(यहोशू)
Judices	(न्यायियों)
Ruth	(रूत)
1 Regum	(१ शमूएल)
2 ,,	(२ शमूएल)
3 ,,	(१ राजा)
4 ,,	(२ राजा)
1 Paralipomenon	(१ इतिहास)
2 Paralipomenon	(२ इतिहास)
1 Esdrae[१]	(एज्रा)
2 Esdrae	(नहेम्याह)
Tobia	(तोबित)
Iudith	(यूदित)
Esther	(एस्तेर)
Iob	(अय्यूब)
Psalmi	(भजन)
Proverbia	(नीतिवचन)
Ecclesiastes	(सभोपदेशक)
Canticum Canticorum	(श्रेष्ठगीत)
Sapientia	(सुलैमान के प्रज्ञागंथ)
Ecclesiasticus	(सीरख)
Isaias	(यशायाह)
Ieremias	(मिर्मयाह)
Lamentationes Threni	(विलापगीत)

---

१. प्रथम और द्वितीय एस्द्रे (एस्द्रस) और अँग्रेजी अपक्रिफा की इसी नाम की पुस्तकों में अन्तर है। दोनों की विषय सामग्री भिन्न है।

Baruch	(बारूक)
Ezechiel	(यहेजकेल)
Daniel	(जिसमें तीन पवित्र बालकों का गीत, सुसन्ना तथा बेल एवं अजगर सम्मिलित हैं)
Osee	(होशे)
Ioel	(योएल)
Amos	(आमोस)
Abdias	(ओबद्याह)
Ionas	(योना)
Michaeas	(मीका)
Nahum	(नहूम)
Habacuc	(हबक्कूक)
Sophonias	(सपन्याह)
Aggaeus	(हाग्गै)
Zacharias	(जकर्याह)
Malachias	(मलाकी)
1 Machabae	(१ मकाबी)
2 Machabae	(२ मकाबी)

४. अंग्रेजी बाइबल (प्रोतेस्तंत)

बाइबल का 'किंग जेम्स' का अथवा अधिकृत अनुवाद (Authorized Version) सर्वाधिक प्रचलित अनुवाद है। यह इंगलैंड के राजा जेम्स प्रथम द्वारा नियुक्त ५४ विद्वानों ने तैयार किया था। इसमें सात वर्ष लगे और ई० स० १६११ में पूर्ण हुआ। १८८१–१८८५ में उसका संशोधन हुआ और १९४६–५२ में एक और अभिनव संशोधन हुआ जिसे 'संशोधिक मानक अनुवाद' कहते हैं। अंग्रेजी बाइबल में निम्नांकित पुस्तकें हैं :

उत्पत्ति	२ इतिहास	दानिय्येल
निर्गमन	एज्रा	होशे
लव्यव्यवस्था	नहेम्याह	योएल
गिनती	एस्तेर	आमोस

व्यवस्था विवरण	अय्यूब	ओबद्याह
यहोशू	भजन	योना
न्यायियों	नीतिवचन	मीका
रूत	सभोपदेशक	नहूम
१ शमूएल	श्रेष्ठगीत	हबक्कूक
२ शमूएल	यशायाह	सपन्याह
१ राजा	यिर्मयाह	हाग्गै
२ राजा	विलापगीत	जर्कयाह
१ इतिहास	यहेजकेल	मलाकी

पुराने नियम के साथ संबद्ध और कुछ बाइबलों में अपक्रिफा भी छपाया जाता है। इसमें निम्नलिखित पुस्तकें हैं।

१ एस्द्रस (जिसे यूनानी एस्द्रस कहते हैं। यह वही है जो सेपत्वांगिता में १ एस्द्रस है और वुलगाता में ३ एस्द्रस है। सेपत्वांगिता के लूकियन पाठ में इसे २ एस्द्रस कहते हैं।)

२ एस्द्रस (जिसे लतीनी में ४ एस्द्रस कहते हैं)।

तोबित

यूदित

शेष एस्तेर (सेपत्वांगिता में यह प्रामाणिक एस्तेर में सम्मिलित है; वुल्गाता में यह एस्तेर के अंत में संलग्न है)।

सुलैमान के प्रज्ञाग्रंथ

सीरख

बारूक, यिर्मयाह की पत्री के साथ

तीन पवित्र युवकों का गीत (सेपत्वांगिता और वुल्गाता में यह दानिय्येल की पुस्तक में सम्मिलित है)।

बेल और अजगर (सेपत्वांगिता और वुलगाता दोनों में ही यह दानिय्येल की पुस्तक के अन्त में दी गई है)।

मनश्शे की प्रार्थना

१ मकाबी

२ मकाबी

यह द्रष्टव्य है कि अंग्रेजी बाइबल (अर्थात प्रोतेस्तंत अंग्रेजी बाइबिल) में जो क्रम है वह वुलगाता के क्रमानुसार है जो इब्रानी धर्मशास्त्र के बजाय

सेपत्वांगिता के अधिक अनुरूप है। यह भी द्रष्टव्य है कि अंग्रेजी प्रोस्तेतंत बाइबल की विषय सामग्री इब्रानी धर्मशास्त्र के अनुरूप है। दोए अनुवाद (१६१०) तथा रोनाल्ड नोक्स (१९४८) अनुवाद जैसे रोमन केथोलिक अंग्रेजी अनुवाद वुलगाता के क्रम एवं नामावली का अनुसरण करते हैं।

५. अध्याय और पद और अन्य विभाजन

मरकुस के बारहवें अध्याय में सदूकियों ने यीशु से एक प्रश्न किया। यीशु ने उत्तर देते हुए एक संदर्भ दिया "क्या तुमने मूसा की पुस्तक में 'झाड़ी की कथा' में नहीं पढ़ा।" धर्मशास्त्र के उस अंश का संकेत अध्याय और पद द्वारा नहीं किया गया, वरन् एक कथांश द्वारा जिसका शीर्षक 'झाड़ी की कथा' दिया। अत: यह जानना रुचिकर होगा कि बाइबल में अध्याय और पदों में जो विभाजन विद्यमान है वह कहाँ से आया।

पुराने नियम के इब्रानी पाठ में दो प्रकार के विभाग थे। एक तो मूलपाठ के विषय अनुसार और दूसरा विधियों का अंश। पहले प्रकार के भाग को पेराशाह कहते थे जिसके दो रूप थे,—'खुला भाग' और 'बंद भाग'। 'खुला भाग' वे हैं जिनमें एक नई पंक्ति से अनुच्छेद (paragraph) आरंभ होता है। बंद भाग पंक्तियों के बीच में ही आरंभ होते हैं। पंचग्रंथ में २९० खुले भाग और ३७९ बंद भाग हैं।

विधियों का अंश आराधना घर में सब्त के दिन पठन करने की सुविधा के अनुसार रखा गया है। पहले तो आराधना घर में पढ़े जाने वाले पाठ केवल पंचग्रंथ से ही लिए जाते थे, पश्चात् वे नबियों में से भी लिए जाने लगे। व्यवस्था (पंचग्रंथ) से लिए जाने वाले पाठ 'सेदेर' कहलाते थे और नबियों से लिये जाने वाले 'हपतारा' कहलाते थे। पलिश्तीन में इन पाठों के द्वारा पूरा पंचग्रंथ तीन वर्ष में पढ़ लिया जाता था। इस प्रकार उसमें १५४ सेदेर या साप्ताहिक पाठ होते थे। बाबुल में एक वर्ष में ही पूरा पंचग्रंथ पढ़ा जाता था, अत: वहाँ ५४ सेदेर होते थे। ये अंश केवल इब्रानी धर्मशास्त्र में ही दृष्टिगोचर होते हैं। पुराने नियम के अनुवादों में इनका संकेत नहीं मिलता।

इब्रानी बाइबल और पुराने नियम के यूनानी, लतीनी, अंग्रेजी अथवा किसी भाषा में किए गए अनुवादों में अध्यायों एवं पदों में विभाजन मिलता है। पुराने नियम में अध्यायों की अपेक्षा पदों में विभाजन अधिक प्राचीन है। नये नियम में इसके विपरीत हुआ। पुराने नियम में पद का विभाजन कदाचित आराधना घर में आराधना पद्धति के कारण उत्पन्न हुआ। इब्रानी धमशास्त्र का एक छोटा अंश पढ़ा जाता था और तब व्याख्याता समाज के

निमित्त उसका अरामी भाषा में अनुवाद करता था। अनुवाद के लिये इस प्रकार विराम धीरे-धीरे मान्यता प्राप्त करते गए और पद-विभागों के रूप में निर्धारित हो गए। तरगुम में इनको लिखित रूप प्राप्त हुआ (ई. स. ५००)। पलिश्तीन और बाबुल में प्रचलन के अनुसार पद-विभाग में विभिन्नता रही, परंतु अंत में बेन अशेर ने जो सबसे महान मसोरीत है, वर्तमान रूप में पद-विभागों का संशोधन किया और मानक रूप प्रदान किया (९००–९५० ई. स.)।

इब्रानी पाठ में वर्तमान अध्याय-विभागों का दर्शन लगभग १३३० ई. स. में होता है। इससे कोई एक शताब्दी पूर्व लतीनी बाइबल में अध्याय-विभागों का सर्व प्रथम प्रयोग किया गया। यह बाइबल कैंटरबरी के आर्चबिशप, स्टीफन लेंगटन ने प्रकाशित की।

इब्रानी बाइबल और सेपत्वांगिता में अध्याय एवं पद-विभाजन समान नहीं हैं। प्रोतेस्तंत अंग्रेजी अनुवाद में भी, जो कम पुस्तक वालेयहूदी धर्मशास्त्र के अनुरूप है, इब्रानी बाइबल से पदों को संख्या देने में कहीं-कहीं भिन्नता है। उदाहरणार्थ, सेपत्वांगिता एवं वुल्गाता में भजन २२ है, वह इब्रानी और अंग्रेजी बाइबल में भजन २३ है; प्रोतेस्तेंत अंग्रेजी बाइबल में यशायाह ९ : १ है, वह इब्रानी बाइबल में यशा ८ : २३ है।

६. नाम

सेपत्वांगिता में पुस्तकों के नामों को देखने से पता चलता है कि बाइबल के नामों की वर्तनी नामों की सुपरिचित वर्तनी से भिन्न है। सेपत्वांगिता-वुल्गाता परंपरा के अंतर्गत बाइबल के जो अंग्रेजी अनुवाद हुए हैं उनमें वुल्गाता में उपलब्ध वर्तनी का प्रयोग किया गया है। वुल्गाता की वर्तनी इब्रानी बाइबल से नहीं वरन् यूनानी से ली गई है। प्रोतेस्तंत अंग्रेजी बाइबल में नामों की वर्तनी मूल इब्रानी के अनुरूप है, तो भी यूनानी और लतीनी का प्रभाव भी यत्र-तत्र परिलक्षित होता है, जैसे 'इज़िकिएल' में 'ह्' ध्वनि का अथवा आज़ेयाह में 'य' ध्वनि का लोप। पुराने नियम के भारतीय अनुवादों में इब्रानी से ही नामों को अनुलिखित किया गया है। उर्दू अनुवाद में अरबी से उत्पन्न कई शब्दों के उपयोग के कारण अन्य भाषाओं की अपेक्षा इब्रानी के नामों से कहीं अधिक साम्य है, क्योंकि इब्रानी का अरबी से गहन संबंध है।

पांचवां अध्याय

प्रामाणिक धर्मशास्त्र या कानोन का विकास एवं निर्धारण

हमारे सामने यह प्रश्न है कि विभिन्न लेख किन चरणों से प्रामाणिक धर्मशास्त्र के रूप में आ गए ?' इस प्रश्न का उत्तर देते समय हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि धर्मशास्त्र के लेख ईश्वरीय रचयिता का काम हैं तथा उन मनुष्यों का भी जिन्होंने उन्हें विभिन्न समयों में लिखा और उनका उपयोग किया। मनुष्यों के लेख होने की दृष्टि से वे उन सब विकास प्रणालियों के अधीन रहे जिनके अधीन मानवी सभ्यता के अन्य पक्ष रहते हैं । इस प्रणाली के विभिन्न चरणों का यहाँ संक्षिप्त अध्ययन किया जाएगा।

प्रामाणिक धर्मशास्त्र के विकास एवं निर्धारण के तीन पक्ष प्रस्तुत होते हैं :

१. एक प्रणाली तो वह है जिसके द्वारा विश्वासी लोगों में मतैक्य हुआ कि कौनसी पुस्तकों को धर्मशास्त्र माना जाए और कौनसी नहीं।

२. कलीसियाई विद्वानों अथवा नेताओं की लेखों की विषय-सामग्री के संबंध में घोषणाएं हैं । इन घोषणाओं को साधारणतया मान्यता दी गई है, यद्यपि कि उन्हें विधिवत् रूप से स्वीकार नहीं किया गया है ।

३. विभिन्न वैधानिक कलीसियाई परिषदों अथवा अन्य अधिकारियों द्वारा प्रामाणिक धर्मशास्त्र का विधिवत् निर्धारण है। सभी कलीसियाओं ने अपने धर्मशास्त्र को इस तीसरी प्रणाली से निर्धारित नहीं किया है, परंतु कम से कम दूसरी पद्धति तक की प्रामाणिकता उन्हें प्राप्त है।

१ मतैक्य से प्रामाणिक धर्मशास्त्र

(१) सीनै पर्वत पर वाचा की पुस्तक : साहित्यिक संग्रह के रूप में पुराने नियम का इब्रानी इतिहास के अंतर्गत अस्तित्व हुआ, अतएव हमारा अध्ययन यहूदी धर्मशास्त्र के विकास से प्रारंभ होता है। परमेश्वर और इस्राएल के बीच संबंध के लिखित अभिलेख का सर्वप्रथम उल्लेख निर्ग. २४ : ४ में है, जहाँ यह कहा गया है कि मूसा ने प्रभु के सब वचन लिख दिए । जो कुछ उसने लिखा उसे 'वाचा की पुस्तक' कहा गया है (२४ : ७) । यह गंभीर अनुष्ठान के समय लोगों के सम्मुख पढ़ा गया और उसी में बलि के लोहू से उस वाचा पर छाप दी गई । वाचा की पुस्तक की ठीक विषय सामग्री की जानकारी प्राप्त करने का कोई साधन नहीं है। फिर भी वह शास्त्र का प्रारंभ

है, क्योंकि वाचा की पुस्तक धार्मिक रूप से प्रामाणिक मानी जाती थी। यहोशू २४ : २५, २६ में वाचा की पुस्तक का फिर से उल्लेख किया गया है। यहोशू ने लोगों के साथ वाचा बंधाई और उनके लिये विधि और नियम ठहराए, जिसका वृत्तांत उसने 'परमेश्वर की व्यवस्था की पुस्तक' में लिख दिया। क्या यह वही पुस्तक थी जिसका मूसा ने उपयोग किया अथवा नई पुस्तक थी ? यदि यह वही थी तो मूसा के उत्तराधिकारी के रूप में उसके लिए यह उचित माना गया कि वह उसमें कुछ जोड़ दे। यदि वह नई पुस्तक थी, तो हम यह मान सकते हैं कि विधि एवं नियम को लेखबद्ध करना भविष्य के लिये एक अभिलेख नहीं, वरन वाचा बंधाने की विधि का एक अंग मात्र था। जब शमूएल ने शाऊल को राजा बनाने के लिये चुना तो 'शमूएल ने लोगों से राजनीति का वर्णन किया, और उसे पुस्तक में (अथवा 'उस पुस्तक' में) लिखकर प्रभु के सामने रख दिया' (१ शमू. १० : २५)। दाउद वाचा बाँधने के और अभिषिक्त होने के द्वारा इस्राएल का राजा हुआ (२ शमू. ५ : ३)। हमें यह नहीं बताया जाता है कि वाचा लेखबद्ध हुई अथवा नहीं, परंतु यह अनुमान किया जाता है कि जैसे शाऊल के समय वैसे दाऊद के समय भी लिखी गई। इन सब वाचाओं और मूसा की मूल वाचा में एक तारतम्य है, कि ये सब धार्मिक दायित्व के प्रतीक स्वरूप 'प्रभु के सामने रखी गई''। परंतु वे धर्म और न्याय विधियों के लिये संदर्भ पुस्तकें नहीं बनी। धर्म और नागरिक विधि (Civil Law) दोनों मौखिक परंपरा और प्रथित व्यवहार की बात थी।

(२) योशिय्याह की व्यवस्था की पुस्तक

योशिय्याह के समय में एक पुस्तक निकली जो धर्मशास्त्र के समान थी। जब मंदिर सुधारा जा रहा था, तो हिल्किय्याह महायाजक को 'प्रभु के भवन में व्यवस्था की पुस्तक मिली' (२ राजा २२ : ८)। शापान मंत्री ने राजा को वह पुस्तक पढ़कर सुनाई। राजा ने अपने वस्त्र फाड़े, 'क्योंकि प्रभु की बड़ी जलजलाहट हम पर इस कारण भड़की है, कि हमारे पुरखाओं ने इस पुस्तक की बातें न मानीं, कि जो कुछ हमारे लिये लिखा है, उसके अनुसार करते' (२ राजा २२ : १३)। सब लोग एकत्र हुए कि उनके सामने पुस्तक का पाठ किया जाए।'''''''और 'सब प्रजा वाचा में सम्भागी हुई' (२ राजा २३ : ३)। एक बड़ा सुधार जनता में आया, जिसमें मूर्ति पूजा, अशुद्धता, बालकों की बलि चढ़ाना और ऊँचे स्थानों में पूजा को नष्ट किया गया और उसके पश्चात् फसह का पर्व बड़े समारोह के साथ मनाया गया। ऐसा लगता है कि व्यवस्था की पुस्तक पवित्र मानी जाती थी। वह मनुष्य को परमेश्वर का वचन मानी जाती

थी, और मनुष्यों से आज्ञा पालन और सुधार की माँग करती थी ? चौथी शताब्दी ईस्वी में जेरोम ने यह सुझाव प्रस्तुत किया कि यह कदाचित् व्यवस्था विवरण की पुस्तक थी और आधुनिक युग के विद्वानों ने इस विचार को लेकर उस पर शोध की। यदि यह अनुमान ठीक है, तो हम व्यवस्था विवरण की पुस्तक अथवा उसके प्राचीनतम रूप को इस्राएल के धर्मशास्त्र की प्रथम निश्चित पुस्तक, अर्थात प्रथम ऐसा लेख जो प्रामाणिक धर्मशास्त्र होने के योग्य है, मानते हैं।

(३) मूसा की व्यवस्था जो एज्रा के पास थी

जब एज्रा बाबुल से यरूशलेम को आया तो वह मूसा की व्यवस्था साथ लाया (एज्रा ७ : १४)। 'मूसा की व्यवस्था' 'व्यवस्था विवरण से अधिक थी, क्योंकि उसके कुछ आदेश लैव्यव्यवस्था की पुस्तक में पाये जाते हैं (नहे ८ : १४)। व्यवस्था विवरण के पठन में जितना समय लगता, उससे अधिक समय इसके पढ़ने में लगा (नहे. ९ : ३)। यह अनुमान किया जाता है कि उसमें वर्तमान पंचग्रंथ के कुछ अंश भी होंगे। चाहे जितनी विषय सामग्री उसमें रही हो, यह निश्चित है कि मूसा की व्यवस्था जो एज्रा यरूशलेम को लाया, अधिकृत धर्मशास्त्र था और उसमें व्यवस्था विवरण की सामग्री से अधिक सामग्री थी।

(४) पंचग्रंथ और नबी

इसके पश्चात् इब्रानी धर्मशास्त्र का जो अंश है वह पंचग्रंथ है, यह उस रूप में है जिससे हम आज परिचित हैं। ये लेख लगभग उस काल के मध्य प्रामाणिक माने गये जिसकी सीमाएँ सामरी समाज के यहूदियों से पृथक हो जाने (नहे. १३ : २८, साधारणतया इसकी तिथि ई० पू० ४३२ मानी जाती है, अन्य इसे सिकन्दर महान् के काल में ३३२ ई० पू० में मानते हैं) और ई० पू० १८० है (जब 'यीशु बेन सीरख की सीरख' नामक पुस्तक लिखी गई)। सामरी लोग केवल पंचग्रंथ को ही धर्मशास्त्र स्वीकार करते हैं और उनका पंचग्रंथ कुछ छोटी बातों में इब्रानी पंचग्रंथ से भिन्न है। अतः यह अनुमान किया जाता है कि पंचग्रंथ का मूल पाठ यहूदी सामरी संबंध-विच्छेद के समय अंतिम रूप से मानकृत हो गया था। इसके विपरीत यीशु बेन सीरख के पोता, जिसने अपने दादा के ग्रंथों का अनुवाद किया, अपने दादा के संबंध में यह लिखता है,"वह विशेषरूप से व्यवस्था, नबी और पूर्वजों की अन्य पुस्तकों के पठन में लगा रहता था।" इससे यह व्यंजित होता है कि शास्त्र के ये दोनों भाग उसके पूर्व सामान्य स्वीकृति प्राप्त कर चुके थे। इन दोनों में से व्यवस्था (पंचग्रंथ) को पहले मान्यता दी

गई होगी, क्योंकि सामरी के पास केवल पंचग्रंथ ही था, और इसलिये भी कि सेपत्वांगिता में भी इसी रूप एवं क्रम में पंचग्रंथ विद्यमान है। इसकी तिथि ई० पू० २५० है।

(५) लेख

ई० पू० ७५ तक यहूदी धर्मशास्त्र का तीसरा भाग (लेख) भी प्रामाणिक धर्मशास्त्र मान लिया गया, क्योंकि तालमुद के अनुसार शिमोन बेन शेतेक (७५ ई० पू०) ने इन शब्दों का प्रयोग कर 'यह लिखा है' और 'धर्मशास्त्र कहता है' सभोपदेशक ७ : १० और नीति वचन २३ : २५ को उद्‌घृत किया है। ई० स० ४० में हम यह पाते हैं कि फीलो यूदियस उत्पत्ति-मलाकी समूह की पुस्तकों से (यहेजकेल, दानिय्येल, रूत, एस्तेर, विलापगीत और सभोपदेशक की पुस्तकों को छोड़ अन्य सब से) उद्धरण देता है। इसका यह अर्थ है कि उस समय तक अधिकांश लेख प्रामाणिक माने जा चुके थे। इस समय बढ़ती हुई खिस्तीय कलीसिया में यहूदी धर्मशास्त्र को प्रचलन का एक और केन्द्र प्राप्त हो गया। पलिश्तीन के बाहर खिस्ती लोग अपने यहूदी पड़ोसियों की उस प्रथा का अनुसरण करने लगे जिसमें अधिक पुस्तकोंवाला धर्मशात्र का चलन था। परंतु अभी तक न तो यहूदियों ने और न खिस्तियों ने यह विचार किया कि प्रामाणिक धर्मशास्त्र का विधिवत् निर्धारण किया जाय।

२. व्यक्तिगत रूप में नेताओं द्वारा प्रामाणिक धर्मशास्त्र की घोषणा

धर्मशास्त्र के प्रचलन में सामान्य मतैक्य के चरण से व्यक्तियों अथवा परिषदों द्वारा घोषणा के चरण तक विकास के मूल में दो तत्व हैं। एक कलीसिया के बाहर और दूसरा कलीसिया के भीतर कार्यशील रहा। पहला तत्व यह है कि यहूदियों ने लगभग १५० ई० स० में अपने प्रामाणिक धर्मशास्त्र का निर्धारण कर लिया था। इस बात की जानकारी नहीं मिलती कि अंत में यह कैसे हुआ। लगभग ई० स० ९० में जामनिया की महासभा में एक निश्चित प्रयत्न इस दिशा में किया गया था। यह महासभा फरीसिय की विद्वतसभा थी जिसमें इस बात का विवेचन किया गया कि अमुक अमुक पुस्तक से "हाथ तो मैले नहीं होते"! अर्थात किसी पुस्तक विशेष को स्पर्श करने के पश्चात हाथ धोने की आवश्यकता तो नहीं पड़ती। उस महासभा ने उत्पत्ति-मलाकी समूह को प्रामाणिक धर्मशास्त्र निर्धारित किया, और उसमें तोबित-मकाबी, हनोक एवं सिबिल समूहों को सम्मिलित नहीं किया। सदूकियों ने फरीसियों के इस धर्मशास्त्र निर्धारण को स्वीकार न किया। कई दशक यह वादविवाद चलता रहा। परंतु दो प्रभाव ऐसे आए जिनके कारण निश्चित निर्धारण आवश्यक हो गया। एक

प्रभाव तो ख्रिस्तीय कलीसिया का था जो इस सत्य के समर्थन के लिये यहूदी धर्मशास्त्र का प्रयोग कर रही थी कि यीशु मसीह अथवा ख्रिस्त है, दूसरा प्रभाव था उस प्रकाशनात्मक साहित्य की वृद्धि, जिससे विश्वास के ऐतिहासिक मूल आधारों के अधिकार का महत्व कम हो रहा था। लगभग १५० ई० स० तक प्रामाणिक धर्मशास्त्र संबंधी वादानुवाद चलता रहा और तब बंद हो गया। ऐसा प्रतीत होता है कि धर्मशास्त्र को अंतिम रूप दे दिया गया था। उत्पत्ति-मलाकी समूह के रूप में जैसा आज यहूदी धर्मशास्त्र है, वह निर्धारित हो गया।

पुराना-नियम के संबंध में जो प्रश्न ख्रिस्तियों के बीच उठाये जाते थे उनसे यह परिलक्षित होता है कि यहूदियों के प्रामाणिक धर्मशास्त्र का निर्धारण हो गया था। ई. स. १७० में सरदीस के बिशप मेलितो ने इस प्रकरण पर सच्ची जानकारी प्राप्त करने के हेतु पूर्वी प्रदेश की यात्रा की। पुराने नियम के धर्मशास्त्र की एक सूची उसने प्रस्तुत की। उसे सामान्यता मेलितो का धर्मशास्त्र कहते हैं। उसने जो पुस्तक-क्रम बतलाया है, वह इब्रानी तथा सेपत्वांगिता दोनों से भिन्न है, परंतु सेपत्वांगिता से उसका साम्य अधिक है। उसमें एस्तेर नहीं है। ओरिगेन (१८५-२५४ ई. स.) यहूदियों द्वारा मान्य धर्मशास्त्र की एक सूची प्रस्तुत करता है। उसमें उसके कथानुसार २२ पुस्तकें हैं, परंतु हैं केवल २१। अथनासियस ई. स. ३६५ के अपने उत्सव-पत्रों (Festal Epistles) में पुराने नियम की प्रामाणिक पुस्तकों की सूची देता है। यह सूची यूनानी धर्मशास्त्र के क्रमानुसार है परंतु सामग्री में वह यहूदी प्रामाणिक धर्मशास्त्र के अनुरूप है, अर्थात उसमें उत्पत्ति-मलाकी समूह सम्मिलित है। अथनासियस यिर्मयाह के साथ बारूक सम्मिलित करता है और एस्तेर की पुस्तक को नहीं। वह उन पुस्तकों का भी उल्लेख करता है जो कुछ न्यून मात्रा में प्रामाणिक हैं। इनमें सुलैमान का प्रज्ञाग्रंथ, सीरख, एस्तेर, यूदित और तोबित सम्मिलित हैं।

जेरोम (ई. स. ३२९–४२०) एक महान अनुवादक और धर्मशास्त्र का निष्णात था। उसने प्रोलोगुस गलीतुस में पुराने नियम की पुस्तकों की सूची प्रस्तुत की। यह सूची उत्पत्ति-मलाकी समूह है, और यद्यपि जेरोम यह कहता है कि उसका क्रम यहूदी धर्मशास्त्र के अनुरूप है, तथापि वास्तव में वह यूनानी धर्मशास्त्र के क्रम अनुसार है। वह तोबित-मकाबी समूह की पुस्तकों का उल्लेख करते हुए उन्हें प्रामाणिक धर्मशास्त्र में सम्मिलित नहीं करता। धर्मशास्त्र के अनुवाद में (वुल्गाता) उसने यूनानी पुराने नियम से तोबित-मकाबी समूह को पृथक किया और उसे एक अलग इकाई के रूप में उत्पत्ति-मलाकी समूह के

पश्चात् स्थान दिया । इस प्रकार 'एस्तेर' और दानिय्येल की यूनानी पुस्तक का कुछ अंश (तीन पवित्र युवकों का गीत, सुसन्ना का इतिहास तथा बेल और अजगर) पृथक रूप में प्रस्तुत हुए ।

औगुस्तीन (मृ. ई. स. ४३०) ने यूनानी प्रचलन के अनुसार पुराना-नियम धर्मशास्त्र की सूची बनाई, अर्थात् उसमें उत्पत्ति-मलाकी समूह और तोबित-मकाबी समूह दोनों सम्मिलित हैं। उसके प्रभाव के कारण उसके अधिकार-क्षेत्र के अंतर्गत ३९३ ई. स. में हिप्पो की परिषद में प्रामाणिक धर्मशास्त्र का प्रथम विधिवत् कलीसियाई निर्धारण किया गया । परंतु सार्वभौम परिषदों के लिये यह कार्य शेष रहा कि विस्तृत ख्रिस्तीय संसार की स्वीकृति उसे प्राप्त हो ।

चौथी शताब्दी में मर्व के इशोदाद को यहूदी धर्मशास्त्र की जानकारी थी । अफ्रहात (ई. स. ३५०) और एप्रैम (ई. स. ३७५) को उत्पत्ति-मलाकी समूह तथा अन्य पुस्तकों की जानकारी थी । मोपसुएस्तिया के थियोदोर ने सब लेखों को तीन भागों में, अर्थात् पूर्ण प्रामाणिक, अंशतः प्रामाणिक तथा अप्रामाणिक, विभाजित किया । अंशतः प्रामाणिक पुस्तकों में अय्यूब, तोबित, १ एस्द्रस, यूदित, श्रेष्ठगीत, इतिहास और एज्रा-नहेम्याह सम्मिलित हैं ।

१३वीं शताब्दी में बार-हेब्राइस का नोमोकानोन पुराने नियम की पुस्तक-सूची के संबंध में प्रेरितों के प्रामाणिक धर्मशास्त्रों से निम्नलिखित उद्धरण देता है :

"मूसा की पाँच पुस्तकें, यहोशू, न्यायियों, रूत, यूदित, राजाओं की चार पुस्तक, इतिहास की दो पुस्तकें, एज्रा की दो, एस्तेर, अय्यूब, दाविद, सुलैमान की पाँच और सोलह नबी । इससे परे पुस्तकें सीरख हैं जो बालकों की शिक्षा के निमित्त हैं ।"[१]

इस प्रकार बार-हेब्राइस की सूची में तोबित-मकाबी समूह की कुछ पुस्तकें प्रामाणिक मानी गई हैं—अर्थात् यूदित और 'सुलैमान की पाँच पुस्तकें' ।

३. कलीसियाई अधिकार द्वारा प्रामाणिक धर्मशास्त्र का निर्धारण

(१) हिप्पो एवं कार्थेज की परिषदें

मंडली परिषद द्वारा प्रामाणिक धर्मशास्त्र का सर्वप्रथम निर्धारण हिप्पो के बिशप संत औगुस्तीन के अधिकार क्षेत्र में हुआ । बिशप बनने के बाद ही

---

१. आर्थर जेफरी, 'दी केनन ऑफ दी ओल्ड टेस्टामेंट,' इन्टरप्रेटर बाइबल में प्रथम भाग, पृष्ठ ४२.

संत औगुस्तीन ने दोनाती वादविवाद के समाधान द्वाराअपने लोगों में एकता लाने की चेष्टा की। इसके लिये उसने ई. स. ३९३ में हिप्पो की परिषद बुलाई। इस परिषद में प्रामाणिक धर्मशास्त्र का निर्धारण हुआ और उसमें उत्पत्ति-मलाकी समूह तथा तोबित-मकाबी समूह सम्मिलित किए गए। दूसरे शब्दों में यह निर्धारण यूनानी प्रचलन के अनुरूप हुआ। ३९७ ई. स. और ४१९ ई. स. में कार्थेज की परिषदों में इस निर्णय की पुष्टि हुई। हिप्पो की परिषद की अपेक्षा इन दोनों परिषदों का प्रभाव अधिक व्यापक था। अतः यह मानना अधिक सुविधापूर्ण है कि ३९७ ई. स. की कार्थेज-परिषद का प्रामाणिक धर्मशास्त्र के निर्धारण में विशेष महत्वपूर्ण स्थान है।

(२) त्रेंतीनो की परिषद, ई. स. १५४६

फिर कम से कम १००० वर्ष तक लेखों की प्रामाणिकता वाद विवाद का विषय न रहा। परंतु जब प्रोतेस्तंत संप्रदाय का उदय हुआ तो कलीसिया की परंपरा के अनेक पक्षों का पुनः परीक्षण किया गया जिसमें एक पक्ष प्रामाणिक धर्मशास्त्र भी था। स्वीकृत धर्मशास्त्र के अंतर्गत पुस्तकों के महत्व में वैभिन्य के संबंध में लूथर की अपनी मान्यता थी। परंतु उसने प्रामाणिक धर्मशास्त्र की सूची को एक आवश्यक समस्या का रूप नहीं दिया। ई. स. १५३० में ऑग्सवर्ग विश्वासवचन स्वीकृत हुआ, जो प्रोतेस्तंत संप्रदाय का 'सर्वश्रेष्ठ घोषणा पत्र एवं साहित्यिक स्मारक' कहलाता है। उसमें प्रामाणिक धर्मशास्त्र की विषय सूची के संबंध में कुछ नहीं कहा गया है। इसके विपरीत सुदूर पश्चिम के प्रोतेस्तंत सम्प्रदाय ने, जिसमें ज्विग्ली और कालविन सम्मिलित हैं, उन लेखों को ही पुराना नियम माना जिनको यहूदियों ने प्रामाणिक माना था—अर्थात् उत्पत्ति-मलाकी समूह को। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि दीर्घकाल से जो परंपरा प्रचलित थी उसके साथ संघर्ष उत्पन्न हुआ, क्योंकि कलीसियाई विधियों में कई पाठ तोबित-मलाकी समूह से लिये गए थे। इस क्रांति पर विचार करने के लिये रोमन केथोलिक कलीसिया ने (१५४५–६३) त्रेंतीनो की परिषद का आयोजन किया। इस परिषद का उद्देश्य यह था कि कलीसिया के धर्म सिद्धांतों का पुनर्कथन करने और दोषों का निवारण करने के द्वारा उसके जीवन में सुधार किया जाए। सन् १५४६ में इस परिषद के अधिवेशनों में हिप्पो एवं कार्थेज की परिषदों द्वारा प्रामाणिक धर्मशास्त्र निर्धारण की पुष्टि की, अर्थात्, उसमें उस पुराने नियम को प्रामाणिक धर्मशास्त्र निर्धारित किया जिसमें प्रथम-प्रामाणिक पुस्तकें (उत्पत्ति-मलाकी समूह) और द्वितीय-प्रामाणिक पुस्तकें (तोबित-मकाबी समूह) सम्मिलित हैं। पुराने नियम

के प्रामाणिक धर्मशास्त्र का यह निर्धारण आज तक रोमन केथोलिक कलीसिया का अधिकृत निर्धारण माना जाता है।

(३) उनचालीस विश्वाससूत्र (ई० स० १५६३)

रानी एलिजाबेथ के शासन काल में १५६३ ई० स० में आंग्ल धर्माध्यक्ष-तंत्र की स्थापना हुई। उसके कुछ काल पश्चात ही १५६३ में इङ्गलैंड की कलीसिया के मूल सिद्धांतों का उनचालीस विश्वास-सूत्रों में निर्धारण हुआ। छठवें सूत्र में दो पुस्तक-सूची प्रस्तुत हैं। पहली सूची को जिसमें उत्पत्ति-मलाकी समूह है, प्रामाणिक पुराना नियम निर्धारित किया गया है। दूसरी सूची में तोबित-मकाबी समूह और १ और २ एस्द्रस[1] और मनश्शे की प्रार्थना हैं। इसके संबंध में यह कहा गया है कि 'वह जीवन के नमूने तथा आचरण के शिक्षण' के लिये है, 'सिद्धांत की स्थापना' के लिये नहीं। दूसरी सूची को अपक्रिफा नाम दिया गया है। उनचालीस विश्वास सूत्र में पुराने नियम के संबंध में वही मान्यता है जो अथनासियस की थी।

(४) वेस्टमिंस्टर विश्वासवचन (ई० स० १६४७)

इंग्लैंड के राजा चार्ल्स प्रथम ने अपने राज्य में धार्मिक एकरूपता लाने का प्रयास किया। परिणामस्वरूप उसके प्रेस्बितीर्यन विरोधियों के हाथ विजय पताका आई। लौंग पार्लमेंट ने, जिसमें प्रेस्बितीर्यन प्यूरिटनों का बहुमत था, १२१ पादरियों और ३० साधारण ख्रिस्तीजन की एक महासभा बुलाने का आदेश दिया कि वेस्टमिंस्टर अबे में उसकी बैठक हो और वह धार्मिक बातों पर परामर्श दे। इस महासभा ने वेस्टमिंस्टर विश्वास वचन तैयार किया, जो १६४७ ई० में स्कॉटलैंड की महा धर्मसभा में स्वीकृत किया गया। इस विश्वास, वचन को ब्रिटिश और अमरीकी प्रेस्बितीर्यन संप्रदाय का विश्वासवचन माना जाता है। इस विश्वासवचन में पुराने नियम धर्मशास्त्र को उत्पत्ति-मलाकी समूह के रूप में निर्धारित किया गया है। तोबित-मकाबी समह के विषय में यह कहा गया कि वह धर्मशास्त्र का भाग नहीं है, अतः परमेश्वर की कलीसिया में उनका कोई अधिकार नहीं, तथा अन्य मानवीय लेखों के अतिरिक्त उनको कोई और मान्यता नहीं दी जाए और न उनका प्रयोग किया जाए,। इस प्रकार वेस्टमिंस्टर विश्वासवचन में, कलीसिया द्वारा विधिवत प्रयोग के लिये तोबित-मकाबी समूह को प्रामाणिक धर्मशास्त्र में निश्चित रूप से सम्मिलित नहीं किया गया।

---

१. यह संख्या अंग्रेजी प्रोतेस्तंत बाइबल के अनुसार है।

(५) पुराना-नियम के प्रामाणिक धर्मशास्त्र (कानोन) का अन्य प्रोतेस्तंत संप्रदाय द्वारा निर्धारण

पुराने नियम की विषय सूची के संबंध में अधिकांश प्रोतेस्तंत समाज वेस्टमिस्टर विश्वास वचन की मान्यता स्वीकार करते हैं। ई० स० १६५८ की सेवोय घोषणा, जो इंग्लैंड के काँगग्रिगेशनलियों के लिये प्रामाणिक है, वेस्ट-मिस्टर विश्वासवचन का ही पुर्नलेखन है। अंतर केवल इतना ही है कि सेवोय घोषणा में काँगग्रिगेशनल कलीसिया शासन के हितार्थ कुछ संशोधन किए गए हैं। ई. स. १६६८ का फिलादेलफिया विश्वासवचन भी जो बपतिस्त कलीसिया की वाणी है, वेस्टमिंस्टर विश्वासवचन पर अवलंबित है। मेथोदिस्त एपिस्को-पल चर्च के धर्मसूत्र में उनचालीस धर्मसूत्रों का सरलीकरण किया गया है। परंतु कानोन या प्रामाणिक धर्मशास्त्र के संबंध में मेथोदिस्त कलीसिया वेस्ट-मिंस्टर विश्वास वचन का अनुसरण करती है और धर्मशास्त्र में केवल उत्पत्ति मलाकी समूह को सम्मिलित मानती है। तोबित-मकाबी समूह के विषय में कुछ नहीं कहा गया है। तोबित-मकाबी समूह का सम्मिलित न किया जाना धर्म-विज्ञान की कोई समस्या नहीं मानी गई है, क्योंकि मेथोदिस्त कलीसिया के उत्तरवादी पाठों में तोबित-मकाबी समूह से दो पाठ संकलित हैं।

(६) प्राच्य कलीसियाएँ

प्रोतेस्तंत सम्प्रदाय के उद्भव का प्राच्य कलीसियाओं पर तुरन्त प्रभाव नहीं पड़ा। अतः उनको अपने विश्वास एवं प्रामाणिक धर्मशास्त्र के विधिवत् निर्धारण की आवश्यकता नहीं हुई। वे प्रारम्भिक शताब्दियों से प्रचलित न्यूनाधिक यूनानी पुराने नियम का प्रयोग करते रहे। प्राचीन सुविख्यात धर्म-वैज्ञानिकों का प्रामाणिक-धर्मशास्त्र संबंधी मत कलीसिया के जीवन के लिये पर्याप्त माना गया। विशेष रूप से एप्रैम, मोपसुएस्तिया के थियोदोर तथा बार-हेब्राइयस के घोषणा पत्र, जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है, व्यावहारिक उपयोग के लिये प्रामाणिक माने गए।

वे ख्रिस्तीय समाज, जो कम पुस्तकवाले पुराने नियम को अर्थात उत्पत्ति-मलाकी समूह को मानते हैं इस बात से संतोष प्राप्त करते हैं कि यह समूह यहूदियों के लिये बहुत विवादग्रस्त नहीं रहा और अधिकांश ख्रिस्तियों द्वारा सदा मान्य रहा है। इसके विपरीत जो अधिक पुस्तक वाले पुराने नियम (उत्पत्ति-मलाकी और तोबित-मकाबी समूहों) को मानते हैं इस बात से संतोष प्राप्त करते हैं कि वे प्रारंम्भिक कलीसिया की यूनानी परंपरा को बनाए रखे हैं।

छठवां अध्याय

पुराना-नियम की भाषा और लिपि

अधिकांश पुराने नियम की मूल भाषा इब्रानी है। दानिय्येल, एज्रा और नहेम्याह की पुस्तकों के कुछ अनुच्छेद अरामी भाषा में हैं। पुराने नियम में सर्वत्र एक ही लिपि का प्रयोग किया गया है। तोबित-मकाबी समूह की पुस्तकों का ज्ञान हमें यूनानी सेपत्वांगिता के माध्यम से हुआ, परन्तु उसके अधिकांश की भी मूल भाषा इब्रानी रही होगी। यूनानी एस्द्रस (१ एस्द्रस एवं २ एस्द्रस) कदाचित यूनानी में लिखी गई। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि इन पुस्तकों का ज्ञान हमें इब्रानी के बजाय यूनानी भाषा के माध्यम से हुआ क्योंकि एक बार ये पुस्तकें यहूदी प्रामाणिक धर्मशास्त्र से अलग की गई कि यहूदियों की इनमें कुछ अभिरुचि नहीं रह गई।

इब्रानी और अरामी दोनों शामी परिवार की भाषाएं हैं। शामी भाषाओं की विशिष्टता यह है कि उनके शब्दों में तीन व्यंजनात्मक मूल अक्षर होते हैं। स्वर या तो लिखे ही नहीं जाते अथवा छोटे पूरक चिन्हों अथवा बिन्दुओं द्वारा अंकित किये जाते हैं। जब तक इब्रानी बोलचाल की भाषा रही, तब तक स्वरों को इंगित करने की आवश्यकता नहीं हुई। परन्तु जब वह बोलचाल की भाषा न रही तो भावी पीढ़ियों के हितार्थ मूल उच्चारण की रक्षा के लिये स्वर चिन्हों की एक निश्चित प्रणाली का निर्माण किया गया। इन सहायक चिन्हों को मसोरा (Masora) कहा गया। जिन विद्वानों ने इन चिन्हों तथा अन्य संकेतों का निर्माण किया वे मसोरेती कहलाते हैं। वह इब्रानी मूल पाठ जो इन विद्वानों द्वारा सुरक्षित एवं भावी पीढ़ी को दिया गया मसोरेतिक पाठ कहलाता है। अंग्रेजी में उसका संक्षिप्त रूप एम० टी० (M.T.)[१] है। पाठ या तो चिन्ह रहित होते थे, जैसे आराधनालयों के कुण्डल पत्र ; अथवा चिन्ह सहित होते थे जैसे मुद्रित इब्रानी धर्मशास्त्र।

पुराने नियम की मूल लिपि आज की इब्रानी बाइबल की लिपि से भिन्न थी। निर्वासन-पूर्व काल में (५९७ ई. पू. के पहले) लिपि फिनीकी लिपि के समान थी। यिर्मयाह के समय में मटकों के टुकड़ों पर लिखे हुए कुछ अक्षर प्राप्त हुए हैं। ये लाकीश अक्षर लाकीश ऑस्ट्रका कहलाते हैं। ऑस्ट्रका का अर्थ है मटके का टुकड़ा जिस पर कुछ लिखा हो। इब्रानी राज्य की स्थापना के पूर्व (१००० ई. पू. के पहले) इस बात का कोई पता नहीं चलता कि कौनसी लिपि का प्रयोग किया जाता था। यह निश्चित है कि लेखनकला कुछ

१. M. T.=Masoretic Text (मसोरेतिक पाठ)

ही व्यक्तियों की विशिष्टता थी (दे. न्या. ५ : १४)। हमें बताया जाता है कि मूसा फिरौन की पुत्री के पुत्र स्वरूप पाला पोसा गया (नि. २ : १०); अतः उसका शिक्षण उच्चकोटि का हुआ होगा। परंतु उसने जब सीनै पर्वत पर परमेश्वर के वचनों को लिखा तब कौनसी लिपि का प्रयोग किया, यह हम नहीं जानते। क्या वह मिस्री लिपि थी अथवा प्रोटो-सीनैतिक लिपि के समान थी?[२] वर्णलिपि (alphabetic) का प्राचीनतम रूप प्रोटो-सीनैतिक है। मिस्र और बाबुल की अधिक प्राचीन लिपि वर्णमालात्मक नहीं, वरन् चित्रात्मक (ideographic) और शब्दात्मक (syllabic) होती थी।[३]

---

२. सेराबिट एलखादेय में ध्रूमकांत की खुदाई में मिली और इसकी तिथि १५०० ई. पू. है।

३. चित्रात्मक लेखन सुन्दर चित्रों के द्वारा लेखन है। मान लीजिए एक भाव है, जैसे घर। घर को घर का चित्र बनाकर लिखेंगे, घर ध्वनि के संकेत चिन्हों द्वारा नहीं। अगले पृष्ठ पर प्रोटो-सीनैतिक के अन्तर्गत दाहिने हाथ से गिनकर ११ वां चिन्ह एक वर्ग है। यह पहले घर का चित्र था। इसी प्रकार बैल का सिर, मनुष्य का सिर, सर्प, आँख और खड़ा हुआ मनुष्य आदि पहचाने जा सकते हैं। प्राचीन चीनी चित्रात्मक लिपि है। चित्रात्मक लिपि का प्रयोग करने वाली भाषाओं में सैकड़ों चित्र होते हैं, और इसके कारण पठन और लेखन अत्यन्त कठिन हो जाता है। अगले पृष्ठ पर जो चित्र या चित्र रूप दिए गए हैं उन्हें घर और बैल-सिर आदि से विलग कर दिया गया है और घर आदि की प्रथम ध्वनि का चिन्ह बना दिया है। उदाहरणार्थ, वर्ग घर का चिन्ह था। अब वह अंग्रेजी के बी (B) ध्वनि से संबद्ध हो गया है क्योंकि बी (B) अक्षर बेट (Bet) शब्द में प्रथम ध्वनि है। प्राचीन शामी भाषाओं में बेट का अर्थ घर है। इस प्रकार वर्णमाला का अस्तित्व हुआ।

शब्दात्मक लिपि में स्वर और व्यंजन के प्रत्येक मेल के लिये एक पृथक चिन्ह है। उदाहरणार्थ यदि अंग्रेजी भाषा शब्दात्मक लिपि का प्रयोग करने लगे तो उसमें १०५ चिन्ह (symbols) होंगें (५ स्वर × २१ व्यंजन)। इसमें पढ़ना लिखना पांच गुणा अधिक हो जाएगा। १०५ संकेत-चिन्हों की सूची वर्णमाला (alphabet) के बदले शब्दमाला (syllabary) कहलाएगी।

वर्णमाला लिपि में मूल ध्वनियों के लिये पृथक चिन्ह हैं। अर्थात स्वर और व्यंजन के लिये पृथक चिन्ह। इसका अर्थ यह है कि भाषा में सभी कुछ लिखने के लिए बहुत कम चिन्हों की आवश्यकता पड़ती है। मानवीय इतिहास में वर्णमाला की खोज एक अभूतपूर्व उपलब्धि है। यह संभव है कि, जैसा प्रोटो-सीनैतिक शिलालेखों में प्रदर्शित है, वर्णमाला का प्रारंभ सीनै प्रायद्वीप में हुआ हो। वहाँ से यह नवीन विचार अन्य देश में फैल गया, भले ही इसका रूप विभिन्न देशों में विभिन्न रहा हो।

राज्य काल की प्राचीन इब्रानी की लिपि का रूप मोआबी शिला की लिपि (ल. ई. पू. ८५०), प्राचीन गेजेर केलेंडर (१०वीं सदी ई. पू. का उत्तरार्द्ध) और सिलोम (शिलोह) शिलालेख में मिलता है (ल. ७०१ ई. पू.)। इस लिपि में ऐतिहासिक अभिलेख लिखे जाते थे और उस युग के नबियों के लेख लिखे गए। लाकीश अक्षरों में उसी प्राचीन इब्रानी का प्रवाही (cursive) रूप है।

निर्वासन के पश्चात् (५९७ ई. पू.) यहूदियों पर पड़ोसी अरामी भाषा का प्रभाव उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ प्रतीत होता है। अरामी भाषा बाइबल देशों की प्राचीन अन्तर्राष्ट्रीय भाषा थी। ज्यों-ज्यों यहूदी राज्य का राजनीतिक महत्व कम होता गया, त्यों-त्यों बोलचाल की इब्रानी भाषा अधिक प्रचलित अरामी को स्थान देती गई। इब्रानी यहूदियों की धर्मविधियों एवं धर्मभावना की भाषा बनी रही। अपने इस सीमित रूप में भी इब्रानी अरामी भाषा की लिपि से प्रभावित हुई। अरामी की चौकोर लिपि (square script) इब्रानी लेखों की मानक लिपि बन गई। विचित्र बात यह है कि यह सुन्दर चौकोर लिपि अब इब्रानी लिपि कहलाती है, और अरामी ने दूसरी लिपि अर्थात् सूरियाई अपना ली है। १४७७ ई. स. में प्रथम मुद्रित पुराने नियम में इसी चौकोर लिपि का प्रयोग किया गया। आराधनावर के कुंडलपत्र आज भी इसी लिपि में हाथ से लिखे जाते और चिन्ह रहित होते हैं।

नीचे एक उदाहरण दिया जाता है। उससे यह ज्ञात होगा कि पुराने नियम के लेखन एवं संचारण में कौनसी विभिन्न लिपियों ने योग दिया है। अन्तिम लिपि को छोड़कर अन्य सब सामी लिपियाँ हैं। अन्तिम लिपि कोदेक्स-वतिकानुस की यूनानी लिपि है, जो सेपत्वांगिता के लिये प्रमुख अधिकृत हस्तलिपि है।

तुलना के उद्देश्य से यहाँ प्रत्येक लिपि में धर्मशास्त्र के कुछ शब्द लिखे गए हैं। शब्दों का अर्थ है 'उसने मूसा से कहा, तुम इसी पहाड़ पर परमेश्वर की उपासना करोगे।' यद्यपि समस्त वर्णमाला इसमें नहीं है, परंतु वर्णमाला का अधिकांश भाग इसमें आ गया है।

१. प्राचीन सीनाई लिपि (ई. पू. ल. १५००) इन अक्षरों में कुछ कल्पित हैं)

२. प्राचीन इब्रानी लिपि (ई. पू. १०००–५००)

३. लाकीश आस्ट्रका लिपि (ई. पू. ५८८) (मटकों के टुकड़ों पर लिखी)

४. कुमरान यशायाह-कुंडल-पत्र लिपि (ई. पू. लग. १००) 'वर्ग लिपि'

אמר אל משה תעבדון את האלוהים על ההר הזה

५. मसोरेती वर्ग लिपि, अनुकीली १००० ई. स. से आज तक)

אמר אל משה תעבדון את האלהים על ההר הזה

६. मसोरेती वर्ग लिपि, नुकीली (२००० ई. स. से आज तक)

אָמַר אֶל מֹשֶׁה תַּעַבְדוּן אֶת הָאֱלֹהִים עַל הָהָר הַזֶּה

७. कोदेक्स वाटिकानुस (सेपत्वांगिता) का यूनानी लिपि (४ थी शताब्दी ई. स.)

ΕΙΠΕΝΔΕΜΩΥΣΕΙΛΑΤΡΕΥΣΕΤΕΤΩΘΕΩΕΝΤΩ

ΟΡΕΙΤΟΥΤΩ

सातवां अध्याय

पुराना नियम का मूलपाठ

मुद्रण कला के अन्वेषण के पूर्व की शताब्दियों में पुस्तकें बड़े परिश्रम एवं मूल्य से लिखी जाती थीं। बाइबल के देशों में लेखन सामग्री एक पुराने प्रकार का कागज था जिसे पटेरपत्र (Papyrus) कहते थे। यह नील नदी के किनारे पर उगनेवाले ऊँचे सरकंडे से बनता था। उन सरकंडों को पटेरा कहते हैं। ये पटेर पत्र उसी समय दीर्घकाल तक सुरक्षित रखे जा सकते थे जब रक्षा के साधन अच्छे हों। उदाहरणार्थ, वे किसी मकबरे में बन्द रखे जाएं अथवा मिस्र जैसे देश की रेत में दबे रहें। यह आश्चर्य की बात नहीं, क्योंकि आज का कागज भी तो गल जाता है और टूटने लगता है। अतः यह आवश्यक था कि पटेर-पत्र पर लिखी गई पुस्तकें पीढ़ी पीढ़ी में फिर से लिखी जाएँ। लेखन की अधिक स्थायी सामग्री शिलाएँ, मिट्टी की पटियां, मटके के टुकड़े और ताड़पत्र थे। शिलाओं पर लेख राजा महाराजाओं के स्मारक के लिये उपयुक्त थे। उन पर फिरौन जैसे राजाओं की विजयों का आलेखन किया जा सकता था। परन्तु साधारण पुस्तकों और जनसाधारण के लिये यह साधन उपयुक्त न था। मिट्टी की पटियों का प्रयोग बाबुल, असूर और उत्तरी पलिस्तीन में होता था। धातु अथवा लकड़ी की कलम से अच्छी कमाई हुई नरम मिट्टी की पटियों पर चिन्ह बनाए जाते थे, और जब लेखन पूर्ण हो जाता था तब पटियों को पका लिया जाता था। यह उतनी ही स्थायी रहती थीं जितनी पत्थर की शिलाएँ। इस रूप के लेखन को कील-लिपि (Cuneiform) कहते हैं। बाबुल, नीनवे और उगरित के प्राचीन पुस्तकालय ऐसी ही कील लिपि से सुरक्षित रखे गए हैं। मटके के टुकड़ों का प्रयोग टिप्पणियों और पत्रों के लिये किया जाता था, कदाचित इसलिए कि ये सस्ते थे। ये इतने स्थायी नहीं थे जितने शिलालेख अथवा मिट्टी की पटियाँ, फिर भी पुरातत्ववेत्ता इस बात के लिये आभारी हैं कि ये भी पर्याप्त स्थायी रहे।

पलिश्तीन में जिस स्थायी लेखन-सामग्री का उपयोग किया जाता था वह चमपत्र (Parchment) था। यह भेड़ों की खाल से बने हुए अच्छे चमड़े का होता था। भेड़ की खाल के आंतरिक भाग के तंतुओं से जो बढ़िया चर्म बनाया जाता था उसे वेलम (Vellum) कहते हैं। पार्चमेंट की अपेक्षा वेलम कहीं अधिक महंगा था। इसलिये उसका उपयोग श्रेष्ठ पुस्तकों के लिये किया जाता था। चौथी शताब्दी में कोदेक्स वेतिकानुस नामक हस्तलेख वेलम पर लिखे गए

हैं। १९४७ में वादी कुमरान में जो यशायाह कुंडल-पत्र मिला है, वह १०० ई. पू. का है और वह चमड़ा घटिया पार्चमेंट है। आज तक वह इसलिए विद्यमान रहा कि वह मिट्टी के पात्र में बंद था और वह पात्र अल्पवर्षा के क्षेत्र में किसी गुफा में रखा था। पार्चमेंट बहुत महंगा था। पुराने नियम की प्रथम पाँच पुस्तकों को लिखने के लिये ही कम से कम ३० भेड़ों की खाल की आवश्यकता है। यह बात अच्छी थी कि इब्रानी लोगों के पास भेड़ों की खाल सरलता से मिल सकती थी, क्योंकि सदियों तक वे पशु-चारण जीवन व्यतीत करते रहे। पार्चमेंट के प्रयोग से कई वर्षों के बजाए कई पीढ़ियों तक पुस्तकें बनी रहीं। परंतु पार्चमेंट भी अनिश्चित काल तक चल नहीं सकता। अतएव इस लेखन सामग्री के लेखों का भी पुर्नलेखन करना पड़ता था।

हस्तलिखित पुस्तकों के लेखन की सर्वाधिक सक्षम पद्धति 'शिक्षणकक्ष की सहकारी पद्धति' थी। एक व्यक्ति पढ़ता जाता था और एक दर्जन व्यक्ति लिखते थे। यह स्वाभाविक है कि जो प्रतिलिपियाँ बनती थीं उनमें कुछ अन्तर हो जाए। सक्षमता और लिखावट की भिन्नताओं के अतिरिक्त, लेखकों की बोली और शिक्षण के विभिन्न वातावरण से भी छोटी मोटी विभिन्नता आना स्वाभाविक है। बोलनेवाला भी अपनी ओर से मूलपाठ में शैलीगत सुधार कर देता था। अथवा वह हाशिया पर लिखी टिप्पणी को मूललेख के साथ पढ़ सकता था जिससे टिप्पणी मूललेख का भाग बन सकती थी। जांच करने के पश्चात भी छोटी मोटी भिन्नताएँ छोड़ दी जाती थीं।

हस्तलिपियों की प्रतिलिपि बनाने की एक और पद्धति यह थी कि एक व्यक्ति सीधे मूललेख से ही प्रतिलिपि बनाए। इस स्थिति में प्रतिलिपिक स्वयं संतोष प्राप्त कर लेता था कि उसके मानदंड से लेख परिशुद्ध है अथवा नहीं। इस प्रकार यह संभव था कि उसकी प्रतिलिपि अन्य प्रतियों से कुछ भिन्न हो जाए। दूसरे प्रकार की त्रुटियाँ भी आ सकती हैं। आँखें थक जाएँ। अतः कोई अक्षर छूट जाए, अथवा कोई अक्षर दोबारा लिख जाए, अथवा कोई पंक्ति ही छूट जाए। फिर किन्हीं दो व्यक्तियों की लिखावट एक सी नहीं होती। इसके अतिरिक्त, जैसे कुछ लोगों में परस्पर अधिक समानता रहती है और वे परिवार अथवा जाति अथवा वंश में एकत्रित रहते हैं, उसी प्रकार हस्तलिखित लेखों का सूक्ष्म अध्ययन करने पर उनको हम 'परिवार' अथवा 'परस्पर संबंध की मात्रा' के आधार पर विभाजित कर सकते हैं। इस पद्धति से लेखों में समानता भी थी और कुछ विभिन्नता भी।

हस्तलिखित पांडुलिपियों के सम्बन्ध में ऊपर निर्देशित समस्याओं के अध्ययन का एक शास्त्र बन गया है। उसे मूलपाठ आलोचनाशास्त्र (Science of Textual criticism) कहते हैं। उसे निम्न (lower) आलोचना भी कहते हैं, क्योंकि वह उच्च (higher) आलोचना का आधार है। उसका उद्देश्य यह है कि उपरोक्त निर्देशित पद्धतियों द्वारा जहाँ तक संभव हो सके मूललेखों के पाठ का निर्धारण करे। समय के आघात से मूललेख तो कब के नष्ट हो गये होंगे। उनका ज्ञान केवल उनकी वंशज प्रतिलिपियों की पांडुलिपियों से हो सकता है। मूलपाठ आलोचक का कार्य मानो यह है कि वर्तमान यहूदियों की मुखाकृतियों की विशेषताओं के आधार उनके आदि पूर्वज याकूब का चित्र बनाएं। इस अध्ययन क्रम से यह पता चल सकता है कि समग्र वर्तमान यहूदियों की साधारण समानता के भीतर कुछ छोटे समूहों में परस्पर साम्य अधिक है। ये याकूब के वंशजों के अनुरूप हो सकते हैं। याकूब के ये प्राक्कल्पित वंशज याकूब का चित्र उपलब्ध करने में महत्वपूर्ण सहायता प्रदान करेंगे। सहस्रों यहूदियों की जाँच का कार्य अनन्त होगा। परन्तु कुछ प्रमुख वंशजों को प्रतिरूप स्वरूप लिया जाए तो याकूब के चित्र का कार्य कुछ सरल होगा। मूलपाठ समालोचक कुछ ऐसी ही पद्धति का प्रयोग करता है। सैकड़ों पांडुलिपियों की लेखन शैली एवं अन्य विशेषताओं का अध्ययन करते हुए यह समालोचक वर्तमान हस्तलिपियों को, जहाँ तक सम्भव है, 'परिवारों' में विभाजित करता है। जितनी दूर तक वह भूतकाल में जा सकता है उतनी दूर तक वह उन 'प्राक्कल्पित मूलपाठों' की पुनर्रचना करता है जो प्राचीनकाल में प्रचलित थे। इस प्रकार के अध्ययन के आधार पर ख्रिस्तीय विद्वान नये नियम के मूलपाठ-समालोचना क्षेत्र में 'पाश्चात्य (Western) मूलपाठ' 'बीजंतियन-पूर्व (Pre-Byzantine) मूलपाठ' और 'तटस्थ (neutral) मूलपाठ' स्वीकार करते हैं। तटस्थ मूलपाठ में मुख्यतः 'कोदेक्स वेनिकानुस' और 'कोदेक्स सीनतिकुस' हैं।

पुराने नियम के मूलपाठ-समालोचना क्षेत्र में विद्वान इतने सौभाग्यशाली नहीं रहे, क्योंकि समस्त इब्रानी पांडुलिपियां एक ही प्रकार के परिवार या मूलपाठ को प्रदर्शित करती हैं, जिसे मसोरेतिक मूलपाठ कहते हैं। इनमें प्राचीन-तम तिथि लगभग ९ वीं शताब्दी ई. स. है, अर्थात मूल लेखों के लगभग १००० वर्ष बाद। यहूदी प्रामाणिक धर्मशास्त्र (Canon) एवं मूलपाठ के मानककरण के पूर्व जो मूलपाठ रहे वे अनुवादों में ही केवल शेष रहे हैं। इसलिए १९४७ में मृत्युसागर कुंडलपत्र (Dead sea Scrolls) की प्राप्ति का पुराने नियम के आलोचनात्मक अध्ययन में विशेष महत्व का स्थान है। इन कुंडलपत्रों में शमूएल की पुस्तक की पांडुलिपियों में तीन विभिन्न मूलपाठ-परम्पराएँ, और पंचग्रंथ की

पांडुलिपियों में कम से कम तीन विभिन्न परम्पराएं दृष्टिगोचर होती हैं। अन्य पुस्तकों के लिये भी कुछ सीमा तक यही कहा जा सकता है। डेड सी स्क्रोल के अनुसंधान के परिणाम स्वरूप अब सेपत्वांगिता को पहले से अधिक महत्व दिया जा रहा है, क्योंकि मसोरेतिक मूलपाठ से उसमें जो भिन्नताएँ हैं, उन्हें अब साधारण अनुवाद और दूषित संचरण नहीं माना जाता, वरन् उतना ही प्राचीन इब्रानी मूलपाठ माना जाता है जितना मसोरेतिक पाठ को। इसी प्रकार सामरी पंचग्रंथ का भी अब अधिक आदर होने लगा है क्योंकि उसे भी इब्रानी मूलपाठ की परंपरा माना जाने लगा है। संशोधित मानक अनुवाद (१९५२) (R.S.V.) ने डेड सी स्क्रोल में प्राप्त यशायाह से कुछ पाठों को सम्मिलित किया है। उदाहरणार्थ, यशा. १५ : ९ में मसोरेतिक मूल पाठ में दीमोन के स्थान पर दिबोन रखा गया है।

जब बाइबल के विद्वान विभिन्न प्राचीन मूल पाठों की, मूल लेखों की मूल पांडुलिपि की प्राप्ति की समस्याओं की चर्चा करते हैं—जब वे टिप्पणियों, त्रुटियों तथा संपादकीय टिप्पणियों की चर्चा करते हैं तो सामान्य पाठक के मन में यह विचार उत्पन्न हो सकता है कि बाइबल का मूलपाठ, जैसा हमारे हाथों में है, विश्वसनीय नहीं है, और इसलिये मसीही विश्वास भी शंकास्पद है। इससे बड़ा भ्रम और कोई नहीं हो सकता। सच बात यह है कि पुराना नियम एवं नया नियम दोनों के, और विशेषकर नया नियम के मूलपाठ के संबंध में पांडुलिपियों का जितना समर्थन मिलता है उतना किसी भी प्राचीन पुस्तक का नहीं। उदाहरणार्थ, यूनानी नाटककार एसकीलस के नाटकों की केवल ५० पांडुलिपियाँ उपलब्ध हैं। वे भी पूर्ण नहीं हैं। मूल लेख से ये पांडुलिपियाँ १४०० वर्ष बाद की हैं। इसके विपरीत नये नियम की १४०० से अधिक पांडुलिपियाँ मूल यूनानी में हैं और ६००० अनुवादों में हैं। इसके साथ ही नये नियम की प्राचीन पांडुलिपियाँ, जो पार्चमेंट अथवा वेल्लम की बनी हैं, मूल लेखों के केवल २५०-३०० वर्ष बाद की हैं। पार्चमेंट के खंड तो इस काल से भी पहले के पाए जाते हैं। नये नियम के पटेर पत्र हमें इस तिथि से १०० वर्ष पुराने मिलते हैं। पुराने नियम की बात कहें, तो जिस बारीकी और सावधानी के साथ मसोरेतिक मूल पाठ की पीढ़ी-पीढ़ी प्रतिलिपि की गई है वह मानव जाति के साहित्य के इतिहास में अभूतपूर्व है और अद्वितीय है। डेड सी स्क्रोल्स की खोज ने विद्वानों को पहले से कहीं अधिक आश्चर्य की भावना से इस बात के प्रति भर दिया है कि मानक मूल पाठ की रक्षा के लिये मसोरेतिक विद्वानों ने कितना अथक प्रयास और विश्वस्तता प्रदर्शित की है। परंतु वे इस बात में

भी प्रसन्नता व्यक्त करते हैं कि पाठ के मानककृत होने के पूर्व लेखों के विभिन्न रूपों को देख सकते हैं।

धर्मशास्त्र के मूल पाठ के विषय में विभिन्न लोगों की भिन्न भावनाएँ हैं। कुछ लोग केवल एक ही मूल पाठ की मान्यता द्वारा अपने पक्के विश्वास की चेष्टा करते हैं। मुसलमानों के धर्मग्रंथ कुरान के संबंध में यह भावना विद्यमान है। उनका विचार है कि पाठ के प्राचीन वैभिन्न्य के संबंध में शोध करना धर्म की नींव को ही हिला देना है। यह द्रष्टव्य है कि वर्तमान काल में कुरान के मूलपाठ का केवल एक ही रूप उपलब्ध है, क्योंकि ओथमान खलीफ़ा ने उन सब विभिन्न पांडुलिपियों को, जो मानक रूप से भिन्न थीं, लेकर नष्ट कर दिया। विद्वान की दृष्टि से मूलपाठ के विभिन्य रूपों का नष्ट किया जाना बड़ी क्षति की बात हुई। खिस्तीय विद्वानों ने, जिन्हें अपने विश्वास के मूल आधारों के संबंध में कोई भय नहीं था, पांडुलिपियों के विषय में जो भी तथ्य उपलब्ध हो सकते हैं उन्हें बड़े परिश्रम के साथ एकत्रित किया है। उनकी आशा है कि ऐसा करने से उन्हें मूलपाठ और भावी पीढ़ियों को उसके संचरण के संबंध में अधिक ज्ञान प्राप्त होगा। समस्त सत्य के कर्ता परमेश्वर को, मानव द्वारा किसी भी क्षेत्र में सत्य की खोज से कोई भय नहीं है।

यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि मूलपाठ की भाषा सदा ही शास्त्रीय रहेगी। जब वह 'भ्रष्ट पाठ (corrupt text) की बात करता है तो उसका अर्थ यह है कि वह पाठ विशेष मूललेख से बहुत अधिक भिन्न हो गया है। परंतु, यदि ये भिन्नताएं जीवित समाज के धार्मिक प्रचलन द्वारा आई हैं तो वे भ्रष्टताएं भ्रष्टताएं न होकर जीवित विश्वास के लिये परिष्कृत रूप माने जाएंगे, क्योंकि धर्मलेखों का इसलिये आदर किया जाता था कि वे जीवित विश्वास को बनाए रखते थे। इसके अतिरिक्त, इस बात को भी ध्यान में रखना चाहिये कि मूलपाठ की दृष्टि से नये नियम का ७/८ अंश शंका से परे है और केवल १/८वाँ अंश ही मूलपाठात्मक आलोचना का विषय है। इस १/८वें अंश में भी आधा भाग ऐसा है जिसमें केवल शैली की विभिन्नता है, और दूसरा आधा भाग ऐसा है जिसमें शब्दों में वैभिन्न्य है। ये दोनों विभिन्नताएं हल्की और महत्वहीन हैं। कोई १/१००० अंश ही ऐसा है जिसमें विषय सामग्री संबंधित भिन्नताएं हैं।

कोई भी खिस्तीय सिद्धांत शंकास्पद पाठ पर आधारित नहीं है। यह बात पुराने नियम के लिये भी सत्य है। जब मूलपाठ समालोचक 'टिप्पणियों' और 'भ्रष्टताओं' की बात कहता है तो यह ऐसी शास्त्रीय शब्दावली है जैसे वैज्ञानिक

अपने विज्ञान की शब्दावली काम में लाता है । इन पारिभाषिक शब्दों को अपने संदर्भ से पृथक नहीं करना चाहिए अन्यथा अर्थ का घोर अनर्थ हो सकता है। ख्रिस्तीय धर्मशास्त्र उन कार्यों एवं वचनों का आलेख हैं जो परमेश्वर से निकले। यही उसका सीधा सरल अभिप्राय है। ख्रिस्तीय विश्वास इस अभिप्राय पर इतना आधारित है कि उस पर आक्रमण असंभव है।

आठवां अध्याय

धर्मशास्त्र के अध्ययन के उपागम (Approaches)

सामान्यतः बाइबल के अध्ययन के तीन प्रकार के उपागम हैं :

१. वैज्ञानिक २. दार्शनिक, ३. धर्म वैज्ञानिक

१. वैज्ञानिक उपागम में वे सब मूल धारणाएँ और पद्धतियाँ सम्मिलित हैं जो वर्तमान युग के किसी भी विज्ञान की विशेषताएं हैं। मूल धारणाएँ (postulates) निम्नानुसार हैं :

(१) उन तथ्यों से ही जिनका वस्तुवादी रूप से अवलोकन तथा मापन किया जा सकता है समस्त ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

(२) समस्त परिवर्तन की व्याख्या उन प्राकृतिक नियमों के आधार पर की जा सकती है, जिनका ज्ञान हमें है अथवा जिनकी खोज होने वाली है ।

विज्ञान की पद्धतियाँ निम्नलिखित हैं :

(क) अवेक्षण और प्रयोग द्वारा आँकड़ों का संकलन,

(ख) आँकड़ों की व्याख्या के लिये अस्थायी अनुमान (hypothesis)

(ग) अनुमानों की जांच ।

ऐसे अनुमान जो जांच में बहुत कुछ ठीक उतरते हैं 'सिद्धाँत' (Theory) बन जाते हैं, वे 'नियम' (Law) माने जाते हैं।

विज्ञान की भावना का वर्णन इस प्रकार किया गया है : 'विज्ञान की भावना तथ्यों के लिए धुन है (जिसमें एक उच्च कोटि की परिशुद्धता तथा अपनी इच्छा से विलगता निहित है); परिणाम तक पहुँचने में एक सतर्क पूर्णता है (जिसमें लगातार संशय तथा अपनी निजी धारणाओं का परित्याग निहित है); स्पष्टता का गुण है (जिसमें अस्पष्टता, द्विविधता तथा बिखरे

तारों को दूर रखना निहित है—अर्थात जिसे वैज्ञानिक फेराडे (Faraday) संशयात्मक ज्ञान कहलाता है उसे दूर रखना); और पदार्थों के अंतर-संबंध का बोध है, जिससे अस्थाई रूप से यह भान होता है कि पृथक घटनाएँ किसी एक प्रणाली या संगठन के विभिन्न अंग हैं'।

बाइबल विशेषकर पुराने नियम के अध्ययन के प्रति वैज्ञानिक उपागम के अनेक रूप हैं। मूलपाठात्मक अथवा निम्न समालोचना एक वैज्ञानिक उपागम है जिसमें मूलपाठ की खोज का प्रयत्न किया जाता है। साहित्यिक एवं ऐतिहासिक समालोचना, जिसे उच्च समालोचना भी कहते हैं दूसरा वैज्ञानिक उपागम है जिसमें किसी पुस्तक की रचना और रचयिता संबंधी समस्याओं का अध्ययन किया जाता हैं। इस्राएल जाति के धर्म का अध्ययन धर्म के प्रति एक वज्ञानिक उपागम है। इसका मूल स्रोत बाइबल है। इस्राएल का इतिहास इब्रानी लोगों संबंधी घटनाओं, उनके कारण एवं परिणामों के प्रति एक वैज्ञानिक उपागम है। ये घटनाएं बाइबल में प्रस्तुत हैं। बाइबल के अध्ययन के प्रति इन वैज्ञानिक उपागमों में विज्ञान की मूल धारणाएं, पद्धतियों और भावनाओं का उपयोग किया गया है।

जब हम कहते हैं कि वैज्ञानिक धारणाओं का उपयोग किया गया है तो इसका अर्थ यह हुआ कि बाइबल का अध्ययन विज्ञान की मूल धारणाओं के कारण सीमित होना चाहिये। यह कहा जा सकता है कि ऊपर विज्ञान की जो पहली मल धारणा दी गई है, उसके आधार पर आत्मा, परमेश्वर, स्वर्गदूत आदि जो प्रत्यक्ष रूप से नहीं दिखाई देते अध्ययन के क्षेत्र के बाहर की बातें हैं। हमारा कहना यह है कि आत्मा का विचार, परमेश्वर का विचार, स्वर्गदूतों का विचार का वस्तुवादी रूप से अध्ययन किया जा सकता है, और उपरोक्त अध्ययनों में इसी दृष्टि से उनको देखा गया है। विज्ञान की दूसरी मूल धारणा के आधार पर, जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है, यह तर्क किया जा सकता है कि वैज्ञानिक उपागम के अंतर्गत, किसी भी घटना की व्याख्या के लिये अतिप्राकृतिक तत्वों का उपयोग नहीं किया जाना चाहिए। उदाहरण के रूप में, इस प्रकार के कथन वैज्ञानिक रूप से असफल होंगे—'परमेश्वर ने अब्राहम को कसदियों के ऊर नगर से बुलाया, अथवा परमेश्वर ने इस्राएल को मिस्त्र की बंधुवाई से छुड़ाया', परमेश्वर ने लाल समुद्र के दो भाग किये कि इस्राएल मिस्त्र से बच निकले'। यह कहना सत्य होगा—'कसदियों के ऊर को अब्राहम छोड़ कर चला' 'मूसा ने मि त्र से इस्राएलियों को छुड़ाया', अथवा 'इस्राएल को छुड़ाने में अपनी सफलता का श्रेय मूसा ने अपने मिद्यानी देवता याहवे को दिया', अथवा 'एक विचित्र संयोग हुआ कि लाल समुद्र का उथला जल ठीक उसी

समय जबकि इस्राएल मिस से भागने का प्रयत्न कर रहे थे एक तूफान से एक और बह गया'। दूसरे शब्दों में यों कहें कि वैज्ञानिक उपागम वह है जिसमें हम अपने मन पर एक ऐसा नियंत्रण लाद लेते हैं जिससे हम यह निर्णय करते हैं कि सब घटनाओं की केवल प्राकृतिक व्याख्याएँ ही हो सकती हैं। इस तर्कणा के उत्तर में हमारा कहना यह है कि इस प्रकार के नियंत्रण का वास्तव में अस्थाई उपागम के रूप में महत्व इस बात में है कि हमारी विचार-प्रक्रियाओं का विशिष्टिकरण हो जाता है। परंतु यदि हम इसी उपागम को इतना प्रबल बना दें कि हम उसके आदी और वशीभूत हो जाएं, तो वह धार्मिक विश्वास के लिये विनाशक होगा। बाइबल के अध्ययन में तो हम सम्पूर्ण पुस्तक के मूल सत्य को खो बैठेंगे, क्योंकि बाइबल अपने इतिहास, व्यवस्था अथवा नबी संबंधी अंशों में इस एक मूल धारणा पर संचालित है कि एक, जो अतिप्राकृतिक है और जो प्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगोचर नहीं है, इस्राएल के इतिहास की घटनाओं का मूल कारण है।

वैज्ञानिक पद्धति मनुष्य को परमेश्वर की एक महान देन है और उसके द्वारा जो अद्भुत उपलब्धियाँ हुई हैं उनको हम स्वीकार करते हैं। परन्तु दान जितना महान हो उतना ही उसके उचित उपयोग का उत्तरदायित्व तथा दाता को स्मरण करना महान है। अतएव बाइबल का सच्चा अध्ययन कभी भी वैज्ञानिक उपागम की मूलधारणाओं में सीमित नहीं किया जा सकता। मानव को परमेश्वर के प्रकाशन में निहित वस्तुवादी तथ्यों एवं मानवीय उपादानों को जानने के लिए वैज्ञानिक उपागम उत्तम है, परन्तु जो कुछ जाना जा सकता है जब हम उसे जान जाएं, तो हमें एक और उपागम स्वीकार करना चाहिये। यह उपागम बाइबल की प्रकृति के समान ही है। उसे धर्म वैज्ञानिक उपागम कहते हैं। दार्शनिक उपागम पर विचार करने के पश्चात् धर्म वैज्ञानिक उपागम पर विचार किया जायेगा।

२. **दार्शनिक उपागम** अपने दर्शन पर निर्भर है। अतः दार्शनिक उपागम अनेक प्रकार का हो सकता है। बाइबल के प्रति एक साधारण दार्शनिक उपागम में निम्नांकित मूल धारणाएं हैं कि :

(१) एक आत्मिक अस्तित्व है जो मानव के साधारण अवेक्षण से परे है, परन्तु जो चिंतन एवं नियंत्रण से आँशिक रूप में जाना जा सकता है।

(२) सब धर्म मूल रूप में समान हैं, अर्थात परमेश्वर अथवा सत्य की खोज करते हैं।

(३) कि (ख) के कारण परमेश्वर का अधिकतम ज्ञान सब धर्मों के सत्य के संकलन से प्राप्त हो सकता है।

ऐसे दार्शनिक उपागम की पद्धति बुद्धिसंगत, निग्रहात्मक अथवा रहस्यवादी हो सकती है। परन्तु वह मानव शक्तियों का ही अभ्यास होगा। बाइबल के अध्ययन में यह उपागम वैज्ञानिक उपागम से अच्छा होगा क्योंकि उसमें सत् के अस्तित्व को स्थान दिया जाता है जो अवेक्षण से परे है। परन्तु इस उपागम की दूसरी और तीसरी मूल धारणाएं बाइबल के मूल दावों के विपरीत हैं। यदि इस उपागम को मान्यता दें तो कहना होगा, 'परमेश्वर का कसदियो के ऊर से अब्राहम को बुलाना मूलरूप से ऐसा ही है जैसे परमेश्वर का प्लतोन (Plato) को 'रिपब्लिक' लिखने अथवा हमुराबी को अपनी विधियों को लिखने के लिये बुलाना'। इसका अर्थ यह होगा कि इस उपागम में इस्राएल को विशेष प्रकाशन की स्वीकृति नहीं है। तब बाइबल संसार की अनेक धार्मिक पुस्तकों में से एक हो जायगी।

३. **धर्म वैज्ञानिक** (Theological) उपागम बाइबल के लेखकों के प्रमुख दावे के प्रति सहानुभूति की भावना, अथवा यों कहें कि स्वीकृति के विचार से प्रारम्भ होता है। इस उपागम की मूल धारणाएं निम्नांकित हैं :

(क) परमेश्वर का अस्तित्व है। वह मानव की समस्त अवेक्षण शक्ति, मापन एवं समझ से परे है। वह मानव की नियति का शासक है।

(ख) परमेश्वर ने एक विशेष लोगों को अर्थात् इस्राएल को स्वयं को विशेष रूप से प्रकाशित किया है। यह विशेष प्रकाशन यीशु, ख्रिस्त के व्यक्ति (Person) रूप में पूर्ण और सिद्ध हुआ।

धर्म वैज्ञानिक उपागम की पद्धति है 'विश्वास'। यह विज्ञान एवं दर्शन की बौद्धिक पद्धतियों के विरुद्ध नहीं है, परन्तु मूल तथ्यों के नये संकलन के सबंध में बुद्धि का उपयोग करती है। ये तथ्य हैं—इस्राएल एवं ख्रिस्त के संबंध में परमेश्वर के ऐतिहासिक कार्य। यदि इस उपागम को स्वीकार करें तो हम कहेंगे, 'परमेश्वर ने कसदियों के ऊर से अब्राहम को बुलाया—यही नहीं वरन् यह भी कि उसी परमेश्वर ने अपने पुत्र, यीशु ख्रिस्त को जगत का उद्धारकर्ता होने के लिये दे दिया, और वही परमेश्वर इस समय मेरे मन में कहता है, "मेरी वाणी सुन"।

बाइबल के प्रति मौलिक उपागम धर्म विज्ञानात्मक ही हो सकता है। दूसरे शब्दों में यों कहें कि बाइबल का सच्चा अर्थ वे लोग ही जान सकते हैं जो उस विश्वास में, जो बाइबल का मूल आधार है, प्रवेश करने के लिये तैयार हैं। उसकी रचना और प्रामाणिक धर्मशास्त्र के पूर्ण रूप में बाइबल का संबंध एक जीवित विश्वास के साथ रहा है। इस विश्वास की एक दृढ़ धारणा यह है कि सनातन परमेश्वर स्वयं को मानव पर प्रकाशित करने के लिये मानव-इतिहास के प्रवाह में विशेष रूप से प्रविष्ट हुआ। जैसे किसी भी लौकिक लेखक की रचनाओं के आस्वादन के लिये यह आवश्यक है कि सहानुभूति की भावना से उसके मन अथवा दृष्टिकोण में प्रवेश किया जाए उसी प्रकार बाइबल के विभिन्न लेखों के आस्वादन के लिये भी आवश्यक है कि उसके दिव्य रचयिता के मन में प्रवेश करने का प्रयास किया जाए क्योंकि आत्मा सब बातें, वरन् परमेश्वर की गूढ़ बातें भी जांचता है (१कुरि० २ : १०)। ख्रिस्तीय धर्मशास्त्र को समझने के लिये पवित्रात्मा की सहायता की आवश्यकता है। वही उचित दृष्टिकोण, उचित चेष्टाएं और महत्वपूर्ण तथा महत्वहीन बातों को पहचानने की उचित शक्ति प्रदान करता है, जब हम नम्रतापूर्वक यीशु ख्रिस्त पर विश्वास करते हैं। बाइबल को समझने के लिये इब्रानी अथवा यूनानी भाषा अथवा बाइबल-देशों के अभिनवतम पुरातत्वात्मक अनुसंधानों के ज्ञान से कहीं अधिक पवित्रात्मा की सहायता की आवश्यकता है। टीकाएं अत्यन्त मूल्यवान साधन हैं, परन्तु पवित्र आत्मा ही शिक्षक है जो जीवित विश्वास में उसी प्रकार मार्गदर्शन करता है जैसे वह जीवित कलीसिया में रहता है।

बाइबल का वह ज्ञान जो परमेश्वर पवित्रात्मा का दान है, बाइबल के उस ज्ञान से जो केवल मानव बुद्धि से संपादित है, श्रेयस्कर है। पौलुस की साक्षी है कि क्रूस की कथा (परमेश्वर का ज्ञान) मनुष्यों के लिये मूर्खता है और उसी तथाकथित मूर्खता को परमेश्वर ने जगत के उद्धार का माध्यम बनाया है।

द्वितीय भाग

पुराने नियमों की पुस्तकों की भूमिका

नौवां अध्याय

पंचग्रंथ (Pentateuch)

पुराने नियम की पहिली पाँच पुस्तकों को इब्रानी में तोरा (व्यवस्था) और सप्तति अनुवाद में पेंतात्यूकोस (पाँच कुंडलपत्र) कहते हैं। वुल्गाता में यूनानी का अनुसरण कर उन्हें पेंतात्यूकुस कहा गया है। इनसे अंग्रेजी शब्द पेंतात्यूक बना है। 'तोरा' शब्द का अर्थ है 'निर्देश अथवा आदेश'। पहिले कदाचित् इसका संबंध दिव्यवाणी के आदेशों से हो, जो किसी पवित्र-स्थान अथवा नबी से प्राप्त हों। परंतु बाद में यह शब्द इन आदेशों के संग्रह के लिये प्रयुक्त होने लगा जो इस्राएल जाति के आचरण के आधार बन गए। त्यूकोस (teuchos) शब्द का मूल अर्थ है पात्र या डब्बा जिसमें कुंडलपत्र या पांडुलिपि रखी जाती थी। तब उसका प्रयोग कुंडलपत्र अथवा पांडुलिपि के अर्थ में ही किया जाने लगा। हिन्दी में उसका अनुवाद 'ग्रंथ' किया गया। पेंतात्यूक (पंच ग्रंथ) शब्द का प्रयोग पहिली बार ई० स० दूसरी शताब्दी में हुआ। परंतु पांच भागों में व्यवस्था के विभाजन का संकेत कम से कम फीलो (मृत्यु लगभग ई० सं० ५०) तक मिलता है, जो उत्पत्ति की पुस्तक को पांच पुस्तकों में पहिली पुस्तक कहता है।

यह ज्ञात नहीं है कि तोरा को पाँच भागों में विभाजित करने के क्या कारण थे। एक कारण यह हो सकता है कि उसकी सामग्री को लिखने के लिये साधारण आकार के कदाचित् पाँच कुंडलपत्र लगे हों।

पंचग्रंथ की पुस्तकों के शीर्षकों के प्रयोग में अंग्रेजी बाइबलों में इब्रानी, सेपत्वागिंता और वुल्गाता की परंपरा का नहीं, वरन् 'मूसा' से संबंधित परंपरा का अनुसरण किया गया है। अंग्रेजी के अधिकृत अनुवाद में पंचग्रंथ की पुस्तकों के शीर्षक हैं : मूसा की पहिली पुस्तक जो उत्पत्ति कहलाती है, दूसरी पुस्तक जो निर्गमन कहलाती है, आदि। अंग्रेजी अनुवाद–संशोधनकर्ता इस परंपरा के संबंध में कुछ सतर्क रहे हैं और उन्होंने "साधारणतः" शब्द जोड़ कर पुस्तकों के

इस प्रकार शीर्षक दिए हैं : मूसा की पहिली पुस्तक, जो साधारणतः उत्पत्ति कहलाती है, इत्यादि। भारतीय भाषाओं के अनुवादों में इब्रानी, सेपत्वांगिता एवं वुल्गाता की प्रथा अनुसार केवल शीर्षक ही दिए गए हैं और मूसा के नाम का उल्लेख नहीं किया गया है।

पंचग्रंथ की रचना और रचयिता का विचार एक पृथक लेख में व्यवस्था विवरण पुस्तक की भूमिका के पश्चात् किया जाएगा।

दसवाँ अध्याय

उत्पत्ति नाम पुस्तक

१. शीर्षक

इस पुस्तक का इब्रानी नाम 'बरेशीत' (Bereshit) है। इब्रानी धर्मशास्त्र में यह पहिला शब्द है। इसका अर्थ है 'आदि में'। सप्तति-अनुवाद में 'गेनेसिस' (Genesis) शब्द का प्रयोग हुआ है जिसका अर्थ है, 'आरंभ, जन्म अथवा मूलस्रोत'। बुल्गाता में यूनानी का शीर्षक लिया गया। अंग्रेजी अनुवादों में बुल्गाता के अनुरूप प्रयोग किया गया है। हिन्दी में इस यूनानी शब्द का अनुवाद 'उत्पत्ति' किया गया है।

२. विषय-सामग्री का सारांश

उत्पत्ति की पुस्तक में जगत, मानव जाति और मनोनीत जाति के आरंभ का वर्णन है।

३. रूपरेखा

(१) सृष्टि
आदि में परमेश्वर ने सृष्टि की रचना कैसे की (१:१–२:४)

(२) मानवजाति का उद्गम (२:४–११:३२)
(क) मनुष्य का रचा जाना और पतन (२:४–४:२६):
अदन की बारी में आदम और हव्वा (२:४–२५)
उनका आज्ञाउल्लंघन और निष्कासन (३)
उनका पुत्र काइन, हत्यारा और एक सभ्यता का निर्माता (४)
(ख) शेत से आदम के वंशज (५)
(ग) दानव और मनुष्य की बुराई (६:१—८)
(घ) जलप्रलय में नूह का बचाया जाना (६:९—९:२९)
(च) नूह के वंशज (१०)
(छ) बाबुल में भाषा का गड़बड़झाला (११:१—९)
(ज) शेम की शेवंशावली, तेरह के प्रवास तक (११:१०–३२)

(३) कुलपतियों का इतिहास (१२–५०)

(क) अब्राम का वर्णन (१२–२५:११):
अब्राम का बुलाया जाना और कनान जाना (१२); लूत से अलग होना (१३); राजाओं से युद्ध और मेल्कीसेदेक को दशमांश देना (१४); बलिदान द्वारा परमेश्वर के साथ वाचा (१५); हाजिरा का निकाला जाना (१६); खतना की वाचा (१७); सदोम और अमोरा का विनाश (१८—१९); गरार में अब्राम (२०); इसहाक का जन्म (२१); इसहाक का बलिदान (२२); मकपेला कब्रस्तान की भूमि (२३); इसहाक और रिबका की सगाई (२४); अब्राम की मृत्यु (२५: १—११); परिशिष्ट : इश्माएल की वंशावली (२५ : १२–१८)।

(ख) इसहाक और उसके पुत्रों का वर्णन (२५:१९—३५:३९);
एसाव और याकूब का जन्म (२५:१९—२६); एसाव का अपना उतराधिकार बेचना (२५:२७–३४); गरार में अबीमेलेक के साथ इसहाक की वाचा (२६); याकूब इसहाक का आशीर्वाद प्राप्त करता है (२७); याकूब का भाग जाना और स्वप्न (२८); पद्दनराम में याकूब का परिवार (२९–३१); याकूब का कनान को लौटना, स्वर्गदूत से मल्लयुद्ध (३२); एसाव से पुर्नमिलन (३३); दीना के भ्रष्ट किए जाने का बदला (३४); परमेश्वर याकूब को आशिष देता है, ३५ (१:१५); राहेल की मृत्यु (३५:१६—२७); इसहाक की मृत्यु (३५:२८—२९); परिशिष्ट : एसाव की वंशावली (३६:१—४३)।

(ग) याकूब और उसके पुत्रों का वर्णन (३७—५०) : यूसुफ का बेचा जाना (३७); यहूदा के पुत्र (३८); यूसुफ बंदीगृह में (३९—४०); यूसुफ, फिरौन राजा का प्रधानमंत्री (४१); यूसुफ के भाइयों और पिता का मिस्र आना (४२–४७); याकूब का यूसुफ के पुत्रों को आशिष देना (४८); याकूब का अपने सब पुत्रों को आशीर्वाद (४९); मकपेला में याकूब की मिट्टी (५०)।

४. रचना, रचयिता, तिथि

परंपरागत रूप से उत्पत्ति की पुस्तक मूसा की प्रथम पुस्तक कही जाती है। अंग्रेजी अनुवादों में शीर्षकों से इस बात की ओर संकेत मिलता है। यद्यपि

मूसा के साथ इसका संबंध साधारणतया इस रूप में समझा जाता है कि मूसा इसका रचयिता था परन्तु यह संभव है कि मूसा की वाचा के संदर्भ में विधिवत् धर्मसंबंधी अधिकार से उसका मूल संबंध रहा हो। जिस प्रकार का भी संबंध मूसा से इस पुस्तक का रहा हो, यह बात निश्चित है कि इस पुस्तक के लेखक संबंधी समस्या उतनी सरल नहीं है जितनी साधारणतया दिखाई देती है। उत: २३ : १९ में लेखक इस तथ्य के स्पष्टीकरण को आवश्यक समझता है कि मम्रे उस काल में हेब्रोन कहलाता था। उसी प्रकार उत. ३५:६ में लूज नगर उस काल में बेतेल कहलाता था। उत्पत्ति २१:३४ में यह बताया जाता है कि अब्राम पलिश्तियों के देश में बहुत दिनों तक परदेशी होकर रहा। इतिहास से यह पता चलता है कि पलिश्ती लोग मूसा के युग के बाद ही वहाँ आए। इन संदर्भों का यह अर्थ है कि इनका लेखक कदाचित् पलिश्तीन में निवास करता है और सुदूर अतीत की घटनाओं का वर्णन कर रहा है। यह कहना संभव है कि उपरोक्त संदर्भ किसी आगामी युग की छोटी छोटी संपादकीय टिप्पणियाँ हों परन्तु समस्त पुस्तक फिर भी मूसा की है और कि पुस्तक बाद में लिखी गई हो। रचना, रचयिता और तिथि की समस्या के संबंध में यहाँ उल्लेख मात्र कर दिया गया है, परन्तु यह समस्या समूचे पंचग्रंथ की है और इसका विवेचन आगे पृथक स्थल पर किया जाएगा।

५. विशेष समस्याएं

(१) सृष्टि का बाइबलगत तथा वैज्ञानिक विवरण

जब कोई वज्ञानिक उत्पत्ति के पहले अध्याय में सृष्टि का वर्णन पढ़ता है तो उसे यह प्रतीत होता है कि विभिन्न जातियों में जो सृष्टि की रचना संबंधी कहानियाँ हैं उससे इस वर्णन का बहुत साम्य है। इन कहानियों में जगत के अनेक भागों और जीव की विभिन्न कोटियों की सृष्टि दिव्यसत्ता द्वारा की गई है। ये कहानियाँ जगत और जीव के उद्‌भव के संबंध में आदिम लोगों के मनगढ़ंत सिद्धान्त प्रतीत होते हैं। उदाहरणार्थ, यूनानी यह कहते हैं कि नुक्स अर्थात रात्रि नामक पक्षी ने अंडा दिया, जिसमें से एरोस देवता अर्थात कामदेव उत्पन्न हुए। उस अंडे के दो भाग आकाश और पृथ्वी बन गए, और इन दोनों ने पुरुष एवं स्त्री के रूप में देवताओं की जाति को उत्पन्न किया। अंडे से नए जीव की उत्पत्ति प्रत्येक युग में एक सुपरिचित घटना है। अत: आदिम मानव मस्तिष्क ने इस जगत के पदार्थों की अज्ञात सृष्टि को अंडे से बच्चे निकलने के रूप में देखा और इसी रूप में उसका वर्णन किया। इस संदर्भ में यह जानना रुचिकर होगा कि उत्पत्ति १:२ में कहा गया कि परमेश्वर की आत्मा का जल के ऊपर मंडलाता था, और यह मंडलाता शब्द उसी रूप में प्रयुक्त होता है

जिस रूप में वह किसी पक्षी के अंडे सेने के लिये प्रयुक्त होता है। वैज्ञानिक को बाइबल में प्रस्तुत सृष्टि-वर्णन भी ऐसी ही एक कथा-कहानी लगता है। उसे लगता है कि यह वर्णन अवैज्ञानिक, सृष्टि के उत्पत्ति के संबंध में सरल मन की मनगढ़ंत बात है और इसके लिये वास्तविक घटना का कोई पर्याप्त आधार नहीं है। साधारणतया यह माना जाता है कि बाइबल में सृष्टि का वर्णन बाबुल के सृष्टि-कथानक के सदृश है।

ऐसी कथा-कहानियों के विपरीत आधुनिक वैज्ञानिक सृष्टि संबंधी जो चित्र प्रस्तुत करता है, वह उन विश्वसनीय वैज्ञानिक पद्धतियों का परिणाम है जो मानव-जीवन के विभिन्न पक्षों की खोज में खरी उतरी है। उदाहरणार्थ, वैज्ञानिक चट्टानों की बनावट में विभिन्न परतों का मापन करना है। सदियों से जल-प्रवाह के द्वारा अपक्षरण के कारण चट्टानें जमती जाती रही हैं। साधारण जलवायु की स्थिति में सामान्य अपक्षरण कितना होगा, इसके आधार पर वैज्ञानिक यह गणना करने का प्रयास करता है कि पहाड़ों और मैदानों के बनने में कितना समय लगा होगा। इन्हीं चट्टानों की बनावट में जीवों के अवशेष उसे मिलते हैं। उनके आधार पर यह परिणाम वह निकालता है कि लाखों वर्ष पूर्व साधारण अथवा निचली श्रेणी के जीव-जन्तुओं का अस्तित्व था। उनके पश्चात् निश्चित अनुक्रम से ही उच्च श्रेणी के जीवों का विकास हुआ जो आज तक चलता आ रहा है। इस जीव जन्तुओं में कई आज विद्यमान नहीं हैं। उदाहरण के लिये दीनासौर (भीम सरट, एक दीर्घकाय जीव) किसी युग में थे जैसा उनके शिलाभूत रूप (Fossils) से ज्ञात होता है। आज वे विद्यमान नहीं हैं।

एक दूसरा उदाहरण लीजिए। धरती की बनावट पर संबंधित आँकड़े एकत्र किए गए हैं। धरती के तापक्रम, विभिन्न पदार्थों के ठंडे होने का वेग, सूर्य में विभिन्न पदार्थों के संबंध में वर्ण-क्रम वीक्षण यंत्र (Spectroscope) द्वारा जानकारी तथा गति एवं गुरुत्वाकर्षण संबंधी प्रमाणित ज्ञान के आँकड़ों को वैज्ञानिक एकत्रित करता है। इस प्रकार के आंकड़ों को संकलित कर वैज्ञानिक एक सिद्धान्त का निर्माण करता है कि सूर्य की घूर्णा की समयावधि के अन्तर्गत पृथ्वी और अन्य ग्रहों का कैसे अस्तित्व हुआ। वैज्ञानिक के सिद्धान्तों की पर्याप्त परिमाण में जाँच और पुष्टि भी हो चुकी है। आज मानव ने जो उपग्रह छोड़े हैं उनसे इन सिद्धान्तों की पुष्टि होती है। बाइबल में सृष्टि संबंधी सिद्धांत की मान्यताओं का संसार भिन्न है। वहाँ छः दिन में सारी सृष्टि की रचना हुई। (दिन के संबंध में भी २४ घंटे का दिन ही मान्य किया गया प्रतीत होता है)। वैज्ञानिक प्रमाणित करता है कि इस सृष्टि के निर्माण में लाखों वर्ष लगे। बाइबल के वर्णन में "बीजवाले छोटे-छोटे पेड़ और फलदाई वृक्ष भी जिनके बीज

उन्हीं में एक एक जाति के अनुसार होते हैं"—इन पेड़ों की सृष्टि न केवल मछलियों के पहले परन्तु सूर्य और चन्द्र के भी पहले हुई। यह वैज्ञानिक सिद्धान्तों के मूल सिद्धान्तों के प्रतिकूल है। इसलिये यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि भूगर्भशास्त्र अथवा जीवशास्त्र या प्राणीशास्त्र संबंधी किसी भी पुस्तक में बाइबल के वर्णन का मूल-स्रोत के रूप में प्रयोग नहीं किया गया है। वैज्ञानिक बाइबल के वर्णन को कविता के अनुरूप मानता है। इस वर्णन से ऐसा लगता है कि वह कोई आदिम जाति की सृष्टि के कारण और उद्भव संबंधी कपोल कल्पना है, अतः उन्हें वह पौराणिक कथा (myth) की कोटि में स्थान देता है।

सृष्टि संबंधी वैज्ञानिक मान्यताओं के मूल्यांकन के लिये हमें वैज्ञानिक उपागम के स्वरूप को ध्यान में रखना पड़ेगा। वैज्ञानिक संकल्पना में हम यह कह ही नहीं सकते कि सृष्टि का कोई दिव्य रचयिता है। सच पूछा जाय तो विज्ञान की दृष्टि से सृष्टि का उद्भव है ही नहीं। वर्तमान में तथ्यों के आधार पर अतीत के लिये कोई निष्कर्ष नहीं निकाल सकते। जितना अधिक हम तथ्यों का संकलन करेंगे उतना ही अतीत में हम पीछे जा सकते हैं। पृथ्वी के उद्भव के संबंध में अध्ययन करने के उपरांत, वैज्ञानिक सौर-मंडल के उद्भव के लिये सिद्धान्त बनाने के लिये प्रचुर तथ्यों का संकलन करता है। इसी प्रकार वह हमारे कथित विश्व के अध्ययन की ओर चलता है जो विस्तृत जगत में केवल एक द्वीप के समान है। वहाँ से वह अन्य द्वीप-विश्व के अध्ययन की ओर बढ़ेगा। इस प्रकार हमारे ज्ञान के क्षितिज का विस्तार होता जाएगा। परन्तु यह संभावना सदा बनी रहेगी कि हमारे ज्ञान की वृद्धि हो और हमारे सिद्धांतों का संशोधन हो। ज्ञान की उत्तरोत्तर वृद्धि और सिद्धांतों के उत्तरोत्तर परिष्कार के पश्चात् भी हम परमेश्वर को नहीं पा सकते। इस पद्धति से परमेश्वर को पाना असंभव है, क्योंकि वैज्ञानिक पद्धति के प्रारंभ में ही हमने उसे छोड़ दिया है। सच बात यह है कि अतिप्राकृतिक कारण की स्वीकृति को छोड़ काल्पनिक कथा वाला आदिम मानव और आधुनिक वैज्ञानिक के बीच यह गहरी आत्मीयता है कि दोनों ही वर्तमान तथ्यों अथवा ज्ञात अनुभवों से अज्ञात उद्भव की तर्कणा कर रहे हैं। दोनों के बीच वास्तविक अंतर यह है कि आदि मानव के पास सीमित अनुभव और कम तथ्य हैं जब कि वैज्ञानिक के पास तथ्यों की एक विशाल राशि है और और भी अधिक तथ्य संकलन की उत्तम पद्धतियाँ भी हैं।

सृष्टि की उत्पत्ति के संबंध में धर्म वैज्ञानिक मान्यता वैज्ञानिक मान्यता से बहुत भिन्न है क्योंकि अनुभव एवं ज्ञान के प्रति धर्मवैज्ञानिक उपागम बिलकुल भिन्न है। धर्मवैज्ञानिक उपागम में हम इस अनुमान अथवा इस तथ्य की स्वीकृति से प्रारंभ करते हैं कि परमेश्वर है और कि उसने घटनाओं के ढाँचे में

अपने आप को प्रकाशित किया है और कि इस घटना विधान की चरमसीमा जो उठे हुए और महिमान्वित यीशु ख्रिस्त में है। जो इस अनुमान को स्वीकार करता है वह सीधे सरल शब्दों में कहें तो 'विश्वासी' कहलाता है। किसी भी ज्ञान-पिपासु के समान विश्वासी भी वर्तमान ज्ञात तथ्यों अथवा ज्ञात ऐतिहासिक कालों के आधार पर अज्ञात उत्पत्ति एवं उद्‌भवों के संबंध में निष्कर्ष निकालता है। यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि निष्कर्ष निकालने के लिये उसके पास भिन्न प्रकार के तथ्य हैं। उसके पास जो तथ्य विशेष रूप से विद्यमान हैं वे यीशु के पुनरुत्थान तथा महिमान्वित होने की घटनाओं के रूप में परमेश्वर के कार्य हैं। इन तथ्यों की जानकारी के आधार पर उसे निश्चय है कि परमेश्वर है और कि परमेश्वर सब उत्पत्ति और सब अन्त से महान है और कि सारी वस्तुएँ उसकी सामर्थ एवं अभिप्राय के अधीन हैं। सृष्टि की उत्पत्ति में, वह उत्पत्ति चाहे जो हो, यह सामर्थ ही विश्वासी के लिये 'सृष्टि संबंधी सिद्धांत' है। अतएव वैज्ञानिक के प्रतिकूल, विश्वासी इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि आदि में परमेश्वर था और कि अन्य सब कुछ का अस्तित्व इसलिये हुआ कि यह उसका इच्छा थी, अर्थात्, "आदि में परमेश्वर ने आकाश और पृथ्वी की सृष्टि की" (उत० १ : १)।

इसके अतिरिक्त, यीशु का यह स्पष्ट अभिप्राय था कि जो उसमें विश्वास करें वे अनंतकाल के लिये परमेश्वर के वरदानों में संभागी हों। इससे यह तर्कपूर्ण परिणाम निकाला जाता है कि अनंत परमेश्वर का यह अभिप्राय आदि से है। दूसरे शब्दों में यों कहा जाए कि परमेश्वर ने जगत को विशेषकर मनुष्य के लिए बनाया और मनुष्य को इसलिये बनाया कि वह उसके साथ अनंत संगति में रहे। यीशु सदेह रूप में मृतकों से जी उठा, अतएव अनंत जीवन में देह और आत्मा दोनों का स्थान है। इससे यह निष्कर्ष निकाला गया कि आदि से ही परमेश्वर ने यह योजना की कि देह और आत्मा सहित मनुष्य अनंत संगति के लिये बनाया गया और कि चाहे साधारण अथवा वैज्ञानिक मनुष्य की दृष्टि से मृत्यु कितनी ही स्वाभाविक जान पड़े, परंतु परमेश्वर की मानव संबंधी मूल योजना में मृत्यु का कोई स्थान नहीं था। फिर यह आवश्यक हुआ कि संसार के पापों के लिये ख्रिस्त मरे—यह भी धर्मवैज्ञानिक अनुमान का एक अंग है—अतः हमारा यह उचित निष्कर्ष है कि सारी मानव जाति परमेश्वर से विलगता की दशा में है, अर्थात् वह पाप की दशा में है, और कि यह दशा पीढ़ी से पीढ़ी अतीत में रही है, और इस प्रकार समस्त मानव जाति को उद्धार की आवश्यकता है, यहाँ तक कि यह आवश्यकता मानव जाति के आरंभ अर्थात् प्रथम मनुष्य से ही है। यदि परमेश्वर ने मनुष्य की अपनी अनंत संगति के लिये सृष्टि की तो उसने मनुष्य को निष्पाप बनाया होगा। परंतु यदि

सारी मानव जाति को उद्धार की आवश्यकता है, तो उसकी सृष्टि के पश्चात् शीघ्र ही मानव का पतन हुआ होगा। सृष्टि और मानव जाति की उत्पत्ति हमारे वस्तुवादी अवेक्षण से परे की बात है, क्योंकि उस समय परमेश्वर के अतिरिक्त और कोई उपस्थित न था। परन्तु उस उत्पत्ति के प्रमुख लक्षणों के संबंध में ठीक निष्कर्ष इसी तथ्य के आधार पर निकाले जा सकते हैं कि परमेश्वर ने अपने अभिप्राय एवं योजना का क्या और कैसा प्रकाशन किया है। इस प्रकार यदि हम सृष्टि की उत्पत्ति के संबंध में धर्मवैज्ञानिक उपागम का सहारा लें, तो हम तत्संबंधी एक ऐसे सिद्धांत पर पहुँचते हैं जिसके लिये हमारे पास अन्य अल्प तथ्यों पर आधारित सिद्धांतों की अपेक्षा अधिक स्थायी आधार विद्यमान हैं। हम सृष्टि की उत्पत्ति—मनुष्य की प्रारंभिक पाप विहीनता, परमेश्वर की योजना के अन्तर्गत मानव जाति की एकता, और पाप की ओर मनुष्य का पतन और परिणाम स्वरूप मृत्यु संबंधी सिद्धांतों पर पहुँचते हैं।

उत्पत्ति के संबंध में धर्म वैज्ञानिक उपागम स्वीकार करने में हमने ख्रिस्त से संबंधित तथ्यों का उपयोग किया है क्योंकि ख्रिस्तीय की दृष्टि से इन तथ्यों में पूर्णता और प्रसामान्यता है। परन्तु उस पद्धति का जिसके द्वारा स्थायी एवं सत्य सिद्धांतों के संबंध में परमेश्वर के स्वयं प्रकाशन से निष्कर्ष निकाले जाते हैं, केवल ख्रिस्त के काल के तथ्यों के लिये ही नहीं वरन् पुराने नियम के काल के लिये भी प्रयोग किया जा सकता है। यद्यपि उत्पत्ति के पहिले अध्याय का लेखक समय की दृष्टि से ख्रिस्त से पहले हुआ, तथापि उसे पुराने नियम में परमेश्वर का प्रकाशन प्राप्त हुआ, जिसके द्वारा वह मूलतः उन्हीं सिद्धाँतों की अनुभूति कर सका जो नये नियम में स्पष्टतया देखे जा सकते हैं। इन बड़े बड़े सिद्धांतों के ढाँचे में उत्पत्ति के लेखक को अपने युग की विचार एवं भाषा सारणी का प्रयोग करना पड़ा। सब लेखकों को ऐसा करना पड़ता है। उसने सृष्टि को वैज्ञानिक की दृष्टि से नहीं, परंतु सब युगों के सामान्य मानव की दृष्टि से देखा, जो सृष्टि को यथार्थवादी दृष्टि से देखता है और उसे स्थिर तथा चपटी अनुभव करता है तथा उसकी विविधता के दर्शन में आनंद प्राप्त करता है। पर यह बात सच है कि अन्य लोगों की अपेक्षा उसकी दृष्टि सच्ची थी, क्योंकि उसने प्रतिज्ञा या वाचा के परमेश्वर के ज्ञान से दीप्त नेत्रों से उसे देखा।

उपरोक्त विवेचन में हमने यह देखा कि आदिम पौराणिक कथाकार, वैज्ञानिक एवं विश्वासी—ये सब ज्ञात तथ्यों के आधार पर अज्ञात उत्पत्ति के संबंध में अपनी धारणाएं बनाते हैं। परंतु ज्ञात बातों की विषय

सामग्री प्रत्येक के लिये भिन्न है। कथाकार अपने अनुभव में आने वाली किसी भी घटना से अपने निष्कर्ष निकालता है, और मनुष्यों तथा पशुओं में भी जो दुर्बलताएँ अथवा विशिष्टताएं उसे दिखाई देती हैं उनका कारण ईश्वर को ही मानता है। वैज्ञानिक वस्तुवादी अथवा ईश्वर-निरपेक्ष वस्तुओं के समूह के आधार पर अपने निष्कर्ष निकालता है। धर्म वैज्ञानिक विश्वासी इतिहास में परमेश्वर द्वारा स्वयं के प्रकाशन के आधार पर निष्कर्ष निकालता है। यदि वैज्ञानिक विश्वासी भी हो, अथवा विश्वासी वैज्ञानिक भी हो, तो उचित परिपेक्ष्य में उत्पत्ति की पुस्तक के प्रारंभिक अध्यायों का चिरंतन महत्व जाना जा सकेगा। बाइबल के लेखक ने जो कुछ परमेश्वर और मनुष्य के संबंध के विषय में कहा है वह आज भी उतना ही सत्य जान पड़ेगा जैसा पहले था और सदा वैसा ही सत्य जान पड़ेगा। जगत के विषय में हमारे ज्ञान का जितना भी विस्तार विज्ञान करता है उससे हमें सृष्टिकर्ता एवं उद्धारकर्ता परमेश्वर की नम्रतापूर्वक सराहना करने का अधिकाधिक विस्तृत आधार प्राप्त होता है।

(२) उत्पत्ति के वर्णनों की ऐतिहासिकता

ऊपर बहुत सामान्य रूप में जगत और मनुष्य की सृष्टि संबंधी वर्णनों का विवेचन किया गया है। उन पर और अधिक विचार करते हुए हमें यह पता चलता है कि मानव जाति के प्रारंभिक काल के संबंध में उत्पत्ति की पुस्तक में अनेक वर्णन हैं। उसमें कनानी सभ्यता, वंशजों की सूचियाँ, जलप्रलय, भाषाओं की गड़बड़ी और अंत में कुलपतियों के वर्णन भी सम्मिलित हैं। इन सब वर्णनों में अनेक स्थानों पर तारतम्य का अभाव है। उदाहरणार्थ, इस बात का कोई स्पष्टीकरण नहीं है कि कैन की पत्नी कहाँ की थी (उ.—४: १७:) अथवा मनुष्य की विकृति के वर्णन में 'दानव' का प्रादुर्भाव कहाँ से हुआ (उ. ६: ४)। सप्तति अनुवाद और सामरी पंचग्रंथ की तुलना में मसोरेतिक। पाठ में शेत के वंशजों की आयु भिन्न है। जलप्रलय के वर्णन में विभिन्न परंपरा से आए तंतु दिखाई देते हैं, जैसे नूह की नौका में शुद्ध पशुओं की संख्या (उत. ७:२, ९)। कुछ वंशावलियों के वर्णनों से ऐसा लगता है मानो वे जातियों का भौगोलिक विभाजन हों (उत. १० : २२, २३; २५:२)। ऐसी ऐसी विशिष्टताओं के कारण यह मान्यता की जाती है कि उत्पत्ति के वर्णन और अन्य अभिलेख कतिपय प्राचीनता परंपराओं से संकलित हैं जो लेखबद्ध होने से पूर्व मौखिक रूप से पीढ़ी पीढ़ी में चलती आ रही थीं। उत्पत्ति ६ : ४ में जिस प्रकार की मौखिक परंपरा का संकेत है उस प्रकार की परंपराएं दंत कथाओं के समान मानी जाती हैं, और आज के वैज्ञानिक ऐतिहासिक अध्ययनों

में बड़ी सतर्कता से ही उनका उपयोग किया जाता है। दूसरे शब्दों में यों कहें कि ऐतिहासिक उद्देश्यों की दृष्टि से मौखिक परंपराओं का मूल्य समकालीन अथवा निकट समकालीन लेखों की उपेक्षा बहुत न्यून है। इसका कारण यह है कथाओं के मौखिक वर्णन में कथाकार अपनी ओर से रंग भरकर ही कथा कहता है। उपरोक्त तर्कों के आधार पर उत्पत्ति के वर्णनों के प्रति विशेषकर पहले ग्यारह अध्यायों के वर्णन के प्रति शंकाएं व्यक्त की गई हैं। कुलपतियों के व्यक्तित्व (अध्याय बारह और क्रमिक अध्याय) के प्रति भी शंका व्यक्त की गई है क्योंकि हम यह जानते हैं कि प्राचीन युग के लोग किसी कल्पित पूर्वज का नाम लेकर अपनी ख्यात एकता का स्पष्टीकरण किया करते थे। उदाहरणार्थ, यूनानी या हेलनी लोग तीन समूहों में अपने अस्तित्व के स्पष्टीकरण में यह मान्यता प्रस्तुत करते हैं कि वे किसी कल्पित पूर्वज हेल्लन के तीन पुत्र एओलस, दोरस और अखेयस के वंशज हैं। मिजराम (मिस्र) के वंश में लूदी, अनामी, लहाबी, नप्तूही जातियां बताई गई हैं (उ० १० : १३)। इसी के अनुरूप यह कहा जाता है कि उत्पत्ति की पुस्तक में वर्णित कुलपति, जिनमें याकूब के पुत्र भी सम्मिलित हैं, ऐतिहासिक पुरुष नहीं थे, वरन् कल्पित पूर्वज थे।

ऐतिहासिकता की समस्या के विषय में इतना कहना आवश्यक है कि उन लोगों की अपेक्षा जिनके पास लिखित अभिलेख हैं उन लोगों की स्मरणशक्ति अधिक सशक्त एवं यत्नशील रही है जिनके पास लिखित अभिलेख नहीं रहे हैं। फलस्वरूप इस विचार को प्रश्रय दिया गया है कि प्राचीन परंपरा के लिये ऐतिहासिक आधार अवश्य विद्यमान है। इसके अतिरिक्त इस्राएल जाति संबंधी दो प्राचीनतम मूल स्रोत (जिनका विवेचन आगे किया जाएगा) में बहुत अधिक अंशों में मत साम्य है। कुलपतियों के वर्णनों में 'कथन एवं अभिव्यक्ति' में बड़ी संयमशीलता है। बाइबलेतर कथाओं में जिस प्रकार का चमत्कारिक तत्व विद्यमान है और जिससे उनकी ऐतिहासिकता में संदेह की भावना उत्पन्न हो जाती है, वैसा तत्व कुलपति संबंधी वर्णनों में नहीं है। चमत्कार का अंश केवल उन घटनाओं में है जिनमें परमेश्वर इन कुलपतियों पर अपने आप को प्रकट करते हैं, परंतु कुलपतियों के क्रिया-कलापों तथा विभिन्न स्थानों को आने जाने में उनमें एक स्पष्ट यथार्थ व्यक्तित्व दृष्टिगोचर होता है। अतः यद्यपि वंशावलियों के कुछ वर्णनों में (उदा. उत. २५: १–४) वास्तविक वैयक्तिकता के विषय शंका की जा सकती है, तथापि यह साधारणतया स्वीकार किया जाता है कि कुलपति ऐतिहासिक व्यक्ति थे।

पुरातत्व विद्या के अनुसंधानों से इस बात के पर्याप्त प्रमाण प्राप्त हुए हैं कि उत्पत्ति की पुस्तक के अधिकांश वर्णनों के ऐतिहासिक आधार हैं। जल

प्रलय का वर्णन जिसका बाबुल की लोक-कथाओं से बहुत साम्य है, इतनी विस्तृत रेखाओं में अंकित है कि वैज्ञानिक दृष्टि से वह शब्दश: मान्य नहीं किया जा सकता। फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि वह केवल कपोल-कल्पित बात है। कारण यह है कि बाबुल के ऊर और कीश नामक स्थानों में खुदाई से यह पता चला है कि वहाँ जलप्रवाह के द्वारा बालू और चट्टानों का ऐसा जमाव पाया जाता है जिससे सभ्यता के विभिन्न चरणों का संकेत मिलता है। वहाँ जलप्रलय-पूर्व दस राजाओं की परंपराओं के अभिलेख भी प्राप्त हैं, जो संख्या की दृष्टि से उत्पत्ति ५ में प्रस्तुत दस पीढ़ियों के अनु-रूप हैं। अब्राम के युग में जातियों का प्रवास प्राचीन इतिहास की प्रमाणित घटना स्वीकृत हो गई है। पुरातत्वविद्या की खोज में कुलपतियों के नामों की भी लगभग पुष्टि होती है। अब यह पता चला है कि हारान (उत. ११: ३४; १२: ४) अब्राम के युग में एक अमूरी केन्द्र था। अब्राम नाम का भी अमूरी नाम अबमराम से और याक़ूब का याकूबएल से साम्य है, और बिन्या-मीनियों को उत्पात करने वाली जाति कहा गया है। मारी (Mari) की कीललिपि शिलाओं में नखूर, तिलतुराखी, सरूगी ओर फलिग जैसे नाम पाए जाते हैं जिनका अब्राम के कुटुम्बियों के नामों से—नाहोर, तेरह, सरूग, पेलेग–अपूर्व साम्य है। अत: पुरातत्व विद्या के साक्ष्य के आधार पर भी प्रमाणों का पलड़ा इसी पक्ष में भारी है कि उत्पत्ति की पुस्तकों की परंपराएँ ऐतिहासिक आधारों पर विद्यमान हैं।

६. उत्पत्ति की पुस्तक की धर्मशिक्षा

उत्पत्ति की पुस्तक का आंरभ सृष्टि के सिद्धांत से होता है–"आदि में परमेश्वर ने आकाश और पृथ्वी की सृष्टि की।" यह अत्यंत उचित है। बाबुली जाति तथा अन्य जातियों में देवताओं के संघर्ष से सृष्टि की उत्पत्ति की धारणाएँ मिलती हैं। 'उत्पत्ति' की पुस्तक में एक परमेश्वर की परम सत्ता और अधिकार के संबंध में कोई संदेह व्यक्त नहीं किया गया है। साथ ही वह एक परमेश्वर मानव के चिंतन की उपज नहीं है वरन वह है जिसने अपने आपको इस्राएल जाति के इतिहास में और अंत में ख्रिस्त में प्रकाशित किया है।

यह सिद्धांत कि परमेश्वर ने अपने आप संगति के हेतु और अपने स्वरूप के अनुसार मनुष्य को उत्पन्न किया उपरोक्त सिद्धांत से ही निसृत है (उत. १: २७; २: ८)। इसमें यह तथ्य निहित है कि जिस रूप में परमेश्वर ने मनुष्य की रचना की उसमें वह निष्पाप था। इसके पश्चात् मनुष्य के पाप में पतित होने तथा उसके फलस्वरूप परमेश्वर की संगति से पृथक होने का सिद्धांत है (उ. २–३)। परंतु इस परिवर्तित संबंध की दु:खांत घटना में भी मनुष्य के

समक्ष आशा की एक किरण अथवा बुराई की शक्ति पर अंतिम विजय का सुझाव प्रस्तुत किया जाता है (उत. ३: १५)।

जलप्रलय और नूह के बचाए जाने में (उत. ६–९), तथा सदोम और अमोरा के विनाश और अब्राम द्वारा लूत के बचाए जाने में भी परमेश्वर के न्याय और दया का दर्शन होता है (उत. १८–१९)।

अब्रहाम (इब्राहीम) की बुलाहट (उत. १२: १; १५: ७) निर्वाचन–सिद्धांत का उदाहरण है। परमेश्वर अपने अभिप्राय के लिये जिसका वह चाहे उसका स्वतंत्र रूप से निर्वाचन करता है और उसे बुलाता है। अब्रहाम के साथ वाचा और प्रतिज्ञा से यह प्रदर्शित होता है (उत. १५: १८; १७: २) कि मनुष्य के साथ नियंत्रित संबंध के द्वारा परमेश्वर ने कैसे मनुष्य के उद्धार की योजना का प्रांरभ किया। कुलपतियों की जीवनियों और मिस्र में प्रवास के द्वारा परमेश्वर के अभिप्राय एवं योजना का विकास प्रतीत होता है। परमेश्वर के मूल गुण 'धार्मिकता' की व्यंजना भी अब्रहाम के महान शब्दों में होती है, "क्या सारी पृथ्वी का न्यायी न्याय न करे?" (उत. १८: २५)।

ग्यारहवाँ अध्याय

निर्गमन

१. शीर्षक

इस पुस्तक का इब्रानी नाम वएल्ले शमोत अथवा केवल शमोत है। ये इब्रानी पुस्तक में प्रारंभिक वाक्य के प्रमुख शब्द हैं। इनका अर्थ है "ये नाम हैं" अथवा केवल 'नाम'। सप्तति अनुवाद में शीर्षक 'एक्सोदॉस' है। यह यूनानी का शब्द है जिसका अर्थ 'निर्गम मार्ग' अथवा 'निर्गमन' है। वुल्गाता में यूनानी शीर्षक कुछ बदलकर एक्सोदुस किया गया है और अंग्रेजी अनुवादों ने वुल्गाता का अनुसरण किया है। भारतीय अनुवादों में यूनानी शीर्षक का अनुवाद किया गया है। हिन्दी में 'निर्गमन' है।

२. विषय सामग्री का सारांश

'निर्गमन' नाम पुस्तक में पमेश्वर के महाकार्य अर्थात इस्राएलियों के छुटकारे तथा उस जाति एवं परमेश्वर के बीच वाचा के द्वारा इस्राएल राष्ट्र के जन्म का वर्णन है। परमेश्वर ने वाचा के द्वारा इस्राएल को अपनी ओर किया।

३. रूपरेखा

निर्गमन : परमेश्वर ने इस्राएल जाति को कैसे वाचा के द्वारा अपनाया।

(१) मिस्र में इस्राएली लोग (१–११)

(क) इस्राएलियों के साथ कठोर व्यवहार (१–२); इस्राएलियों का बढ़ना (१:१–७); नया फिरौन राजा और दमन नीति (१:८—२२); मूसा का पालन-पोषण (२:१–१०); मूसा का एक मिस्री को घात करना और मिद्यान को भाग जाना (२:११–२३); दासत्व में क्रंदन (२:२३–२५)।

(ख) जलती झाड़ी के पास मूसा की बुलाहट (३—४); झाड़ी, आदेश, नया नाम याह्वे (३); बहाने और आश्वासन (४:१–१७); मूसा का मिस्र को लौटना (४:१८–३१)।

(ग) विपत्तियाँ (५–११); फिरौन द्वारा दमन में अधिक कठोरता और परमेश्वर का अपनी प्रतिज्ञा का पुर्नकथन (५–६ : १३); मूसा और हारून के पूर्वज (६:१४–२७); मूसा और हारून का फिरौन के पास जाना, और फिरौन के मन की कठोरता (६:२८—७:१३); मूसा के कहने पर परमेश्वर मिस्र पर नौ विपत्तियाँ भेजता है—जल का लोहू बन जाना, मेंढक, कुटकियाँ, डांस, भारी मरी, फोड़े, ओले, टिड्डी, अंधकार—साथ ही दसवीं विपत्ति की धमकी (७: १४—११:१०)।

(२) परमेश्वर इस्राएल को मिस्र की बंधुवाई से छुड़ाता है (१२—१८)

(क) फसह का पर्व और मिस्र से भागना (१२–१३); फसह के लिये निर्देश (१२:१–२८); दसवीं विपत्ति (पहिलौठों का मारा जाना) और मिस्र से निकलना (१२:२९–४२), फसह की विधि और पहिलौठे (१२:४३–१३:१६); बादल के खंभे और आग के खंभे की अगुवाई (१३:१७–२२)।

(ख) लाल समुद्र पर परमेश्वर द्वारा छुटकारे का महाकार्य (१४–१५:२१); गद्यात्मक वर्णन (१४); मूसा और मरियम का गीत (१५:१–२१)

(ग) सीनै को यात्रा (१५:२२–१८:२७): एलीम को आना (१५:२२–२७); बटेरें और मन्ना (१६); चट्टान से जल (१७:१–७); अमालेकियों से लड़ाई (१७:८–१६); मूसा को यित्रो का परामर्श (१८)।

(३) सीनै पर परमेश्वर का दर्शन और वाचा (१९–४०)

(क) परमेश्वर भयावह और पवित्र है, पर्वत के पास आने की शर्तें (१९:१–२०:२१); अगम पर्वत (१९:१–१९), मध्यस्थ के रूप में मूसा (१९:२०–२५); दस आज्ञाएँ (२०:१–१७) लोगों में भय (२०:१८–२१)।

(ख) वाचा का विधान अथवा वाचा की पुस्तक (२०:२२–२३: १९), जिसमें सम्मिलित हैं : उपासना के आदेश (२०:२२-२६; २२:२९–३०; २३:१०–१९); न्याय-निर्णय

(२१:१–२२:१७); नैतिक एवं नीति विधान (२२:१८–२८; २३:१–६)।

(ग) परमेश्वर की प्रतिज्ञा कि एक दूत प्रतिज्ञा के देश में अगुवाई करेगा (२३:२०–३३)।

(घ) वाचा का बाँधा जाना (२४:१–११): वाचा की पुस्तक और लोहू (२४:१–८); परमेश्वर का दर्शन और पवित्र भोज (२४:६–११)।

(च) मूसा को पर्वत पर साक्षी की पटियाएं और आज्ञाएं दी जाती है (२४:१२–३१:१८): परमेश्वर छः दिन के पश्चात तेजोमय मेघ में से बात करता है (२४:१२–१८); वाचा के संदूक, भेंट की रोटियों के लिये मेज, दीवट, परदे, चौखटे, बीचवाला पर्दा, तंबू के परदे, वेदी, आंगन और दीपक के लिये निर्देश (२५–२७); पुरोहित, हारून ओर उसके पुत्रों–एपोद और सीनाबन्द, एपोद का वस्त्र, जामा, पुरोहित का टोप, हारून के पुत्रों के लिये अंगरखे के लिये निर्देश (२८); उनके समर्पण एवं कर्तव्यों के संबंध में निर्देश (२६); धूप की वेदी (३०:१–१०); गिनती करना, प्रायश्चित का मोल (३०:११–१६); हौदी, तेल और धूप (३०:१७–३८); बसलेल और ओहोलीआब कारीगरों की नियुक्ति (३१:१-११); सब्त पालन (३१:१२–१७); साक्षी की पटियाएं (३१:१८)।

(छ) इस्राएलियों का विश्वासघात (३२–३३); सोने का बछड़ा (३२:१–६); परमेश्वर एवं मूसा का क्रोध—पटियाओं का तोड़ा जाना (३२:७–२४); लोगों को दंड (३२:२५–२६); मूसा लोगों के लिये निवेदन करता है और परमेश्वर अपनी उपस्थिति की प्रतिज्ञा करता है (३२:३०–३३:२३)।

(ज) वाचा का पुनः किया जाना और पटियाओं पर पुनः लेखन (३४): नई पटियां (३४:१–६); वाचा के वचन—जे-दस आज्ञाएं अथवा 'उपासनात्मक दस आज्ञाएं (३४:१०–२६); पर्वत पर ४० दिन रहने के पश्चात्; मूसा के मुख की दीप्ति (३४:२७–३५)

(झ) समस्त सामग्री सहित पवित्र स्थान का बनाया जाना (३५-४०): दान और श्रमिक (३५–३६:७); २५ से ३१ अध्याय

के निर्देशों का पालन (३६:८–३९:४३); मिलाप वाले तम्बू की प्रतिष्ठा और उस निवास स्थान पर यहोवा का तेज (४०)।

४. रचना, रचयिता, रचना-तिथि

परंपरा के अनुसार निर्गमन नाम पुस्तक मूसा की दूसरी पुस्तक कहलाती है। इस शीर्षक से लेखक का संकेत होता है। इस शीर्षक में कदाचित् मूल अभिप्राय केवल धार्मिक अधिकार का ही रहा हो। इस पुस्तक के सूक्ष्म अध्ययन से यह परिलक्षित होता है कि पूर्ण निश्चय के साथ यह नहीं कहा जा सकता कि मूसा ही इस पुस्तक का रचयिता है। यह तो स्पष्ट है कि मूसा ने एक पुस्तक लिखी (नि० २४:७) परंतु इस संबंध में कथन ऐसा नहीं है 'मैं ने लिखा'। यदि मूसा लिखता तो हम यह अपेक्षा अवश्य करते कि वह यह कहते 'मैं ने लिखा'! वास्तविकता यह है कि मूसा के संबंध में ऐसा लिखा गया है मानो कोई अन्य व्यक्ति इस पुस्तक को लिख रहा हो। इसके अतिरिक्त जैसे उत्पत्ति की पुस्तक में वैसे ही इस में भी लेखक इस बात का उल्लेख करता है, "जब फिरौन ने लोगों को जाने की आज्ञा दे दी, तब यद्यपि पलिश्तियों के देश होकर जो मार्ग जाता है वह छोटा है" (१६:१७), जिससे यह प्रतीत होता है कि पलिश्ती लोग मानो उससे पूर्व कनान में थे। इतिहास से हमें यह ज्ञात होता है कि पलिश्ती लोग वहाँ मूसा के पश्चात् आए, अतः १३:१७ के शब्दों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वे ऐसे व्यक्ति द्वारा लिखे गए जो मूसा के परवर्ती काल में पलिश्तीन में था। यहाँ इतना संकेत मात्र किया गया है। रचयिता के संबंध में 'पंचग्रंथ' के विवेचन में पुनः विचार किया जायेगा।

५. विशिष्ट समस्याएं

(क) निर्गमन की तिथि

मिस्र से निर्गमन की तिथि के संबंध में विभिन्न मान्यताएं सप्रमाण प्रस्तुत की गई हैं। दो मान्यताएं साधारणतया स्वीकार की जाती हैं। एक, कि ई० पू० १५ वीं सदी में निर्गम हुआ। दो, कि १३ वीं सदी में हुआ। सुप्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता डबल्यु, एफ० औलब्राइट ई. पू. १३ वीं. के प्रारंभ में निर्गम की तिथि मानते हैं।

(i) १५ वीं सदी संबंधी प्रमाणः—१ राजा ६:१ में यह कहा गया है कि सुलेमान राजा ने अपने राज्य के चौथे वर्ष में मंदिर का निर्माण आरंभ किया और कि यह इस्राएलियों के मिस्र से निर्गम के ४८० वर्ष पश्चात था। यदि सुलेमान के राज्य के चौथे वर्ष की तिथि ई पू० ९५६ मानी जाय (इस तिथि

पर मत वैभिन्य १० वर्ष इधर उधर है), तो निगर्मन ई० पू० १४३६ में अर्थात अमेनहोतप फिरौन अथवा अमेनोफिस द्वितीय के राज्य में (१४३६-१४२३) हुआ होगा। इससे पिछला अर्थात थुतमोसिस तृतीय फिरौन (ई० पू० १४६०-१४३६) वह फिरौन था जिसके राज्य में दमन हुआ (नि० १:८; २:२३)। थुतमोसिस तृतीय मिस्री विजेताओं में सबसे महान विजेता हुआ है। उसने भवन-निर्माण कार्य भी बहुत किया और इसमें उसने अपने प्रधान मंत्री रेख-माइर की अधीक्षण-योग्यता की सहायता ली। रेखमाइर के स्मारक पर ईंट बनाना चित्रित है। यदि ये घटनाएं स्वीकार की जाएं तो फिरौन की पुत्री (नि० २:५—१०) थुतमोसिस प्रथम (ई० पू० १५२५—१४९५) की विख्यात पुत्री हतशेपसुत हो सकती है जो लगभग एक पीढ़ी तक मिस्र की व्यवहारिक रूप में शासिका थी।

(ii) तेरहवीं सदी संबंधी प्रमाण—इस्राएलियों ने 'दमन करने वाले फिरौन' के लिये पितोम और रामसेस नाम भंडार गृहों को बनाया (नि १:११)। इनको रामसेस द्वितीय (ई० पू० १३०१—१२३४) और कदाचित् उनके पित: सेती प्रथम (ई० पू० १३१९—१३०१) के भवन-निर्माण कार्यक्रम के अन्तर्गत प्राय: पूर्ण निश्चय के साथ माना गया है। फिरौन राजाओं में रामसेस द्वितीय को सर्वश्रेष्ठ भवन निर्माता माना गया है। अपने पूर्वजों के विपरीत उसने नील नदी की मुख-भूमि (delta) में भवन निर्माण प्रायोजनाएं कीं। गोशेन में रहनेवाली इस्राएल जाति से वहाँ बड़ी सरलता से बेगार ली जा सकती थी। इस प्रकार रामसेस द्वितीय दमन करने वाले 'फिरौन' के चौखटे में ठीक बैठता है। इस दृष्टि से उसके पुत्र मरनेप्ताह (ई० पू० १२३४-१२२२) के शासन काल में निर्गमन हुआ होगा। यहाँ एक कठिनाई उत्पन्न होती है। मरनेप्ताह के एक स्मारक स्तंभ अभिलेख में इस्राएलियों पर उसकी विजय की तिथि ई० पू० १२२९ दी गई है। इसका अर्थ यह हुआ कि इस्राएलियों को मिस्र से निकलकर पलिश्तीन पहुँचने के लिये केवल चार वर्ष ही मिलते हैं। बाइबल के वर्णनों में उन्हें चालीस वर्ष का समय लगा। इसलिये हमें यह मानना पड़ता है कि पलिश्तीन में अन्य

इस्राएली थे जो कदाचित कभी मिस्र को न आए और इस प्रकार मिस्र से निर्गम करने वाले इस्रालियों में न थे, अथवा यह मानना पड़ता है कि उक्त स्तंभ की प्रमाणिकता और निर्वचन का और गहन समीक्षात्मक अध्ययन आवश्यक है ।

(iii) तेरहवीं सदी के प्रारंभ संबंधी प्रमाण—इस मान्यता के अनुसार दमन करने वाला फिरौन सेती प्रथम (ई० पू० १३१९ -१३०१) था जिसे पितोम ओर रामसेस का भन्डार गृहों का आरंभ करने वाला माना जा सकता है । तब रामसेस द्वितीय के समय (ई० पू० १३०१—१२३४) में निर्गम हुआ होगा । इस मान्यता के आधार पर यह संभव हो जाता है कि इस्राएली लगभग ४० वर्ष पश्चात् पलिश्तीन पहुँच गए और कि अगले फिरौन अर्थात मरनेप्ताह (ई० पू० १२३४-१२२२) ने ई० पू० १२२९ में इस्राएलियों पर आक्रपण किया । इस संबंध में यह भी द्रष्टव्य है कि मरनेप्ताह के स्तंभ में इस्राएल शब्द का जिस रूप में प्रयोग किया गया है उससे प्रदेश के बदले जाति का बोध होता है, और साथ ही यह इंगित होता है कि वे अभी तक पूर्णतया स्थापित जाति नहीं हो पाए थे ।

पुरातत्वविद्या की खोज से पता चलता है कि ई. पू. १३वीं सदी के उत्तरार्द्ध में पलिश्तीन के नगरों का व्यापक विनाश हुआ । इन खोजों से भी निर्गमन संबंधी इस मान्यता की पुष्टि होती है । बेतेल, लाकीश, एग्लोन दबीर और हजोर में जो खुदाई हुई है उनसे इस प्रकार के प्रमाण उपलब्ध हुए है । बेतेल और हजोर का विनाश सबसे अधिक हुआ । यहोशू के नेतृत्व में इस्राएलियों द्वारा पलिश्तीन पर आक्रमण के आधार पर पुरातत्वविद्या के इन प्रमाणों का स्पष्टीकरण सरलता से किया जा सकता है । निर्गम के संबंध में दूसरी अर्थात् तेरहवीं सदी की मान्यता की पुष्टि में भी इन प्रमाणों का प्रयोग किया गया है ।

निर्गमन की तिथि आज भी बाइबल के अध्येताओं के लिये एक समस्या बनी हुई है । इस पुस्तक का लेखक ई. पू. १२९० को निर्गम की अधिक संभाव्य तिथि मानता है ।

(ख) सीनै अथवा होरेब पहाड़ कहाँ है

परंपरागत मान्यता यह है कि सीनै पहाड़ सीनाई प्रायःद्वीप के दक्षिणी भाग में एत-तूर पर्वतश्रेणी का एक पहाड़ है। इस पर्वत-श्रेणी की प्रमुख चोटियाँ येबेल केथरिन (८,५५१ फुट), येबेल मूसा (७,५१९ फुट), रास एस-सफसफेह (६, ९३७ फुट), और येबेल सरबल (६,७५९ फुट) हैं। येबेल सरबल अन्य तीन से २० मील दूर है। रास एस-सफसफेह को येबेल मूसा का ही भाग माना जाता है क्योंकि वह येबेल मूसा की उतर पश्चिम ओर लगी हुई सी लगती है। रास एस-सफसफेह, अर—रहाह की समतल भूमि पर एकदम ऊँची उठी हुई लगती है। यह समतल भूमि उसके उत्तर पश्चिम में है। यह समतल भूमि इस्राएलियों की छावनी के लिये उपयुक्त स्थान रहा होगा। यह सीधी ऊँचाईवाला गौरवशाली पहाड़, अपनी खड़ी विशाल बहुरंगी चट्टानों सहित बाइबल के वर्णन के उपयुक्त प्रतीत होता है। निकट ही घाटी में संत केथरीन का कॉनवेंट है जहाँ कोदेक्स साइनातिकुस मिला। येबेल मूसा की चोटी के पास ही इलीशा का छोटा गिर्जाघर है।

कलीसिसाई इतिहासकार यूसेब (२६४—३४० ई. स.) से एक और परंपरा चली आई है, जिसमें बाइबल के सीनै या होरेब पहाड़ और येबेल सरबल को एक माना गया है। येबेल सरबल के पास वादी फीरान नामक शाद्वलभूमि है जिसे रपीदीम (१७:८) का स्थान माना गया है परन्तु यहाँ इतना बड़ा मैदान नहीं है, जितना रास एस-सफसफेह के पास अर-रहाह है, जो इस्राएलियों के छावनी के लिये उपयुक्त होता।

इनसे भिन्न एक और मान्यता है जिसमें सीनै या होरेब पहाड़ को उत्तर पश्चिम अरब में स्थित माना है। यह साधारणतया मिद्यानियों का देश है (नि० २:१५; ३:१, १२)। अकाबा की खाड़ी के पूर्व की ओर जो पहाड़ हैं, उनमें कुछ पहाड़ पहले ज्वालामुखी थे। इस मान्यता से बाइबल के सीनै पर्वत के उस वर्णन की पुष्टि होती है जिसमें सीनै पहाड़ से आग और धुंआ निकलता है (नि० १९:१८)। इसके अतिरिक्त न्यायियों ५:४,५ में यह निहित है कि सीनै पहाड़ सीअर के प्रदेश में था। यह एदोमी देश था, जिसके उत्तर में मिद्यान दश लगा हुआ था। इस मान्यता के अनुसार लाल समुद्र का पार किया जाना अकाबा की खाड़ी के उत्तरी भाग में हुआ होगा, स्वेज की खाड़ी के उत्तर में नहीं जैसे कि साधारणतया माना जाता है।

सीनै की स्थिति के संबंध में अन्य मान्यताएँ भी हैं जिनमें कादेश-बर्निया के क्षेत्र में उसका स्थान, वादी अरिश (मिस्र की नदी—यहाँ १५:४७, १ रा.

८:६५) के ऊपरी भागों में हलाक पहाड़ को, और एदोम में सिअर को माना जाता है।

परंपरागत मान्यता कि येबेल मूसा, (मूसा का पहाड़) जिसकी उत्तर पूर्वी शिखर रास एस-सफसफेह है, सीनै पहाड़ है सर्वाधिक संभाव्य स्थान स्वीकार किया जाता है।

६. निर्गमन की धर्मशिक्षा

निर्गमन की पुस्तक का केन्द्र वह वाचा है जो सीनै पर्वत पर परमेश्वर ने इस्राएल से की। हमें यह शिक्षा मिलती है कि परमेश्वर ने अपनी अवर्णनीय पवित्रता से मनुष्य तक पाप की खाई पर एक संबंध-साधन निर्माण किया। परमेश्वर इसमें छुटकारा देने वाले परमेश्वर के रूप में आता है। विमोचन की उसकी योजना में तैयारी की एक लंबी अवधि है जिसमें मूसा का ऐसी परिस्थितियों में पालन हुआ कि वह अपने कार्य के लिये सक्षम बनाया गया। परमेश्वर की योजना में मूसा के लिये एक देश-निकाला भी है जो जंगल में उसके लोगों की अगुवाई के लिये एक प्रशिक्षण सिद्ध हुआ। उसमें एक निश्चित बुलाहट और आदेश तथा एक नया दिव्य नाम भी सम्मिलित है जो मनुष्यों के साथ परमेश्वर के व्यवहार के एक नये चरण के लिये उपयुक्त है। विपत्तियों से हमें यह शिक्षा मिलती है कि परमेश्वर अपने लोगों की चिन्ता करता है और कि वह उनको दंड देता है जो उसकी इच्छा का विरोध करते हैं।

फसह का विधान यह सिखाता है कि परमेश्वर का रक्षण और विमोचन उसकी ही शर्तों पर संभव है। मेघ के खंभ और अग्नि के खंभ के द्वारा उसके नेतृत्व से यह सीख मिलती है कि जो परमेश्वर की आज्ञाओं का पालन करते हैं उन्हें उसका सफल संचालन प्राप्त होता है। लाल समुद्र पर इस्राएलियों का छुटकारा परमेश्वर का एक ऐसा महाकार्य है जिसकी गुणात्मक दृष्टि से तुलना ख्रिस्त की मृत्यु से की जा सकती है, जो मनुष्य के उद्धार के लिये परमेश्वर का महानतम कार्य है। सीनै के पहाड़ पर हम परमेश्वर की गौरवपूर्ण पवित्रता की और इस तथ्य की भी शिक्षा प्राप्त करते हैं कि उसके पास पहुँचना मानवीय योग्यता की बात नहीं वरन् पूर्णतया अनुग्रह की बात है। परमेश्वर की आज्ञाओं में जो वाचा में निर्धारित हैं हमें एक ऐसे ठोस जीवन-मार्ग का आश्वासन प्राप्त होता है जो उसे स्वीकार्य है। अतएव वाचा के सीमाक्षेत्र के अंतर्गत ही परमेश्वर वास्तविक रूप में ज्ञातव्य है चाहे उस सीमा के परे वह कितना ही अज्ञात क्यों न हों। बलिदान द्वारा वाचा पर छाप लगाने में हम सीखते हैं कि परमेश्वर के साथ संगति एक बड़े मूल्य पर ही संभव है। इस्राएल के विश-

वासघात पर परमेश्वर के क्रोध (नि. ३२–३३) से हमें पाप की अतिशय भयंकरता की शिक्षा मिलती है। मिलाप के तंबू के नियम हमें सच्ची आराधना के सिद्धांत सिखाते हैं, क्योंकि तंबू के क्षेत्र के दो केन्द्र बिन्दु हैं, अर्थात् वाचा का संदूक जिसका अभिप्राय है परमेश्वर की प्रकाशित इच्छा (दस-आज्ञाएँ) जो अत्यंत पवित्र है, और बलि की वेदी जिसका अभिप्राय है पूर्ण समर्पण जो परमेश्वर मनुष्य से चाहता है।

बारहवां अध्याय

लैव्यव्यवस्था

१. शीर्षक

इस पुस्तक का इब्रानी नाम 'वैयिक्रा' है, जिसका अर्थ 'और उसने बुलाया' है। इब्रानी पाठ में ये ही प्रारंभिक शब्द हैं। सप्तति अनुवाद में इस पुस्तक का नाम लेवितिकोन है, जो लेविति शब्द का विशेषण है। इसे यह नाम इसलिये दिया गया क्योंकि इसकी विषय-सामग्री लेवी के याजकीय समाज के दायित्व तथा कार्यों से संबंधित है। सप्तति अनुवाद के रूप लेवितिकोन और वुलगाता में लातीनी रूप लेवितिकुस से अंग्रेजी रूप आया। हिन्दी में लेवी से लैव्य विशेषण बनाया गया और लेवी संबंधी नियमादि उसकी विषय-सामग्री होने के कारण उसे व्यवस्था कहा गया। इस प्रकार लैव्यव्यवस्था शब्द हिन्दी में बना।

२. विषय-सामग्री का सारांश

इस्राएली लोगों के अनुष्ठानों तथा पुरोहित संबंधी नियमों का और इनके साथ ही विधि एवं निषेधों का विस्तृत वर्णन लैव्यव्यवस्था की विषय सामग्री है।

३. रूपरेखा

लैव्यव्यवस्था-पवित्र जाति के लिये विधियाँ

(१) बलि विधियाँ (१–७)

(क) विभिन्न प्रकार की बलि (१: १–६:७): होम बलि (१:१–१७); अन्न बलि (२:१–१६); मेल बलि (३:१–१७); पाप बलि (४:१–५:१२); दोष बलि (५:१३–६:७)।

(ख) बलि के संबंध में पुरोहितों के कर्तव्य एवं अधिकार (६:८–७:३८)।

(२) अनुष्ठान का प्रारम्भ

(क) हारून एवं उसके पुत्रों का पुरोहितों के रूप में अभिषेक (८)।

(ख) नये अभिषिक्त पुरोहित बलि चढ़ाते हैं (९)।

(ग) नादाब और अबीहू की अवैध आग के कारण परमेश्वर का उन्हें दंड देना; बलि चढ़ाए अंशों के लिये पुरोहित का आचरण (१०)।

(३) शुद्ध और अशुद्ध वस्तुओं के संबंध में विधियाँ

(क) शुद्ध और अशुद्ध पशु (११)।

(ख) प्रसूता की शुद्धि (१२)।

(ग) कोढ़ संबंधी नियम (मनुष्य, वस्त्र, अथवा घर) (१३–१४)।

(घ) यौन विषयक नियम (१५)।

(४) प्रायश्चित के वार्षिक दिवस की विधि (१६) : पापबलि के लिये एक बछड़ा और दो बकरे, एक पापबलि के लिये और दूसरा अजाजेल के लिये।

(५) पवित्रता नियमावली (१७-२६)

(क) पशुओं के वध और भक्षण के नियम (१७) : मिलाप वाले तम्बू के पास ही वध हो। लोहू न खाया जाए, न लोथ या फाड़े पशु का मांस।

(ख) विवाह और घिनौने कामों के विषय (१८) : निषिद्ध विवाह।

(ग) धर्म एवं नीति संबंधी नियम (१९) : पड़ौसी धर्म, भूतप्रेत आदि।

(घ) १८वें और १९वें अध्यायों के नियमों को उल्लंघन करने का दंड (२०)।

(च) पुरोहित और बलि चढ़ाने के संबंध में नियम (२१–२२)।

(छ) वर्ष भर के त्योहारों और पर्वों की नियमावली (२३); सब्त, फसह, अखमीरी रोटी और प्रथम फल, सप्ताहों का पर्व (पेन्तेकुस्त), तुरहियों का पर्व (नागरिक नया वर्ष), प्रायश्चित का दिन, झोपड़ियों का पर्व।

(ज) विविध उपनियम (२४): पवित्र स्थान के दीप, रोटी, निन्दा किसी को घात करना।

(झ) सातवाँ वर्ष और जुबली अर्थात पचासवाँ वर्ष (२५)।

(ट) उपसंहार: उपरोक्त नियमों के पालन की आशिष तथा उल्लंघन का दंड (२६)।

परिशिष्ट (२७) : संकल्प और दशमांश।

४. रचना, रचयिता और रचना-तिथि

यद्यपि लैव्यव्यवस्था की पुस्तक परंपरागत रूप से 'मूसा की तीसरी पुस्तक' मानी जाती है, तथापि मूसा के कथनों से ऐसा लगता है जैसे कोई अन्य व्यक्ति वर्णन कर रहा हो। उनमें तृतीय वचन का प्रयोग हुआ है। बार-बार इसी उप-वाक्य का प्रयोग किया गया है, 'और परमेश्वर ने मूसा से कहा' (४:१, ६:१, १९; ८:१ आदि)। लैव्यव्यवस्था २०:२३ में ये शब्द पाए जाते हैं, "और जिस जाति के लोगों को मैं तुम्हारे आगे से निकालता हूँ उनकी रीति रस्म पर न चलना; क्योंकि उन लोगों ने जो ये सब कुकर्म किए हैं, इसी कारण मुझे उनसे घृणा हो गई है।" इस वाक्य के अंतिम अंश से ऐसा प्रतीत होता है मानो लेखक को कनान के निवासियों पर इब्रानी लोगों की विजय की जानकारी है। इसी प्रकार, लै. व्य. २६ : ४३ में लेखक बतलाता है कि परमेश्वर अपने लोगों को दंड देगा, "कारण कि उन्होंने मेरी आज्ञाओं का उल्लंघन किया, और उनकी आत्माओं को मेरी विधियों से घृणा थी।" ये शब्द उस व्यक्ति के मुँह से ठीक लगेंगे जिसने यरूलेलम का विनाश देखा हो और जब कि बंधुवाई से पाठ सीखा जा चुका हो। इन कारणों से ऐसा प्रतीत होता है कि मूसा से लव्यव्यवस्था की पुस्तक के संबंध को रचयिता और रचना के रूप में समझने की अपेक्षा मूसा की वाचा के अंतर्गत उसके अधिकृत स्थान के रूप में समझना अच्छा होगा। लैव्यव्यवस्था की रचना एवं रचयिता के संबंध में आगे पंचग्रंथ की रचना के विवेचन के साथ भी विवेचन किया जाएगा।

५. रोचक आलोचनात्मक बातें

निकटवर्ती प्राच्य जातियों के जीवन संबंधी बढ़ती हुई जानकारी से यह विदित होता है कि रीतियों, उपासना विधियों और प्रथाओं में प्राचीन इस्राएल तथा पड़ोसी जातियों में बहुत साम्य है। उत्तरी सूरिया में उगरित नामक स्थान में मिट्टी की कुछ पटियाएँ पाई गई हैं। उनसे पता चलता है कि उत्तरी कनानी लोगों द्वारा प्रयुक्त अनुष्ठान शब्दावली और इस्राएली लोगों द्वारा प्रयुक्त शब्दावली में बहुत साम्य है। इन खोजों से यह बात सरलता से समझी जा सकती है कि उन व्यवहारिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिये, जो इस्राएल जाति के पड़ोसी पूर्ण किया करते थे, इस्रालियों के समक्ष बालिम पूजा की प्रथाओं के

पालन करने के लिये कितने आकर्षक प्रलोभन थे। इस्राएल तथा उनकी पड़ोसी जातियों के बीच धर्म की अभिव्यक्ति में प्रथाओं और उपासना पद्धतियों की दृष्टि से कुछ अधिक भेद नहीं था। भेद था केवल उपासना पद्धतियों के और कार्यों के अर्थ में। दूसरे शब्दों में यों कहें कि उनके बीच भेद केवल उस परमेश्वर की परिकल्पना में था जिसकी वे आराधना करते थे। व्य. विवरण २६ : १—१५ में वर्णित इस्राएली पूजा-विधि में अर्थ-भेद के कुछ संकेत मिलते हैं। इस संदर्भ में आराधक को आदेश दिया जाता है कि वह भूमि की पहिली उपज की बलि के समय इस प्रकार कहे, "मेरा मूलपुरुष एक अरामी मनुष्य था जो मरने पर था और वह अपने छोटे से परिवार समेत मिस्र को गया, और वहाँ परदेशी होकर रहा; और वहाँ उससे एक बड़ी, और सामर्थी, और बहुत मनुष्यों से भरी हुई जाति उत्पन्न हुई। और मिस्रियों ने हम लोगों से बुरा बर्ताव किया, और हमें दुःख दिया, और हमसे कठिन सेवा ली। परंतु हमने अपने पूर्वजों के परमेश्वर यहोवा की दोहाई दी, और यहोवा ने हमारी सुनकर हमारे दुःख, श्रम और अंधेर पर दृष्टि की; और प्रभु ने बलवंत हाथ और बढ़ाई हुई भुजा से अति भयानक चिन्ह और चमत्कार दिखलाकर हमको मिस्र से निकाल लाया; और हमें इस स्थान पर पहुँचाकर यह देश जिसमें दूध और मधु की धाराएं बहती हैं हमें दे दिया है।"

इस बलि-विधि का ऐसा प्रयोग किया गया है जिसमें इस्राएल के प्रति परमेश्वर के अद्वितीय प्रकाशन पर इस्राएल जाति के विश्वास की रक्षा की जाए और उसे दृढ़ किया जाए। हो सकता है कि दूसरी जातियों में पहली उपज की बलि का अर्थ जादू से देवताओं को भोग देना अथवा देवताओं पर अपने सहारे को स्वीकार करना हो। परंतु इस्राएल जाति में ऐसी विधि का अर्थ उसके अपने निजी विश्वास के आधार पर किया जाता था। इस्राएल लोग इस मूल भेद से अवगत थे। इस बात की पुष्टि भजन-लेखक के शब्दों से होती है, "प्रभु का भय पवित्र है, वह अनंत काल तक स्थिर रहता है," (भ. १९ : ९) अथवा" जो पराए देवता के पीछे भागते हैं उनका दुःख बढ़ जाएगा; मैं उनके लोहू वाले तपावन नहीं तपाऊँगा और उनका नाम अपने होठों पर नहीं लूँगा। प्रभु मेरा भाग और मेरे कटोरे का हिस्सा है" (भ. १६ : ३–४)।

लैव्यव्यवस्था की पुस्तक को भली भाँति समझने के लिये यह जान लेना आवश्यक है कि उसमें दिए हुए अनुष्ठान संबंधी निर्देश, आराधना की अर्थपूर्ण कर्म-माला की रूपरेखा मात्र है। आराधना के ये कर्म प्रार्थनाओं, पापाँगीकार अथवा धन्यवाद से संबंधित होंगे, जैसा कि ऊपर निर्देश किया गया है कि पहिली उपज की बलि के साथ एक विश्वासवचन का अंगीकार है। कुछ वर्षों से

ख्रिस्तीय विद्वान इस बात की खोज कर रहे हैं कि भजनसंहिता तथा बाइबल के अन्य गीति-अंशों में वे गीत कौन से हो सकते हैं जो विशिष्ट उपासना-कर्मों से संबंधित होंगे। इस प्रकार लैव्यव्यवस्था की पुस्तक के, जो बहुत कम पढी जाती है, घनिष्ट संबंध का अध्ययन किया जा रहा है। लैव्यव्यवस्था हमें इस्राएलियों की उपासना के बाह्य अंगों का परिचय कराती है, भजन संहिता उसकी आंतरिक भावनाओं का। उदाहरणार्थ, यह विचार किया जाता है कि ६७वाँ भजन का 'सप्ताहों के पर्व' के समय उपयोग किया जाता था, ५वां भजन उस समय काम में लिया जाता था जब कोई रोगी या पाप के बोझ से दबा व्यक्ति क्षमा और शुद्धि के लिये पवित्र स्थान के पास जाता था। संभव है कि तुरहियों के पर्व या नूतन वर्ष के समय प्रभु परमेश्वर के सिंहासन पर विराजमान होने के उत्सव पर ४७वें भजन का प्रयोग किया जाता हो। यह माना जाता है कि सीरख ५० : ५–२१ में प्रायश्चित के दिन उपासना कर्म के समय महापुरोहित का विशद चित्रण किया गया है :

वह परम पवित्र स्थान से बाहर आया,
और जब लोग उसके चहुँ ओर एकत्रित हुए तो वह कितना तेजोमय था।
वह मेघों के मध्य भोर के तारे के समान,
वह रात्रि में राका-शशि के समान;
वह सर्वोच्च के मंदिर पर उदित सूर्य के समान,
और गौरवशाली मेघों में इन्द्र धनुष के समान था······
जब उसने अपना भव्य वस्त्र धारण किया
और अपनी पूर्ण सज्जा के साथ

वह पवित्र बेदी के पास गया, तो पवित्र स्थान का आंगन दीप्तिमान हो उठा।····

उसने अपना हाथ बढ़ाकर कटोरा लिया और दाख के रक्तिम रस का तर्पण किया;

उसने उसे वेदी के निम्नतम भाग पर उँडेल दिया,

उसकी सुगंध सर्वोच्च, राजाओं के राजा के लिये ग्राह्य हो गई। तब हारून के पुत्रों ने जयघोष किया, उन्होंने सुन्दर गढ़ी हुई तुरहियाँ बजाईं।

उन्होंने सर्वोच्च के सामने उच्च स्वर से जयघोष किया जो सदा के लिये स्मरण रहेगा।

इस प्रकार उपासना और कर्मकांड के अध्येता के लिये लैव्यव्यवस्था की पुस्तक विशेष रुचि की पुस्तक बनी रहेगी। यदि इस्राएल की संपूर्ण उपासना

के संदर्भ में इस पुस्तक का अध्ययन किया जाए तो इस्राएल जाति के जीवन और विश्वास के बोध में इसका महत्वपूर्ण योगदान है।

६. धर्मशिक्षा

खिस्ती लोग मूसा की व्यवस्था से बँधे नहीं हैं। विशेषकर लैव्यव्यवस्था में पाए जाने वाले विधि-नियमों से तो बिलकुल बंधे नहीं हैं। (गल.२:१६; रो. ३:२८, मर ७:१४-२३)। फिर भी खिस्ती धर्मशास्त्र में इन नियम उप-नियमों को स्थान है क्योंकि वे खिस्त में परमेश्वर के पूर्ण अभिप्राय की पूर्व सूचनाएँ हैं। वे इस बात के सूचक हैं कि परमेश्वर यीशु खिस्त के द्वारा क्या करना चाहता था और इस बात की ओर संकेत करते है कि खिस्त हमारे लिये क्या है। पशुओं के लोहू की बलि के माध्यम से अब हम परमेश्वर की आरा-धना नहीं करते। यह केवल इसीलिये संभव हुआ कि परमेश्वर ने एक पूर्ण बलिदान की अर्थात क्रूस पर खिस्त के बलिदान की योजना की (इब्र० ९:११—१४)। परमेश्वर ने खिस्त में इब्रानी महायाजकत्व और मिलाप के तंबू की व्यवस्था की। अब हमारा महान एवं सिद्ध महायाजक है जिससे परमेश्वर की उपस्थिति रूपी अनंत तंबू में हमारे लिये अनंत छुटकारा प्राप्त किया (इब्र० ९:११)। लैव्यव्यवस्था की विधियाँ एवं उपविधियाँ आराधना एवं पवित्र जीवन व्यतीत करने के लिये परमेश्वर की ओर से प्राथमिक पाठ हैं। खिस्त में उनके पूर्ण हो जाने के कारण यद्यपि इनके बंधन की आवश्यकता अब नहीं रह गई, तथापि वे परमेश्वर के अभिप्राय का एक चित्र प्रस्तुत करते हैं और इस रूप में इसका महत्व सदा बना रहेगा।

लैव्यव्यवस्था की शिक्षा का सार दो आज्ञाओं में दिया जा सकता है, "तुम पवित्र बने रहो; क्योंकि मैं तुम्हारा परमेश्वर प्रभु पवित्र हूँ, और "एक दूसरे से अपने समान ही प्रेम रखना" (लै० व्य० १९:१८; दे मत्ती १९:१९)।

बलि की विधियों से यह शिक्षा मिलती है कि परमेश्वर से मिलाप उतना ही मंहगा है जितना प्राण। विभिन्न प्रकार की बलि से यह इंगित होता है कि परमेश्वर के पास आना पूर्ण समर्पण के साथ होना चाहिये (होम बलि), कि वह संगति के लिये होना चाहिये (मेल बलि), पापों की क्षमा के लिये होना चाहिये (पाप-बलि), परमेश्वर के साथ और मनुष्य के साथ मिलाप के लिये होना चाहिये (दोष बलि), और कि वह हमारी आशिषों के प्रति भंडारीपन की भावना से होना चाहिये (अन्न बलि)। पवित्र स्थान के सेवकों के लिये उपविधियों से यह संकेत मिलता है कि खिस्त के सेवकों के लिये संयम और सम-र्पण की आवश्यकता है। पवित्र एवं सामान्य के बीच भेद से इस बात की ओर

संकेत होता है कि ख्रिस्त संबंधी बातों के विषय, अर्थात संस्कारों तथा नैतिक एवं मानवीय मूल्यों के प्रयोग में हम नम्रता और आदर की भावना रखें। लैव्यव्यवस्था में धार्मिक पर्वों से यह इंगित होता है कि हमारा समय और गति-विधि का विधान इस प्रकार से किया जाय कि हम परमेश्वर और उसकी करुणा का सदा स्मरण किया करें जिसके फलस्वरूप हमारे संपूर्ण जीवन में परमेश्वर को योग्य स्थान प्राप्त हो।

तेरहवां अध्याय

गिनती

१. शीर्षक

इस पुस्तक का इब्रानी शीर्षक 'बमिदबार' है, जिसका अर्थ 'जंगल में' है। यह शब्द इब्रानी पुस्तक में पहला शब्द न होते हुए भी इस पुस्तक का विशिष्ट शब्द है। सप्तति अनुवाद में 'अरिथमुइ' शीर्षक दिया गया जिसका अर्थ 'गिनती' है। इस शीर्षक से पुस्तक के प्रथम भाग की सामग्री का वर्णन हो जाता है। वुल्गाता में 'न्यूमेरी' शीर्षक है जो यूनानी शीर्षक का अनुवाद है। अंग्रेजी का शीर्षक यूनानी के शीर्षक अनुरूप है। भारतीय अनुवादों में यूनानी शीर्षक का अनुवाद किया गया है। हिन्दी में भी यूनानी शीर्षक का अनुवाद है और इसलिये यह 'गिनती' की पुस्तक कहलाती है।

२. सारांश

गिनती की पुस्तक में सीनै पर्वत से मोआब के मैदानों तक इस्राएलियों के भ्रमण का वर्णन है, जिसमें ३८ वर्ष तक जंगल में भ्रमण का वर्णन सम्मिलित है।

३. रूपरेखा

गिनती—जंगल-भ्रमण में अनुशासन

(१) सीनै में छावनी (१ : १–१० : १०)।

(क) गिनती और छावनी का क्रम (१–२) : इस्राएलियों की गिनती (१); छावनी के उठने और आगे बढ़ने का क्रम (२)—यहूदा, रूबेन, एप्रैम और दान की छावनियाँ।

(ख) पवित्रस्थान की सेवा के लिये सहायक के रूप में पहिलौठों के स्थान पर लेवियों का परमेश्वर द्वारा ग्रहण किया जाना (३–४) : कहाती, गेर्शोनी और मरारी।

(ग) विविधि विधियाँ एवं उपविधियाँ (५–६) : अशुद्ध लोगों का बाहर किया जाना (५ : १–४); पुनः जाति में मिलाना (५:५–१०); वैवाहिक जीवन में विश्वासघात की समस्या

(५ : ११–३१); नाजीरों की व्यवस्था (६:१–२१); याजकों के आशीर्वाद देने की रीति (६:२१–२७)

(घ) मिलाप-तंबू के समर्पण (७–९:१४) : प्रधानों का भेंट लाना (७:१–८३); वेदी का अभिषेक, दीवट (७:८४–८:४); लेवियों का शुद्धिकरण (८:५–२६); फसह की उपविधियाँ (९:१–१४)।

(च) यात्रा की रीति (९:१५–१०:१०) : बादल, चाँदी की तुरहियाँ।

(२) भ्रमण (१०:११–२२:१)

(क) सीनै से कादेश बर्निया तक (१०:११–१४) : होबाब के निदर्शन में यात्रा (१०); तबेरा एवं किब्रोथत्तावा में कुड़-कुड़ाना और दंड, तथा ७० पुरनियों की नियुक्ति (११) मरियम का कोढ़ी होना (१२); कनान में भेदियों का भेजा जाना और उनका वर्णन (१३); परमेश्वर का क्रोध, मूसा का निवेदन और कनान पर असफल आक्रमण (१४)।

(ख) भ्रमण का समय (१५–१९): विविध नियम—बलि, सब्त उलंघन, वस्त्रों के कोर पर झालर (१६); कोरह, दातान और अबीराम का विद्रोह (१६); हारून की छड़ी में कलियाँ फूटना (१७); याजकीय दाय (१८); लाल निर्दोष बछिया की राख से छुड़ौती का जल (१९)।

(ग) कदिश से मोआब की तराई तक (२०–२१): मरियम की मृत्यु (२०:१); मरीबा में जल (२०:२–१३); एदोम की अस्वीकृति (२०:१४–२१); हारून की मृत्यु (२०:२२-२९); होर्मा स्थान पर विजय (२१:१–३); पीतल का सांप (२१:४–९); मोआब की ओर यात्रा, दो पुरातन गीत (२:१०–२०); सीहोन और ओग नामक राजाओं पर विजय (२१:२१–२२:१)।

(३) मोआब के मैदानों में (२२:२–३६)

(क) बिलाम की गूढ़ बात (२२–२४): बालाक विलाम को बुलाता है (२२) बिलाम की चार भविष्यवाणियां (२३–२४)।

(ख) बालपोर देव-पूजा का पाप, और पीनहास द्वारा दंड (२५)।

(ग) विविध नियम (२६–३१): दूसरी बार गिनती (२६); सलोफाद की पुत्रियों की विनती (२७:१–११); यहोशू की मूसा के स्थान पर नियुक्ति (२७:१२–२३); उपासना उपविधियाँ—निरंतर बलिदान, सबृत, महीने के आरंभ, फसह, सप्ताहों और तुरहियों का पर्व, प्रायश्चित का दिन (२८–३०); मिद्यानियों के विरुद्ध युद्ध और लूट का वितरण (३१)।

(घ) रूबेन, गाद और मनश्शे के आधे गोत्र को यर्दन के पूर्वी देशों की भूमि का दान (३२)।

(च) मिस्र से मोआब तक के पड़ावों की नामावली (३३)।

(छ) कनान में प्रवेश करने के पूर्व अंतिम अनुदेश (३४–३६): यर्दन के पश्चिमी देशों की भूमि का दान (३४); लेवीय नगर (३५:१–८); शरण नगर और हत्या के दंड से बचने के नियम; संपत्ति वाली स्त्रियों का विवाह (३६)।

४. रचना और रचयिता

गिनती ३३:२ में लिखा है, "मूसा ने प्रभु से आज्ञा पाकर उनके कूच उनके पड़ावों के अनुसार लिख दिए। पहले महीने के पंद्रहवें दिन को उन्होंने रामसेस से कूच किया" इत्यादि। इन शब्दों से यह सूचित होता है कि यद्यपि मूसा ने इस्राएलियों की यात्राओं का अभिलेख किया, तथापि इस उद्धरण का वर्णन और किसी व्यक्ति ने लिखा है, जो मूसा के लेखों पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से निर्भर था। इसी प्रकार इस पुस्तक में जब मूसा का उल्लेख किया गया है उसमें तृतीय पुरुष का प्रयोग किया गया है और ऐसा प्रतीत होता है कि मूसा नहीं वरन अन्य कोई घटनाओं को लिख रहा हो। अतः माना कि यह पुस्तक मूसा से संबद्ध मानी जाती है और परंपरागत रूप से मूसा की चौथी पुस्तक कही जाती है परंतु ऐसा लगता है कि वह किसी अन्य व्यक्ति द्वारा लिखी गई अथवा संपादित हुई। वह लेखक कौन था, कहाँ का था, कब था, इसका कोई उल्लेख नहीं है। पंचग्रंथ की रचना पर लेख में आगे लेखक का पुनः विचार किया जाएगा।

५. रोचक आलोचनात्मक समस्याएं

(१) गिनती की पुस्तक में गिनती की समस्या

गिनती की पुस्तक में दो जनगणना का वर्णन है (१:३ क्र. और २६) इनकी विश्वसनीयता के संबंध में शंका की जाती है। पहली जनगणना में ६०३,

५५० पुरुष हैं, और दूसरी में ६०१, ७३० पुरुष और वे सब कम से कम २० वर्ष की आयु के हैं। यदि स्त्रियों और बच्चों की गिनती भी की जाती तो सब मिलाकर २० लाख से अधिक होते (एक परिवार में चार मानकर जो बहुत ही कम हैं)। ४० वर्ष तक इतने लोग जंगल में रहें और दूसरे स्थानों से उन्हें खाद्यान्न न मिले और जल की कोई अच्छी व्यवस्था न हो, यह विश्वास करना अत्यंत कठिन जान पड़ता है। इन बड़ी संख्याओं की समस्या कुछ वैसी ही है जैसी उत्पत्ति में पितरों की आयु की समस्या। नूह के पूर्व पितरों की औसतन आयु ८३७.५ वर्ष होती है। हनोक की आयु सब से कम है, ३६५ वर्ष (यह द्रष्टव्य है कि वर्ष में ३६५ दिन हैं)। सबसे दीर्घ आयु मतुशेलह की है जो ९६९ वर्ष जीवित रहा। नूह के पश्चात अर्पक्षद ४३८ वर्ष और शेलह ४३३ वर्ष की आयु तक रहे। इन संख्याओं को मानने में यह कठिनाई उपस्थित होती है कि विज्ञान से प्रमाणित होता है कि प्राचीन युगों में लोगों की आयु लगभग उतनी होती थी जितनी आजकल इसी प्रकार मंदिर के निर्माणों में भी संख्या की अतिशयता है (१ इति० २२:१४; २९:४, ७)।

इन बड़ी संख्याओं का कोई संतोषप्रद स्पष्टीकरण नहीं हो पाया है। कुछ विद्वान कहते हैं कि पाठ भ्रष्ट होंगे। यह द्रष्टव्य है कि नूह के पूर्व पितरों की आयु सामरी पंचग्रंथ एवं सप्तति अनुवाद में इब्रानी के मसोरेतिक पाठ से भिन्न है। कुछ विद्वान दृष्टिकूट की पद्धति के अनुरूप अंकों का निर्वचन करते हैं अर्थात अंकों के स्थान पर अक्षरों को रखते हैं, परन्तु इससे भी कोई संतोष-प्रद परिणाम नहीं मिल सके हैं। यह भी ध्यान देने की बात है कि पुराने नियम में लगभग संख्या देने का प्रयास किया गया है। उदाहरणार्थ, ४० वर्ष की संख्या एक पीढ़ी के बराबर मानी गई है (न्या० ३:११; ८:२८; १३:१)।

इस्राएल का इतिहास लिखने में धर्मग्रंथ लेखक ने उस सब मूल सामग्री का उपयोग किया जो उसे उपलब्ध हो सकी। अतएव, हमें यह समझना चाहिये कि परमेश्वर के स्वरूप, गुण, और कार्य के प्रकाशन के लिये धर्मशास्त्र की विश्वसनीयता में संख्याओं की संभाव्यता के कारण कोई बाधा उपस्थित नहीं होती। इन संख्याओं के शाब्दिक अर्थ के अतिरिक्त अन्य कोई अर्थ लगाने के कारण परमेश्वर के स्वरूप एवं कार्य में कोई अंतर नहीं पड़ता और इसलिए धर्मशास्त्र की विश्वसनीयता में कोई व्यवधान नहीं होता।

२. वहनीय मिलाप का तंबू

इब्रानियों के वहनीय तंबू के समान प्रथाएं आज भी विद्यमान हैं। रूवल्ला बदवी नामक सूरियानी जाति के पास पंखों से जड़ा हुआ 'इश्माएल का संदूक'

है, जिसे वे अपने साथ प्रवास में ले जाते हैं। यह 'इश्माएल का संदूक' उन्होंने १७९३ में एक प्रतिद्वन्दी जाति से छीना था। जब यह सूरयानी जाति एक स्थान से दूसरे को जाती है तो एक ऊंटनी पर यह संदूक आगे आगे चलता है। अतीत में जब यह जाति युद्ध करने जाती थी तो यह संदूक और उसके साथ ऊंटनी पर सबसे सुदंर स्त्री वह स्थान बन जाता था जिससे पीछे योद्धा हट नहीं सकते थे। यह संदूक बबूल की लकड़ी और शुतुरमुर्ग के पंखों से बना है और पड़ाव के समय बकरे के बालों से बने हुए तंबू के सामने रखा जाता है।[1] यह अनुमान है कि इस्लाम धर्म के प्रादुर्भाव के पूर्व अरब देश की खानाबदोश जातियों में प्रत्येक के पास ऐसी वहनीय दरगाहें थीं जिस पर जाति के इष्ट देवता का चिन्ह भी होता था। मक्का में जो काबा है वह भी संदूक के आकार का है और उस पर चादर है जो प्रतिवर्ष बदली जाती है। उसके भीतर एक काला पाक पत्थर है। यह माना जाना है कि यह भी एक वहनीय दरगाह थी जो अंत में एक स्थान पर स्थित की गई। इब्रानियों का वाचा का संदूक जिसमें पत्थर की पटियाएं थीं, उसी प्रकार एक पवित्रस्थान था जो अन्त में कनान में, पहले शिलोह और तब यरूशलेम में स्थित हो गया।

६. धर्मशिक्षा

इस पुस्तक के पहले भाग से यह शिक्षा मिलती है कि परमेश्वर के मनोनीत लोग परमेश्वर की इच्छा पूर्ण करने और उसकी अगुवाई में चलने के लिये कैसे संगठित किए गए। दूसरे शब्दों में यों कहा जाए कि "जंगल में कलीसिया" (प्रे. ७:३८,) परमेश्वर की सेवा करने के लिये सेना के समान संगठित हुई। प्रत्येक युग में परमेश्वर की कलीसिया के लिये ऐसा आदर्श उपयुक्त प्रतीत होता है, जैसा गीत में कहा गया है 'ईश्वर की कलीसिया युद्ध में शामिल है।' इस्राएलियों की चार छावनियों की, अर्थात् यहूदा, रूबेन, एप्रैम और दान (गि. १–२) के झंडों का वर्णन नहीं है, परंतु यहूदी परंपरा में उन्हें यहेजकेल के दर्शन (यहे १:५, १०) के चार मुखों से एकात्म किया गया है। प्रकाशित वाक्य नाम पुस्तक में भी इसी प्रकार का प्रतीक-विधान मिलता है (प्र. वा. ४:८) जहाँ चार प्राणी परमेश्वर के सिंहासन के चारों ओर हैं। इन संदर्भों में सामान्य विचार यह है कि परमेश्वर अपने लोगों के बीच सिंहासनारूढ़ है। चार झंडे उसके लोगों की प्रतीक हैं, जो उसकी इच्छा पूरी करने के लिये तत्पर रहते हैं। उदाहरणार्थ, यहूदा का ध्वजा चिन्ह सिंह है (दे. उ० ४९:९), रूबेन का चिह्न मनुष्य का मुख, एप्रैम का बैल (व्य. वि. ३३:१७) और दान का उकाब है।

---

१. नेशनल ज्योगरफिक मेगजीन, ११२—६, दिसंबर १९५७, पृ० ८६४

प्रारंभिक कलीसिया के पितृगण ने इस प्रतीक-विधान को और आगे बढ़ाकर यह विचार किया कि सुसमाचार चार सुसमाचार-लेखकों द्वारा प्रस्तुत किए गए हैं, और कि मत्ती का चिह्न मनुष्य का मुख, मरकुस का सिंह, लूका का वृषभ, और यूहन्ना का उकाब है ।

प्रतिज्ञा के देश का भेद लेना और उसके बाद उसे जीत लेने में असफलता से परमेश्वर पर विश्वास में निहित व्यवहारिक अभिप्राय के संबंध में शिक्षा मिलती है (१३) । उससे हम यह सीखते हैं कि परमेश्वर के बिना सफलता प्राप्त करने का प्रयास व्यर्थ है (१४) ।

जंगल में चालीस वर्ष तक भ्रमण यह सिखाता है कि परमेश्वर ने विभिन्न उपायों से अपने लोगों को अनुशासनबद्ध बनाया कि वे प्रतिज्ञा के देश में प्रवेश करने के योग्य हो सकें । इस कठिन काल में मूसा का धैर्य प्रशंसनीय है । जीने की कला की, जिसका उदाहरण पीतल के सर्प की घटना में है (२१:४–९) और जिसका प्रभु ने भी यूहन्ना ३:१४ में उल्लेख किया है, शिक्षा में हम परमेश्वर के न्याय की सच्चाई और उसकी करुणा का अपूर्व मिश्रण पाते हैं । बिलाम की गूढ़ बातें यह बताती हैं कि जो परमेश्वर के लोग हैं और उस पर भरोसा करते हैं उनके लिये सब बातों में परमेश्वर भलाई ही का कार्य करता हैं । संपूर्ण पुस्तक में परमेश्वर के धार्मिक न्याय, रक्षण और संचालन के प्रमाण मिलते हैं।

चौदहवां अध्याय

व्यवस्था विवरण

१. शीर्षक

इस पुस्तक का इब्रानी शीर्षक उसके प्रारंभिक शब्द 'एल्ले हद्दवारीम' से लिया गया है। इन शब्दों का अर्थ "ये वे वचन हैं' है। उनका संक्षिप्त रूप 'दवारिम' अर्थात 'वचन' है। सप्तति अनुवाद में शीर्षक है 'द्यूतरोनोमिऑन' जिसका अर्थ है 'द्वितीय व्यवस्था' अथवा 'व्यवस्था की पुनरावृत्ति'। कदाचित १७वें अध्याय के १८वें पद के यूनानी अनुवाद से यह शीर्षक लिया गया जिसमें कहा गया है कि 'वह''''इसी व्यवस्था की पुस्तक की एक नकल अपने लिये कर ले।' वुलगाता में यूनानी शीर्षक का लातीनी रूप 'द्यूतरोनोमियम' शीर्षक दिया गया है। अंग्रेजी शीर्षक वुलगाता से लिया गया है। भारतीय अनुवादों में यूनानी शीर्षक का अनुवाद किया गया है। हिन्दी में 'व्यवस्था विवरण' शीर्षक है।

२. विषय-सामग्री का सारांश

सीनै पर्वत पर प्रकाशित ईश्वरीय वाचा की व्यवस्था जिस रूप में मूसा द्वारा प्रस्तुत की गई उस वाचा का विशेष कर तीन प्रवचनों में संस्मरण के रूप में इस पुस्तक में विवरण किया गया है और साथ ही इस्राएल जाति को प्रबोधन किया गया है कि परमेश्वर की भलाई के कारण वह परमेश्वर से प्रेम करे और उसके प्रति विश्वस्त रहे।

३. रूपरेखा

व्यवस्था विवरण—प्रेम और भक्ति के कर्तव्य

(१) प्रथम प्रवचन—प्रभु के महाकार्य (१:१—४२:४३)

(क) ऐतिहासिक भूमिका (१:१–५): अराबा में मूसा के संभाषण का समय और स्थान।

(ख) मूसा होरेब से लेकर मोआब की तराइयों तक आने की घटनाओं का विवरण देता है (१:६–३:२९)।

(ग) मूसा इस्राएलियों को उद्‌बोधन देता है कि होरेब पर प्रकाशित महान् सत्यों को न भूलना (४:१–४०)।

(घ) यर्दन के पूर्व में बसने वालों वंशों के लिये मूसा बेसेर, गिलाद का रामोत, और बाशान के गोलान को शरणनगर निर्धारित करता है (४:४१–४३)।

(२) द्वितीय प्रवचन—परमेश्वर की व्यवस्था (४:४४–२८:६८)

(क) ऐतिहासिक भूमिका (४:४४–४९): बेतपोर के सामने की तराई में दिया गया संभाषण।

(ख) मूसा वाचा के विश्वास की पुनरावृत्ति करता है (५–११): जलते हुए पहाड़ पर परमेश्वर ने दस आज्ञाएँ दीं (५)। शेमा–अर्थात् सारी शक्ति से परमेश्वर को प्रेम करना, और उसके प्रति विश्वस्त रहने का आदेश (६)। पवित्र जाति के रूप में इस्राएल से आचरण की अपेक्षा (७)। संपन्न अवस्था के प्रलोभनों के कारण जंगल में परमेश्वर के रक्षण को न भूलना (८)। आत्म-धार्मिकता में परमेश्वर के रक्षण को न भूलना (९:१–५)। जंगल में इस्राएलियों के विद्रोह से शिक्षाएँ–परमेश्वर का क्रोध बड़ी कठिनाई से टाला गया और बड़ी विनम्र विनती के पश्चात् वाचा का पुनर्दान (९:६–१०:११)। प्रभु परमेश्वर क्या चाहता है, संक्षेप में विवरण (१०:१२–२२): उसका भय मानो। उससे प्रेम करो और मन से उसकी सेवा करो। उसके भलाई के कार्यों के कारण उसकी आज्ञाएँ मानो, व्यवस्था से प्रेम करो जिससे इस्राएल समर्थ होगी (११)। गरीज्जीम और एबाल पहाड़ों पर से आशिष एवं शाप (११:२६–३२)।

(ग) विधि संहिता (व्यवस्था संहिता) (१२—२६) जिसमें सम्मिलित हैं: धार्मिक विधियां; विशेषकर बलिदानों का केन्द्रीकरण (२२)। मानव भलाई की विधियां—परदेशी, विधवा, अनाथ, दास और पशु के संबंध में (उदा; २२:८; २३:१५)। नागरिक विविधां, जैसे संपत्ति (१९:१४), स्थानीय न्यायी (१६:१८–२०)। राज्य व्यवस्था—जिसमें परमेश्वर का स्थान सर्वोच्च न्यायालय के रूप में, और राज्य करने की प्रणाली भी सम्मिलित है (१७:८–२०)।

(घ) प्रतिज्ञा के देश में व्यवस्था का उद्घाटन (२७): एबाल पहाड़ पर पत्थर खड़ा करना और चूना से पोतना और उस पर व्यवस्था के वचनों को लिखना, गिरिज्जीम पहाड़ से आशीर्वाद और एबाल से शाप सुनाना (२७:१४–२६)।

(च) वाचा के पालन के लिये आशिष और उल्लंघन के लिये शाप (२८)।

(३) तृतीय प्रवचन—परमेश्वर के साथ वाचा (२९-३०)

(क) मोआब में परमेश्वर और इस्राएल के बीच नयी वाचा (२९)।

(ख) पश्चाताप करने पर क्षमा और आशिष (३०:१–१०)।

(ग) परमेश्वर का वचन दूर नहीं, निकट है–इस्राएल को चुनाव की चुनौती–जीवन या मृत्यु को चुन ले (३०:११–२०)।

(४) परिशिष्ट (३१–३४)

(क) मूसा की विदाई, यहोशू की नियुक्ति और उसे आदेश, लेवियों को व्यवस्था की पुस्तक सौंपी गई (३१:१–१३)।

(ख) ऐतिहासिक संदर्भ सहित मूसा का गीत (११:१४–३२:४७)।

(ग) नबो पहाड़ पर से मूसा प्रतिज्ञा के देश को देखता है (३२:४८–५२)।

(घ) मूसा का इस्राएलियों को आशीर्वाद देना, गोत्र के अनुसार (३३)।

(च) मूसा की मृत्यु (३४)।

४. रचना, रचयिता, तिथि

इस पुस्तक के प्रबोधनात्मक अंशों में उत्तम पुरुष वाचक सर्वनाम 'मैं' का प्रयोग किया गया है मानो मूसा स्वयं बोल रहा हो। साथ ही ऐतिहासिक व्याख्या भी है जिसमें मूसा के लिये अन्य पुरुषवाचक सर्वनाम 'वह' का प्रयोग किया गया है, मानो कोई और बोल रहा हो। ऐसा प्रतीत होता है कि जो व्यक्ति ऐतिहासिक भूमिकाएं लिख रहा हो वह यर्दन नदी के पश्चिमी भाग का रहने वाला हो, क्योंकि वह मूसा के अंतिम उपदेश और मृत्यु के स्थान के लिये कहता है, 'यारदन के पार मोआब देश में वह व्यवस्था का विवरण यों करने लगा' (व्य. १:५; दे. ४:४६)। यदि यह वही व्यक्ति है जिसने पुस्तक

का अंतिम भाग भी लिखा, तो वह उस समय रहा होगा जब से बरसों पहले इब्रानी लोग पलिश्तीन देश में आ बसे होंगे, क्योंकि वह कहता है, "और मूसा के तुल्य इस्राएल में ऐसा कोई नबी नहीं उठा, जिससे यहोवा ने आमने–सामने बातें कीं (३४:१०)। २:१२ में (अगले दिनों में), ३:१४ में (और वही नाम आज तक बना हुआ है) और ३३:४ (मूसा ने हमें व्यवस्था दी, और याकूब की मंडली का निज भाग ठहरी) ऐतिहासिक दृष्टि से भी यही प्रतीत होता है कि लेखक उस समय लिख रहा है जब बरसों पहले इस्राएली पलिश्तीन में बस चुके थे। १७:१४–२० में राजा के लिये जो निर्देश दिए गए हैं उनके आधार पर कुछ विद्वानों का यह अनुमान है कि यह शमूएल द्वारा राजा की नियुक्ति के समय को सूचित करते हैं, और कुछ विद्वान तो उसमें सुलेमान अथवा अन्य परवर्ती राजाओं की झलक देखते हैं। यदि हम ऐसे संदर्भों को जिनमें परवर्ती काल की झलक जैसी प्रतीत होती है छोड़ भी दें तो भी पुस्तक के अधिकांश भाग के रचयिता के विषय में हम क्या कहें? क्या मूसा स्वयं लिख रहा है अथवा वह कोई अन्य व्यक्ति है जो बड़ी स्वतंत्र शैली में मूसा के अंतिम प्रवचन की परंपरा का विवरण प्रस्तुत कर रहा है? यह निश्चित है कि मूसा ने कुछ अंश लिखे, जैसे बाइबल में संकेत मिलते हैं (नि. १७:१४; २४:४, ७; ३४:२७; गि. ३३:२; व्य. ३१:६,२६)। परन्तु इसके साथ ही हम यह देखते हैं कि व्यवस्था विवरण की शैली पंचग्रंथ की अन्य पुस्तकों की शैली से इतनी भिन्न है कि कई विद्वानों के लिये यह मान्यता सरल हो जाती है कि व्यवस्था विवरण की पुस्तक एक ऐसे व्यक्ति के द्वारा लिखी गई जिसने अपने युग की शैली में मूसा के संदेश और व्यवस्था प्रस्तुत की, और उसने विषय के अनुरूप प्रथम पुरुष अथवा 'मैं' की साहित्यिक शैली का उपयोग किया। इसी दृष्टिकोण के आधार पर हम राजा संबंधी अंशों (व्य. १७:१४–२०) जैसे प्रकरणों के सम्मिलित किए जाने का स्पष्टीकरण कर सकते हैं, जिसमें लेखक के मानस में सुलेमान जैसे राजा का उदाहरण विद्यमान हो।

रूपरेखा से स्पष्ट है कि पुस्तक की सामग्री सुसंगठित है। द्वितीय प्रवचन अपने आप में पूर्ण है और यह भी प्रतीत होता है कि मूसा की कहानी को पूर्ण करने के लिये परिशिष्ट जोड़ा गया है।

रचयिता और तिथि की समस्या, ई. पू. ६२२ में योशिय्याह राजा के सुधार से सामान्यतया संबंधित की जाती है (२ रा. २२–२३)। ईस्वी सन् चौथी शताब्दी में ही येरोम ने यह सुझाव प्रस्तुत किया कि मन्दिर में पाई गई 'व्यवस्था की पुस्तक' (२ रा. २२:८), जिसके आधार पर योशिय्याह ने सुधारकार्य किया, व्यवस्था विवरण की पुस्तक थी। इस मान्यता का आधार

यह है कि जो सुधार किए गए वे व्यवस्था विवरण के नियमों के अनुरूप हैं। आकाश के ज्योतिपिंडों की पूजा में (२ रा. २३:४,११ और व्य. १७:३); अन्य मूर्तिपूजा की प्रथाओं में (२ रा. २३:६, १३,१४ और व्य. १२:२,३); यरूशलेम में आराधना को केन्द्रित करने में (२ रा. २३:८, २१–२३ और व्य. १२:४–२८; १६:५–७); देवदासी प्रथा के नष्ट करने में (२ रा. २३:७ और व्य. २३:१७–१८); ओझे भूत सिद्धि वाले, देवता, मूरतें और घिनौनी वस्तुओं के नाश करने में (२ रा. २३:२४ और व्य. १८:१०–११) में यह अनुरूपता दिखाई देती है। योशिय्याह के सुधार के आरंभ के वर्णन (२ रा. २३:१,२) की और व्यवस्था विवरण पुस्तक की शैली में भी बहुत साम्य है।

यदि यह मान लिया जाए कि ई. पू. ६२२ में योशिय्याह के राज्यकाल में मंदिर में जो पुस्तक मिली वह व्यवस्था विवरण की पुस्तक थी अथवा उसका अधिकांश था (व्य. ५:२६–२८), तब भी यह समस्या बनी रहती है कि पुस्तक कब लिखी गई। एक मान्यता यह है कि वह मनश्शे के राज्यकाल के सुधार के कुछ समय पूर्व लिखी गई (ई. पू. ६८७–६४२), जब इस्राएल के परंपरागत विश्वास पर कुठाराघात हुआ। यह सुझाव प्रस्तुत किया जाता है कि पिछले राजा अर्थात हिजकिय्याह ने जो सुधार प्रारंभ किए उनको चालू रखने के लिये एक दल विशेष किसी सुअवसर की खोज में था। उस दल ने कदाचित यह पुस्तक प्रस्तुत की।

दूसरी मान्यता यह है कि व्यवस्थाविवरण की पुस्तक नबियों और पुरोहितों की परंपराओं के बीच की कड़ी अथवा समन्वय है। इस संदर्भ में यिर्मयाह की गद्यशैली की इस पुस्तक की शैली से समानता के आधार पर तिथि निर्धारण के प्रश्न पर विचार किया जाता है। साथ ही इस तथ्य के आधार पर भी कि यिर्मयाह किसी वाचा के वचन का उल्लेख करता है जिसका उसने यहूदा के नगरों में प्रचार किया था (यि०११:१—६)।

तीसरी मान्यता यह है कि यह पुस्तक उत्तर में बसे हुए इस्राएल के लेवियों की परंपरा का अवशेष है, और कदाचित शेकेम का पवित्रस्थान इसका केन्द्र रहा हो (११:२९,३०; २७:११–२६)। होशे की पुस्तक के साथ साम्य से इस मान्यता की पुष्टि की जाती है। इसके आधार पर यह पुस्तक उत्तरी राज्य के पतन के पश्चात (ई० पू०७२१) यहूदा में लाई गई। यहूदा के नवीन वातावरण के लिये कदाचित् इसे उपयुक्त बनाया गया इसलिये उसमें एक सुसंगठितता है।

इस बात के संबंध में भी मत वैभिन्न्य है कि इस पुस्तक में किस सीमा तक मूसा की शिक्षाएं और विधि-विधान पाए जाते हैं। कुछ विद्वान यह कहते हैं

कि यद्यपि ई० पू० सातवीं सदी में इस पुस्तक का वर्तमान रूप प्रस्तुत किया गया तथापि उसकी मूल सामग्री मूसा की शिक्षा और विधि विधान से ली गई है।

व्यवस्थाविवरण के १२:४–२८; १६:५–७ में बलिदान-सेवा के लिये जो एक केन्द्रीय पवित्र स्थान निर्दिष्ट किया गया है, वह यरूशलेम की ओर संकेत करता है। परन्तु पुस्तक में कहीं भी ऐसा नहीं कहा गया है। एक पवित्र स्थान से उस स्थान का संकेत हो सकता है जो सब गोत्रों के लिये एक केन्द्रीय स्थान स्वीकार किया गया था, विशेषकर वह स्थान जहाँ वर्ष में तीन बार सब पुरुषों को परमेश्वर के सामने एकत्रित होना पड़ता था (नि० ३४:२३)। यरूशलेम से भिन्न केन्द्रीय स्थान स्वीकार करने में निर्गमन २०:२४ में दिए हुए आश्वासन "जहाँ जहाँ मैं अपने नाम का स्मरण कराऊँ वहाँ वहाँ मैं आकर तुम्हें आशिष दूँगा," के साथ किसी प्रकार का विरोध उपस्थित नहीं होता।

व्यवस्था विवरण के वर्तमान रूप का उद्गम चाहे जो रहा हो, इतना निश्चित है कि मूसा का व्यक्तित्व उसमें प्रधान है और इस परंपरा की पुष्टि करता है कि इस पुस्तक के अधिकार और सामग्री का मूलस्रोत मूसा ही है। इस पुस्तक को हम मूसा की मृत्यु के पूर्व उसके प्रवचन होने की सच्ची परंपरा के रूप में स्वीकार कर सकते हैं।

५. धर्म शिक्षा

व्यवस्था विवरण की पुस्तक की प्रमुख शिक्षा छुटकारे संबधी परमेश्वर के महान कार्यों और उनके प्रति मनुष्यों के प्रेम और भक्ति की अनुक्रिया से संबंध रखती है। इस दृष्टि से यह पुस्तक नये नियम के बहुत निकट है। परमेश्वर एक है और केवल उसी की उपासना परमेश्वर के रूप में की जानी चाहिये ६:४), आकाश ओर पृथ्वी और समस्त राष्ट्र उसके शासनाधीन हैं (४:१९), उसका तेज और महिमा इतनी महान है कि उससे उसके सामने पहुँचना भस्म हो जाने के बराबर है (५:२४–२५)। उस परमेश्वर ने अपनी अपार करुणा से इस्राएल जाति को अपनी निज प्रजा के लिये चुन लिया और मिस्र की दासत्व से उनका छुटकारा किया (७:६–८)। छुटकारे का यह महान कार्य इस्राएल की योग्यता के कारण नहीं परन्तु परमेश्वर के महान प्रेम के कारण हुआ (७:७,८)। इस छुटकारे के पश्चात् परमेश्वर ने उनके साथ एक वाचा बाँधी (७:१२)। तब हमें यह बताया जाता है कि परमेश्वर उस वाचा के प्रति विश्वास योग्य है—"तेरा परमेश्वर प्रभु ही परमेश्वर है; वह विश्वासयोग्य ईश्वर है; और जो उससे प्रेम रखते और उसकी आज्ञाएं मानते हैं, उनके साथ वह हजार पीढ़ी तक वाचा पालता और उन पर करुणा करता रहता है"

(७:६)। इस वाचा के साथ परमेश्वर अपने लोगों, वाचा के लोगों को एक देश देने की भी प्रतिज्ञा करता है (१:८; ७:१,६:५)। परन्तु इस वाचा में इस्राएल जाति के कर्तव्य भी निहित हैं:—

इस्राएल सावधान रहे कि कहीं ऐसा न हो कि अपने परमेश्वर प्रभु को भूलकर उसकी आज्ञा, नियम और विधि को मानना छोड़ दे (८:११)। परमेश्वर की आज्ञाओं, विधियों और नियमों को मानना जीवित रहना है, उनको न मानना मृत्यु है (३०:१५,१६)। अन्य देवताओं की भक्ति करना घोर पाप है (६:१४,१५), क्योंकि 'तुम्हारा परमेश्वर यहोवा भस्म करने वाली आग है; वह जल उठने वाला ईश्वर है' (४:२४) कठिन समयों में इस्राएल कुडकुड़ाने की परीक्षा में न पड़े (६:१६; ८:५)। धन संपत्ति की अवस्था में परमेश्वर को न भूल जाए (८:१२,१७,१८) अन्य देवताओं की पूजा के साथ समझौता न करे (१२:२)। अपने पूर्ण व्यक्तित्व के साथ एक ही परमेश्वर की उपासना पर बड़ा बल दिया गया है और उसे प्रधान कर्तव्य माना गया है (१२:५, १३,१४)। परमेश्वर ने इस्राएल को चुना, बचाया और उसके साथ वाचा बाँधी। इसलिये इस्राएल को सदा धन्यवाद तथा आनंदपूर्ण विनम्र आज्ञा-पालन की भावना से भरे रहना चाहिये (८:१०; ६:५)—'तू अपने परमेश्वर यहोवा से अपने सारे मन, और सारे जीव, और शक्ति के साथ प्रेम रखना'।

इस अनुग्रहकारी परमेश्वर के प्रति प्रेम और शक्ति के फलस्वरूप उसी भावना से मनुष्यों के प्रति भी वाचा के नियमों का पालन करना इस्राएल का कर्तव्य है। दासों के साथ उचित दया-व्यवहार करना चाहिये क्योंकि पर-मेश्वर की दया के कारण इस्राएली दासता से छुड़ाए गए थे (५:१५)। दीनों और कंगालों के प्रति दया का व्यवहार हो (२४:१५)। परदेशियों से प्रेम भाव रखना (१००:१९)। परदेशी, अनाथ, बालक और विधवाओं के प्रति न्याय का व्यवहार करना (२४:१७,१८) पशुओं के साथ भी दया का व्यवहार किया जाए (२५:४)। वाचा यह भी माँग करती है कि अपने व्यक्तिगत चरित्र में पूर्ण शुद्धता हो। व्यभिचार, वेश्यागमन, पुरुष गमन (२३:१७,१८), पशु से कुकर्म, बहिन आदि से कुकर्म (२७:२०,२१) इस्राएल में न सुने जाएं।

परमेश्वर की आज्ञाएं उनके मन में बनी रहें और इस्राएल का यह भी कर्तव्य है कि वह अपने बालबच्चों को समझाकर सिखाए (६:६,७,२०—२४)।

वाचा को भंग करने और उसकी आज्ञाओं का उलंघन करने पर परमेश्वर का दंड उन पर आएगा (२८:१५-६८), परन्तु आज्ञापालन से उनका कल्याण होगा और उन्हें जीवन प्राप्त होगा (३०:१५,१६)। 'सो आज से जान ले,

और अपने मन में सोच रख कि ऊपर आकाश में और नीचे पृथ्वी पर यहोवा ही परमेश्वर है; और कोई दूसरा नहीं। और तू उसकी विधियों और आज्ञाओं को जो मैं आज तुझे सुनाता हूँ मानना, इसलिये कि तेरा और तेरे पीछे तेरे वंश का भी भला हो, और जो देश तेरा परमेश्वर यहोवा तुझे देता है, उसमें तेरे दिन बहुत वरन सदा के लिये हों' (४:३९,४०)।

पन्द्रहवां अध्याय

पंचग्रंथ की संरचना

पंचग्रंथ की पुस्तकों के संबंध में निम्नलिखित तथ्य द्रष्टव्य है। पहला, जिसका पिछले पृष्ठों में उल्लेख किया जा चुका है कि इन पुस्तकों में ऐसे अनुच्छेद हैं जिनसे यह अनुमान किया जाता है कि लेखक मूसा के युग के परवर्ती युग में रहा होगा (उदा., उ. २१:३४; नि. १३:१७; लै. २०:२३; व्य. १:५), और कि यद्यपि परंपरागतरूप से मूसा इनका लेखक माना जाता है तथापि कई संदर्भों में मूसा का उल्लेख ऐसा किया गया है मानो कोई और व्यक्ति उनको लिख रहा हो। दूसरा, परमेश्वर को कभी-कभी परमेश्वर (इब्रानी में एलोहीम) कहा गया है जैसे उत्पत्ति पहले अध्याय में, और कभी-कभी प्रभु (इब्रानी में YHWH जिसे याहवे या यहोवा लिखा गया है), जैसे उत्पत्ति चौथे अध्याय में। तीसरा, कि कहीं-कहीं कुछ असंगतियाँ भी दिखाई देती हैं, जैसे उत्पत्ति १२:१५ में अब्राम की पत्नी सारै इतनी सुन्दर युवा नारी है कि फिरौन उसकी प्रशंसा करे और अपने घर में रखे, परंतु उतः १२:४ और १७:१७ में वह उस समय कम से कम ६५ वर्ष की थी। नूह ने पशुओं को अपनी नाव में रखा। उनकी संख्या में भी असंगति है (उत. ६:२० और ७:२)। पंचग्रंथ में इन तथ्यों तथा अन्य अनेक ऐसे तथ्यों के उचित स्पष्टीकरण के निमित्त उसकी साहित्यिक संरचना के संबंध में आलोचनात्मक अध्ययन किया गया है।

पंचग्रंथ की समालोचना कोई नया विषय नहीं है। चौथी शताब्दी में ही येरोम (३४०–४२० ई. स.) ने व्यवस्था विवरण की पुस्तक को और व्यवस्था की उस पुस्तक को एक ही माना जो योशिय्याह राजा के शासन काल में (२ रा. २२:८) में मंदिर में हिल्किय्याह को मिली थी। परंतु आधुनिक, वैज्ञानिक अर्थ में समालोचना का उदय १८वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ, और १९वीं शताब्दी में वह समालोचना समृद्ध हुई। पंचग्रंथ के मूल स्रोतों के संबंध में विभिन्न मान्यताएँ अथवा प्राक्कल्पनाएँ प्रस्तुत की गईं, जिनको वेलहॉसन प्राक्कल्पना में स्पष्ट रूप दिया गया। इस प्राक्कल्पना का पूरा नाम ग्रेफ-वेलहॉसन प्राक्कल्पना है। इस प्राक्कल्पना के अनुसार माना जाता है कि पंचग्रंथ के संकलन में चार लिखित स्रोत अथवा प्रलेखों का प्रयोग किया गया है, जिनको

याह्वेआत्मक (संक्षिप्त रूप J जे) (अंग्रेजी Jehovist)
एलोहीआत्मक (संक्षिप्त रूप E ई) (,, Elohist)
व्यवस्था विवरणात्मक (,, ,, D डी) (,, Deuteronomist)
पुरोहितात्मक (,, ,, P पी) (,, Priestly)
प्रलेख कहते हैं ।

इनकी तिथियाँ क्रमशः लगभग ई. पू. नवीं, आठवीं, सातवीं और पांचवीं सदी निर्धारित की गई हैं । ये सब मूसा के बहुत काल पश्चात् की तिथियाँ हैं, क्योंकि मूसा कदाचित् ई. पू. १४ वीं सदी के उत्तरार्द्ध अथवा १३वीं सदी के पूर्वार्द्ध में हुआ था । यद्यपि इस प्राक्कल्पना की सामान्य रूपरेखा साधारणतया मान्य की जाती है तथापि अभी भी उसमें गौण संशोधन होते रहते हैं। वेलहॉसन के कुछ अनुमान उन लोगों को मान्य नहीं हो सकते जो बाइबल को प्रेरणात्मक वचन मानते हैं, क्योंकि बेलहॉसन ने, वैज्ञानिक पद्धति के अनुरूप, अपनी अध्ययन प्रणाली में अति प्राकृतिक तत्व को स्थान नहीं दिया । उसकी पूर्व मान्यता यह रही कि इस्राएल के धर्म की प्रगति की विकासात्मक पद्धति से व्याख्या की जा सकती है, अर्थात वह धर्म प्रेतात्मवाद (animism) से प्रारंभ होकर बहुदेववाद एवं इष्टदेववाद से बढ़ता हुआ एकेश्वरवाद तक पहुँचा, और कि विरोध एवं समन्वय के सिद्धान्तों के आधार पर इस प्रगति का उद्घाटन किया जाना चाहिये । धर्म के पूर्वनबूवतकालीन रूप का नबियों के धर्म ने विरोध किया, जिसके फलस्वरूप एक समझौता या समन्वय निर्वाननोत्तर (post-exilic) कोटि के धर्म में हुआ । उनकी यह भी पूर्वमान्यता रही कि पुराने नियम में इतिहास की रेखाएँ विश्वसनीय नहीं हैं, क्योंकि आगामी युगों की भावनाओं एवं विचारों को आदिम अतीत में प्रक्षेपण किया गया है । इस प्रकार महान् व्यवस्था देनेवाला एक नगण्य बिंदु बन गया और बेलहॉसन की मान्यता के कारण वह आगामी पीढ़ियों के लिये संकेत-बिन्दु मात्र–एक पौराणिक कथा मात्र–रह गया । नबी लोग इब्रानियों के नैतिक धर्म तथा एकेश्वरवाद को प्रतिपादित करने वाले अग्रगामी मात्र रह गए, और मूसा की व्यवस्था निर्वासनोत्तर पुरोहितों की नवीन उद्भावना मात्र हो गई ।

बाइबलगत देशों की प्राचीन सभ्यताओं की उत्तरोतर बढ़ती हुई जानकारी के कारण बेलहॉसन प्राक्कल्पना में विस्तृत संशोधन किए गए हैं । वेलहॉसन ने अपने विचारों का प्रतिपादन इस दृष्टिकोण से किया था मानो इस्राएल जाति निर्वासनोत्तर काल तक अलग ही रहती थी । परंतु अब यह उत्तरोतर स्पष्ट होता जा रहा है कि आदि काल से ही इस्राएल जाति पर बाह्य प्रभाव पड़ते रहे हैं । उदारहणार्थ, यह सिद्ध हो चुका है कि मूसा के युग में वर्णमाला लेखन

प्रणाली ज्ञात थी, और कि इस्राएल के प्रारंभिक वातावरण में भी अच्छे विकसित धार्मिक उपासना-पंथ थे और एकेश्वरवादी विचारधारा भी विद्यमान थी। इन संशोधनों के उपरांत भी साहित्यिक विश्लेषण में वेलहॉसन प्राक्कल्पना का इतना बड़ा महत्व है कि उसका यहाँ और अधिक विवेचन आवश्यक प्रतीत होता है।

पंचग्रंथ के मूलस्रोतों का पृथककरण

पंथग्रंथ के मूलस्रोतों के उद्घाटन की कुंजी निर्गमन ६:२–३ में पाई जाती है, "और परमेश्वर ने मूसा से कहा कि मैं यहोवा हूँ। मैं सर्वशक्तिमान ईश्वर (El Shaddai) के नाम से इब्राहीम, इसहाक, और याकूब को दर्शन देता था, परन्तु यहोवा (Yahweh) के नाम से ही उन पर प्रगट न हुआ।"

धर्मशास्त्र के इस अनुच्छेद का लेखक यह मानता है कि 'यहोवा' नाम से अब्राम परिचित नहीं था क्योंकि मूसा के काल तक परमेश्वर ने यह नाम प्रकट नहीं किया था। इसलिये मूसा के पूर्व अब्राम और अन्य पितरों का वर्णन करते समय इन पदों के लेखक से यह अपेक्षा की जाएगी कि वह परमेश्वर के स्थान पर 'याहवे' शब्द का प्रयोग न करे, जो उन युगों की दिव्य प्रेरणा के अनुरूप नहीं है। इस सिद्धांत को ध्यान में रखा जाए तो निम्नलिखित अनुच्छेद उस लेखक के माने जा सकते हैं जिसने निर्गमन ६:२–३ लिखा :

उत्पत्ति १७:१—२, जहाँ परमेश्वर अब्राम से कहता हैं 'मैं सर्वशक्तिमान ईश्वर हूँ (एल शद्दाय); मेरी उपस्थिति में चल, और सिद्ध होता जा। और मैं तेरे साथ वाचा बांधूगा (इब्रानी : वाचा दूँगा) और तेरे वंश को अत्यंत ही बढ़ाऊँगा।'

उत्पत्ति ३५:११, जहाँ परमेश्वर ने याकूब को दर्शन देकर कहा, "मैं सर्वशक्तिमान ईश्वर हूँ (एल शद्दाय) : तू फूले-फले और बढ़े; और तुझ से एक जाति वरन् जातियों की एक बड़ी मंडली भी उत्पन्न होगी''''और जो देश मैंने इब्राहीम और इसहाक को दिया है, वही देश तुझे देता हूँ, और तेरे पीछे तेरे वंश को भी दूंगा।"

इसी तर्क के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उन वर्णनों में जो मूसा को याहवे नाम के प्रकट होने के पूर्व के हैं, यदि याहवे नाम आया है तो उनका मूलस्रोत निर्ग. ६ : २–३ के स्रोत से भिन्न होना चाहिये।

एक स्रोत और दूसरे स्रोत की सामग्री के पृथककरण के प्रयास में स्रोत की शैली का विचार अत्यंत महत्वपूर्ण है। उपरोक्त अनुच्छेदों में क्या हम

शैली की कुछ विशिष्टताएँ देख सकते हैं ? उनमें एक शब्द 'वाचा' है। उस शब्द का जैसा प्रयोग इन अनुच्छेदों में हुआ है वह अन्य कई अनुच्छेदों, जैसे उत. १५:१८, के प्रयोग से भिन्न है, जिनमें इब्रानी मुहाविरा है 'वाचा काटना'। फूलने फलने और बढने का विचार भी उपरोक्त अनुच्छेदों में सामान्य रूप से पाया जाता है, और उत. १७:२० में फिर आता है। सर्वशक्तिमान ईश्वर (एल शद्दाय, उत. १७:१) के में नये नाम का साम्य भी इस बात से है कि अब्राम को भी एक नया नाम इब्राहीम दिया गया (उत. १७:५), और सारै को भी नया नाम दिया गया (उत. १७:१५), और याकूब का नाम भी बदलकर इस्राएल किया गया (उत. ३५:१०)। कदाचित उत्पत्ति का पूरा १७ वाँ अध्याय एक ही लेखक की लेखनी से प्रस्तुत है क्योंकि उत. १७:५ के बाद लगातार अब्राम के बदले इब्राहीम नाम प्रयोग किया गया है और खतने की वाचा का वर्णन बड़े ब्यौरे के साथ किया गया है। यह भी द्रष्टव्य है कि पहले पद को छोड़, संपूर्ण अध्याय में पूज्य के लिये 'परमेश्वर' (एलोहीम) का प्रयोग किया गया है, और यह प्रयोग उत्पत्ति के चौथे अध्याय सदृश पंचग्रंथ के अन्य अंशों में भिन्न है, जहाँ याहवे या यहोवा शब्द का प्रयोग किया गया है। यदि हम उत. १७:१ को, जिसमें यहोवा शब्द का प्रयोग किया गया है, संपादकीय समंजन मानकर छोड़ दें, तो उत्पत्ति का १७ वां अध्याय उसी लेखक का लिखा हुआ है जिसने मानक अनुच्छेद निर्गमन ६:२–३ लिखा है। २७ पदों वाला उत्पत्ति का १७ वां अध्याय साहित्यिक शैली संबंधी तथा अन्य रोचक विचारों के विश्लेषण के लिए पर्याप्त है। ऐसे विश्लेषण में हम ठीक तिथियों में एक अभि-रुचि देखते हैं। (१७:१, १२, १७, २१, २३, २४, २५,), और ठीक निर्धा-रण में प्राय: वैधानिक रुचि देखते हैं (१७:१२–१४, २५, २६)। हमें ऐसे प्रयोग मिलते हैं, जैसे 'जातियों के समूह का मूल पिता' (१७:४, दे. ३५:११), 'अत्यंत ही फुलाऊं–फलाऊँगा' (१७:६), 'अत्यंत ही बढ़ाऊंगा' १७:२, २०), तेरे वंश में राजा उत्पन्न होंगे' (१७:६, १६, दे. २०); तेरे साथ और तेरे पश्चात् पीढ़ी पीढ़ी तक तेरे वंश के साथ भी (१७:६, ९,१९), 'अपनी अपनी पीढ़ी, (१७:७,९,१२) और 'युग युग की वाचा' (१७:७,१३,१९)। हमें इस प्रवृत्ति के भी दर्शन होते हैं कि जब किसी आज्ञा का पालन होता है तो सब निर्देशों की पुनरावृत्ति की जाती है (१७:१२,१३ और १७: २३,२७)। जो इब्रानी भाषा पढ़ सकते हैं वे देखते हैं कि १७:१ में 'मैं' शब्द का छोटा इब्रानी रूप (अनि) प्रयोग किया गया है, जब कि अनेक अन्य पदों में बड़ा रूप (अनोकी) का प्रयोग किया गया है (उदा. उत. १५:१ में)

विश्लेषण के इन परिणामों के कारण हम और भी अधिक अनुसंधान के लिये प्रस्तुत हो जाते हैं। उपरोक्त प्रकार की शैलीगत विशेषताओं को तथा अन्य विशे-

षताओं को भी जो हमारे अध्ययन के समय उपस्थित होती जाएं, ध्यान में रख कर पंचग्रंथ का पाठ करें, तो हमें ऐसे बहुत से अनुच्छेद मिलेंगे जो नमूने के अनुच्छेद अर्थात उत्पत्ति १७ के अनुरूप होंगे। इसके आधार पर यह मानना युक्तिसंगत होगा कि इन सब अनुच्छेदों का मूल स्रोत एक ही है। उत्पत्ति के पहले अध्याय में हम देखते हैं कि परमेश्वर (एलोहीम) शब्द का प्रयोग किया गया है; और ऐसे शब्द कि "उन्हें आशिष दी........फूलो फलो ओर बढ़ जाओ" उत्पत्ति १७:२० का स्मरण कराते हैं, और कि जब एक आदेश कार्य-रूप में पूरा हो जाए तो उसके सारे अंशों की पुनरावृत्ति की प्रवृत्ति भी पाई जाती है (उत. १, ११, १२, २४, २५, २६, २८); और "नर और नारी" जो उत्पति १:२७ में है वह कदाचित उसी लेखक की शैली है जिसने १७:१० में 'पुरुष' शब्द का प्रयोग किया।

उत्पत्ति ५:१—३ भी उत्पत्ति १:२७ के समान है और एक दूसरा अनुच्छेद है जिसमें 'परमेश्वर' (एलोहीम) शब्द का प्रयोग किया गया है। अध्याय ५ के शेषांश में वंशावली में ठीक अंकों के प्रयोग से भी हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि उत्पत्ति १ और १७ में एक ही लेखनी कार्य कर रही है। उत्पत्ति ५:१,२ में दूसरा नाम देने की बात भी द्रष्टव्य है (दे० उत० १७:५)। हम यह अनुमान करते हैं कि उत्पत्ति ५:१ में जो शब्द आए हैं "वंशावली यह है" ये शब्द भी एक दूसरा विशिष्ट वाक्य खंड है, और हम यह विचार करने लगते हैं कि पंचग्रंथ में जितनी तिथियाँ दी हैं, वे भी कदाचित उसी स्रोत से हैं। लेखक द्वारा प्रस्तुत तिथि-क्रम के अनुसरण से हम कुछ विचित्र बातों का स्पष्टीकरण कर सकते हैं। उदाहृणार्थ, एक विचित्र बात यह है कि इसहाक को मरने में ८० वर्ष लगे (उत. २७:२; २५:२६; २६:३४; ३५:२८)।

यदि हम निर्गमन ६:२ और क्रमिक पदों को फिर से पढ़ें तो हम यह देखेंगे कि इस अध्याय के क्रमिक पदों में ठीक पुनरावृत्ति की प्रवृत्ति (नि. ६:६,७, १३,२६), और बंशावली देने में ठीक संख्याएँ देने की प्रवृत्ति भी पाई जाती है (नि. ६:२०)। हम कुछ नई व्यंजनाएँ भी देखते हैं, उदाहरणार्थ 'खतना रहित ओंठवाले' (नि. ६:१२,३०), 'इस्राएल जाति को निकाल ले आना' (पद १३,२६,२७)। हम यह भी देखते हैं कि लेवी की वंशावली, मूसा और हारून की वंशावली, का वर्णन भी विस्तृत ब्यौरे के साथ किया गया है। इस्राएल जाति को मिस्र से निकाल ले आने की आज्ञा में हारून मूसा के साथ संबद्ध किया गया है (६:२६)।

निर्गमन १२ में मूसा और हारून को फसह के पर्व के निर्धारण में संबद्ध किया गया है। किसी आज्ञा को प्रस्तुत करने में उसी प्रकार के व्यौरेवार वर्णन

है (पद ४ क्र०), संख्याओं में वही रुचि है (पद ३, १८), और उसी प्रकार का पद विन्यास है 'तुम्हारी पीढ़ी भर' (१२:१४, १७; दे उत० १७:९) । 'मैं' के लिये इब्रानी का छोटा रूप भी (१२:१२) प्रयुक्त है ।

निर्गमन की पुस्तक के उत्तरार्द्ध के अध्ययन से पता चलेगा कि अध्याय २५–३१ अंश की सब बातों की (तंबू, संदूक एवं साथ की सामग्री) ३५–४० अध्यायों में पुनरावृत्ति हुई है । अध्याय २५–३१ में आदेश दिया गया है और ३५–४० में उसकी पूर्त्ति की गई है । ये बड़े-बड़े अंश भी उसी स्रोत से लिये गये प्रतीत होते हैं जिसका विवेचन हम ऊपर कर आए हैं । इसके साथ ही निर्गमन की पुस्तक के उत्तरार्द्ध का अनुक्रम लव्यव्यवस्था की पुस्तक में है, क्योंकि दोनों में ही लेखक की मूल रुचि धार्मिक उपासना, अर्थात विधि, बलि और हारून के पुरोहितत्व में है ।

जिस स्रोत को हम उपरोक्त विवेचन द्वारा पृथक करते आ रहे हैं, वह एक प्राक्कल्पित व्यक्ति है, जिसे हम केवल उसके लेखों के माध्यम से ही जानते हैं । उसका कोई नाम नहीं है और हम उसके संकेत के लिये कोई नाम अवश्य चाहते हैं, अतः यह प्रथा पड़ गई है कि उसे 'पुरोहितीय लेखक कहें, क्योंकि उसकी मुख्य रुचि पुरोहितों और उनके कार्यों से संबंधित है । संक्षिप्त रूप में उसे 'पी' की संज्ञा दी गई है और उसकी लिखित सामग्री को 'पी-प्रलेख' कहा जाता है ।

'पुरोहितीय लेखक' की मुख्य विशेषताओं के निर्धारण के पश्चात् हम इस आशय से समग्र पंचग्रंथ का अध्ययन कर सकते हैं कि समस्त 'पी' सामग्री को पृथक किया जाय । कुछ भागों में तो यह कार्य सरल है परन्तु कुछ में अत्यन्त कठिन है । सरल अंशों के आधार पर साहित्यिक कसौटी के पूर्णतया निर्धारण के पश्चात् ही यह संभव हो सकेगा कि उत्पति ६ से ९ अध्यायों में जलप्रलय के वर्णन जैसे जटिल भाग के विश्लेषण का प्रयास किया जाए ।

जब समस्त 'पी' सामग्री का प्रायः पूर्ण निर्धारण हो जाए, तब उसका अध्ययन एक पूर्ण इकाई के रूप में किया जाए । चाहे तो एक नोटबुक में पंचग्रंथ के अंशों को चिपका लिया जाए अथवा शुद्ध पी सामग्री को लिख लिखा जाए । इस प्रकार के अध्ययन से लेखक की सामान्य योजना और अभिप्राय का पता लग जाता है, जिसमें मनुष्यों को परमेश्वर को प्रकाशन के कई स्तर सम्मिलित दिखाई देते हैं । इनमें पहला है, सृष्टि की रचना के समय सब्त का निर्दिष्ट किया जाना (उत० २:१–४), और पशुओं पर और भोजन के लिये शाकपात पर मनुष्य के अधिकार का अधिनियम । उसके पश्चात् नूह के साथ वाचा 'बांधना

और उसका चिन्ह 'इन्द्रधनुष' है, जिसके अनुसार मनुष्य को माँस खाने कीअनुमति दी गई है इस शर्त पर कि लोहू न खाया जाए ; साथ ही मनुष्य के मांस खाने का निषेध किया गया है। इस वाचा में परमेश्वर यह प्रतिज्ञा करता है कि मानवजाति को वह जलप्रलय से फिर नष्ट न करेगा। अब्राम के साथ वाचा में नया नाम 'एल शद्दाय' प्रकट किया गया है और उस वाचा का चिन्ह खतना है, और उसकी प्रतिज्ञा कनान देश है। अंत में मूसा के साथ वाचा में परमेवर ने अपना परम पवित्र नाम यहोवा प्रकट किया और उस वाचा का चिन्ह मिस्र के दासत्व से छुटकारा हुआ व्यवस्था और पुरोहितीय उपासना की प्रतिष्ठा हुई, और उसकी प्रतिज्ञा यह है कि इस्राएल जाति उसके निज लोग हैं।

पी सामग्री को पंचग्रंथ से पृथक करने के पश्चात् शेष सामग्री की समीक्षा के लिये हम तैयार हो जाते हैं। हमें फिर यह दिखाई देता है कि विभिन्न वर्णनों में परमेश्वर के नाम की भिन्नता मूसा से पहले के वर्णनों में फिर भी विद्यमान है। यह दिखाई देता है कि कुछ अंशों में एलोहीम और कुछ में यहोवा का प्रयोग किया गया है। अतः दूसरा चरण यह है कि हम उस सामग्री को जिसमें एलोहीम का प्रयोग किया जाता है उसी रीति से पृथक करें जिस रीति से हमने पी सामग्री पृथक की। सूक्ष्म अध्ययन से विशिष्ट साहित्यिक विभिन्नताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। उदाहरणार्थ, यहोवा सामग्रियों में जिसे याह्वेआत्मक अथवा 'जे' सामग्री कहा जाता है, उस पहाड़ के लिये जहाँ मूसा को व्यवस्था दी गई, सीनै पहाड़ कहा गया है। परंतु एलोहीआत्मक सामग्री में, जिसे 'ई' कहा जाता है, उसी पहाड़ के लिये होरेब शब्द काम में आता है (नि. १९:१८–जे; नि. १७:६—ई)। जे सामग्री में पलिश्तीन के आदिवासियों को कनानी कहा गया है, परंतु ई सामग्री में उन्हें अमोरी कहा गया है (उत. १२:६–जे; उत. १५:१६–ई)। जे में मूसा के ससुर का नाम रूएल है (गि. १०:२९), परंतु ई में उसका नाम यित्रो है (नि. १८:१)। विशिष्ट पद विन्यास के भी दर्शन होते हैं। जे में 'देश जिसमें दूध और मधु की धारा बहती है' (नि. ३:८; गि. १३:२७), और 'यहोवा हमें मिस्र देश में से निकाल लाया' (नि. ३:१७) जैसे पद हैं; परंतु ई में इस्राएल को मिस्र 'देश में से निकाल लाया' पद है (नि. ३:१७)। ई का संबंध नबियों के दर्शन से जान पड़ता है, क्योंकि इब्राहीम का वर्णन नबी के रूप में किया गया है (उत. २०:७), और मूसा का भी कार्य नबी जैसा कार्य है (नि. ३:१–१२)।

अब मान लीजिए कि पुराने नियम के विद्वानों की सर्वाधिक सहमति के अनुसार जे सामग्री और ई सामग्री का पृथककरण कर लिया गया। इसके पश्चात् जैसे पी सामग्री को हमने पृथक लिख लिया या संजो लिया वैसे ही इनको भी

संजोया, तब भी यह पता चलेगा कि पंचग्रंथ का एक बहुत बड़ा अंश अध्ययन करने के लिये बचा रहेगा। यह शेषांश व्यवस्थाविवरण की पुस्तक रहता है जो अपनी अलंकारिक तथा प्रवचनात्मक शैली में अन्य प्रकार की शैली से पृथक जान पड़ता है। इसके विशिष्ट पद-प्रयोग ये हैं। 'जो देश तेरा परमेश्वर यहोवा तुझे देता है उसमें तेरे दिन बहुत हों' (व्य. ४:४०; ५:३३), 'बलवन्त हाथ और बढ़ाई हुई भुजा' (व्य. ५:१५; ११:२), 'परदेशी, अनाथ और विधवाएँ' (व्य. १४:२९; २७:१९), 'इस बात को स्मरणरखना कि तू भी मिस्र देश में दास था' (व्य. ५:१५; १५:१५), 'अपने सारे मन और अपने सारे प्राण' (व्य. ४:२९; ६:५; २६:१६)। ई के समान इसमें उस पर्वत को जिस पर मूसा को व्यवस्था दी गई थी 'होरेब' कहा गया है (व्य. १:६)। ऐसे अंश को 'डी' स्रोत कहा गया है।

इस विश्लेषण के आधार पर समस्त पंचग्रंथ की प्रायः सब सामग्री का स्पष्टीकरण हो जाता है। केवल लूत के पकड़े जाने और रक्षा का वर्णन (उत. १४) साहित्यिक सामग्री के इन चारों भागों में कहीं स्थान नहीं पाता। अतः उत्पत्ति १४ वें अध्याय को 'बेचारा अनाथ' कह देते हैं और उसके संबंध में और अधिक खोज की जा रही है।

इस प्रकार की साहित्यिक समालोचना का प्रयोग पंचग्रंथ के बाहर पुराने नियम की अन्य पुस्तकों पर भी किया गया है, और यह ज्ञात हुआ कि यहोशू की पुस्तक में भी जे, ई, डी और पी प्रकार की साहित्यिक सामग्री मिलती है। अतएव समालोचना की दृष्टि से पुराने नियम की पहली छः पुस्तकें षष्ठग्रंथ कहलाती हैं, परन्तु बाइबल के परंपरागत पुस्तक विन्यास में इस प्रकार की कोई इकाई नहीं है।

स्रोतों की तिथि

पंचग्रंथ (अथवा षष्ठग्रंथ) के विभिन्न साहित्यिक मूल स्रोतों के पृथक्करण के पश्चात् अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि इब्रानी इतिहास के समय और स्थान की दृष्टि से इनका पारस्परिक संबंध क्या है ? अनेक संभावनाएँ प्रस्तुत की जाती हैं। जैसे कि सब मूल स्रोत एक ही युग के अथवा विभिन्न युगों के हों और कि एक संपादक के अथवा एक से अधिक संपादकों के द्वारा इनको वर्तमान पंचग्रंथ में संयोजित किया गया। हो सकता है कि पंचग्रंथ का मूसा के साथ परंपरागत संबंध के अनुरूप यह संयोजन मूसा के युग में हुआ हो, अथवा पंचग्रंथ के कुछ अनुच्छेदों के अनुरूप यह संयोजन पलिश्तीन में परवर्ती युग में हुआ हो।

इस समस्या के सुलझाने की दिशा में उस समय तक कोई प्रगति नहीं हुई, जब तक कि पंचग्रंथ की विविध विधियों के अध्ययन का माध्यम न अपनाया गया। कई विधियों की एक बार आवृत्ति हुई है और कई की दो बार, क्योंकि प्रत्येक मूल स्रोत में कुछ विधियाँ विद्यमान हैं। इन अंशों के तुलनात्मक अध्ययन से रोचक परिणाम प्राप्त हुए हैं। उदाहरणार्थ, हत्या संबंधी नियम को लीजिए। वह निर्ग. २१:१-१४ में पाया जाता है (जिसमें जे और ई सामग्री मिली जुली है), गिनती ३५:६-३४ में (पी सामग्री) और व्यवस्था विवरण १६:१-१३ (डी सामग्री) में पाया जाता है। इन तीनों की तुलना करने पर हमें पता चलता है कि इनमें से पहला संक्षिप्ततम है, दूसरा विस्तृततम है, और तीसरा मध्यम विस्तार का है। व्यवस्था विवरणात्मक वर्णन में एक मनुष्य के कुल्हाड़ी से घात किए जाने का वर्णन है और ऐसा प्रतीत होता है मानों वह किसी घटना विशेष की ओर संकेत कर रहा हो। गिनती के वर्णन में हत्या के अनेक साधन हैं–लोहा, पत्थर या काठ, और उसमें बदला लेने वाले के कर्तव्य, तथा हत्यारे के शरण-नगर में रहने की अवधि के संबंध में निर्देश दिए गए हैं। यह अनुमान किया जाता है कि एक विस्तृत विधि-निर्देश यह संकेत करता है कि हत्या संबंधी साधारण नियम के व्यवहार में अधिक अनुभव हो गया है। इसलिये उपरोक्त उदाहरण में, हत्या संबंधी 'जे ई' विधि सबसे प्राचीन मानी गई, डी विधि उससे कुछ काल पश्चात की और पी विधि उसके और परवर्ती काल की, क्योंकि वह सबसे अधिक व्यौरेवार है। इसी पद्धति के आधार पर अन्य विधियों का भी अध्ययन किया जा सकता है, और इसी प्रकार के परिणाम भी प्राप्त होते हैं। अतः इन मूल स्रोतों का सापेक्षित काल क्रम यह है कि पहला 'जे ई' है, दूसरा 'डी' है, और तीसरा 'पी' है।

व्यवस्था विवरण की रचना एवं तिथि का विवेचन करते हुए ऊपर यह कहा गया था कि अनुमान किया जाता है यह पुस्तक सातवीं शताब्दी ई. पू. में लिखी गई, और कदाचित मनश्शे के राज्यकाल में, लगभग ई. पू. ६५० में लिखी गई। यदि इसको प्रायः ठीक मानकर चलें तो जो कुछ ऊपर कहा गया है उसके आधार पर 'जे' और 'ई' ६५० ई. पू. से पहले के मूल स्रोत होंगे, और 'पी' उसके बाद का। 'ई' में नबी के पद का संकेत होता है अतः यह विचार किया जाता है कि यह प्रारंभिक नबियों के काल का, अर्थात आमोस और होशे काल का होगा। इस प्रकार 'ई' की तिथि ई. पू. ७५० मानी जाएगी। विचार किया जाता है कि 'जे' 'ई' से पहले का है, क्योंकि उसमें इस्राएल जाति के एक निज लोग के रूप में अलग किए जाने की चेतना उतनी नहीं है जितनी 'ई' में। साथ ही जे की शैली 'ई' की शैली से सरल भी है। अतः इब्रानियों में प्रथम साहित्यिक जागरण काल अर्थात दाऊद और सुलेमान से आरंभ होने वाले

काल से 'जे' को संबंधित किया जाता है। परन्तु 'जे' भी कुछ जटिल है और उसमें पूर्वकाल तथा उत्तरकाल दोनों की सामग्री मिश्रित है। अतः 'जे' की तिथि लगभग ई. पू. १०००—८५० के बीच मानी जाती है।

'पी' की तिथि व्यवस्था विवरण के पश्चात् मानी जानी चाहिये। यहेजकेल के साथ इस पुस्तक की समानताएं द्रष्टव्य हैं। यहेजकेल पुर्नवासित जाति और पुर्ननिर्मित भवन के वैसे ही ब्यौरेवार वर्णन करता है जैसा 'पी' में मिलाप के तंबू और उसकी सामग्री का है (यहे. ४०—४८; नि. २५—३१)। ठीक तिथिक्रम और ब्योरेबार वर्णन में बड़ी रुचि प्रदशित की गई है। पुरोहितीय प्रकरणों, सब्त, खतना एवं व्यवस्था को उतना ही महत्व दिया गया है जितना निर्वासित और निर्वासिनोत्तर समाज में महत्व था। इस कारण 'पी' की तिथि ई. पू. ५००—४५० निर्धारित की जाती है।

पंचग्रंथ का विकास

हमने पंचग्रंथ के मूलस्रोतों और उनकी संभाव्य तिथियों के संबंध में प्राक्कल्पना का निर्माण कर लिया। इसके पश्चात् हमारे समक्ष यह समस्या उत्पन्न होती है कि उस प्रणाली की खोज करें जिससे ये स्रोत वर्तमान रूप में संयोजित हुए। इसके लिए और अधिक गहन साहित्यिक विश्लेषण की आवश्यकता है। उदाहरण लीजिए। यह देखा गया है कि निर्गमन १—५ में जो 'पी' सामग्री है वह 'जे' 'ई' सामग्री के एक क्रमिक वर्णन के संबंध में सम्पादकीय पूरक के रूप में है। परंतु जहाँ निर्गमन ६ के समान 'पी' सामग्री का अंश अधिक है, वहाँ पर 'जे' 'ई' सामग्री के कोई संपादकीय पूरक नहीं हैं। अतः यह विचार किया जाता है कि जब 'पी' लिखा जा रहा था, तो उस समय जे ई का अस्तित्व था। इस प्रणाली के आधार पर पंचग्रंथ या यों कहें कि षष्ठग्रंथ के विकास के संबंध में पुराने नियम के विद्वानों ने कुछ सामान्य निष्कर्ष निकाले हैं। विकास की प्रक्रिया में पहला चरण यह था कि जे का ई के साथ संयोजन हुआ। वह प्राक्कल्पित व्यक्ति जिसने यह संयोजन किया, जे और ई का प्राचीन संपादक (Redactor) कहलाता है और इसका संकेत RJE से किया जाता है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि उसने अपना कार्य व्यवस्था विवरण के लिखे जाने के कुछ काल पूर्व, अर्थात ई. पू. ६५० में किया। व्यवस्था विवरण की स्थापना के पश्चात् कभी व्यवस्था विवरण और 'जेई' का संयोजन हुआ। इस कार्य को करने वाले संपादक (Redactor) का दृष्टिकोण व्यवस्था विवरण का दृष्टिकोण है, इसलिये इसे व्यवस्था विवरणात्मक संपादक कहते हैं। इसका संकेत चिह्न RP है। यह अनुमान किया जाता है कि उसने अपना कार्य यरूशलेम के पतन के पूर्व किया। ऊपर बताया गया है कि 'पी' प्रलेख

का उदय निर्वासन काल में हुआ। निर्वासन या बंधुवाई के उपरांत कभी पी और पिछले संग्रह का संयोजन किया गया। उस संपादक का दृष्टिकोण पुरोहितीय था और उसे पुरोहितीय संपादक कहते हैं। उसका संकेत चिन्ह R है।

प्रलेखात्मक प्राक्कल्पना में संशोधन

विज्ञान के सिद्धांत और प्राक्कल्पनाओं का कोई अंतिम रूप नहीं होता। इसी प्रकार यद्यपि उपरोक्त प्राक्कल्पना की मूलधारणाएँ सामान्यतया स्वीकृति हैं तथापि उसे अंतिम या सिद्ध नहीं माना जा सकता। कुछ छोटी मोटी बातें अभी विवादास्पद हैं। उदाहरण के लिये, यह साधारणतया माना जाता है कि 'जे' में दो सूत्र हैं, एक प्रारंभिक और दूसरा उससे बाद का। प्रारंभिक सूत्र को जे[1] और बाद वाले को जे[2] कहा जाता है। आइसफेल्द (Eissfeldt) नामक विद्वान ने यह मान्यता प्रस्तुत की कि जे[1] एक सामान्य स्रोत है जिसमें सृष्टि की उत्पत्ति से लेकर दाऊद की मृत्यु तक का वर्णन है। इस मूलस्रोत को वह एल (L) की संज्ञा देता है (Lay स्रोत)। इस प्रकार पंचग्रंथ में वह चार के स्थान पर पाँच मूल स्रोत मानता है। इसके विपरीत फ़ाइफर (Pfeiffer) नामक विद्वान आइसफेल्द की मान्यता को उत्पत्ति की पुस्तक के आगे सामग्री के संबंध में अमान्य करता है और उत्पत्ति में जे[1] सामग्री के लिये दूसरा ही सिद्धांत प्रतिपादित करता है। उसका विचार है कि 'पी' को निकालकर उत्पत्ति १–११ और उत्पत्ति १४–३५, ३६, ३८ का मूलस्रोत दक्षिण पलिश्तीन तथा यर्दन पार का कोई अ-इस्राएली स्रोत है। वह उसे दक्षिण अथवा सीअर (एदोम का नगर) स्रोत कहता है और उसे प्रतीक 'एस' (S) से इंगित करता है। इसके अन्तरर्गत भी वह दो भाग करता है—एस[1] जो पहला स्रोत है और एस[2] जो बाद में जोड़ा गया। मार्टिन नॉथ नामक विद्वान की भी एक मान्यता है। इस मान्यता में षष्ठग्रंथ की साहित्यिक समस्या में से व्यवस्था विवरण और यहोशू की पुस्तकों को वह अलग करता है और उन्हें व्यवस्था विवरणात्मक इतिहास में रखता है, जिसमें व्यवस्था विवरण, यहोशू, न्यायियों, शमूएल और राजाओं की पुस्तकें सम्मिलित की जाती हैं।

इब्रानी इतिहास की घटनाओं के साथ षष्ठग्रंथ के विकास का संबंध भी खोज की एक दिशा स्वीकार की जाती है। सिंपसन नामक विद्वान के अनुसार जे में ई. पू. ११वीं और १२वीं सदियों की परिस्थितियों की झलक मिलती है, जब कि प्राचीन गौरवगरिमा की रक्षा के लिये प्राचीन परंपराओं को लेखबद्ध किया गया। उसका कथन है कि जब दाऊद ने यरूशलेम को अपनी राजधानी बनाने का निश्चय किया, तब यह भय हुआ कि हेब्रोन का

गौरव नष्ट हो जायेगा, इसलिए हेब्रोन के प्रति भक्ति जे[1] में दिखाई देती है और जे[1] की रचना कदाचित उस समय हुई। जे[2] में उत्तर तथा दक्षिण दोनों राज्यों की परंपराएँ संकलित हैं और उसकी रचना इस उद्देश्य से की गई होगी कि सुलेमान की मृत्यु के पश्चात् दुःखांत पतन के समय इब्रानियों की आत्मिक एकता की रक्षा हो सके। विचार किया जाता है कि जे[2] का उद्गम स्थान यरूशलेम था। अनुमान है कि 'ई' में इस्राएल की उन परंपराओं की अभिव्यक्ति है जो शेकेम के लोगों की स्मृति में थी और उन्होंने संकलित की। 'ई' को कदाचित् इसलिये लेखबद्ध किया गया कि ई. पू. ७२१ में शोमरोन के विनाश के पश्चात् जब सब कुछ नष्ट हुआ सा प्रतीत हुआ, उस समय इब्रानियों की प्रिय परंपराओं की रक्षा की जा सके। सिपसन का विचार है कि व्यवस्थाविवरण का मूल रूप उत्तर राज्य में इस समय इस उद्देश्य से आरंभ किया गया कि एक आत्मिक जागृति और सुधार संभव हो। ई. पू. ६२२ में योशिय्याह का सुधार यहूदा में इसी प्रकार का आंदोलन था, परन्तु वह व्यवस्था विवरण की पुस्तक पर प्रत्यक्ष रूप से आधारित नहीं था। उसका विचार है कि जे ई डी का एकीकरण ई. पू. ५६८–५३८ की बंधुवाई के समय पलिश्तीन में बचे यहूदी समाज का अधिकृत राष्ट्रीय इतिहास था, और उसका प्रमुख केन्द्र शेकेम था; और कि पी अर्थात पुरोहितीय प्रलेख उन लोगों का अधिकृत इतिहास था जो बंधुवाई के अंत में बाबुल से लौट आए। वर्तमान षष्ठग्रंथ में जे ई डी और पी का संयोजन किया गया जिसमें एकता की अंतिम भावना की अभिव्यक्ति होती है।

पंचग्रंथ में मूसा का स्थान

प्रलेखात्मक प्राक्कल्पना के कारण यह प्रश्न उपस्थित होता है कि पंचग्रंथ की विषय-सामग्री से मूसा का कितना संबंध है ? कुछ लोगों का विचार है कि उस सामग्री से मूसा का कोई संबंध नहीं। पी प्रलेख (निर्ग. २५–३१) में पाए जाने वाले तंबू और हारून के पुरोहितत्व संबंधी निर्देश मूसा के दिए हुए प्रस्तुत हैं। उन विद्वानों का कहना है कि यह बंधुवाई अथवा बंधुवाई के उत्तरकालीन पुरोहितों का एक 'पवित्र छल' मात्र है। इस प्रकार का विचार न केवल यहूदियों ओर ख्रिस्तियों के विश्वास की मूल मान्यताओं से असंगत है, वरन् ऐतिहाहिक संभावनाओं के विपरीत भी है। किसी भी परंपरा का सामान्य स्पष्टीकरण उस ऐतिहासिक घटना में मिलता है जिससे परंपरा का जन्म होता है। मिस्र के दासत्व से छुटकारे तथा सीनै पहाड़ पर वाचा की सुदृढ़ परंपरा के लिये मूसा जैसे मनुष्य और व्यक्तित्व की आवश्यकता थी। मूसा के लेखों की मौखिक परंपरा के और उसके द्वारा स्थापित उपासना विधियों के

माध्यम से आने वाली पीढ़ियों में मूसा की स्मृति रहेगी। इन कार्यों से अगामी पीढ़ियों में साहित्यिक प्रयासों के लिये एक आधार उपलब्ध होगा। परन्तु निश्चित रूप से निर्धारित नियम–संहिता की अपेक्षा जीवित विश्वास के केन्द्र स्वरूप मूसा की स्मृति अधिक सुरक्षित रही। यह भी स्वाभाविक है कि परमेश्वर की ओर से बोलने और वाचा का अर्थ बताने का उसका अधिकार उसके उत्तराधिकारी को सौंपा गया (दे. यहो. २४:२५–२७)। इस प्रकार मूसा की व्यवस्था में एक प्रवाहशीलता और समंजनशीलता थी और इस महान व्यवस्था देनेवाले के युग के बहुत समय पश्चात उसकी परंपराएं एवं उपासना विधान लेखबद्ध किए गए। प्रलेखात्मक प्राक्कल्पना इस तथ्य पर प्रकाश डालती है कि वह जीवित परंपरा कैसे लेखबद्ध की गई; परन्तु उस परंपरा के उद्‌गम पर प्रकाश नहीं डालती। उसके उदगम का सर्वश्रेष्ठ स्पष्टीकरण उसकी ऐतिहासिक घटना में ही है। मूसा ने बड़ी सच्चाई से परमेश्वर के महान कार्यों को प्रस्तुत किया है। इस सच्चाई पर ही पुराने नियम का विश्वास आधारित है। वह विश्वास उन महान कार्यों को लेखबद्ध करने की प्रक्रिया पर आधारित नहीं है।

एक प्रकार से इस प्रलेखात्मक प्राक्कल्पना से इब्रानी विश्वास की सप्राणता को समझने में हमें सहायता प्राप्त होती है। यदि इब्रानी विश्वास सप्राण न होता तो परंपरा के विभिन्न मूल स्रोतों को संयोजित करने की इतनी दीर्घ प्रक्रिया की, तथा लगातार संपादन तथा संशोधन की क्या आवश्यकता थी? अन्य किसी भी जाति के साहित्य में इस प्रकार की प्रक्रिया का साम्य मिलना दुर्लभ है। इसका वास्तविक कारण यही है, कि संकलित लेखों की इब्रानी लोगों के जीवित विश्वास के मान से लगातार जाँच और पुन-र्जांच की जाती थी, क्योंकि यही जीवित विश्वास का वह साधन था जिसके माध्यम से परमेश्वर ने अपने महान अभिप्रायों की पूर्ति की।

सोलहवां अध्याय

ऐतिहासिक पुस्तकें

पंचग्रंथ की पाँच पुस्तकों के पश्चात पुराने नियम की अन्य पुस्तकों का विभाजन एवं क्रम विभिन्न बाइबलों में भिन्न है। इब्रानी बाइबल में व्यवस्था या पंचग्रंथ के पश्चात् दो भाग हैं, अर्थात नबी और लेख। इब्रानी बाइबल में नबियों के अन्तर्गत यशायाह, यिर्मयाह आदि नबियों की पुस्तकों के अतिरिक्त ऐतिहासिक पुस्तकें भी सम्मिलित हैं यथा यहोशू, न्यायियों, शमूएल और राजाओं की पुस्तकें।

सप्तति अनुवाद में पंचग्रंथ के पश्चात् तीन कोटि की पुस्तकें हैं अर्थात ऐतिहासिक पुस्तकें, काव्यात्मक एवं नीति की पुस्तकें और नबियों की पुस्तकें। यह विभाजन वुल्गाता में स्वीकृत हुआ और वहाँ से अँग्रेजी और भारतीय भाषाओं के अनुवादों में आया। सप्तति अनुवाद में ऐतिहासिक पुस्तकों की संख्या अठारह है, जिनमें 'यूनानी एस्द्रस', यूदित, तोबित और मकाबी की चार पुस्तकें सम्मिलित हैं। वुल्गाता में ऐतिहासिक पुस्तकों की सूची के अंतर्गत चौदह पुस्तकें हैं। उसमें १ और २ मकाबी भी हैं। उनको मिलाकर वुल्गाता में सोलह ऐतिहासिक पुस्तकें हैं। वुल्गाता में यूदित, तोबित ओर मकाबी की दो पुस्तकें हैं, परन्तु 'युनानी एस्द्रस' नहीं है।

प्रोतेस्तंत अंग्रेजी बाइबलों में निम्नलिखित ऐतिहासिक पुस्तकें हैं; यहोशू, न्यायियों, रूत, १ और २ शमूएल, १ और २ राजा, १ और २ इतिहास, एज्रा, नहेम्याह, और एस्तेर—कुल बारह। इनका क्रम तो वुल्गाता के माध्यम से सप्तति अनुवाद से लिया गया, परन्तु विषय सूची इब्रानी बाइबल के अनु-सार है।

बाइबल की ऐतिहासिक पुस्तकें इस भावना से नहीं लिखी गईं कि घटनाओं के अभिलेख किए जाएँ अथवा महावीरों की गाथाएँ गाई जाएँ, न ही वे आधु-निक इतिहासकारों के प्रमाण एवं निर्वचन के नियमों के आधार पर लिखी गई हैं। उनका अपना विशिष्ट दृष्टिकोण है जिससे वे समय और परिवर्तन को देखते हैं। उनकी इस बात में अधिक रुचि है कि कोई राजा इस्राएल के साथ परमेश्वर की वाचा के संदर्भ में धार्मिक एवं भक्तिपूर्ण आचरण करता है अथवा

नहीं। राजा के सैनिक शौरकर्म अथवा नागरिक कार्यों में इतनी रुचि नहीं है। उनकी भावना परमेश्वर-केन्द्रित थी, क्योंकि वे ऐतिहासिक घटनाओं का कारण आर्थिक, राजनीतिक अथवा सामाजिक कारणों जैसे गौण कारणों को नहीं, वरन् 'आदि कारण' परमेश्वर को मानते थे। अतएव ये पुस्तकें इस्राएल के इतिहास की इतनी नहीं जितनी वे अपने लोगों के बीच परमेश्वर की वाचा के कामों की हैं। वे वाचा का इतिहास हैं। यद्यपि उनके लेखकों के नाम हमें ज्ञात नहीं, परन्तु इतना निश्चित है कि वे उसी आत्मा से प्रेरित हुए जिसने नबियों को प्रेरणा प्रदान की। उन्होंने मानवीय इतिहास के कथानक में परमेश्वर के कार्यों का वर्णन किया और इस रूप में उन्होंने परमेश्वर की ओर से कहा। इस प्रकार वे वास्तव में नबी थे अर्थात परमेश्वर की ओर से बोलने वाले, और इसलिये इब्रानी बाइबल में उनको जो 'पूर्व नबी' के विभाग में रखा गया है वह उचित ही है।

सत्रहवां अध्याय

यहोशू

१. शीर्षक

इस पुस्तक का नाम यहोशू पर रखा गया है। यह मूसा का उत्तराधिकारी था। पुस्तक की अधिकांश सामग्री यहोशू द्वारा इस्राएल के नेतृत्व से संबंधित है। इब्रानी बाइबल में यह पुस्तक 'पूर्व नबी' विभाग में पहिली पुस्तक है, जिससे यह संकेत मिलता है कि यहूदियों के मन में यह पुस्तक 'नबी की पुस्तक' इस अर्थ में मानी जाती है कि इसमें परमेश्वर की ओर से संदेश दिया गया है। सप्तति अनुवाद, वुल्गाता और अंग्रेजी तथा हिन्दी बाइबल में यह पुस्तक ऐतिहासिक पुस्तकों के विभाग में है। इब्रानी में यहोशू नाम आया है, सेपत्वांगिता में 'एसूस' (जो यूनानी में यीशु है), और वुल्गाता में यहोशू आया है।

२. विषय-सामग्री का सारांश

यहोशू की पुस्तक में यहोशू के नेतृत्व में प्रतिज्ञा के देश कनान की विजय, गोत्रों में विभाजन और कनान में बस जाने का वर्णन है।

३. रूपरेखा

यहोशू : प्रतिज्ञा के देश पर अधिकार

(१) तैयारी की घटनाएँ

प्रतिज्ञा के देश पर अधिकार करने के हेतु इस्राएल का नेतृत्व करने के लिये परमेश्वर यहोशू को बुलाता है।

(क) परमेश्वर का यहोशू को दायित्व सौंपना (१:१–९)।

(ख) यर्दन को पार करने की तैयारी (१:१०–२:२४): यर्दन के पूर्व के अढ़ाई गोत्रों का सहयोग के लिए वचन (१:१२–१८); यरीहो में भेदियों का भेजा जाना (२:१—२४)।

(ग) यर्दन पार उतरना (३–५:१) : गंभीर निर्देश (३:१–१३); यर्दन के पानी का थम जाना (३:१४–१७); यर्दन से

बारह पत्थर स्मारक स्वरूप उठाकर पड़ाव में रखना (४:१–५:१)।

(२) कनान पर विजय (६—१२)

(क) यरीहो का ले लिया जाना (६)

(ख) ऐ नामक स्थान में इस्राएलियों की पराजय। कारण, आकान का पाप, आकोर की तराई में आकान का पत्थर वाह किया जाना (७)।

(ग) ऐ का ले लिया जाना (८:१–२९)

(घ) एबाल पहाड़ पर वेदी का बनाया जाना और व्यवस्था का पढ़ा जाना (८:३०–३५)

(च) गिबोनियों का छल से यहोशू के साथ वाचा बांधना (९)।

(छ) लम्बे दिन के युद्ध में यहोशू अदोनीसेदेक को पराजित करता है और दक्षिणी भाग को जीतता है (१०)।

(ज) मेरोन युद्ध में उत्तरी कनान पर विजय (११:१–१५)

(झ) यहोशू की विजयों का सारांश (११:१६–१२:२४)।

(३) कमान देश का गोत्रों में बँटवारा (१३–२२)

(क) मूसा ने जो बटवारा आरंभ किया था, यहोशू को उसे पूर्ण करने की आज्ञा (१३:१–१४)।

(ख) यर्दन के पूर्वी भाग में तीन गोत्रों का भाग (१३:१५–३३)। (रूबेन, गाद और आधा मनश्शे)।

(ग) गिलगाल में यहोशू द्वारा कनान का अन्य गोत्रों में बटवारा (१४–१७): कालेब, यहूदा, एप्रैम, आधा मनश्शे, सलोफाद की बेटियाँ। शीलो में बटवारा (१८–२०): बिन्यामीन, शिमौन, जबूलून, इस्साकार, आशेर, नप्ताली, दान, यहोशू, शरण नगरों का ठहराया जाना।

(घ) लेवियों के नगर (२१)।

(च) यरदन के उस पार और उस पार के गोत्रों के संबंध का बिगड़ना क्योंकि यरदन के पूर्व वाले गोत्रों ने 'एद' नामक वेदी बनाई (२२)।

(४) यहोशू के अंतिम कार्य (२३–२४)

(क) विश्वस्त रहने के लिये इस्राएल को यहोशू का उपदेश (२३)।

(ख) शकेम में बिदाई का उपदेश और वाचा का पुर्नावृत्ति (२४ १–२८)।

(ग) यहोशू की मृत्यु और मिट्टी, यूसुफ की हड्डियों का गाड़ा जाना (२४:२९-३३)।

४. रचना और रचयिता

यहोशू की पुस्तक के रचयिता और रचना की समस्याओं का घनिष्ट संबंध है। यहोशू १५:६३ में लिखा है, "यरूशलेम के निवासी यबूसियों को यहूदी न निकाल सके; इसलिये आज के दिन तक यबूसी यहूदियों के संग यरूशलेम में रहते हैं।" जिस किसी ने यह लिखा वह अवश्य दाऊद के यरूशलेम को जीत लेने के बाद अर्थात् लगभग ई. पू. ९९५ में रहा होगा। यह घटना यहोशू के कनान में प्रवेश करने के कम से कम दो सौ वर्ष पश्चात् घटी होगी। यहोशू १० : १३ में लेखक एक मूल स्रोत का अर्थात याशार नाम पुस्तक का उल्लेख करता है, जिसमें गिबोन और अय्यालोन में यहोशू की चमत्कारिक विजय का काव्यात्मक अभिलेख है। इसका अर्थ यह है कि वह इन घटनाओं के बहुत समय बाद रहा होगा जिससे यह संभव हुआ कि वह एक अन्य पुस्तक का उपयोग कर सके, जिसकी रचना में कुछ तो समय लगा होगा। १८:९ में जिस पुस्तक का उल्लेख किया गया है उससे अध्याय १३ से २१ में प्रस्तुत गोत्रों के बटवारे की जानकारी लेखक को मिली होगी। यहोशू १५:१३–१९ के साथ न्यायियों १:१०-१५, २०; यहोशू १५:६३ के साथ न्यायियों १:११; यहोशू १७:११-१३ के साथ न्यायियों १:२७–२८; और यहोशू १६:१० के साथ न्यायियों १:२९ के साम्य से भी यह व्यंजित होता है कि दोनों पुस्तकों के लेखकों ने एक मूल स्रोत का उपयोग किया। इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि यहोशू की पुस्तक कुछ रूप में संयोजित पुस्तक है। यहोशू की पुस्तक के संबंध में हम धार्मिक लेखक की अपेक्षा धार्मिक संपादक की बात कहें तो अधिक उपयुक्त होगा।

यहोशू की संरचना के विषय में दो मान्यताएँ हैं। एक मान्यता यह है कि इस पुस्तक का संयोजन भी पंचग्रंथ की पुस्तकों के अनुरूप माना जाए, अर्थात कि उसके मूलस्रोत जे, ई, डी और पी हैं। इस मान्यता के प्रतिपादनकर्ता बाइबल की पहली छः पुस्तकों को एक भाग में रखते हैं और पंचग्रंथ के स्थान पर षष्ठग्रंथ स्वीकार करते हैं। पंचग्रंथ की रचना के संबंध में जो

विवेचन ऊपर किया गया है उसमें इस मान्यता की प्रक्रिया का स्पष्टीकरण किया गया है। इस मान्यता के अनुसार यह पुस्तक विशेष रूप से व्यवस्था विवरणात्मक संपादकों का संकलन था, जिनका संकेत चिन्ह् आर/डी (R/D) है। इन्हों ने अपना कार्य बंधुवाई के पूर्व और बंधुवाई के समय संपन्न किया। यह बात निश्चित थी कि उन्होंने इस काल से पूर्व के स्रोत, 'जे' और 'ई' का उपयोग किया।

दूसरी मान्यता नॉथ (Noth) की है। वह यह मानता है कि यहोशू की पुस्तक, इस्राएल के इतिहास का दूसरा भाग है, जो नबूवतात्मक एंव व्यवस्था-विवरणात्मक दृष्टिकोण से लिखा गया। इस मान्यता के अनुसार पहला भाग व्यवस्था विवरण की पुस्तक ही है, और अन्य भागों में न्यायियों, शमूएल और राजाओं की पुस्तकें हैं। दूसरे शब्दों में यों कहें कि इन सब पुस्तकों में मूसा से लगाकर यरूशलेम के विनाश तक एक सूत्रबद्ध इतिहास है। लेखक ने अपना लेखन कार्य बंधुवाई के समय किया। लेखक ने इन मूल स्रोतों का प्रयोग किया : (१) ई. पू. ९०० के लगभग गोत्रीय महावीरों की गाथाओं के संकलन की पुस्तक, (२) गोत्र–सीमाओं की सूचियाँ, जो ई. पू. दसवीं सदी में राजतंत्र के उदय होने के पूर्व विद्यमान थीं, और (३) ई. पू. सातवीं सदी में योशिय्याह राजा के काल से चली आती हुई नगरों की सूचियाँ। (२) और (३) के मूल स्रोतों से १३-२१ अध्याय लिये गए हैं।

जो विद्वान 'जेईडीपी' मान्यता को स्वीकार करते हैं, वे १ न्यायियों की तुलना में यहोशू की पुस्तक के ऐतिहासिक मूल्य को कम करते हैं। १ न्यायियों में कनान पर विजय सीमित रूप से और धीरे-धीरे प्राप्त की गई है। यहोशू की पुस्तक में यह बताया गया है कि दो चार आक्रमण किए गए और कनान की विजय एक नाटकीय तीव्र घटना के समान पूर्ण हो गई। इसके साथ ही जेईडीपी मान्यता के अनुसार १३–२१ अध्याय और सूचियाँ अधिकतर पी से ली गई हैं। इसके विपरीत नॉथ की मान्यता के अनुसार इन अध्यायों की सामग्री और सूचियाँ भी अधिक प्राचीन हैं।

हम यह मान सकते हैं कि यह पुस्तक किसी धार्मिक संपादक का कार्य है जिसका दृष्टिकोण व्यवस्था विवरणात्मक था और उसने प्रारंभिक राजाओं के काल के लिखित मूल स्रोतों का प्रयोग किया ? इन मूलस्रोतों में और अधिक पुरातन परंपराएं समाविष्ट थीं।

५. कुछ भौगोलिक समस्याएं

ऐ—ऐ शब्द का अर्थ खंडहर है। खोज से पता चलता है कि ई० पू० २००० से १२०० तक यह स्थान बसा हुआ नहीं था। १२००–१०५० ई०

पू० के बीच थोड़ा बहुत बस गया था। इस प्रमाण से यहोशू द्वारा ऐ के जीते जाने (यहो. ७,८) की घटना के संबंध में कठिनाई उपस्थित होती है। बाइबल में कहा गया है कि इस नगर की चहारदीवारी थी, फाटक थे और काफी बड़ी जनसंख्या थी। इस कठिनाई के फलस्वरूप यह सुझाव प्रस्तुत किया गया है कि युद्ध को चलाने के लिये इस्राएलियों को यहूदा के पठार पर एक स्थान की आवश्यकता थी। उन्होंने अपने लिये ऐ के खंडहर को ऐसा स्थान बना लिया। उनके ऐसा करने से पूर्व कनानी लोगों ने वहाँ पर उनको रोकने के लिये पड़ोसी नगरों से एक सैन्य-टुकड़ी एकत्रित कर ली थी। ऐ का राजा (यहो ८:२३) इस टुकड़ी का संचालक होगा। जब स्थान का वर्णन किया गया तो 'ऐ' शब्द का प्रयोग किया होगा और जब सैन्य-टुकड़ी का वर्णन तो 'नगर' शब्द का प्रयोग किया गया होगा। इसका दूसरा स्पष्टीकरण यह है कि इब्रानियों ने पड़ौसी नगर बेतेल का विध्वंस किया और भूल से वह ऐ के खंडहरों के साथ परंपरा में संबद्ध हो गया।

यर्दन को पार करना—लाल समुद्र के समान यर्दन को पार करना भी ऐसी चमत्कारिक घटना है जिसमें इस्राएल जाति को परमेश्वर के विशेष संरक्षण का निश्चय होता है। यह रोचक बात है कि यर्दन का पानी आदाम नगर के पास सारतान के निकट रुककर एक ढेर सा हो गया (यहो. ३:१६)। आदाम को यर्दन के पूर्व में एद-दमिए नामक स्थान माना जाता है। उस स्थान पर ऊंची चट्टानों के पास पानी के कारण ऊपर से धरती सरक कर ढेर हो जाती है। अरब के इतिहासकार नूबैरी ने यह लिखा है कि १२६७ ई० स० में इस प्रकार की धरती सरकने के कारण १६ घंटे तक यर्दन का पानी रुका रहा। १९२७ ई० स० में एक और ऐसा वर्णन है। धरती सरकने और भूचाल के कारण लगभग इक्कीस घंटे यर्दन का पानी रुका रहा। संभव है कि यहोशू द्वारा यर्दन का पार किया जाना एक प्राकृतिक घटना रही हो। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि उनके इस विश्वास को अमान्य किया जाय कि उस घटना में इस्राएलियों ने परमेश्वर की सामर्थ और संरक्षण को देखा।

यरीहो पर विजय—खुदाई से पता चला है कि यरीहो पाँच एकड़ भूमि पर बसा हुआ था। उसके चहुँ ओर दो चहार दीवारी थी। भीतरी दीवार १२ फुट चौड़ी और बाहरी छः फुट। कुछ घर दीवार से लगे हुए बने थे, जैसे राहाब का घर (यहो० २:१५)। १२ फटी दीवार कहीं कहीं टूट गई थी। ६ फुटी दीवार भी कहीं कहीं पहाड़ी पर बिखर गई थी। दीवारों की दरारों से यह प्रतीत होता है कि यरीहो के विनाश का एक कारण भूकम्प रहा होगा।

लंबे दिन का युद्ध—जब यहोशू ने गिबोन में अमोरियों की बड़ी सेना को हराया, तो वहाँ यह वर्णन है कि उस दिन आकाश के पिंडों के साथ भी आश्चर्य-

जनक बात घटी (यहो० १०:६–१४)। सूर्य और चन्द्रमा थम गए। खगोल वेत्ता कहेंगे कि यह संभव नहीं है। एक स्पष्टीकरण यह है कि थम गया शब्द का अर्थ 'चुप हो गया' भी हो सकता है, अर्थात कि मेघों के कारण गर्मी कम हो गई और यहोशू अपनी विजय पूर्ण कर सका। परन्तु इससे चंद्र के थम जाने का स्पष्टीकरण नहीं होता। संभवत: इस संबंध में यह कहना अच्छा होगा कि यह धार्मिक लेखक खगोल विद्या के अवेक्षण का वर्णन नहीं कर रहा वरन् परमेश्वर के आश्चर्यजनक संरक्षण का वर्णन कर रहा है। उस युग के सामान्य विश्वास की शैली में वह वर्णन करता है। लोग यह विश्वास करते थे कि सूर्य आकाश में गतिशील है और दिन के बढ़ जाने का अर्थ सूर्य का थम जाना माना गया है। परवर्ती काल में परमेश्वर के आश्चर्यकर्म को किसी दूसरे रूप में व्यक्त किया जाता। इस बात को ध्यान में रखते हुए, हमें यह बात बड़ी रोचक जान पड़ती है कि इस महान विजय से एक वीर काव्य की रचना 'याशार' की पुस्तक को प्रेरणा प्राप्त हुई (१०:१२,१३)। काव्य इस प्रकार की घटना की तीव्रता की अभिव्यक्ति कर घटना की पुष्टि भी करता है। इसके अतिरिक्त घटना का व्यौरा भी रोचक है। यहोशू गिलगाल से निकला। रात्रि भर (१०:९) चलकर प्रातःकाल गिबोन पहुँचा। ऐसा प्रतीत होता है कि यहोशू ने पहला आक्रमण गिबोन के पश्चिम की ओर से किया। वह पूर्णचन्द्र का दिन होगा अन्यथा 'अय्या-लोन की तराई में' चन्द्र न होता जबकि सूर्य गिबोन में था। अय्यालोन की तराई में पश्चिम की ओर शत्रु की सेना भगाई जा रही थी जिससे सूर्य और चन्द्र दोनों ही दिखाई देते होंगे। इस आश्चर्यजनक घटना का चाहे जैसा स्पष्टीकरण किया जाए, इतना निश्चित है कि वह स्मृति पर इतनी छा गई थी कि इब्रानी काव्य के प्रारंभिक संकलन में उसे परमेश्वर के अद्भुत संक्ष-रण कार्य के रूप में स्थान दिया गया।

६. धर्मशिक्षा

यहोशू की पुस्तक से यह शिक्षा मिलती है कि अपने लोगों को प्रतिज्ञा के देश पर अधिकार देने की प्रतिज्ञा के प्रति परमेश्वर सच्चा है। यहोशू को नेतृत्व के कार्य के लिये निर्देश दिए जाते हैं और उसे सहायता का आश्वासन प्राप्त होता है (यहो. १:९)। परन्तु परमेश्वर की सहायता की शर्त आज्ञापालन है। यहोशू को मूसा द्वारा दी गई व्यवस्था का पालन करना है (१:७,८) और उसका नेतृत्व परमेश्वर की सेना के अध्यक्ष के अधीन है (५:१४,१५) जिसके सामने वह नतमस्तक होता है। परमेश्वर ने नेतृत्व के कार्य के लिये बुलाया और उसके लिये योग्य तैयारी की जाती है (अ० १–५)। सब स्थानों में विजय का आश्वासन दिया जाता है, परन्तु वहाँ नहीं जहाँ पाप हो

(७:११), और पाप का दंड मिलता ही है (७.१५)। आकान के दंड से यह इंगित होता है कि धार्मिक बातों का मूल्य सर्वोपरि है (७:२५–२६)।

परमेश्वर के द्वारा चुने हुए नेता के रूप में यहोशू में स्वाभाविक साहस और समर्पण की भावना से संबंधित समस्त सद्गुण है। प्रतिज्ञा के देश में अपने लोगों को लाने का महान कार्य यीशु मसीह के महानतर कार्य के अनुरूप है, जो अधिक साहस और अधिक समर्पण की नई वाचा के लोगों के उद्धार का नेता है और जो अनंत मीरास में उन्हें ले आया (इब्र० ४:८–१०)। अतः यह उचित ही है कि यहोशू और यीशु नाम मूलतः एक ही हों। यहोशू का मूल नाम होशे (उद्धार) था। मूसा ने उसे यहोशुआ में बदला (गि० १३:१६) जिसका अर्थ है 'याहवे उद्धार है'। बाद में उसका रूप येशुआ (नहे० ८:१७) हुआ जो यीसुस या यीशु का यूनानी-लतीनी रूप है।

अठारहवां अध्याय

न्यायियों

१. शीर्षक

इस पुस्तक में जिस युग का वर्णन किया गया उस युग के इब्रानी नेतृत्व प्रणाली के आधार पर पुस्तक का नामकरण किया गया है। इब्रानी में पुस्तक का शीर्षक 'शोपटीम' है जिसका अर्थ न्यायी है। शोपर या न्यायी वह था जो मिश-पत या न्याय करता था। इवानी न्यायी शासक से भिन्न होता था। वह नबी के समान परमेश्वर की ओर से बुलाया जाता था। उसकी बुलाहट राष्ट्रीय संक्रांति का समय होता था। उस संक्रांति काल के संदर्भ में वह मुक्ति या उद्धार करने वाला होता था। वह साधारण न्याय भी करता था। उसका नेतृत्व स्वाभाविक रूप से उसके पुत्र को नहीं प्राप्त होता था। शिमशोन के समय में पलिश्ती लोग 'शासक' थे, परन्तु इस्राेलियों में न्यायी थे (न्या० १४:४)।

सप्तति अनुवाद में इब्रानी शीर्षक का यूनानी पर्याय क्रितय (Kritai) (न्यायी) का प्रयोग किया गया है, और इसी प्रकार वुल्गाता में ज्यूदिसेस है और अंग्रेजी में जजेस अर्थात न्यायी है। हिन्दी में इसका नाम 'न्यायी' है

२. विषय सामग्री का सारांश

न्यायियों की पुस्तक में यहोशू की मृत्यु से लेकर शमूएल के जन्म तक इस्राएलियों का इतिहास दिया गया है। उसमें यह बताया गया है कि बारबार इस्राएल जाति पाप में पड़ी और उसे दंड दिया गया। साथ ही यह बताया गया है कि जब लोगों ने पश्चात्ताप किया तब-तब परमेश्वर ने मुक्त करनेवाले अथवा न्यायियों को उत्पन्न किया।

३. रूपरेखा

न्यायियों—विश्वासघात, दंड, दया

(१) यहोशू की मृत्यु के उपरान्त परिस्थितियों का सिंहावलोकन (१–२)

(क) इस्राएल जाति की सीमित विजय (१)।

(ख) यहोशू के समय में ही बोकीम को चेतावनी (२:१–५)।

(ग) न्यायियों के काल का सामान्य वर्णन (२:६–३:६). इस्राएलियों का विश्वासघात; यहोवा का क्रोध उन पर भड़केगा और शत्रु उन्हें नष्ट करेंगे; जब वे यहोवा की दुहाई दें तो वह उनके लिये न्यायी ठहराता है। कनान में अन्य जातियाँ इसलिये विद्यमान हैं कि इस्राएली की विश्वस्ता का परीक्षण हो।

(२) न्यायियों के विवरण (३:७–अध्याय १२)

(क) यहूदा का ओतनीएल, इस्राएलियों को कूशत्रिशातैम से बचाता है (३:७–११)।

(ख) बिन्यामीन का एहूद, मोआब के राजा एलोन को मारकर इस्राएलियों की रक्षा करता है (३:१२–३०)।

(ग) शमगर, इस्राएलियों को पलिश्तियों से छुड़ाता है (३:३१)।

(घ) दबोरा और बाराक, सीसरा को हराते हैं, जो कनान के राजा याबीन का सेनापति था (४–५)। दबोरा का गीत (५)।

(च) पश्चिमी मनश्शेका गिदोन, मिद्यानियों और अमालेकियों को हराता है (६–८)।

(छ) गिदौन का पुत्र अबीमेलेक अपने भाइयों को घात कर शकेम का राजा बन गया (९)। एक स्थानीय आपसी युद्ध हुआ, जिसमें योताम वृक्षों की कहानी बताता है (९:७–२१)।

(ज) इस्सकार का तोला न्यायी बनता है (१०:१–२)।

(झ) गिलाद का याईर न्यायी बनता है (१०:३–५)।

(ट) गिलाद का यिप्तह, अम्मोनियों से इस्राएल को छुड़ाता है (१०:६–१२:७): दमन (१०:६–१८); यिप्तह की बुलाहट और नेतृत्व ग्रहण करना (११:१–२८); उसकी विजय और विचित्र शपथ (११:२९–४०); गोत्रीय लड़ाई शिब्बोलत पर केन्द्रित होती है (१२:१–७)।

(ठ) बेतलेहेम का निवासी इबसान न्यायी बनता है (१२:८–१०)।

(ड) एलोन जबूलूनी न्यायी बनता है (१२:११–१२)।

(ढ) पिरातोनी अब्दोन न्यायी बनता है (१२:१३–१५)

(त) दानियों के कुल के शिमशोन का पलिश्तियों के विरुद्ध वीरकर्म और वह इस्राएलियों का न्यायी बनता है (१३–१६): शिमशोन का जन्म (१३); उसके ब्याह का भोज (१४); पलिश्तियों के विरुद्ध वीरकर्म (१५) दलीला का विश्वासघात और शिमशोन की मृत्यु (१६)।

(३) ऐतिहासिक परिशिष्ट (१७–२१)

(क) दानियों का दक्षिण से उत्तर की ओर जाकर लैश को जीत कर वहाँ बसना (१७–१८): मीका द्वारा ढाली हुई मूरत और याजक (१७); मूरत का चुराया जाना और लैश का जीता जाना (१८)।

(ख) बिन्यामीनियों से युद्ध (१९–२१): गिबा में कुकर्म, उसका कारण (१९); परिणाम स्वरूप जो युद्ध हुआ उसमें बिन्यामीनी प्रायः नष्ट हो गए (२०); कुल के रूप में बिन्यामीनियों के बने रहने का उपाय (२१)।

४. संरचना, रचयिता, रचना–तिथि

न्यायियों की पुस्तक ऐसे समय लिखी गई जब लेखक यह कह सकता था 'उन दिनों में इस्राएलियों का कोई राजा न था; जिसको जो ठीक सूझ पड़ता था वही वह करता था' (२१:२५)। विषय सामग्री की समीक्षा करने से यह इंगित होता है कि यह पुस्तक एक लेखक की न होकर प्रेरणापूर्ण संपादक का कार्य है। उदाहरणार्थ, न्या. २:६, पुस्तक की प्रथम आवृत्ति की भूमिका हो सकता है, और उससे पहले के पद बाद में भूमिका को पूर्ण करने के लिये लिखे गए हों। अध्याय १७–२१ एक अलग भाग बन जाते हैं जिसमें लेखक का मुख्य विचार यह है कि इस्राएल में उस समय तक बड़ी अव्यवस्था और निरकुंशता रही जब तक राजतंत्र की स्थापना न हो गई (दे. १८:१; १९:१)।

पुस्तक के प्रमुख भाग में कुलों के नेताओं (न्यायियों) का वर्णन है, जो एक निश्चित ढांचे में है। इस ढांचे में इस्राएल का विश्वासघात, उनका दूसरी जातियों द्वारा पराजित होना, पश्चाताप और छुटकारा मिलना है। उदाहरणार्थ, लोगों ने वह किया जो प्रभु की दृष्टि में बुरा है (३:७,१:२; ४:१; ६:१; आदि) इसलिये प्रभु ने उन्हें उनके शत्रुओं के हाथ में कर दिया (३:८,१२; ४:२; ६:१); लोगों ने प्रभु की दुहाई दी और प्रभु ने उनको एक छुड़ानेवाला भेजा (३:९,१५; ६:८); शत्रु दबाया गया और देश में कुछ वर्षों के लिये शान्ति रही (३:१०–११,३०; ४:२३; ५:३१; ८:२८)। ऐसा माना जाता है कि यह ढांचा

किसी संपादक के हाथ का है, जिसका दृष्टिकोण व्यवस्था विवरणात्मक था (विशेष दे. २:६–३:६)। अप्रधान न्यायियों के संबंध में यह ढांचा नहीं मिलता अर्थात तोला, याईर, बोजान, एलोन, अब्दोन के संबंध में, और न अबीमेलेक के वर्णन में (८:३३–९:५७)। अतः यह अनुमान किया जाता है कि इस पुस्तक का एक पुराना रूप था जिसे 'न्यायियों की व्यवस्था विवरणात्मक पुस्तक' कह सकते हैं। उसमें पाँच बड़े न्यायियों के वर्णन रहे होंगे (एहूद, दबोरा–बाराक, गिदोन, यिप्तह, और शिमशोन)। इस पुस्तक का मूलस्रोत वे गाथाएं रही होंगी जो विभिन्न गोत्रों के पास सुरक्षित होंगी। कदाचित् वे गाथाएं हों जो जे और ई प्रलेखों में हों, और दबोरा का गीत हो (५) जो कदाचित् वर्णित घटना के समकालीन हो। किसी परवर्ती संपादक ने सामान्य भूमिका जोड़ दी हो (१:१–७:५)। एक और संपादक ने कदाचित अध्याय १७–२१ में वर्णित परंपरा जोड़ दी हो। यह विचार किया जाता है कि 'न्यायियों की व्यवस्था विवरणात्मक पुस्तक संभवतः ई. पू. ७ वीं सदी में योशिय्याह के सुधार (ई. पू. ६२२) के बाद लिखी गई क्योंकि वह सुधार भावात्मक दृष्टि से प्रधानतया व्यवस्था विवरणात्मक सुधार था। अन्य अंश बधुवाई के समय या बाद में जोड़े गए होंगे।

कुछ अनुच्छेदों में यहोशू की पुस्तक से साम्य है। इनका स्पष्टीकरण यह किया जाता है कि इन अनुच्छेदों का मूल-स्रोत एक ही था।

५. न्यायियों की पुस्तक में तिथिक्रम

न्यायियों की पुस्तक में प्रस्तुत न्यायियों की कालावधि, पराजय के वर्षों को (कुल १११) महान न्यायियों के समय में शान्ति के वर्षों को (कुल २२६), पाँच छोटे न्यायियों के वर्षों को (कुल ७०) और अबी मेलेक के ३ वर्षों को जोड़ने से प्राप्त हो सकती है। कुल अवधि ४१० वर्ष होती है। यह द्रष्टव्य है कि शान्ति के वर्ष ४० वर्ष की एक पीढ़ी के अनुरूप हैं, अथवा ४० के अंश हैं, अथवा गुणे हैं। केवल एक ही प्रकरण में ऐसा नहीं है। इससे यह प्रतीत होता है कि तिथिक्रम केवल संभाव्य है।

जब ये ४१० वर्ष अन्यत्र दिए हुए वर्षों में जोड़े जाते हैं तो एक ऐतिहासिक समस्या खड़ी हो जाती है। व्यवस्था विवरण १:३ में ४० वर्ष; व्य.२:१४ और यहोशू १४:१० में ७ वर्ष; १शमू. ४:१८ में ४० वर्ष; १ शमू. ७:२ में २० वर्ष; शाऊल का राज्य ४० या २० वर्ष रहा (प्रे. १३:२१, योसेपस x८, ४); १ राजा २:११ में ४० वर्ष; और १रा. ६:१ में ३ वर्ष। इन सब को जोड़ने से निर्गमन से लगाकर सुलैमान के चौथे वर्ष तक कुल ६०० या ५८० वर्ष से

होते है। परन्तु यह संख्या १ राजा ६:१ में दी हुई संख्या, अर्थात ४८० वर्ष से भिन्न है। अतः यह सुझाव दिया जाता है कि न्यायियों के काल को ४१० वर्ष से कुछ कम करना चाहिये, और वह इस प्रकार हो सकता है कि कुछ न्यायियों को अनुक्रमिक न मानकर समकालीन मानना चाहिये। निम्नलिखित तिथियाँ कदाचित सच्ची तिथियाँ मानी जा सकती हैं[१]

कूश–त्रिशातैम का आक्रमण	ई. पू.	१२०० (ओतनीएल न्यायी)
शमगर	,,	११५०
मगिद्दो का युद्ध	,,	११२५ (दबोरा और बाराक)
शिमशान	,,	११००
दानियों का प्रवास	,,	११००
गिदौन	,,	११००
अबीमेलेक	,,	१०७५
यिप्तह	,,	१०५०
अबनजर का युद्ध	,,	१०५०
शमूएल	,,	१०५०-१०२०
शाऊल	,,	१०२०-१०००

६. धर्म शिक्षा

ऊपर बताया गया है कि न्यायियों की पुस्तक की रचना एक ढांचे में ढली हुई है। इस पुस्तक की धार्मिक शिक्षा उसी ढांचे के अनुरूप है। उसमें इतिहास का एक धर्मवैज्ञानिक अर्थ प्रस्तुत होता है। इतिहास की घटनाएं प्राकृतिक और मानवीय कारणों के नहीं, वरन् परमेश्वर के लोगों के संबंध में उसकी क्रियाशीलता से घटित होती हैं। इस्राएल के पापों का दंड देने के लिये परमेश्वर पड़ोसी जातियों को साधन स्वरूप प्रयोग करता है। परमेश्वर का स्वभाव पवित्र, धार्मिक और बुद्धिमान होना है। अतः यह दंड देना उसके स्वभाव के अनुरूप है। परंतु परमेश्वर दयालु और क्षमाशील भी है। वह इस्राएल के पश्चात्ताप की दुहाई सुनता है। उसकी भलाई और सर्वशक्तिमान होना इस बात में दिखाई देता है कि वह बार बार उनका छुटकारा करता है। यद्यपि वह न्यायियों के द्वारा इस्राएलियों का छुटकारा कराता है, तथापि मूलतः

---

१. जेकब एम. मायर्स, दी इन्टरप्रीटर्स बाइबल, II ६८२.

२ पुस्तक के अंत में तिथि-क्रम सारणी में जो तिथि दी गई है उससे यह कुछ भिन्न है। लेखक की मान्यता है कि सारणी में दी हुई तिथि को मान्य करना चाहिये।

छुटकारा देने वाला वही है। छुटकारा देना मनुष्य का नहीं, परमेश्वर का काय है। न्यायी लोग उस कार्य को पूरा करते हैं जिसके लिये वे बुलाए गए, केवल इसीलिये कि परमेश्वर उन्हें प्रेरणा देता है। परमेश्वर ही प्राकृतिक शक्तियों को संगठित करता है कि दबोरा और बाराक विजय प्राप्त हो। अतः सच्चा विजयी तो परमेश्वर स्वयं है। गिदोन को आज्ञा दी गई कि वह अपनी सेना कम करे, जिससे यह स्पष्ट हो जाए कि विजय परमेश्वर की ओर से है।

न्यायियों की पुस्तक से हमें यह शिक्षा मिलती है कि परमेश्वर इतिहास का शासक है; कि संकट बहुधा उसकी ओर से दण्ड है, तथा छुटकारा उसकी दया का काम है; और इस प्रकार जीवन अनुशासन की एक पाठशाला है जिसमें हमें किसी न किसी प्रकार यह सिखाया जाता है कि परमेश्वर की आज्ञाओं का पालन करता और उसकी इच्छा की पूर्ति करना जीवन में सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात है। इस प्रकार हमें यह सिखाया जाता है कि हम पहले परमेश्वर के राज्य की खोज करें और सबसे अधिक उससे प्रेम करें।

उन्नीसवां अध्याय

रूत

१. शीर्षक और प्रामाणिक धर्मशास्त्र में स्थान

इस पुस्तक का नामकरण उसके प्रमुख पात्र, रूत के नाम पर है। वह मौआबी स्त्री थी। सब प्राचीन अनुवादों में यही नाम पाया जाता है। 'रूत' नाम कदाचित रेउत का छोटा रूप है, जिसका अर्थ 'रूप' या 'सौन्दर्य' है अथवा वह रीउत का छोटा रूप है, जिसका अर्थ 'सखी' है। पेशित्ता[1] (Peshitta) में रीउत नाम आया है।

इब्रानी बाइबल में रूत की पुस्तक 'लेख-भाग' में सम्मिलित की गई है। पांच पर्व-कुंडलों में से यह पहला या दूसरा है। ये पर्व-कुंडल (Megillot) यहूदी पर्वों पर अनुष्ठान पद्धति के लिये काम में लाए जाते थे। श्रेष्ठगीत फसह पर, रूत पेन्तेकुस्त पर, विलापगीत विलाप दिवस पर, सभोपदेशक तंबू के पर्व पर और एस्तेर पुरीम पर्व पर। अनुष्ठान पद्धति में उपयोग के कारण कदाचित रूत इब्रानी बाइबल में लेख-भाग में सम्मिलित है। योसेपस और अन्य लेखक यह इंगित करते हैं कि इस पुस्तक को प्रारंभ में न्यायियों के पश्चात् ही स्थान दिया गया था। सप्तति अनुवाद और वुलगाता में उसका यही स्थान है।

२. विषय सामग्री का सारांश

रूत की पुस्तक में एक मोआबी विधवा रूत की कथा है, कि वह कैसे प्रथानुसार दायित्व से कहीं अधिक अपनी सास नाओमी के प्रति भक्त रही, और कि कैसे उसने स्वयं को इब्रानी लोगों के जीवन से एक किया और उसका विश्वास स्वीकार किया, और कि कैसे उसका एक संपन्न विवाह हुआ और वह दाऊद की पूर्वज हुई।

३. रूपरेखा

रूत : विश्वस्तता और भक्ति की कथा

(१) मोआब में रूत की विश्वस्तता (१ : १–१८)

---

१ प्राचीन सूरियानी अनुवाद

(क) परिस्थितियों की पृष्ठभूमि (१ : १–५) : एलीमेलेक और नाओमी का बेतलेहेम में अकाल के कारण मोआब जाना; उनके पुत्र महलोन और किल्योन का मोआबी स्त्रियों से विवाह; परिवार के पुरुषों की मृत्यु; नाओमी बेतलेहेम को लौटना चाहती है।

(ख) रूत का महत्वपूर्ण निर्णय : (१:१६–१८) : सास से कहती है, 'जहाँ तू जाए, उधर मैं भी जाऊँगी. . .तेरा परमेश्वर मेरा परमेश्वर होगा'।

२. रूत की भक्ति और परिश्रम से बोअज़ आकर्षित होता है (१ : १९–२ : २३)

(क) नाओमी और रूत बेतलेहेम को कटनी के समय लौटती हैं (१ : १९–२२)।

(ख) रूत बोअज़ के खेत में सीला बीनती है (२ : १–७)।

(ग) बोअज उसके प्रति दया भाव दिखाता है (२: ८–१६)

(घ) इस समाचार से नाओमी हर्षित होती है (२ : १७–२३)।

३. रूत का बोअज़ से विवाह (३–४)।

(क) नाओमी की योजना (३ : १–५)।

(ख) नाओमी की आज्ञा का पालन कर रूत बोअज़ को भूमि छुड़ानेवाले कुटुम्बी के रूप में पाने का प्रयत्न करती है (३ : ६–१८)।

(ग) नगर के फाटक पर (जो न्यायालय समझा जाता था) निकटतम छुड़ानेवाला कुटुम्बी अपना अधिकार बोअज़ के पक्ष में छोड़ देता है (४ : १–१२)।

(घ) बोअज़ रूत से विवाह करता है। ओबेद की उत्पत्ति। ओबेद दाऊद का दादा है (४ : १३–२२)

४. संरचना, रचयिता, और रचना-तिथि

जर्मन नाट्यकार गेटे ने रूत की पुस्तक के सम्बन्ध में यह कहा कि 'वह महाकाव्य एवं चित्रात्मक कथाकाव्य की सुन्दरतम कृति है।' यह पुस्तक एक पूर्ण इकाई है।। इसका एक ही लेखक होना चाहिये, यद्यपि संभवतः ४ : १८–२२ में पाई जाने वाली वंशावली, और ४ : ७ का स्पष्टीकरण कदाचित परवर्ती संपादक ने जोड़ा हो। इस पुस्तक का लेखक हमें ज्ञात नहीं। तालमुद की परंपरा है कि इसका लेखक शमूएल था, परंतु इसे स्वीकार करना संभव नहीं, क्योंकि कथा की चरम सीमा पर दाऊद का उल्लेख है।

लेखन तिथि के संबंध में भी मत-वैभिन्न है। क्या लेखक बंधुवाई के पूर्व था अथवा पश्चात्? जो यह मानते हैं कि यह बंधुवाई के पश्चात् लिखी गई, वे इस बात का सहारा लेते हैं कि यह पुस्तक इब्रानी बाइबल में लेखों (ketubim) के साथ सम्मिलित है, जो प्रामाणिक धर्मशास्त्र के अंत में सम्मिलित किए गए, और कि ४ : ७ में एक ऐसी प्रथा का उल्लेख है जो व्य. २४ : ५–१० में है (जते निकालने के द्वारा साक्षी) और जो उस समय प्रचलित नहीं थी परंतु ई. पू. ६२२ में अर्थात योशिय्याह के व्यवस ा विवरणात्मक सुधार के समय प्रचलित थी। साथ ही, पुस्तक के अंत में दिए हुए तिथि-क्रम (४ : १८–२२) का साम्य १ इति. २ : ६–१६ से है, जो कदाचित बंधुवाई के पश्चात का है।

लेखन तिथि के सम्बन्ध में दूसरी मान्यता यह है कि यह पुस्तक बंधुवाई के पूर्व लिखी गई। इसमें भाषा की ओर ध्यान आकृष्ट करते हैं। इसकी भाषा सुन्दरतम प्राचीन गद्य है और उसमें कुछ प्रचलित वाक्य रचना है। अंत में दी हुई वंशावली बाद में जोड़ी गई होगी जूते खोलने से साक्षी की प्रथा भी बाद में जोड़ी गई होगी क्योंकि कथा में उसका कोई महत्व नहीं है। यह भी स्पष्ट है कि लेखक इसे एक प्रथा मानता है, नियम नहीं। यदि यह पुस्तक बंधुवाई के पश्चात लिखी गई होगी तो ऐसी साक्षी प्रथा न होकर विधि बन जाती क्योंकि बंधुवाई के पश्चात लेखकों की प्रवृत्ति विधि प्रधान हो गई थी। सब बातों का विचार कर यह उपयुक्त प्रतीत होता है कि इसकी शैली की प्राचीन विशुद्धता के कारण यह माना जाए कि इसका लेखक राजतंत्र के प्रारंभिक काल में रहा होगा, जब कि इब्रानी साहित्य में (classical) रीतिकालीन साहित्य की अन्य पुस्तकें लिखी गईं।

क्या रूत की कथा यथार्थ है अथवा कल्पित? प्राचीन युग के जीवन और दाऊद जैसे ऐतिहासिक व्यक्ति से इस कथा के सूत्र ऐसे संबंधित हैं कि यह कुछ विचित्र जान पड़ता है कि इसकी यथार्थता के संबंध में शंका की जाए। परंतु इस प्रश्न के विषय भी मत वैभिन्य है। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि यह कथा एक दृष्टांत मात्र है जो किसी उदारमना यहूदी ने एज्रा और नहेम्याह के समय मिश्रित विवाहों के निषध की संकीर्ण भावना के विरोधमें लिखा। यदि यह माना जाए तो नाओमी बंधुवाई से लौटने वालों का प्रतीक है, जो विदेशियों को केवल काम के लिये ही स्वीकार करते थे; रूत उस विदेशी का प्रतीक है जो निर्वाचित लोगों में सम्मिलित किए जाने के योग्य है; बोअज़ उस देसी इब्रानियों का प्रतीक है जो बंधुवाई में नहीं गए और विदेशियों के प्रति जिनकी भावना सहृदयत पूर्ण है। दूसरी मान्यता यह है कि प्राचीन युग में बेतलेहेम में उत्पादन पंथ था (fertility-cult), अतः रूत की कथा में

पश्चिमी आसिया की ताम्मुज दंतकथा का रूपांतर मात्र है। इस मान्यता के अनुसार मनभावनी नाओमी (नाओमी का अर्थ मन भावनी है) उस बालिका द्वारा सांत्वना प्राप्त करती है जो उसके मृत पुत्र का स्थान लेती है। ऐसी मान्यताओं में सुकुमार कल्पना कूट-कूट कर भरी रहती है। इन से तो यह कहीं अच्छा है कि कथा को सीधी यथार्थ कथा माना जाए––एक यथार्थ कथा जिसमें दाऊद के एक पूर्वज का वर्णन है। इसे यथार्थ मानने से बाद भी इसके दृष्टांत-रूप में प्रयोग में कोई बाधा उपस्थित नहीं होती।

५. धर्म शिक्षा

रूत की पुस्तकों में दैन्य वतावरण में उच्च सद्गुणों का चित्रण किया गया है। उसमें विश्वास के एक साहसिक कार्य और उस विश्वास के पुरस्कार का वर्णन है। अपनी सास के प्रति रूत की भक्ति मानवी संबंधों में उदात्त भावना है। नाओमी के साथ सदा रहने के लिये रूत का अपने लोगों को छोड़ना विश्वास का साहसिक कार्य है, विशेषकर उस स्थिति में जब इस कार्य में स्व-धर्म को छोड़ना निहित है। इस प्रकार रूत सच्चे विश्वास के प्रति धर्म परि-वर्तन करने का प्रतिरूप है। वह ऐसा व्यक्तित्व है जो एक बार ही सदा के लिये अपने आप को परमेश्वर को सौंप देता है, "तेरे लोग मेरे लोग होंगे और तेरा परमेश्वर मेरा परमेश्वर होगा . . . . . यदि मृत्यु छोड़ किसी कारण मैं तुझ से अलग होऊँ, तो प्रभु मुझ से वैसा ही वरन् उससे भी अधिक करे"। रूत आज्ञा-पालन, नम्रता, परिश्रम और संतोष के मूल सदगुणों का आदर्श है, और बोअज़ के चरित्र में दया और उदारता का चित्रण किया गया है। इस पुस्तक से यह शिक्षा भी मिलती है कि विश्वास का अपना पुरस्कार है, क्योंकि रूत न केवल पारिवारिक प्रेम की पूर्णता का अनुभव करती है, वरन परमेश्वर की योजना में वह संसार के सर्वश्रेष्ठ वंश में प्रवेश करती है, अर्थात दाऊद का वंश और परि-णाम स्वरूप दाऊद के पुत्र के वंश में।

बीसवां अध्याय

१ और २ शमूएल

१. शीर्षक

तालमुद, ओरिगेन, यूसेब और येरोम के उल्लेखों से पता चलता है कि पहले ये दोनों पुस्तकें एक ही थीं। इस बात से इसकी पुष्टि होती है कि मसोरेतिक पाठ में २ शमूएल के अंत में पाद टिप्पणी है जिसमें कहा गया है, 'शमूएल की पुस्तकों की पद संख्या १५०६ है .. .... उसका मध्य बिन्दु वहाँ आता है जहाँ लिखा है, ''स्त्री के घर में तैयार किया हुआ बछड़ा था'। यह उद्धरण १ शमू. २८ : २४ से है। यह उसी समय मध्य बिन्दु हो सकता है जब दोनों पुस्तकें एक हों।

सप्तति अनुवाद के समय ये दो भागों में थी। संभवत: यह इसलिये था कि कदाचित यूनानी अनुवाद के लिये दो कुंडलपत्रों की आवश्यकता हुई। इब्रानी में स्वर लुप्त रहते हैं इसलिये वह यूनानी की अपेक्षा कम स्थान लेती है। सप्तति अनुवाद में विभाजित पुस्तक को १ और २ राज्य कहा गया है। उसके पश्चात ही राजाओं की पुस्तक भी विभाजित थी और वह ३ और ४ राज्य कहा गया है। वुल्गाता में सप्तति अनुवाद के विभाजनों को स्वीकार किया गया परंतु शीर्षकों को 'राज्यों' के बदले 'राजा' नाम दिया गया। १५१६ में वेनिस नगर में प्रकाशित बाम्बेरी की रब्बूनी बाइबल में इस विभाजन को स्थान मिला, परंतु साथ ही इब्रानी का शीर्षक शमूएल भी रखा गया। इस छपी हुई इब्रानी बाइबल में १ और २ शमूएल दो पुस्तकें हैं। उनका नामकरण इन पुस्तकों के प्रारंभिक वर्णनों के प्रमुख पात्र शमूएल के नाम पर किया गया है।

२. विषय सामग्री का सारांश

१ शमूएल में इस कथा का वर्णन है कि नबी और न्यायी शमूएल के माध्यम से इस्राएल में राजतंत्र स्थापित हुआ, और कि पहला राजा शाऊल का दाऊद के पक्ष में परित्याग किया गया क्योंकि उसने शमूएल के मार्गदर्शन का उल्लंघन किया।

१ शमूएल में दाऊद राजा का वर्णन है, पहले हेब्रोन में तत्पश्चात् यरूशलेम में।

३. रूपरेखा

१ शमूएल—राजतंत्र की स्थापना

१. अंतिम न्यायी—एली और शमूएल (१–७)

(क) शमूएल का जन्म और बुलाहट (१–३): प्रार्थना से मिला बालक शमूएल (१); उसके जन्म के कारण हन्ना का गीत (२:१–११); एली के घराने के पाप के कारण दंड की भविष्यवाणी (२:१२–३६); बालक शमूएल को परमेश्वर बुलाता है (३)।

(ख) पवित्र संदूक की बंधुवाई (४–६) : पलिश्ती लोग संदूक को छीन कर अपने नगरों में ले जाते हैं, जहाँ से उसे किर्यत्यारीम ले जाया गया।

(ग) एबेनेज़ेर में शमूएल की विजय और उसका न्यायी काल (७)।

२. राजतंत्र की स्थापना—शमूएल और शाऊल (८–१२)

(क) इस्राएली शमूएल से राजा की मांग करते हैं (८)।

(ख) शाऊल का अभिषेक और राजा चुना जाना (९–११) : शाऊल का अभिषेक और भविष्यवाणी के साथ उसका पकड़ा जाना (९:१०; १६); मिस्पा में चिट्ठियां डालकर शाऊल का चुना जाना और स्वागत (१०:१७-२७); शाऊल अम्मोनियों से गिलाद के जावेश को छीनता है और गिलगाल में शाऊल का राजा के रूप में समर्थन (११)।

(ग) शमूएल का उपदेश तथा न्यायी पद का त्याग (१२)।

३. शाऊल का राज्य–दाऊद का निष्कासन (१३–३१)

(क) पलिश्तियों के विरुद्ध शाऊल का युद्ध (१३-१४) : शाऊल की पहले विजय (१३ : १–४); उसका अनियमित होमबलि चढ़ाना (१३ : ५–१५) इस्राएलियों की कठिन परिस्थिति (१३:१५–२३); मिकमाश की घाटी में योनातान की विजय (१४)।

(ख) अमालेकियों के विरुद्ध शाऊल का युद्ध, आज्ञाउलंघन के कारण शमूएल साऊल का परित्याग करता है (१५)।

(ग) दाऊद का उदय (१६) : शमूएल बेतलेहेम में दाऊद को चुनता और उसका अभिषेक करता है (१६:१–१३); शाऊल के सामने बीन बजाने के लिये दाऊद का चुनाव (१६ : १४–२३)।

(घ) एला की घाटी में दाऊद की गोलियत पर विजय (१७)।

(च) दाऊद पर शाऊल की कोपदृष्टि (१८–२०) : दाऊद की योनातन से मित्रता, शाऊल की ईर्ष्या (१८– १–१६) ; दाऊद का शाऊल की पुत्री मीकल से विवाह, फिर भी दाऊद को मार डालने की चेष्टा, शाऊल की भविष्यवाणी (१८:१७–१९:२४) एक दूसरे से वियोग के पूर्व दाऊद और योनातन की प्रतिज्ञा (२०)।

(छ) दाऊद का भागते फिरना (२१–२७) : नोब के याजक दाऊद की सहायता करते हैं (२१:१–९); गत के राजा के सामने पागलपन (२१:१०–१५); अदुल्लाम की गुफा, मोआब, और हेरेत के वन में भागना (२१:१६–२२:५); शाऊल ने नोब के याजकों का घात किया, परंतु अब्यातार दाऊद के पास निकल जाता है (२२·६–२३); दाऊद कीला नगर को बचाता है, तब जीप, माओन, एनगदी के वनों में भागना (२३); एनगदी में शाऊल को न मारना (२४); शमूएल की मृत्यु (२५:१); कर्मेल के दुष्ट नाबाल की मृत्यु, उसकी विधवा अबीगेल के साथ दाऊद का विवाह (२५:२–४४); जीप में दाऊद शाऊल की हत्या नहीं करता (२६); गत के आकीश की शरण जाकर दाऊद सिकलग में रहता है (२७)।

(ज) शाऊल का अंतिम युद्ध (२८–३१) : पलिश्तियों के डर के मारे एन्दोर की एक भूत सिद्धि करने वाली के माध्यम से शामूएल के प्रेत को बुलवाया (२८); द ऊद को लड़ाई में नहीं जाने दिया गया, परंतु वह अमालेकियों के आक्रमण का बिफल करता है (२९–३०); गिलबोआ पहाड़ पर शाऊद और उसके पुत्रों का मारा जाना (३१)।

२ शमूएल—दाऊद का राज्य

(१) दाऊद, यहूदा का राजा (१–)

(क) दाऊद गिलबोआ की लड़ाई के विषय सुनता है और शाऊल तथा योनातन के लिये शोक गीत की रचना करता है (१)।

(ख) हेब्रोन में दाऊद का यहूदा के राजा के पद पर अभिषक, और अब्नेर द्वारा शाऊल का पुत्र ईशबोशेत इस्राएल का राजा बनाया जाता है (२:१–११)।

(ग) दाऊद और ईशबोशेत के दलों में युद्ध (२:१२–३:१)। ईश-बोशेत ने अब्नेर पर दोष लगाया, इसलिये अब्नेर दाऊद के पास जाकर ईशबोशेत के विरुद्ध विद्रोह की योजना करता है, परंतु योआब द्वारा मार डाला जाता है—दाऊद का विलाप (३:२–३९)।

(घ) ईशबोशेत के घात किए जाने पर दाउद घातकों को मार डालता है (४)

(२) इस्राएल और यहूदा का राजा दाऊद (५–२४)

(क) वाचा के द्वारा दाऊद इस्राएल का राजा बनाया जाता है (५ : १–५)

(ख) दाऊद राष्ट्रीय एकता और विशाल राज्य की स्थापना करता है (५ : ६–१० : १९) : वह यरूशलेम पर विजय प्राप्त करता है और उसे अपनी राजधानी बनाता है (५ : ६–१०); सोर के राजा हीराम से भेंट, और पत्नियां, पलिश्तियों पर विजय (५ : ११-२५); पवित्र सन्दूक का यरूशलेम लाया जाना (६); मंदिर बनाने की उसकी इच्छा नातान नबी के द्वारा स्थागित, फिर भी प्रभु यह प्रतिज्ञा करते हैं कि दाऊद की राजगद्दी का अन्त न होगा (८); पलिश्ती, मोआब, सोवा, हमात, और एदोम राज्यों पर विजय, दाऊद के कर्मचारी (८); योनातन के लंगड़े पुत्र मपीबोशेत पर कृपादृष्टि (९); अम्मोनियों की अभक्ति के कारण अम्मोनियों और उनके साथी सूरियानी की पराजय (१०)।

(ग) दाऊद का पाप और पश्चाताप (११–१२ : २५) : बतशेबा के साथ व्यभिचार और ऊरिय्याह को मरवा डालना (११); नातान का दृष्टान्त के द्वारा दाऊद को दोषी ठहराना; दाऊद का पश्चाताप परंतु बच्चे का मरना (१२ : १–२३); बतशेवा से सुलेमान का जन्म (१२ : २४–२५)।

(घ) अम्नोनियों पर पूर्ण विजय (१२ : २६–३१)।

(च) दाऊद के पुत्रों के कुकर्म (१३) : अम्मोन का अपनी बहिन के साथ कुकर्म और अबशालोम का अम्मोन को घात करना और गशूर भाग जाना ।

(छ) अबशालोम का राजद्रोह (१४–१९) : अनिच्छा से दाऊद अबशालोम के लौटने की अनुमति देता है (१४); अबशालोम की लोकप्रियता और हेब्रोन में राजा बन जाना; दाऊद का यरूशलेम से भागना (१५–१६ : १४) अबशालोम हूशै का परामर्श मानता है, अहीतोपेल का नहीं और गिलाद में पराजित होकर मारा जाता है–दाऊद का विलाप (१६ : १५–१९ : ८) ।

(ज) दाऊद का यरूशलेम लौटना और शांति स्थापित करना (१९ : ९–२० : २६) : शिमी और मपीबोशेत के साथ समझौता, बर्जिल्लै की दया (१९ : ९–३९); राजा के लौटने से यहूदा के लोगों का रूठना (१९ : ४०–४३); शेबा का राजद्रोह दबाया जाता है (२० : १–२२); दाऊद के पदाधिकारियों का उल्लेख (२० : २३–२६) ।

(३) दाऊद के शासन काल की विविध बातें (२१–२४)

(क) गिबोनियों का पलटा लिया जाना (२१ : १–१४) ।

(ख) पलिश्तीन के साथ युद्ध में दाऊद के सेवकों की वीरता (२१ : १५–२२) ।

(ग) धन्यवाद का भजन (२२), (देखिये भजन १८) ।

(घ) दाऊद के अंतिम वचन (२३ : १–७) ।

(च) दाऊद के वीर पुरुष (२३ : ८–३९)

(छ) प्रजा की गिनती करना और वेदी बनाना (२४) : प्रजा की गणना के पश्चात् विपत्तियां, अरौना नामक यबूसी की खलिहान के पास मरी का रोका जाना । दाऊद उस खलिहान को वेदी के लिए मोल लेता है ।

४. संरचना, रचयिता, रचना-तिथि

शमूएल की पुस्तक के लेखक ने अवश्य मूलस्रोतों का प्रयोग किया, क्योंकि २ शमू. १ : १८ में याशार नाम पुस्तक का उल्लेख है । लेखक इस बात के प्रति जागरूक है कि जिन घटनाओं का वह वर्णन कर रहा है, वे कुछ समय पूर्व घटित हो चुकी हैं, क्योंकि वह कुछ बातों के 'आज तक बने रहने' का उल्लेख

करता है (१ शमू.२७ : ६; ३० : २५;२ शमू. ६ : ८) । आलोचनात्मक विश्लेषण के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि विषय सामग्री भिन्न-भिन्न मूलस्रोतों से ली गई है और कि लेखक पूर्ण समन्वय नहीं कर पाया है । उदाहरणार्थ, १ शमू. १६ : १४–२३ में दाऊद शाऊल का वीणावादक और हथियार ढोनेवाला बनाया गया, परंतु अगले अध्याय में (१७ : ५५) में दाऊद शाऊल तथा उसके सेनापति अब्नेर के लिये अपरिचित व्यक्ति था । राजतंत्र के आरंभ होने के भी दो वर्णन हैं । एक में शमूएल राजा बनाने की बात के पक्ष में है (१ शमू. ९), और दूसरा जिसमें बड़ी अनिच्छा से राजा बनाने के लिये सहमत होता है (१ शमू. ८) । शाऊल को दो बार राजा बनाने के लिये अस्वीकार किया जाता है (१ शमू. १३ : १४ और १५ : २६) ।

पंचग्रंथ में जिस रीति से मूलस्रोतों का विश्लेषण किया गया है, उस प्रकार का प्रयास इन पुस्तकों के संबंध में सफल नहीं हुआ । फिर भी यह सामान्यतया माना जाता है कि १ शमू. ८–१२ में एक 'पूर्व मूलस्रोत' है और एक 'उत्तर मूलस्रोत' । आइसफेल्द (Eissfeldt) नामक विद्वान तीन मूलस्रोत मानते हैं : एल (L), जे (J) और ई (E) । बुड्डे (Budde) दो मानते है, जे और ई । बुड्डे की यह मान्यता, कि इस पुस्तक के जे और ई मूलस्रोत पंचग्रंथ के जे और ई के तारतम्य में हैं, सामान्यतया स्वीकृत नहीं है । यह अलबत्ता स्वीकार किया जाता है कि 'पूर्व मूलस्रोत' और 'उत्तर मूलस्रोत' का 'जे' और ई से कुछ साम्य अवश्य है । शेफर्स (Schafers) दो मूलस्रोतों का निदर्शन इस प्रकार करता है कि एक मूलस्रोत एम (मिस्पा) जिसमें १ शमू. ८ और १० : १७–२७ हैं, और दूसरा मूलस्रोत जो (गिलगाल) है जिसमें १ शमू. ९ आर १० : १–१६ हैं ।

यद्यपि मूलस्रोतों के विश्लेषण के संबंध में सहमति नहीं है, परंतु यह साधारणतः माना जाता है कि इन पुस्तकों में निम्नांकित परंपराओं का समन्वय हुआ है :

(१) वह परंपरा जिसमें शमूएल प्रधान पात्र है (यह 'उत्तर मूलस्रोत' का आधार है) ।
(२) वह परंपरा जिसमें शाऊल नायक है (यह पूर्व मूलस्रोत का आधार है ।)
(३) वह परंपरा जिसमें दाऊद नायक है ।
(४) पवित्र संदूक के इतिहास और चमत्कारिक शक्ति की परंपरा ।
(५) दाऊद के परिवार और दरबारी जीवन संबंधी तत्कालीन प्रलेख ।
(६) याशार की पुस्तक और अन्य काव्य ग्रन्थ ।

१ और २ शमूएल की अधिकांश सामग्री के संकलनकर्ता लेखक की तिथि उन घटनाओं के पश्चात होना चाहिए जिनका वर्णन वह पुस्तक में कर रहा है। कितने काल पश्चात् वह लिख रहा है यही मुख्य प्रश्न है। १ शमू. २७ : ३ में लिखा है 'इस कारण से सिकलग आज के दिन तक यहूदा के राजाओं का बना हुआ है।' इससे यह इंगित होता है कि लेखक ई. पू. ९२२ में जो राज्यों के विभाजन की घटना हुई उसके पश्चात रहा होगा। २ शमू. १३ : १८ में लिखा है, 'वह तो रंगबिरंगी कुर्ती पहिने थी; क्योंकि जो राजकुमारियां कुंवारी रहती थीं वे ऐसे ही वस्त्र पहिनती थीं।' इससे यह प्रतीत होता है कि लेखक कई पीढ़ियों पश्चात् लिख रहा है। फिर भी व्यवस्था विवरणात्मक झलक बहुत कम है (दे. १ शमू. १४ : ४७–५१; २ शमू. ८; २० : २३–२६) अतः इन पुस्तकों की तिथि व्यवस्थाविवरण काल के पूर्व, कदाचित् ई. पू. सातवीं सदी के प्रारंभ में मानी जाती है (लगभग ई. पू. ६७५)।

५. धर्म शिक्षा

लेखक यह शिक्षा देना चाहता है कि इस्राएल के इतिहास की समस्त घटनाओं में परमेश्वर का हाथ है। परमेश्वर अपनी प्रतिज्ञा और वाचा के अनुरूप इस्राएल का जीवन निर्माण करता है। पात्रों का यथार्थवादी चित्रण किया गया है और वे पात्र उन सब सद्‌गुण और अवगुणों को व्यक्त करते हैं, जो प्रत्येक युग में मानव प्रकृति में विद्यमान रहते हैं। परंतु इन पुस्तकों में इन गुण-अवगुणों को परमेश्वर की प्रकाशित इच्छा और स्वरूप के परिपेक्ष में प्रस्तुत किया गया है। परमेश्वर मनुष्यों को बुलाता है, और उनके कामों के लिए उन्हें सबल बनाता है, उनके प्रयत्नों को सफलता के मुकुट से सुशोभित करता है परंतु यह सब कुछ उसकी इच्छा और व्यवस्था का पालन करने से होता है। इन पुस्तकों में वर्णित दृश्य में अधिकार-प्रदान, न्याय और दया का अपूर्व समन्वय है। कुछ उदाहरण लीजिए। एली को देखिए, वह परमेश्वर का कृपापात्र था, परंतु वह परमेश्वर के न्यायाधीन हुआ और सिर झुकाकर उसने उस न्याय को स्वीकार किया (१ शमू. ३ : १२, १८)। फिर शमूएल को देखिए, शमूएल इस्राएल में नबी बनाया गया (१ शमू. ३ : २०, २१), और उसके द्वारा परमेश्वर आश्चर्यकर्म करता है (१ शमू: ७ : १०), और अपने लोगों का मार्गदर्शन करता तथा राजतंत्र का रूप स्थापित करता है। फिर भी जब शमूएल ने अपने अयोग्य पुत्रों को उत्तरदायित्व का काम सौंपा तो उसकी प्रशंसा नहीं की गई (१ शमू. ८ : १–४)। वीर कर्म के नेता के रूप में शाऊल को देखिए। राजा के कार्य में वह इस्राएलियों के लिये गर्व का विषय

था (१ शमू. १० : २४) । परंतु उसने आज्ञा का पालन न किया, और उसका पतन हुआ (१ शमू. १५ : २२, २३) । दाऊद को ही देखिए । वह इस्राएल जाति के गले का हार था, परमेश्वर के लिए उत्साही था । परंतु जब उसने बुरा काम किया तो वह अपनी प्रजा के निम्नतम व्यक्ति से भी बड़ा पापी माना गया (२ शमू. १२ : ७) । इन पुस्तकों में लेखबद्ध घटनाओं का मापदंड एक ही है अर्थात परमेश्वर का न्याय और सत्य ।

राजतंत्र की स्थापना इस रीति से की गई है कि हमें यह शिक्षा मिलती है कि अन्य मानवी तंत्र के सदृश्य राज सत्ता भी परमेश्वर की व्यवस्था के अधीन है । अन्य लोगों के राजाओं के समान शाऊल का अधिकार एकछत्र या पूर्ण नहीं है । वह परमेश्वर की व्यवस्था के अधीन है । दाऊद वाचा बांधने के द्वारा ही राजा बनता है और वह अपने पद पर उसी शर्त पर बना रहता है कि वह न्याय करे और नबी तथा पुरोहितों के द्वारा परमेश्वर का वचन सुने और उसका पालन करे । इन तथ्यों में सीमित राजसत्ता के, वैधानिक शासनों के, साधारण मनुष्य के अधिकारों की धारणाओं के बीज हैं, क्योंकि इन सब में मानव की इच्छा के परे विधान के अस्तित्व की स्वीकृति है ।

इस्राएल की राजसत्ता में परमेश्वर का एक अभिप्राय निहित है जो समय की घटनाओं से परे हैं । दाऊद की राजसत्ता वह ढांचा था जिसमें भविष्य की आशा ढाली गई, क्योंकि परमेश्वर का शाश्वत अभिप्राय दाऊद के वंश से पूरा होना था (२ शमू. ७ : १६) । ख्रिस्त दाऊद का पुत्र था ।

इक्कीसवां अध्याय

राजाओं की पहली और दूसरी पुस्तक

१. शीर्षक

शमूएल की पुस्तकों का अध्ययन करते हुए हम लिख चुके हैं कि वे दो पुस्तकें न थीं, एक थी। राजाओं की पुस्तकें भी एक ही पुस्तक थी। सेपत्वा-गिंता में पहली बार दो पुस्तकों में विभाजन दिखाई पड़ता है। उसमें शीर्षक है——३ और ४ राज्य। वुल्गाता में ३ और ४ राजा है। शमूएल की पुस्तकों के अनुरूप राजाओं की पुस्तक का विभाजन भी १५१६ की बॉम्बेरी (Bombery) की इब्रानी बाइबल में प्रस्तुत किया गया है। इब्रानी शीर्षक मेलकिम (अर्थात राजा) है। हिन्दी में भी इसी शीर्षक को अपनाया गया है।

२. विषय सामग्री का सारांश

१ राजा में सुलैमान के वैभवशाली शासन का वर्णन है। इसमें मंदिर का निर्माण, राज्य का विभाजन और आहाब तथा एलिय्याह के समय तक दोनों राज्यों के उत्थान-पतन का वर्णन सम्मिलित है।

२ राजा में एलिय्याह और एलीशा के इतिहास से आरम्भ होता है। तब येहू के विद्रोह, उत्तरी राज्य के विध्वंस और योशिय्याह के महान सुधार का वर्णन कर यहूदा की बंधुवाई और यरूशलेम के विनाश तक का वर्णन है।

३. रूपरेखा

१. राजा : सुलेमान के वैभव से आहाब के विश्वासघात या विधर्म तक

(१) सुलेमान का सिंहासनासीन होना और राज्यशासन (१–११)

(क) सुलेमान का राजा बनाया जाना (१–३ : २) : अदोनिय्याह का सिंहासन हथियाने के प्रयास की विफलता और सुलैमान का राज्याभिषेक (१) ; दाउद के अंतिम आदेश (२: १–११); सुलैमान का अदोनिय्याह, एब्यातार, योआब

और शिमी को दंड देना (२ : १२–४६) ; फिरौन की पुत्री के साथ विवाह (३ : १–२)।

(ख) गिबोन में सुलैमान की प्रार्थना, और फलस्वरूप परमेश्वर उसे बुद्धि का दान देता है (३ : ३–२७)। बालक के संबंध में दा स्त्रियों के बीच न्याय करने में बुद्धि का प्रदर्शन है।

(ग) सुलैमान का शासन (४) : हाकिम, शासन-प्रदेश, व्यय, और सवार।

(घ) मंदिर और महलों का निर्माण (५–८) : सोर के राजा हीराम से मित्रता (५); मंदिर सात वर्ष में बनाया गया (६); महलों का निर्माण—लबानोनी वन नामक महल, खम्भेवाला ओसारा, सिंहासन का ओसारा, फिरौन की बेटी का महल, और आंगन बनवाए (७ : १–१२); सोर का कारागर पीतल की सजावट करता है (७ : १३–५१) वाचा का सन्दूक मंदिर में लाया जाता है और सुलैमान समर्पण का आराधना करता है (८)।

(च) परमेश्वर सुलैमान को उसके धार्मिक दायित्व की याद दिलाता है (९ : १–९)।

(छ) सुलैमान का व्यापार, धन-संपत्ति और जग-कीर्ति (९ : १०–१० : २९) : सोर के राजा हीराम को बीस नगरों का दान, काम में लोगों से बेगारी, शहरों को सुरक्षित करना, उसके जहाज (९ : १०–२८); शीबा की रानी का आना (१० : १–१३); हाथीदांत का सिंहासन, व्यापार एवं धनसंपत्ति (१० : १४–२९)।

(ज) पराए देवताओं की भक्ति करना, परिणामस्वरूप शत्रुओं के माध्यम से सुलैमान को दंड (११) : सुलैमान की रानियाँ पराए देवताओं की ओर उसका मन फेरती हैं, अतः परमेश्वर का क्रोध (११ : १–१३); एदोमी हदद उसका शत्रु हो जाता है (११ : १४–२२); एल्यादा का पुत्र रज़ोन भी शत्रु हो जाता है (११ : २३–२५); नबात का पुत्र यारोबाम भी विरुद्ध हो जाता है, जिसे यारोबाम ने इस्राएल के दस गोत्र प्रतीकात्मक रूप से दे दिए; सुलैमान की मृत्यु (११ : ४१–४३)।

(२) विभाजित राज्य—यहूदा और इस्राएल (१२—१७)

(क) राज्य का दो भाग हो जाना (१२ : १–२४) : सुलैमान का पुत्र रहूबियाम जनता के बोझ को हल्का करने से इन्कार करता है; यारोबाम का विद्रोह और शमायाह नबी राज्य-विभाजन की पुष्टि करता है।

(ख) इस्राएल एवं यहूदा राज्यों के बीच युद्ध-काल (१२ : २५–१६ : १४) : यारोबाम प्रथम बेतेल और दान में बछड़ा-पूजा की प्रतिष्ठा करता है, और उसे एक नबी द्वारा चेतावनी दी जाती है (१२ : २५–१४ : २०); रहूबियाम का राज्य (१४ : १९–३१); यहूदा में अब्बियाम और आसा का राज्य (१५ : १–२४) ; इस्राएल में नादाब, बाशा, एला, जिम्री, ओम्री और अहाब का राज्य (१५ : २५—१६ : ३४)।

(ग) एल्लियाह और एलीशा का वृतांत (१ रा० १७—२ रा. ८) अनावृष्टि की नबूवत, एल्लियाह को करीत नामक नाले पर कौवों द्वारा रोटी का प्रबंध, सारपत की विधवा के यहाँ जाना, ओबद्याह और अहाब से भेंट (१७ : १–१८ : १९); कर्मेल पहाड़ पर प्रतिद्वन्द्व और अनावृष्टि का अन्त (१८ : २०–४६); एल्लियाह का होरेब पर्वत को भाग जाना, फिर लौट कर एलीशा को अपना उत्तराधिकार सौंपना (१९); अहाब के साथ बेन्हदद की लड़ाइयाँ जिसमें नबी भाग लेते हैं (२०); एल्लियाह नाबोत की बारी लेने के लिये अहाब को शाप देता है (२१); मीकायाह की नबूवत के अनुसार अहाब का युद्ध में मारा जाना, यहोशापात युद्ध में उसका साथी था (२२)।

[२ राजा : नबियों के विद्रोह से लेकर बंधुवाई तक; रूपरेखा १ राजा से क्रमश :]

एल्लियाह की नबूवत के अनुसार अहज्याह की मृत्यु (२ रा. १); एल्लियाह का आकाश में उठाया जाना और एलीशा का शक्ति-प्रदर्शन (२); एलीशा की सलाह से यहोराम को मोआब के विरुद्ध सहायता प्राप्त होती है (३); एलीशा के आश्चर्यकर्म : विधवा की हांड़ी का तेल बढ़ाना, शूनेमी स्त्री के पुत्र को जिलाना; और अन्य आश्चर्यकर्म (४); अरामी नामान कोढ़ी को

एलीश शुद्ध करता है (५); कुल्हाड़ी को निकालने का चमत्कार (६ : १-७); एलीशा का अरामी दल से बचना, शोमरोन में अकाल दूर होने की भविष्य-वाणी, चार कोढ़ी नबूवत की पूर्ति देखते हैं (६ : ८–७ : २०); शूनेमी स्त्री को उसकी भूमि दिलाना, हजाएल को बताना कि वह अराम का राजा होगा (८ : १–१५); यहोराम और अहज्याह का यहूदा पर राज (८ : १६–२९)।

(घ) येहू का राजद्रोह—अहाब के घराने का विनाश (९–११) : एलीशा के दूत द्वारा येहू का अभिषेक, यिज्रैल का वेग पूर्वक रथ पर जाना और इस्राएल के राजा योराम, यहूदा के राजा अहज्याह और इजेबेल को घात करना (९); दोनों राजाओं के बेटों, पोतों, प्रधान पुरुषों, मित्रों तथा बाल के उपासकों को घात करना (१० : १–२७); येहू का अधर्म, अराम के हजाएल का आक्रमण, येहू की मृत्यु (१० : २८–३६); अहाब की पुत्री अतल्याह का पूरे राजवंश को नष्ट कर यहूदा की राजगद्दी हथियाना, योआश का बचना, अतल्याह का मारा जाना, योआश को यहूदा का राजा बनाना (११)।

(च) इस्राएल राज्य का पतन और ध्वंस (१२–१७): यहूदा का राजा योआश भवन को सुधारता है (१२); यहूदा में यहोआहाज तथा इस्राएल में योआश का राज्य, योआश को एलीशा का अंतिम संदेश (१३); यहूदा का अमस्याह योआश से युद्ध करता है, अमस्याह के बाद अजर्याह, यारोबाम द्वितीय, जकर्याह, शल्लूम, मनहेम, पकह्याह और पेकह इस्राएल पर राज्य करते हैं, योताम यहूदा पर राज्य करता है (१४–१५); यहूदा के आहाज का राज्य, अराम और इस्राएल के राजाओं से युद्ध, अश्शूर के राजा तिग्लेत-पेलेसर की अधीनता स्वीकार करता है (१६); होशे इस्राएल का राजा, उसी काल में अश्शूरी शोमरोन को जीत लेते हैं, बहुतों को बंदी बनाते और विदेशी लोगों को नगरों में बसा देते हैं (१७)।

(३) केवल यहूदा का राज्य (१८–२५)

(क) हिजकिय्याह का अच्छा शासन (१८–२०) : सन्हेरीब का आक्रमण, परंतु यशायाह के वचनानुसार यरूशलेम शहर की चमत्कारिक रक्षा (१८–१९); हिजकिय्याह की बीमारी, बाबेल के दूतों के समक्ष बुद्धिहीनता का कार्य (२०)।

(ख) मनश्शे और आमोन के शासन में नैतिक पतन (२१)।

(ग) योशिय्याह का धर्म-सुधार (२२–२३) : हिलकिय्याह को व्यवस्था की पुस्तक मिलती है (२२); योशिय्याह परमेश्वर से वाचा बांधता है, और धर्मसुधार करता है (२३ : १–२७); मगिद्दो में फिरौन–निको द्वारा योशिय्याह की मृत्यु, यहोआहाज का अभिषेक (२३ : २८–३०)।

(घ) यहूदा राज्य का अंत (२३ : ३१–१५ : ३०); फिरौन-निको यहोआहाज को गद्दी से उतार कर यहोयाकीम को राजा बनाता है (२३ : ३१–३७); यहोयाकीम नबूकदनेस्सर के अधीन होता है और उसके विरुद्ध विद्रोह भी करता है (२४ : १–७); यहोयाकीम के राज्य का प्रारंभ, नबूकदनेस्सर का यरूशलेम पर अधिकार और १०००० लोगों को बंधुवाई में ले जाना; सिदकिय्याह को राजा बनाना (२४ : ८—२०); सिदकिय्याह का विद्रोह, यरूशलेम का विनाश, गदल्याह का अधिकारी बनाया जाना (२५ : १–२६); सैंतीस वर्ष के बाद बाबेल का राजा एवील-मरोदक का यहोयाकीन के प्रति दया का व्यवहार (२५ : २७—३०)।

४ रचना, रचयिता, तिथि

बाइबल की अन्य ऐतिहासिक पुस्तकों के समान, राजाओं की पुस्तकें भी पुरानी स्रोत-सामग्री के आधार पर ही लिखी गई हैं। इनमें से कुछ का उल्लेख किया गया है। परंतु ऐसी और भी सामग्री हो सकती है जिसका उल्लेख नहीं किया गया है। जिन मूल-सोतों का उल्लेख हुआ है वे हैं: सुलैमान के कामों का वर्णन (१ रा. ११ : ४१), इस्राएल के राजाओं के इतिहास की पुस्तक (१ रा. १४ : १९ आदि)। यहोराम और होशे के अतिरिक्त इस्राएल के सब राजाओं के संबंध में 'इस्राएल के राजाओं के इतिहास की पुस्तक' का उल्लेख किया गया है। कुल मिलाकर यह उल्लेख १७ बार हुआ है। उसी प्रकार यहूदा के राजाओं में से पाँच के अतिरिक्त अन्य सब के संबंध में 'यहूदा के राजाओं के इतिहास की पुस्तक' का उल्लेख हुआ है। ये पुस्तकें कदाचित शासकीय राज्य-इतिहास नहीं थे जैसे कि इतिहास लेखक (२. शमू ८ : १६) द्वारा प्रत्येक राजा के संबंध में आलेख होते थे। ये उन पर आधारित क्रमबद्ध इतिहास की पुस्तकें थीं। 'इतिहास की पुस्तक' नाम से ही यह व्यंजित होता है कि वह प्रत्येक राजा के कामों के संकलन के बजाय एक पुस्तक के रूप में थी।

इन स्रोतों के अतिरिक्त कुछ ऐसे स्रोत संभव हैं जिनका उल्लेख इन राजाओं की पुस्तकों में नहीं है। उदाहरणार्थ, संभव है कि एलिय्याह के कामों की कोई पुस्तक हो। उसी प्रकार एलीशा के कामों की कोई पुस्तक हो, या अरामी युद्धों की पुस्तक हो (१ रा. २०, २२)। संभव है कि मंदिर के संबंध में कुछ वर्णन हों (२ रा. १२ : ४–६; १६ : १०–८); और यशायाह नबी का इतिहास हो (रा. १८ : १७–२० : १९; देखिए यश. ३६ : १–३९ : ८)।

इन सब मूलस्रोतों से जो सामग्री ली गई उसे एक ऐसे 'ढाँचे' में संगठित किया गया जैसे न्यायियों की पुस्तक के रचयिता ने काम में लिया है। इस्राएल के राजाओं के संबंध में प्रस्तावना सूत्र इस प्रकार है : यहूदा के राजा (नाम) ——————के दसवें वर्ष (नाम)——————का पुत्र, (नाम)—————— इस्राएल पर राज्य करने लगा। (नाम)——————का पुत्र शोमरोन में इस्राएल पर दस वर्ष राज्य करता रहा। (१ रा. १६ : २९ आदि)। राज्यकाल का वर्णन जैसे-जैसे आगे बढ़ता है, वैसे ही राजा के प्रति लेखक अपना विचार-निर्णय भी देता है। उसका सूत्र इस प्रकार है : और (नाम)——————के पुत्र (नाम)——————ने वह किया जो यहोवा की दृष्टि में बुरा था (१ रा. १६ : ३० आदि। प्रत्येक राजा के इतिहास के अंत का सूत्र इस प्रकार है : (नाम)——————के और काम जो उसने किए, क्या वे सब इस्राएल के राजाओं के इतिहास की पुस्तक में नहीं लिखे हैं ? और (नाम)—————— अपने पुरखाओं के साथ सो गया और उसे उसके पुरखाओं के साथ (शोमरोन) में मिट्टी दी गई, और उसका पुत्र (नाम)——————उसके स्थान पर राज्य करने लगा (१ रा. १६ : ५)। प्रत्येक राजा के संबंध के उसकी परिस्थिति के अनुरूप इस सूत्र में थोड़ा बहुत अंतर कर लिया जाता है।

यहूदा के राजाओं के संबंध में भी इसी प्रकार के सूत्र का प्रयोग किया गया है। उनके संबंध में उस ससय के इस्राएल राजा का उल्लेख किया गया है। यहूदा के राजाओं के संबंध में प्रस्तावना सूत्र में कभी-कभी माता के नाम का भी उल्लेख किया गया है (१ रा १५ : २)। आठ राजाओं के संबंध में विचार-निर्णय अच्छा है—"और (नाम)——————ने वह किया जो यहोवा की दृष्टि में ठीक है (२रा. १२:२)" ; परंतु यह प्रशंसा भी अपवाद के साथ है, "तो भी ऊँचे स्थान न गिराए गए; प्रजा के लोग तब भी ऊँचे स्थान पर बलि चढ़ाते और धूप जलाते रहे" (२ रा. १२ : ३)। हिजकिय्याह (२ रा. १८ : ३) और योशिय्याह (२ रा. २२:२) ही ऐसे राजा हैं जिन्होंने "जैसे उनके मूलपुरुष दाऊद ने किया था जो यहोवा की दृष्टि में ठीक है वैसा ही किया" और उनकी प्रशंसा में कोई अपवाद नहीं है। उनका विशेष सद्गुण

था कि उन्होंने ऊँचे स्थान गिरा दिए, लाठों को तोड़ दिया, जिसके फलस्वरूप यरूशलेम के मंदिर में यहोवा के लिए बलि चढ़ाई जा सकी। सब से अधिक भर्त्सना एवं दंड यारोबाम के लिए रखा गया है, "नबात के पुत्र यारोबाम जिसने इस्राएल से पाप कराया उसके पापों के अनुसार वह करता रहा, और उनसे वह अलग न हुआ (२ रा० १४: २४)", क्योंकि "यारोबाम ने दो बछड़े बनवाए और लोगों से कहा, यरूशलेम को जाना तुम्हारी शक्ति से बाहर है, इसलिए हे इस्राएल अपने देवताओं को देखो जो तुम्हें मिस्र देश से निकाल लाए हैं। उसने एक बछड़े को बेतेल और दूसरे को दान में स्थापित किया····उसने ऊँचे स्थानों के भवन और सब प्रकार के लोगों से जो लेवीवंशी न थे, याजक ठहराए। फिर यरोबाम ने आठवें महीने के पंद्रहवें दिन यहूदा के पर्व के समान एक पर्व ठहरा दिया और वेदी पर बलि चढ़ाने लगा" (१रा. १२:२८–३३) व्यवस्था विवरण में इसकी मनाही की गई है (व्य. ४ : १५क., ९:८–२१, १८: १क, १२:२–१८)। इससे यह भी पता चलता है कि राजाओं की पुस्तकों के लेखक का दृष्टिकोण व्यवस्था विवरण की पुस्तक का दृष्टिकोण था। इसीलिए उसे व्यवस्था विवरणात्मक संग्रहकर्ता या संपादक माना जाता है।

राजाओं की पुस्तकों का ढांचा २राजा के २४वें अध्याय पर समाप्त हो जाता है, जहाँ ५९८ई० पू० में हुई बंधुवाई का आलेख हुआ है। वह ढांचा २५ वें अध्याय में नहीं है जिसमें ई० पू० ५८७ में यरूशलेम के विनाश का बर्णन है। इसके आधार पर यह माना जाता है कि व्यवस्था विवरण भक्त संपादक ने इन दोनों तिथियों के बीच की अवधि में अपना कार्य किया ओर राजाओं की दोनों पुस्तकें लिखीं। २राजा का अंतिम अध्याय और ५६२ ई० पू० में यहोयाकीन पर कृपा–दृष्टि का वर्णन यरूशलेम के विनाश के पश्चात बंधुवाई के काल में जोड़ा गया होगा। संभव है कि सुलैमान की प्रार्थना (१रा०,८) भी मूल लेख में जोड़ी गई। यह भी संभव है कि बंधुवाई के बाद भी कुछ संपादकीय संशोधन किया गया हो।

तालमुद (बाब बथरा १५) में कहा गया है कि राजाओं को पुस्तकों का रचयिता यिर्मयाह था। यह द्रष्टव्य है कि इन पुस्तकों में कहीं भी यिर्मयाह का उल्लेख नहीं है यद्यपि यरूशलेम विनाश के पूर्व कुछ वर्ष उसने अत्यंत महत्व-पूर्ण कार्य किया। इन पुस्तकों का लेखक यिर्मयाह है– इस संबंध में निश्चित प्रमाण कुछ नहीं हैं। इन पुस्तकों का रचयिता अज्ञात है।

५. धर्म शिक्षा

पुस्तकों के ढांचे तथा लेखक के व्यवस्थाविवरणात्मक दृष्टिकोण से हमें रचयिता के उद्देश्य का पता चलता है। वह इस्राएल और यहूदा के इतिहास

का वर्णन इसलिये नहीं करता कि उसे राजनीतिक घटनाओं के विवरण देने की चाह है, परन्तु इसलिए कि राष्ट्र और प्रत्येक राजा के लिये एक बात अनिवार्य है कि वे उस वाचा के प्रति जो परमेश्वर ने इस्राएल से बांधी है, निष्ठावान रहें। वाचा के प्रति भक्ति और निष्ठा ही, जिसमें न्यायपूर्ण एवं धर्ममय आचरण भी सम्मिलित है, वह कसौटी है जिससे सब शासक परखे जाते हैं। वाचा के प्रति भक्ति के द्वारा परमेश्वर से अनुमोदन एवं आशिष प्राप्त होती है। उसके प्रति विश्वासघात से परमेश्वर का क्रोध, राष्ट्र पर आपत्ति एवं दंड आते हैं। सुलैमान ने अपनी प्रजा के न्याय करने के निमित्त समझ और बुद्धि के लिये नम्रता से प्रार्थना की, और उसे बड़ी बुद्धि और समृद्धि मिली (१ रा. ३ : ९)। परंतु जब उसने धर्म का त्याग किया और विश्वासघात किया तो उसे दंड दिया गया। परमेश्वर को मानना मनुष्य का सबसे बड़ा अधिकार और कर्तव्य है। इतना होते हुए भी सच्चा परमेश्वर अधिकतम भव्य भवन से भी कहीं अधिक महान है (१ रा. ८ : २७)।

इन पुस्तकों में हमें यह शिक्षा भी मिलती है कि राष्ट्र का राजनीतिक संगठन उसके नैतिक एवं आत्मिक संगठन के सामने बिल्कुल गौण है। यह उस घटना से प्रमाणित होता है कि जब रहूबियाम ने प्रजा के जूए को हल्का करना अस्वीकार किया, तो यारोबाम ने यहोवा के नबियों की स्वीकृति से बलवा किया (१ रा. ११ : ३०–३३; १२ : ३–१५, २२)। इसी प्रकार नाबोत पर किए गए अत्याचार के लिये परमेश्वर ने अपने नबी एलिय्याह द्वारा राजा को दंड दिया (१ रा. २१)। जब राज्य-शासन वाचा के स्पष्ट विरोध में चलाया गया, तो येहू के भयंकर विद्रोह जैसे विद्रोह से उस राज्य का ध्वंस किया गया, और नबियों का भी उसे आरंभ करने में किसी न किसी प्रकार हाथ रहा (२ रा. ९ : ६)। राष्ट्र का राजनीतिक संगठन भंग हुआ, परंतु विश्वास और धर्म बच रहा।

कर्मेल पहाड़ पर एक संघर्ष है। उसमें किसी भी मनुष्य या राष्ट्र के जीवन में सर्वश्रेष्ठ चुनाव करने की अभिव्यक्ति है। आज चुन लो। "एलिय्याह सब लोगों के पास आकर कहने लगा, तुम कब तक दो विचारों में लटके रहोगे यदि यहोवा परमेश्वर है तो उसके पीछे हो लो; और यदि बाल हो, तो उसके पीछे हो लो" (१ रा. १८ : २१)। एकेश्वरवाद चुनाव और पूर्ण समर्पण की मांग करता है।

इन पुस्तकों की पंक्तियों में पाठक के समक्ष राजाओं का समीक्षात्मक चित्र प्रस्तुत होता है। इतिहास के नाटक में प्रत्येक अपनी भूमिका अदा करता है, चाहे वह बड़ी हो अथवा छोटी। परन्तु अन्त में उसके कार्य की कसौटी एक

उच्च कसौटी है। वह है कि उसने जो काम किए वे परमेश्वर की दृष्टि में ठीक हैं या बुरे हैं। इस प्रकार मनुष्यों के क्रियाकलाप इस सनातन कसौटी से आच्छादित हो जाते हैं, और चाहे मनुष्यों की सहायता हो या उनका विरोध हो, परमेश्वर अपनी योजना को कार्यान्वित करता रहता है। उसके प्रेम और उसकी सच्चाई पर पूर्ण भरोसा किया जा सकता है। उसकी दया और सच्चाई के कारण यशायाह नबी के कथन अनुसार अश्शूरी सन्हेरीब के अपार सैन्यबल से यरूशलेम की बड़ी चमत्कारिक मुक्ति होती है (२ रा. १६ : २०–२८)। फिर भी उसका न्याय इतना पूर्ण और कठोर है कि उसके कारण मंदिर, हाँ वह मंदिर भी, जहाँ उसने अपने नाम की प्रतिष्ठा की, विनाश से नहीं बचता।

इस प्रकार राजाओं की पुस्तकें परमेश्वर के साथ जीवन के पाठ हमें पढ़ाती हैं। लेखक ओम्री एवं यारोबाम द्वितीय जैसे राजाओं के विषय में बहुत कम कहता है जो सांसारिक मानदंडों की दृष्टि से महान माने जा सकते हैं, परन्तु वह योशिय्याह एवं हिजकिय्याह जैसे राजाओं के विषय में बहुत कुछ कहता है, जो अपने सारे मन से परमेश्वर की आज्ञाओं का पालन करते हैं।

बाईसवाँ अध्याय

१ और २ इतिहास

१. शीर्षक और प्रामाणिक धर्मशास्त्र में स्थान

शमूएल और राजाओं की पुस्तकों के सम्बन्ध में हमने देखा कि प्रत्येक की मूलतः दोनों पुस्तकें एक ही थीं। इतिहास की दोनों पुस्तकें भी एक ही थीं। दूसरे इतिहास के अन्त में जो मसोरेती टिप्पणी है, वह उसी समय सार्थक लगती है जब इतिहास की दोनों पुस्तकों को एक माना जाए। इनका इब्रानी शीर्षक द्रिबे हयामीम है। उसका अर्थ है 'दिनों की घटनाएं।' इसका अर्थ कदाचित 'वर्ष-वृत्तांत' अथवा 'अभिलेख' हैं। सेपत्वांगिता में इसका शीर्षक है बिबलॉस तॉन पेरालिपोमिनान। इसका अर्थ है वे घटनाएं जिनका वर्णन नहीं किया गया है या जो छोड़ दी गई थीं। प्राचीन काल से इसका अर्थ यह माना जाता रहा है कि इतिहास के रचयिता ने उन बातों का अभिलेख किया है जिनको राजाओं के लेखक ने छोड़ दिया था। परंतु इन दोनों के बीच संबंध का यह उचित कथन नहीं जान पड़ता क्योंकि रचयिता ने ऐसी बहुत सी बातों को छोड़ दिया जिनका वर्णन राजाओं की पुस्तकों के रचयिता ने किया है। दोनों ही लेखकों ने अपने अभिप्राय के अनुरूप सामग्री का चयन किया। वुल्गाता के शीर्षक लायबर पेरालिपोमोनॉन में सेपत्वांगिता का अनुसरण किया गया है अंग्रेजी का शीर्षक है क्रॉनिकल्स (Chronicles)। येरोम ने इन पुस्तकों का विवरण 'सम्पूर्ण धार्मिक इतिहास का क्रॉनिकल' शब्दों में किया है। येरोम के शब्दों के आधार पर अंग्रेजी नाम क्रॉनिकल रखा गया है। हिन्दी में इनका शीर्षक 'इतिहास' है।

इब्रानी धर्मशास्त्र के वर्तमान क्रम में इतिहास की पुस्तकें केतुबीम (लेखों) के समूह के अंत में रखी गई हैं। हमें इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि पहले उनका स्थान अन्यत्र था, क्योंकि वास्तव में वे एज्रा और नहेम्याह की पुस्तकों से पूर्व की हैं।

२. विषय सामग्री का सारांश

इतिहास की पुस्तकों में यह बताया गया है कि मनुष्य जाति के आरंभ से ही परमेश्वर का एक अभिप्राय था। उस अभिप्राय के अनुकूल परमेश्वर ने

दाऊद के वंश का चुनाव किया और स्थापना की तथा उसे ईश्वरीय प्रतिज्ञाओं का प्राप्तिकर्ता बनाया।

३. रूपरेखा

१ और २ इतिहास—परमेश्वर का चुना हुआ, दाऊद का वंश

(१) आदम से दाऊद तक वंशावली (१ इ. १–६)

(क) आदम से याकूब और एसाव तक (१)

(ख) इस्राएल के बारह गोत्र (२–६)—यहूदा की ओर विशेष लक्ष्य देते हुए (२–४), दाउद के वंशजों को सम्मिलित करते हुए (३); लेवी (६); और बिन्यामीन (८), जिसमें शाऊल की वंशावली भी सम्मिलित है।

(२) दाऊद का राज्य (१ इ. १०–१६)

(क) दाऊद का राजा बनाया जाना (१० : १–११ : ६) शाऊल की मृत्यु (१०); सब इस्राएलियों पर राजा होने के लिये दाऊद का अभिषेक (११ : १–३); दाऊद का यरूशलेम पर अधिकार (११–४ : ६)।

(ख) दाऊद के शूरवीर, मित्र और दलवाले (११:१०–१२ : ४०)।

(ग) वाचा के संदूक का यरूशलेम में पहुँचाया जाना (१३–१६); किर्यत्यारीम से पवित्र संदूक का लाया जाना, परंतु उज्जा की मृत्यु के कारण संदूक का ओबेद-एदोम के यहाँ रखा जाना (१३); दाऊद पलिश्तियों को हराता है (१४); लेवी पवित्र संदक को यरूशलेम लाते हैं (१५); उपासना के लिये दाऊद गायकों को नियुक्त करता है (१६)।

(घ) नातान का वचन और दाऊद की प्रार्थना (१७) नातान नबी का कथन कि दाऊद का पुत्र परमेश्वर का घर बनाएगा और उसका वंश सदा बना रहेगा।

(च) दाऊद की विजय (१८–२०) : उत्तर में विजय (१८); अम्मोनियों और अरामियों पर विजय (१६ : १–२० : ३); पलिश्तियों से युद्ध (२० : ४–८)—राक्षस।

(छ) दाऊद भावी मंदिर की तैयारी करता है (२१–२२) : जनगणना, उसका दंड, यहोवा का दूत ओर्नान के खलिहान

पर दिखाई देकर मंदिर का स्थान दर्शाता है (२१:१–१७); दाऊद खलिहान मोल लेता है और बेदी बनाता है (२१ : १८–२२ :१); मंदिर बनाने के लिये सामग्री एकत्रित करता है और सुलैमान को भवन बनाने का आदेश देता है (२२ : २–१६)।

(ज) दाऊद धार्मिक प्रबंध एवं देश के प्रशासन का प्रबंध करता है (२३–२७); लेवियों के दल और कार्य (२३); लेवियों के २४ दल (२४ : १–६); लेवी वंशों के प्रधान (२४ : २०–३१); वादकों के २४ दल (२५); द्वारपालों और अन्य लेवीय कार्यों के दल (२६); सेना और गोत्रों के, सहस्त्रपतियों और शतपतियों और सरदारों तथा भंडारों के अधिकारियों और मंत्रियों की नियुक्ति (२७)।

(झ) दाऊद की अंतिम सभा (२८–२६ : २५) : दाऊद का कथन, सुलैमान को आदेश देता है, और मंदिर का नमूना सौंपता है (२८); समर्पण, प्रार्थना एवं बलिदान के पश्चात् सुलैमान राजा बनाया जाता है (२६ : १–२५)।

(ट) दाऊद की मृत्यु (२६ : २६–३०)।

(३) सुलैमान का राज्य (२ इति० १–६)

(क) गिबोन में सुलैमान की प्रार्थना, सुलैमान की धन-संपत्ति (१)।

(ख) मंदिर का निर्माण (२ : १–७ : २२) : सोर के राजा हूराम की सहायता (२); मंदिर के माप, नक्काशी और विभिन्न अंग (३–४); पवित्र संदूक मंदिर में लाया जाता है, मंदिर की प्रतिष्ठा (५); सुलैमान का संबोधन और समर्पण की प्रार्थना (६); परमेश्वर आग और तेज के बादल के द्वारा मंदिर की प्रतिष्ठा ग्रहण करता है, उसके पश्चात् बलिदान और समर्पण का पर्व (७)।

(ग) सुलैमान के क्रिया-कलाप (८–६) : उसके कारीगर (८); शीबा की रानी का सुलैमान के दर्शनार्थ आना (६ : १–१२); सुलैमान की संपत्ति, शक्ति और वाणिज्य-व्यापार (६ :१३–३१)।

(४) रहूबियाम से कुस्रू तक (२ इति० १०–३६)

(क) इस्राएल राज्य के दो भाग और लगातार लड़ाई (१०–१३) : यारोब्राम का विद्रोह (१०); रहूबियाम को इस्राएल से युद्ध करने को मना किया जाता है, रहूबियाम नगरों को दृढ़ करता है (११ : १–१२); यारोबाम की अधर्मी नीति के कारण लेवीय लोग यरूशलेम आते हैं (११ : १३–१७); रहूबियाम का राज्य सुदृढ़ हो जाने के पश्चात् वह परमेश्वर को त्याग देता है, मिस्र के राजा शीशक के माध्यम से उसे दंड (११ : १८–१२ : १६); अबिय्याह और यारोब्राम के बीच युद्ध (१३) ।

(ख) आसा का राज्य (१४–१६) : परमेश्वर की उपासना करता है और जेरह नामक कूशी पर विजय प्राप्त करता है (१४); अजर्याह की प्रेरणा से आसा धार्मिक सुधार करता है (१५); हनानी दर्शी, अराम के राजा पर भरोसा रखने के लिये उसकी निंदा करता है (१६) ।

(ग) यहोशापात का राज्य (१७–२०) : उसके धर्ममय शासन के कारण उसके वैभव और ऐश्वर्य की वृद्धि (१७); यद्यपि मीकायाह नबी उसे चेतावनी देता है, तो भी वह अहाब के साथ मिलकर आराम के राजा से युद्ध करता है, हनानी दर्शी का पुत्र येहू यहोशापात को डांटता है (१८ : १–१९ : ३); वह न्यायियों की नियुक्ति करता है (१९ : ४–११); वह प्रार्थना करता है और वह मोआब तथा अम्मोन पर विजयी होता है, परन्तु दुर्भाग्यवश वह इस्राएल के दुष्ट राजा अहज्याह से संधि करता है (२०) ।

(घ) अनेक राजा(२१-२८): यहोराम दुष्ट कृत्य करता है, एलिय्याह के पत्र द्वारा चेतावनी पाने के पश्चात उसे हानि उठानी पड़ती है और रोग से पीड़ित होता है (२१); येहू अहज्याह को घात करता है, अतल्याह सारे राजवंश को नष्ट करती है और छः वर्ष राज्य करती है (२२); महापुरोहित यहोयादा अतल्याह को मरवा डालता है और यहोराम के पुत्र योआस को राजा बनाता है (२३); योआश मंदिर की मरम्मत करता है (२४); अमस्याह का राज्य, जब वह परमेश्वर के

एक भक्त की बात मानता है तो एदोम के विरुद्ध सफलता प्राप्त करता है, परन्तु जब वह मूर्तिपूजा करने लगता है, तो योआश राजा से हार जाता है और मारा जाता है (२५); उज्जियाह का राज्य, वह नह नगरों को दृढ़ करता और कृषि करता है, जब तक वह परमेश्वर की खोज करता है तब तक भाग्यशाली रहता है ,परन्तु जब घमण्ड के कारण वह पुरोहित का काम करने लगता है तब उसे दन्ड दिया जाता है, वह कोढ़ी हो जाता है (२६); योताम का राज्य, योताम ने वह किया जो परमेश्वर की दृष्टि में ठीक है और वह सामर्थी हुआ (२७); आहाज विधर्मियों की मूर्तिपूजा के घिनौने काम शुरू करता है और अरामियों के आक्रमण द्वारा दंड पाता है, वह अश्शूर के राजा तिलगतपिलनेसेर से व्यर्थ की संधि करता है (२८)।

(च) हिजकिय्याह का राज्य (२९–३२); धर्मसुधार से ही अपना राज्य आरंभ करता है। उसने भवन को पवित्र कराया और सच्ची उपासना की स्थापना की (२९); उसने एक महान फसह-पर्व मनाया,अपनी प्रजा द्वारा मूर्तिपूजा का अंत कराया, और दशमांश तथा भेंटों के नियमों का पालन कराया (३०–३१); सन्हेरीब की चढ़ाई के समय उसने यहोवा से प्रार्थना की, परन्तु बीमारी की अवस्था में उसने यहोवा के सामने दीनता प्रकट न की (३२)।

(छ) मनश्शे और अम्मोन के राज्यों में सुधार के विरुद्ध प्रतिक्रिया (३३); मनश्शे की मूर्तिपूजा-नीति। अश्शूरियों के माध्यम से उसे दण्ड और वह बंधुवा बनाकर बाबुल को ले जाया गया। वहाँ उसने पश्चाताप किया और तब वह यरूशलेम वापिस लाया गया और उसे राज्य फिर मिला (३३:१–२०); अम्मोन के कुकर्म और उसका अपने ही भवन में मारा जाना (३३ : २१–२५)।

(ज) योशिय्याह का राज्य (३४–३५); आरंभ से ही वह परमेश्वर की उपासना करता है और यहूदा में मूर्तिपूजा का अंत करता है (३४:१–७); परमेश्र के भवन की मरम्मत के समय जब हिल्किय्याह को व्यवस्था की पुस्तक मिलती है, तो वह यहूदा के सब लोगों से वाचा बंधाता है कि वे परमेश्वर की आज्ञा

का पालन करेंगे (३४: ८–३३); वह फसह का पर्व मनाता है (३५:१–१९); फिरौन नको के द्वारा उसकी मृत्यु (३५:२०–२७)।

(ञ) पतन अवस्था के राजा (३६ : १–२१) : यहोआहाज, यहोयाकीम, यहोयाकीन और सिदकिय्याह राजाओं को मिस्र और बाबुल की ओर से दबाव के द्वारा चेतावनी, फिर भी वे परमेश्वर को रिस दिलाते रहे। उन्होंने यिर्मयाह नबी के वचनों पर ध्यान न दिया। परिणामस्वरूप अंत में कसदियों के आक्रमण द्वारा नगर का विनाश कराया गया और लोग बंधुआई में ले जाए गए।

(ट) फारस के राजा कुस्रू ने यिर्मयाह के वचन के अनुसार घोषणा की कि जो चाहे वह यहोवा के नगर यरूशलेम को लौट जाए (३६ : २२–२३)। (यह अंश एज्रा १ : १–३ के अनुरूप है।)

४. रचना, रचयिता, रचना-तिथि

पुराने नियम की अन्य ऐतिहासिक पुस्तकों के समान इतिहास की पुस्तकें भी एक ईश्वरीय प्रेरणा-स्फूर्त संपादक का कार्य है, जिसने अनेक मूलस्रोतों का उपयोग किया है। इनमें से अनेक के नामों का उल्लेख किया गया है। सच तो यह है कि पुराने नियम की किसी भी पुस्तक में इतने मूलस्रोतों के उल्लेख नहीं हैं जितने इतिहास की पुस्तकों में। मूलस्रोतों का एक समूह है—दोनों इब्रानी राज्यों के इतिहास। इस समूह में निम्नलिखित का समावेश है : (१) इस्राएल और यहूदा के राजाओं की पुस्तक (२ इ. २७ : ७; ३६ : ८, कदाचित १ इ. ९ : १ भी); (२) यहूदा और इस्राएल के राजाओं की पुस्तक (२ इ. २५ : २६; ३२ : ३२); (३) इस्राएल के राजाओं की पुस्तक (२ इ. २० : ३४, और कदाचित १ इ. ९ : १); (४) इस्राएल के राजाओं के इतिहास (२ इ. ३३ : १८); और (५) राजाओं के वृत्तान्त की पुस्तक (२ इ. २४ : २७)।

मूलस्रोतों का दूसरा समूह नबियों और दर्शियों की पुस्तकें हैं। इनमें निम्नलिखित सम्मिलित हैं : (६) शमूएल दर्शी (इब्रानी रोएह ro'eh) की पुस्तक (१ इ. २९ : २९); (७) नातान नबी की पुस्तक (१ इ. २९ : २९; २ इ. ९ : २९); (८) गाद दर्शी की पुस्तक (इब्रानी ह्रोशे hozeh) (१ इ. २९ : २९); (९) शीलोवासी अहिय्याह की नबूवतों की पुस्तक (२ इ.

९ : २९); (१०) इद्दो दर्शी (इ. होशे) के दर्शन की पुस्तक (नवात के पुत्र यारोबाम के विषय) (२ इ. ९ : २९); (११) शमायाह नबी और इद्दो दर्शी की पुस्तकें (२ इ. १२ : १५); (१२) इद्दो नबी की कथा (२ इ० १३:२२, क्या यह और संख्या ५ का मूलस्रोत एक ही हैं ?); (१३) हनानी के पुत्र येहू के विषय के वे वृत्तांत, जो इस्राएल के राजाओं के वृत्तांत में पाए जाते हैं (२ इ० २० : ३४); (१४) हिजकिय्याह के विषय, आमोस के पुत्र यशायाह नबी के दर्शन नाम पुस्तक (२ इ० ३२ : ३२); (१६) दर्शियों (इ० होशे hozeh) के वचन (२ इ० ३३ : १९)।

मूलस्रोतों का तीसरा समूह ऐसा है जिनका उल्लेख बिना पुस्तकों के शीर्षक दिए किया गया है। इनमें निम्नलिखित सम्मलित हैं; (१७) गाद गोत्र की वंशावली का आलेख (१ इ० ५ : १७); (१८) राजा दाऊद का इतिहास (१ इ० २७ : २४); (१९) भवन योजना संबंधी लेख जो यहोवा की अगुवाई से मिला (१ इ० २८ : १९); दाऊद और उसके पुत्र सुलैमान, दोनों की लिखी हुई विधियां (२ इ० ३५ : ४); और (२१) योशिय्याह के लिये यिर्मयाह और अन्य गायक और गायिकाओं के विलाप गीत (२ इ० ३५ : २५)।

यह बहुत संभव है कि उपरोक्त मूलस्रोतों के अतिरिक्त उत्पत्ति से लेकर २ राजा तक की प्रामाणिक पुस्तक का भी मूलस्रोत के रूप में उपयोग किया गया होगा। १ इतिहास १—९ में जो वंशावलियों की सूची है वह उत्पत्ति से २ राजा तक की पुस्तकों का संक्षेप है। १० वें अध्याय के बाद जो सामग्री है वह शमूएल और राजाओं की पुस्तकों की सामग्री के बहुत ही अनुरूप है।

२ इतिहास के अंत में (३६ : २२—२३) की सामग्री शब्दशः वही है जो एज्रा की पुस्तक के आरंभ (१ : १—३) में मिलती है। इस समानता के कारण यह मान्यता प्रस्तुत की जाती है कि इतिहास की पुस्तकों का लेखक या संपादक और एज्रा की पुस्तक का लेखक और नहेम्याह की पुस्तक का लेखक एक ही व्यक्ति है। इसकी पुष्टि में यह भी कहा जाता है कि इतिहास की पुस्तकों तथा एज्रा की पुस्तक में याजकीय बातों में जो रुचि पाई जाती है, और जिस शैली का प्रयोग किया गया है, वे समान ही हैं। इसके विपरीत यह ध्यान रखना चाहिये कि एज्रा-नहेम्याह में मसीह संबंधी आशा का कोई 'संकेत नहीं है, परन्तु इतिहास में वह कुछ अंश में व्यक्त है (२ इ० १३ : ५; २१ : ७)।

वास्तव में इतिहास की पुस्तकों का लेखक अज्ञात है। इन पुस्तकों में भवन और उसकी विधियों को प्रधानता दी गई है, उससे यह अनुमान लगाया जाता है कि रचयिता कोई लेवी था और कदाचित मंदिर के गायकमंडल का सदस्य था।

तिथि–इतिहास की पुस्तकों की तिथि निम्नलिखित प्रमाणों के आधार पर निर्धारित की जाती है : २ इति. ३६ : २२ में कुस्रू की ई. पू. ५३८ में प्रसारित आज्ञा का उल्लेख है। अतः ये पुस्तकें बंधुवाई के पश्चात रची गईं। १ इ. ३ : १९ क्र में छः (मे. पा MT) या ग्यारह (सेप. LXX बुलगाता, अरामी) जरुब्बाबेल के पश्चात छः दाउदवंशी पीढ़ियों का वर्णन है, जो ई. पू. ५३७ में बाबुल से पलिश्तीन को लौटीं (एज्रा २ : २)। यदि हम प्रत्येक पीढ़ी के लिये तीस वर्ष का समय मानें, और यह मानें कि अंतिम पीढ़ियों के बाद ही इन पुस्तकों की रचना हुई, तो उत्तर फारसी काल में (लगभग ई. पू. ३५०) में अथवा हेलेनी काल में (लगभग ई. पू. २५०) में इनकी रचना तिथि को रख सकते हैं। १ इति. २९ : ७ में 'दर्कनान' का उल्लेख है। यह काल दोष है। इससे फारसी काल की ओर संकेत होता है। इन प्रमाणों के आधार पर इनकी तिथि ई. पू. ३५० और २५० के बीच मानी जाती है। ऑलब्राइट नामक विद्वान इसकी तिथि ई. पू. ४००–३५० के बीच मानते हैं।

५. शमूएल और राजाओं की पुस्तकों से इतिहास की पुस्तकों का संबंध

इतिहास की पुस्तकों का रचयिता पुराने नियम की प्रारंभिक पुस्तकों से अवश्य परिचित रहा होगा। ऊपर कहा गया है कि उसने उन पुस्तकों का प्रयोग मूलस्त्रोतों के रूप में किया। अतः यह रुचिकर विषय होगा कि हम उसकी रचनाओं की तुलना शमूएल तथा राजाओं की पुस्तकों में प्रस्तुत एक से वर्णनों से करें। इतिहास का रचयिता अपने मूलस्त्रोतों का उपयोग स्वतंत्र रूप से अपने अभिप्राय के अनुकूल करता है। कभी कभी वह लम्बे-लम्बे वर्णनों को संक्षिप्त कर देता है, जैसे १ इ. १–९ में। १ इ. १० से २३, ३६ तक का अधिकांश शमूएल और राजाओं की पुस्तकों के वर्णनों के अनुरूप है। उदाहरणार्थ, १ इ. १ : १० में शाऊल की मृत्यु का वर्णन शब्दशः १ श. ३१ : १–१३ के समान है। परंतु इतिहास का लेखक अंत में शाऊल की मृत्यु के नैतिक कारण के संबंध में एक टिप्पणी जोड़ देता है–'यों शाऊल उस विश्वासघात के कारण मर गया·······उसने भूतसिद्धि करनेवाली से पूछकर सम्मति ली थी। उसने यहोवा से न पूछा था" (१ इ. १० : १३, १४)। इसी प्रकार अन्य घटनाओं के धार्मिक प्रभावों को जोड़ा गया है : मनश्शे के पश्चाताप से उसे राज्य लौटाया गया (२ इ. ३३ : ११–१३); मगिद्दो में योशिय्याह की मृत्यु यहोवा की चेतावनी न मानने के कारण होती है (२ इ. ३५ : २१ क्र); शमायाह की चेतावनी के फलस्वरूप ही शीशक द्वारा आक्रमण होता है (२ इ. १२ : ५–८); उचित पश्चाताप के कारण दण्ड कम हो जाता है (दे. २ इ. १५ : १–१५, १६ : ७–१०)।

इन भिन्नताओं के अध्ययन से हमें इतिहास की पुस्तकों के रचयिता की विशेष रुचि का पता चलता है। वह इस्राएल के इतिहास में इस दृष्टि से रुचि रखता है कि वह इस बात का प्रमाण हो कि परमेश्वर अपनी ही चुनी हुई एक ऐसी जाति का निर्माण करता है, जिसे यह सौभाग्य प्राप्त है कि वह सच्चाई से उसी की उपासना करे, और उसी परमेश्वर के द्वारा बताए हुए पवित्र स्थान, बलि, याजकत्व एवं नैतिक नियम के अनुसार उपासना करे। नबियों का स्वर भी ऐसा ही था जैसा इतिहास के लेखक का था। उत्तरी राज्य के संबंध में हम यह देखते हैं कि धीरे-धीरे परमेश्वर की योजना से वह गिरता गया और परमेश्वर के न्याय दण्ड के कारण वह पहिले ही समाप्त हो गया। अतः इतिहास का लेखक उत्तरी राज्य के समूचे इतिहास का वर्णन नहीं करता। उसकी दृष्टि में यहूदा ही सच्ची इस्राएल जाति है, जिसके माध्यम से परमेश्वर का अभिप्राय क्रियाशील है। इसलिए इतिहास की पुस्तकें वास्तब में 'मंडली का इतिहास' हैं, जिनका मूल विषय है---परमेश्वर का उसकी उपासक जाति से संबंध।

६. इतिहास की पुस्तकों का ऐतिहासिक मूल्य

बड़ी-बड़ी संख्या की ओर इतिहास की पुस्तकों का विशेष झुकाव लगता है। अबिय्याह के पास ४००,००० छटे योद्धा थे। उन्हें यारोबाम के ८००,००० शूरवीरों से लड़ना पड़ा। यारोबाम के ५००,००० शूरवीर मारे गए। (२ इ. १३ : ३, १७)। २ इ. १७ : १४–१८ में यहोशापात के पांच सेनानायकों का उल्लेख है। यदि उनके सैनिकों की संख्या का जोड़ लगाया जाय तो १,१६०,००० होता है। १ इ. ५ : २१ में रूबेनियों, गादियों और मनश्शे के आधे गोत्र, अर्थात अढ़ाई गोत्रों ने हग्रियों के १००,००० आदमी, ५०,००० ऊंट, २५०,००० भेड़-बकरी और २००० गधे ले लिए। १ इ. १२ : २३–२६ में जो लोग दाऊद को राजा बनाने आए और जिन्होंने हेब्रोन में तीन दिन तक खाया पीया उनकी कुल संख्या ३४०,८२२ पुरुष होती है। इस दृष्टि से शमूएल की पुस्तकों से असाम्य की ओर ध्यान आकर्षित होता है। २ श. ८ : ४ और १० : १८ में दाऊद ने १,७०० सवार छीन लिये और ७०० रथियों को मार डाला, परंतु १ इ. १८ : ४ ओर १६ : १८ के उसी सदृश वर्णन में दाऊद ७,००० सवार छीन लेता है और ७००० रथियों को मारता है। २ श. २४:२४ में दाऊद ने अरौना के खलिहान और बैलों को चाँदी के ५० शकेल में मोल लिया, परंतु १ इ. २१ : २५ में उसने सोने के ६०० शेकेल में मोल लिया।

इन विशाल संख्याओं और अतीत के गौरव को अतिरंजित करने के कारण, इतिहास की पुस्तकों के ऐतिहासिक मूल्य को संदेह की दृष्टि से देखा गया है। फिर भी यह सच है कि इतिहास से शमूएल में प्रस्तुत जानकारी की कभी-कभी ऐसी पूर्ति होती है जिससे यह पता चलता है कि लेखक स्वतंत्र और विश्वसनीय मूल स्रोतों का उपयोग कर रहा है (उदा० सिय्योनगढ़ को ले लेना, २ श. ५ : ६–१० और १ इ. ११ : ४–९)। अतएव यदि हम इस बात की संभाव्यता को मान्य करें कि बड़ी-बड़ी संख्याएँ देना एक प्रकार की साहित्यिक परिपाटी थी, तो कुछ विवेकपूर्ण विचार के साथ इतिहास की पुस्तकों की ऐतिहासिक विश्वसनीयता को स्वीकार किया जा सकता है। हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि इतिहास का रचयिता भक्त पहले था, इतिहास लेखक बाद में। उसने अपने युग में प्रचलित परंपरा एवं इतिहास की शैली स्वीकार की और उसके माध्यम से उसने परमेश्वर का वचन प्रकट किया।

७. धर्म शिक्षा

इतिहास की पुस्तकों से यह शिक्षा मिलती है कि परमेश्वर सर्व उपस्थित है (२ इ. २ : ६); कि परमेश्वर सर्वज्ञानी है (२ इ. १६ : ९) और सर्वसामर्थी है (१ इ. २९ : १२; २ इ. २० : ६); कि सब वस्तुएं परमेश्वर की हैं और मनुष्य केवल वही उसे भेंट चढ़ा सकता है जो उसने परमेश्वर से प्राप्त किया है (१ इ. २९ : ११–१४)। इस संसार में परमेश्वर क्रियाशील है। वह स्वर्ग में है और जाति-जाति के सब राज्यों के ऊपर प्रभुता करता है (१ इ. २९ : ११; २ इ. २० : ६)। जो घटनाएँ होती हैं उनमें उसकी इच्छा प्रबल है (२ इ. २५ : ८)। यह दृष्टव्य है कि इन पुस्तकों में परमेश्वर की सर्वसामर्थी इच्छा (absolute will) और अनुज्ञात्मक (permissive) इच्छा में कोई अंतर नहीं किया गया है। उदाहरणार्थ, जब रहूबियाम ने अपनी प्रजा की विनती स्वीकार न की, और राज्य का विभाजन कर दिया, तो उसके इस दुष्कर्म को परमेश्वर की इच्छा के अनुरूप माना गया और यह कहा गया कि 'इसका कारण यह है, कि जो वचन यहोवा ने शीलोवासी अहिय्याह के द्वारा कहा था, उसको पूरा करने के लिये परमेश्वर ने ऐसा ही ठहराया था" (२ इ. १० : १५; दे. २ इ. २२ : ७, ५ : २०)। इतिहास का लेखक यह स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करता है कि परमेश्वर बुराई के लिये दण्ड और भलाई के लिये पुरस्कार देने के द्वारा अपनी नैतिक व्यवस्था को बनाए रखता है; लेखक केवल इसी संसार की गतिविधियों तक परमेश्वर के इस नैतिक नियम

को सीमित करता है। मृत्योपरांत जीवन भी परमेश्वर की इस नैतिक व्यवस्था के अंतर्गत है और उद्धार की एक और बड़ी ईश्वरीय योजना है––इन तथ्यों को प्रस्तुत करने का काम अधिक पूर्ण प्रकाशन के लिये शेष रह गया।

इतिहास की पुस्तकों से हमें यह भी शिक्षा मिलती है कि परमेश्वर ने इस्राएल जाति को विशेष रूप से चुना कि वह परमेश्वर की निज प्रजा हो (१ इ० ११ : २)। इब्राहीम के साथ जो वाचा परमेश्वर ने बाँधी, वह सदा की वाचा थी (१इ० १६ : १६ ऋ०)। अपनी योजना के अंतर्गत परमेश्वर ने दाऊद को चुना (१इ० ११ : २, ३), और तब सुलेमान को चुना (१इ० १७ : ११, १२), और आशिष दी कि दाऊद का घराना सदैव बना रहे (१ इ. १७ : २७) कभी कभी ऐसा प्रतीत होता है कि यह आशिष इस्राएल की विश्वस्तता पर निर्भर है (२ इ. ६ : १६), जिसके अभाव के कारण राज्य की राजनीतिक सत्ता का ह्रास हुआ (२ इ. २६ : १३–१७)। कभी कभी यह आशिष किसी शर्त पर निर्भर नहीं है, वरन केवल परमेश्वर के अनंत अभिप्राय के अन्तर्गत है (२ इ. १३ : ५), जिस अर्थ में वह दाऊद के पुत्र, ख्रिस्त में पूर्ण होती दिखाई देती है (लू. १ : ३७)। परमेश्वर ने अपनी वाचा की महत्ता एवं प्रतिज्ञाओं को बनाए रखने के लिये अपने लोगों के मार्गदर्शन, चितौनी एवं ताड़ना के निमित्त शमूएल, नातान और गाद से लेकर यिर्मयाह तक क्रम से नबियों को भेजा।

यद्यपि परमेश्वर ने इस्राएल जाति के साथ वाचा बाँधी, परंतु परमेश्वर की आशिष एवं सार्वलौकिक योजना के अंतर्गत सभी जातियाँ और राष्ट्र हैं। सोर का राजा हूराम और शीबा की रानी परमेश्वर की बड़ाई करते हैं (२ इ. २ : ११–१२, ९ : ८)। सुलैमान ने जिस मंदिर की प्रतिष्ठा की, वह समस्त जातियों के लिये आराधना का भवन ठहराया गया (२ इ. ६ : ३२–३३)।

तेईसवां अध्याय

एज्रा—नहेम्याह

१. शीर्षक और प्रामाणिक धर्मशास्त्र में स्थान

नहेम्याह के अन्त में जो मसोरेती टिप्पणी है, उससे यह इंगित होता है कि एज्र और नहेम्याह दोनों एक ही पुस्तक थी। उस टिप्पणी में कहा गया है कि एज्रा की पुस्तक का मध्य पद वह है जो वर्तमान नहेम्याह का ३:३२ पद है। यूनानी अनुवाद में पुस्तक के दो भाग हैं—इस बात की पुष्टि आरिगेन ने तीसरी शताब्दी के आरम्भ में की। परन्तु किसी भी इब्रानी पाँडुलिपि में १४४८ ई० स० के पहले यह विभाजन देखने में नहीं आता। उन सब इब्रानी बाइबलों में जो हमें अभी मिलती हैं एज्रा और नहेम्याह दो पुस्तकें हैं। अंग्रेजी बाइबलों में इन नामों को माना गया है। हिन्दी में दो पुस्तकों को अलग-अलग रखा गया है।

सेपत्वागिंता में दोनों पुस्तकों की विषय-सामग्री (कुल २३ अध्याय) एक ही पुस्तक में है। उसका शीर्षक है २ एस्द्रस। एस्द्रस इब्रानी एज्रा का यूनानी रूप है। १ एस्द्रस (या एस्द्रस अ) भी एक पुस्तक है। वह केवल यूनानी में (अर्थात, सेपत्वागिंता) पाई जाती है। इसलिए उसे "यूनानी एस्द्रस" कहा जाता है। विषय सामग्री की दृष्टि से "यूनानी एस्द्रस" की सामग्री वही है जो एज्रा, नहेम्याह में पाई जाती है, परंतु उसमें दारा राजा के तीन अंगरक्षकों के बीच में होनेवाली एक बौद्धिक प्रतियोगिता भी है और उस प्रतियोगिता में तीनों में से एक जोरोबाबेल (जरुब्बाबेल) विजयी होता है। यह बात स्पष्ट नहीं है कि यह जोरोबाबेल और एज्रा २:२ का जरुब्बाबेल दोनों एक ही व्यक्ति है।

वुल्गाता में एज्रा की पुस्तक (१० अध्याय) को १ एस्द्रस नाम दिया गया है, और नहेम्याह की पुस्तक को 'नहेम्याह की पुस्तक जो २ एस्द्रस भी कहलाती है, कहा गया है। वुल्गाता के क्लेमेंती संस्करण में प्रामाणिक धर्मशास्त्र के अंतर्गत नहीं, वरन् परिशिष्ट में ३ और ४ एस्द्रस पुस्तकें हैं। ३ एस्द्रस वही पुस्तक है जो सेपत्वागिंता में 'यूनानी एस्द्रस' है जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है (वह सेपत्वागिंता में १ एस्द्रस कहलाती है); और ४ एस्द्रस एक और ही

पुस्तक है जो सेपत्वागिंता में सम्मिलित नहीं है। प्रोतेस्तंत अपक्रिफा (ज्ञानवर्धक ग्रंथ) में वुल्गाता की ४ एस्द्रस को '२ एस्द्रस' कहा गया है। उसमें एज्रा के सात दर्शनों का अभिलेख है, जो निर्वासन के समय उसने बाबुल में देखे थे। वह एक संकलित ग्रंथ माना जाता है: ३ से १४ अध्याय मूल यहूदी हैं और १, २, १५ और १६ वें अध्याय ख्रिस्तियों द्वारा जोड़े गए हैं।

इब्रानी बाइबल में एज्रा और नहेम्याह केतुबीम (लेखों) के अन्तर्गत रखे गए हैं, और १ और २ इतिहास के पहले रखे गए हैं। सप्तति अनुवाद, वुल्गाता और अंग्रेजी बाइबलों में एज्रा और नहेम्याह को ऐतिहासिक पुस्तकें माना है और १ और २ इतिहास के बाद स्थान दिया गया है। यही क्रम हिन्दी बाइबल में भी रखा गया है।

२. विषय-सामग्री का सारांश

एज्रा की पुस्तक में यह बतलाया गया है कि निर्वासित यहूदी शेशबस्सर (जरूब्बाबेल) के समय बाबुल से लौटे और उन्होंने यरूशलेम में अपने परमेश्वर की उपासना पुनः स्थापित की। उसमें यह भी बताया गया है कि एज्रा आया और उसने सुधार किए।

नहेम्याह की पुस्तक में यह बताया गया है कि अर्तक्षत्र राजा का पियाऊ नहेम्याह यरूशलेम आया, यरूशलेम की शहरपनाह को फिर से बनवाया, और धर्मसुधारों में सक्रिय भाग लिया।

३. रूपरेखा

एज्रा—परमेश्वर की व्यवस्था के अनुसार पुनरुद्धार

(१) निर्वासन के पश्चात् पहिला प्रत्यागमन (१–६) ई. पू. ५३७

(क) कुस्रू की घोषणा से लौटने की अनुमति (१ : १–४)।

(ख) शेशबस्सर (जरुब्बाबेल ?) की प्रधानता में प्रथम समूह का लौटना (१ : ५–११)।

(ग) लौटे हुए यहूदियों की गिनती, चाहे फिर वे जरुब्बाबेल आदि के साथ आए हों, अथवा नहेम्याह आदि के साथ (२); लौटने वालों का वर्णन वंशों के अनुसार (२ :२–१९), स्थानों के अनुसार (२ : २०–३५), और धार्मिक दायित्व के अनुसार; अर्थात् याजक, लेवी, नतीन, सुलैमान के दास (२ : ३६–५८) तथा अनिश्चित वंश—किया गया है (२ : ५९–६३)।

(घ) साधारण उपासना की पुनर्स्थापना (३–६) : येशू और जरुब्बाबेल के नेतृत्व में वेदी का बनाया जाना (३ : १–७); मन्दिर की नींव का डाला जाना (३ : ८–१३);
[विरोध का वर्णन (४) : कुसू राजा के समय से दारा राजा के समय तक (४ : १–५); क्षयर्ष राजा के काल में (४ : ६); अर्तक्षत्र राजा के काल में (४ : ७–२३); इस प्रकार काम बंद हो गया (४ : २४);]
हाग्गै और जकर्याह नबियों की नबूवतों से कार्य पुनः आरंभ होता है और तत्तनै अधिपति द्वारा प्रश्न (५); दारा राजा को कुसू की आज्ञा या घोषणा पुस्तकालय में मिलती है और वह मंदिर के पुर्ननिर्माण की आज्ञा देता है और मंदिर फिर से बनाया जाता है (६ : १–१८), फसह का मनाया जाना (६ : १६–२२)।

(२) एज्रा के साथ निर्वासितों का लौटना (७–१०) ई. पू. ४५८.

(क) एज्रा का यरूशलेम को आना (७ : १–१०)

(ख) अर्तक्षत्र राजा का पत्र जिसमें एज्रा को लौटने की अनुमति दी गई थी (७ : ११–२६)।

(ग) एज्रा की यात्रा के संस्मरण (७: २७–८ : ३६): एज्रा की कृतज्ञता (७ : २७–२८); एज्रा के साथियों के नाम (८ : १–१४); अहवा से यरूशलेम की यात्रा की योजना (८ : १५–३६)।

(घ) अन्य जाति की स्त्रियों के साथ विवाह का त्याग (६–१०): इस पाप के संबंध में संकट और खुले अंगीकार के संबंध में एज्रा के संस्मरण (६); लोगों का विवेक जागृत होता है और इस पाप को छोड़ते हैं (६ : १–१० : १७); अपराधियों की सूची (१० : १८–४४)।

नहेमायाह—यरूशलेम का पुर्ननिर्मा

(१) राज्यपाल नहेमायाह का कार्यकाल (१–७)ई० पू० ४४५.

(क) यरुशलेम के समाचार पर नहेमायाह का विलाप (१)

(ख) राज्यपाल नियुक्त होकर नहेमायाह यरुशलेम आता है (२) नहेमायाह अर्तक्षत्र राजा का पियाऊ था। नहेमायाह की प्रार्थना स्वीकार की जाती है (२:१–८); यरूशलेम पहुँचने

पर वह रात-रात को यरूशलेम की शहरपनाह का निरीक्षण करता है (२:६–२०)।

(ग) शहरपनाह बनाने वालों की सूची (३) दायित्व के विभिन्न विभागों के अनुसार सूची।

(घ) विरोध और कठिनाइयों के उपरांत भी शहरपनाह बन जाती है (४:१–७:४): आसपास के पड़ोसी ठट्ठा करते और धमकी देते हैं, और बनाने वाले इसके लिए सतर्क रहते हैं (४); नहेमायाह आंतरिक सामाजिक बुराइयों के प्रति कदम उठाता है, ब्याज लेना बन्द कराता है (५); सम्बल्लत, तोबियाह और गेशेम के षड़यंत्र (६:१–१४); शहरपनाह का पूरा बन जाना, और रात को द्वारों का बन्द रहना (६:१५–७:४)।

(च) लौटने वाले निर्वासितों की सूची (७ : ५–७३)। यह सूची एज्रा में दी गई सूची के समान ही है (एज्रा० २:२–७०)।

(२) एज्रा और नहेमायाह के अन्य महान कार्य

(क) धार्मिक सुधार पूरा किया गया (८–१०); एज्रा लोगों को व्यवस्था सुनाता है (८ : १–१२); झोपड़ियों का पर्व मनाया जाता है (८ : १३–१८); प्रार्थना सहित पश्चाताप दिवस (९ : १–३७); व्यवस्था पालन, अन्य जातियों के साथ विवाह के त्याग, सबतपालन, सातवें वर्ष का पालन और भवन की उपासना के लिये नियमित दान के संबंध में जिन्होंने वाचा बांधी उनकी सूची (९ : ३८–१० : ३९)।

(ख) चिट्ठियाँ डालकर यरूशलेम में लोगों का बसाया जाना (११ : १–२) : दस में से एक यरूशलेम में बसे।

(ग) लोगों की विभिन्न प्रकार की सूची (११ : ३–१२ : २६); यरूशलेम के निवासियों की सूची (११ : ३–२४) (दे० १ इ० ९ : ३–१७); यहूदा के गांवों में रहनेवालों की (११ : २५–३६); उन याजकों और लेवियों की सूची जो जरुब्बाबेल के साथ लौटे थे; येशू (यहोशू) से यद्दू तक महायाजक, और घरानों के समकालीन मुख्य पुरुषों की सूची (१२ : ४४–४७)।

(३) नहेमायाह की यरूशलेम को दूसरी यात्रा (१३) ई० पू०४३३

(क) व्यवस्था के अनुसार अम्मोनी और मोआबी परमेश्वर की सभा में न आने पाएं (१३ : १–३)।

(ख) दूसरी यात्रा के संबंध में नहेमायाह के संस्मरण (१३ : ४-३१): मंदिर की कोठरी में से तोबिय्याह का निकाला जाना (१३ : ४–९); लेवियों के भाग के लिए दान लिया जाना (१३ : १०–१४); सबत के दिन काम बंद कराना (१३ : १५–२२); अन्य जातियों के साथ विवाह करने वालों को डांटना (१३ : २३–२७); सम्बल्लत के दामाद को भगाना (१३ : २८–३१)।

४. रचना, रचयिता, रचना–तिथि

एज्रा-नहेमायाह की पुस्तकों के पठन से यह स्पष्ट होता है कि लेखक ने अनेक मूल-स्रोतों का उपयोग किया। एज्रा ४ : ११, १७ में यह कहा गया है कि चिट्ठी की नकलें बनाई गई हैं। यदि ७ : २८ की तुलना ७ : १० से की जाए तो मूल स्रोत में अंतर जान पड़ता है। वैसे ही यदि नहेमायाह ७ : १ और ८ : ९ की तुलना की जाए तो वहाँ भी मूल स्रोत में अंतर जान पड़ता है। हमें निम्मांकित तीन मूलस्रोत जान पड़ते हैं :

(१) एज्रा के संस्मरण (एज्रा. ७ : २७–९ : १५)

(२) नहेमायाह के संस्मरण (नहे. १ : १–७ : ७३; १२ : २७–१३ : ३१)।

(३) अरामी प्रलेख (एज्रा ४ : ७६–६ : २८; ७ : १२–२६)। पुस्तक के ये अंश अरामी भाषा में लिखे हैं। अन्य अंश इब्रानी में हैं। इन अरामी अंशों में यरूशलेम की शहरपनाह बनाने के संबंध में रहूम के राजा अर्तक्षत्र के समक्ष विरोध (एज्र. ४ : ८–१६), अर्तक्षत्र का उत्तर (४ : १७–२२), दारा राजा को लिखा गया तत्तेनै का पत्र (५ : ७–१७), दारा का उत्तर (६ : १–१२), और मंदिर के समर्पण का वर्णन सम्मिलित हैं (६ : १३–१८)।

(४) इब्रानी प्रलेख, जिसमें कुस्रू की घोषणा (१ : २–४); लौटनेवाले निर्वासितों की सूची (एज्रा २ : १–७० और नहे. ७ : ६–७२, एज्रा ८ : १–१४); अन्यजाति स्त्रियों से विवाह करने वालों की सूची (१० : १८–४४); शहरपनाह बनाने वालों की सूची (नहे. ११ : ३–३६); और जरुब्बाबेल के साथ लौटनेवाले याजक और लेवियों की सूची सम्मिलित है।

सामान्य मान्यता यह है कि एज्रा-नहेमायाह और १ और २ इतिहास का लेखक एक ही व्यक्ति था। वह अज्ञात है। अतः वह 'इतिहास लेखक' कहलाता

है। इस मान्यता के प्रमाण में यह तथ्य प्रस्तुत किया जाता है कि २ इतिहास का अंतिम परिच्छद (२ इति. ३६ : २२–२३) और एज्रा का पहला परिच्छेद (एज्र. १ : १–३) दोनों एक ही हैं। इब्रानी बाइबल में एज्रा-नहेमायाह का स्थान इतिहास की पुस्तक के पहले है। अतः यह माना जाता है कि ये पद, जो क्रमबद्ध विवरण में थे, एज्रा-नहेमायाह की भूमिका तथा २ इतिहास के उपसंहार दोनों के लिए आवश्यक हुए। इस मान्यता का दूसरा प्रमाण पुस्तकों की शैली और विषयों के प्रति रुचि के साम्य में हैं। दोनों पुस्तकों में सांख्यिकीय और आनुवंशिकी सूचियों को महत्व दिया गया है। दोनों में उपासना-विधि की बातों के प्रति रुचि प्रदर्शित की गई है। दोनों में इब्रानी से सरलतापूर्वक अरामी भाषा का उपयोग किया गया है। इन दोनों तर्कों को पूर्ण पुष्ट प्रमाण नहीं माना जा सकता और इस मान्यता के संबंध में कोई परंपरा नहीं है। फिर भी इसके विरुद्ध अन्य कोई मान्यता भी नहीं है।

तिथि का निर्धारण इस प्रकार किया जाता है : नहेमायाह १२ : ११, २२ में महायाजकों की सूची यद्दू से अंत होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि यद्दू, महायाजक फारसी राजा दारा का समकालीन था (नहे. १२ : २२)। योसेपस के अनुसार (एन्टीक्विटीज़ ११, ७, २; ८, २ क्र०) यह दारा राजा, दारा तृतीय कोदोमनुस था (ई० पू० ३३६–३३१)। लेखक कहता है कि एज्रा और नहेमायाह का समय बहुत पहले था (नहे० १२ : २६, ४७), और 'फारस के राजा' शब्दों के प्रयोग (एज्र० १:१,८, इत्यादि) से यह संकेत होता है कि फारसी राज्य समाप्त हो चुका था। इसलिए लेखक की तिथि यूनानी काल (अर्थात ई० पू० ३३१) में निर्धारित की जाती है। कदाचित ई० पू० ३०० में लेखक ने इसकी रचना की।

५. आलोचनात्मक समस्याएं

एज्रा-नहेमायाह में कई आलोचनात्मक समस्याएं हैं :

(१) क्या शेशबस्सर (एज्र०१:८ और जरुब्बाबेल (एज्र०२:२) दोनों एक ही व्यक्ति हैं ? इन दोनों को एक मानने के पक्ष में ये तथ्य हैं :दोनों के संबंध में बताया गया है कि उन्होंने मन्दिर की नींव डाली (३:८ जरुब्बाबेल; ५:१६ –शेशबस्सर)। शेशबस्सर को प्रधान कहा गया है (१:८), और जरुब्बाबेल भी प्रधान इब्रानी नासी (nasi) या इसीलिए कि वह यहूदा के राजवंश से था (१इ० ३:१९)। दोनों को 'प्रधान' (इब्रानी पेहा Pehah) कहा गया है (एज्र० ५:१४–शेशबस्सर, हाग्गै१:१–जरुब्बाबेल)।

इन दोनों को एक मानने के विपक्ष में ये तर्क हैं : एक ही यहूदी नेता को दो बाबुली नाम देना विचित्र जान पड़ता है। शेशबस्सर और जरुब्बाबेल दोनों नाम बाबुली नाम हैं। एज्रा० ५:२,१४,१५ में जरुब्बाबेल और येशू मंदिर बनाने का काम जिस समय करते हैं, उस समय से भिन्न समय शेशबस्सर की गति विधियों का हैं। इस प्रकार शेशबस्सर और जरुब्बाबेल दोनों भिन्न व्यक्ति होने चाहिए। यह बड़ा सबल तर्क है। संभव है कि शेशबस्सर एक फारसी अधिकारी हो जो जरुब्बाबेल से पहले उस क्षेत्र का अधिपति हो और उसने जरुब्बाबेल को अपना कार्यभार सौंपा हो। कुछ लोग शेशबस्सर और १ इ० ३:१८ में जरुब्बाबेल के चाचा शेशबस्सर को एक मानते हैं।

(२) जो लोग यरूशलेम को लौटे उनकी सूची दो स्थानों पर थोड़े परिवर्तन साथ क्यों दी गयी है (एज्रा० २:१—७० और नहे० ७:६ –७३)? इसके साथ ही कुछ परिवर्तनों के साथ यही सूची सप्तति अनुवाद की पुस्तक ३ एस्द्रस (प्रोतेस्तंत ज्ञानवर्द्धक ग्रंथ में (१ एस्द्रस ५:७—४५) में भी दी गई है। नहेमायाह ७ में यह सूची नहेमायाह के संस्मरण के अन्तर्गत है। क्या यही उसका मूल स्थान था ? क्या एज्रा २ में दी हुई सूची लेखक ने पुरालेखों (archives) से ली, और फिर भी नहेमायाह के संस्मरण में दूसरी सूची को बने रहने दिया ?

(३) मंदिर की नींव कब डाली गई ? क्या लौटने के पश्चात दूसरे वर्ष में जब कुस्रू राजा था (एज्रा ३ : ८) अथवा दारा राजा के दूसरे वर्ष में (एज्रा. ५ : २ और हाग्गै १ : १) ? साधारणतया यह माना जाता है कि निर्वासन से लौटने के पश्चात ही कार्य आरंभ कर दिया गया था, परन्तु विरोध के कारण काम बंद करना पड़ा और तब दारा राजा के काल में फिर से शुरू करना पड़ा।

(४) तिथिक्रम की दृष्टि से एज्रा ४ : ७—२३ असंगत है। ४ : १—५ का संबंध कुस्रू के (ई० पू० ५३९—५३०) और दारा प्रथम (ई० पू० ५२२—४८६) के राज्यकाल से है; ४ : ६ का संबंध अहासुरस (क्षयर्ष प्रथम ई० पू० ४८६—४८५) से है; और ४ : ७—२३ का संबंध अर्तक्षत्र प्रथम लोंगीमनुस (ई०पू० ४६५—४२४) के राज्य काल से है। इसके बाद ४ : २४ में दारा प्रथम के काल में पाठक ले जाया जाता है तत्पश्चात् अध्याय ५ में उस घटना का वर्णन है जो ई० पू० ५२० में हुई (एज्रा ५ : १, ६)। ४ : १२, १६ में यरूशलेम की शहरपनाह को बनाने का वर्णन है, परंतु यह अध्याय ५ में वर्णित मंदिर-निर्माण के ७० वर्ष पश्चात ही हुआ था। इस क्रमभंग के संबंध में एक स्पष्टीकरण यह दिया जाता है कि लेखक चौथे अध्याय के आरंभ में शत्रुओं

के विरोध का वर्णन करने लगा और विरोध के शेष अभिलेखन के वर्णन की ओर बहक गया। दूसरा स्पष्टीकरण यह दिया जाता है कि संभाव्यतः यरूशलेम का आंशिक ध्वंस ई० पू० ४८५ में एदोमी एवं अन्य लोगों द्वारा किया गया, तब वह फिर से बनाया गया।

(५) नहेमायाह ८–१० में एज्रा के व्यवस्था-वाचन और उसके फलस्वरूप पुनर्समर्पण का वर्णन है। यह अंश विवरण के क्रम को भंग करता है, क्योंकि इसके पहले का विवरण और बाद का विवरण दोनों यरूशलेम में लोगों के बसाये जाने से संबंधित है। इसके अतिरिक्त इस अंश का एज्रा में अभाव खटकता है। एज्रा की पुस्तक में जो एज्रा की कथा है उसकी यह अंश अच्छी पूर्ति करता है। यह प्रयास किया गया है कि नहेमायाह ८–१० के कुछ भाग को एज्रा ७ के बाद और कुछ को एज्रा १० के बाद रखा जाए; अथवा एज्रा ८ के बाद; अथवा एज्रा १० के बाद रखा जाए। अन्य लोगों का विचार है कि यह अंश अपनी जगह, नहेमायाह के संस्मरण के अंतर्गत ठीक है।

(६) वह अर्तक्षत्र राजा कौनसा था जिसके राज्य के सातवें वर्ष में एज्रा यरूशलेम आया (एज्रा. ७ : ७)? सामान्य मान्यता यह है कि वह अर्तक्षत्र प्रथम लोंगीमनुस था (ई० पू० ४६५–४२४)। अतः एज्रा ई० पू० ४५८ में यरूशलेम आया। अन्य विद्वानों की मान्यता यह है कि वह अर्तक्षत्र द्वितीय मनेमोन था (ई.पू. ४०४–३५८)। इस स्थिति में एज्रा लगभग ई०पू० ३९८ में आया होगा, अर्थात नहेमायाह के आने के बाद। नहेमायाह के आने की तिथि ई० पू० ४४५ है और वह बहुत प्रामाणिक है। इस सामान्य मान्यता से कि एज्रा ई० पू० ४५८ में आया और नहेमायाह ई० पू० ४४५ में यह सुविधा होती है कि यह मान्यता परंपरा से और एज्रा एवं नहेमायाह की पुस्तकों के वर्तमान क्रम से सुसंगत है।

६. धर्म शिक्षा

इतिहास लेखक की दृष्टि में तो एज्रा और नहेमायाह की पुस्तकें बहुत अपूर्ण हैं क्योंकि घटना-क्रम के संबंध में कई समस्याएं हैं और कुछ काल ऐसे हैं जिनके सम्बंध में कोई अभिलेख नहीं है। परन्तु इन पुस्तकों में भी बाइबल की अन्य ऐतिहासिक पुस्तकों के समान लेखक की रुचि घटनाओं के तथिकक्रम में इतनी नहीं जितनी परमेश्वर के लोगों के बीच उसकी इच्छा और अभिप्राय के उद्घाटन करने में है। लेखक का उद्देश्य यह वर्णन करना है कि शेषांश (Remnant) का पुनर्वास कैसे हुआ; पूर्वजों को जो देश प्रतिज्ञा में दिया

गया था उसमें वाचागत सभ्यता का पुनसंगठन कैसे हुआ। इस उद्देश्य के संदर्भ में ही हमें इन पुस्तकों की धार्मिक शिक्षा मिलती है।

हमें यह शिक्षा मिलती है कि परमेश्वर अपनी प्रतिज्ञा के प्रति सच्चा है और उसने इतिहास का प्रवाह ऐसा बनाया जिससे उसके लोगों का निर्वासन से लौटना सम्भव हो। फारस के राजा की आज्ञा से निर्वासितों के लौटने और मंदिर के पुनर्निमाण के लिये मार्ग खुल जाता है (एज्र १ : ३)। कुछ लोग थे जो विश्वास में पक्के बने हुए थे और वे लौटने के लिये तैयार हो जाते हैं। एज्रा के लौटने के वर्णन में परमेश्वर का पूर्व प्रबन्ध विशेष रूप से दिखाई देता है। एज्रा परमेश्वर पर पूर्णतया भरोसा करता है और विनम्र भरोसे की भावना में कहता है, "हमारा परमेश्वर अपने सब खोजियों पर, भलाई के लिये कृपादृष्टि रखता है" (एज्र. ८ : २२)। नहेमायाह के वर्णन में भी हम देखते हैं कि उसकी मौन प्रार्थना राजा द्वारा इसलिये ग्रहण की गई कि "मेरे परमेश्वर की कृपादृष्टि मुझ पर थी" (नहे. २ : ८)।

इन पुस्तकों से यह शिक्षा मिलती है कि हम पहले परमेश्वर के राज्य और उसकी धार्मिकता की खोज करें (मत्त. ६ : ३३)। पहला काम जो निर्वासितों ने लौटकर किया वह था होमबलि के लिये वेदी बनाना (एज्र. ३ : २), जिससे नियमित उपासना की स्थापना की जा सके। इसके पश्चात मंदिर बनाने का बड़ा और कठिन काम हाथ में लिया गया। नहेमायाह द्वारा शहरपनाह बनाने का काम भी उस युग में परमेश्वर की योजना के अनुसार था। यह उस समय में परमेश्वर के राज्य और उसकी धार्मिकता की खोज थी (नहे. १२ : ४०, ४३, ४५)। समाज की पुनर्रचना में भी परमेश्वर ही को केन्द्रीय स्थान था।

इन पुस्तकों में विश्वास की शुद्धता पर जोर दिया गया है। परमेश्वर की व्यवस्था मानने में बड़ी तत्परता लोगों ने दिखाई। एज्रा के व्यवस्था-पाठ के पश्चात् ही झोंपड़ियों का पर्व मनाया गया, पाप का सामूहिक अंगीकार किया गया, और वाचा पर छाप दी गई, (नहे. ८—१०)। उस समय अन्य जातियों की स्त्रियों से विवाह करना सच्चे ईश्वर विहीन वातावरण से मानो समझौता करना था, इसलिये एज्रा और नहेमायाह के सुधारों के अन्तर्गत इस प्रथा को एक नैतिक समस्या माना गया (नहे. १३ : २३—२७; एज्रा १० : २—४ १०-१२)। चिरंतन सत्य यह है कि परमेश्वर की आज्ञा मानने का स्थान प्रेम या भक्ति से सर्वोपरि है।

चौबीसवां अध्याय

एस्तेर

१. शीर्षक और प्रामाणिक धर्मशास्त्र में स्थान

इस पुस्तक का नाम उसके प्रधान चरित्र के नाम पर रखा गया है। प्रधान चरित्र एस्तेर है। इब्रानी, सप्तति अनुवाद, वुल्गाता और समस्त आधुनिक अनुवादों में यही नाम है। हिन्दी में भी यही नाम है।

इब्रानी बाइबल में एस्तेर की पुस्तक को पाँच पर्व-खर्रों (मेगिल्लोत) में से एक माना जाता था। पूरीम के पर्व पर यह काम में लिया जाता था। यह पर्व अदार महीने की पूर्णिमा (फरवरी-मार्च की पूर्णिमा) को होता था।

यह पुस्तक दो रूपों में उपलब्ध है। एक इब्रानी का और दूसरा सेपत्वागिंता का रूप। सेपत्वागिंता का रूप कुछ लम्बा है। चतुर्थ शताब्दी ई० में जब येरोम ने लतीनी में धर्मशास्त्र का अनुवाद किया (वुल्गाता), तो उसने इन दोनों रूपों में जो सामग्री एक सी थी उसे लिखा। तत्पश्चात् उसने उस सामग्री को, जो सेपत्वागिंता या यूनानी अनुवाद में अतिरिक्त सामग्री थी, परिशिष्ट में रख दिया। उसने इब्रानी रूप की अतिरिक्त सामग्री को परिशिष्ट में नहीं रखा। इस प्रकार हमारे समक्ष अध्याय १ : १ से १० : ३ तक 'एस्तेर की पुस्तक' है। और १० : ४ से १६ : २४ तक 'शेष एस्तेर' है। 'शेष एस्तेर' तोबित-मकाबी समूह की पुस्तक है, और इसे अन्य धर्मशास्त्रीय अथवा अपक्रिफा या ज्ञानवर्द्धक ग्रंथ में सम्मिलित किया जाता है। यह सम्मिलित करना इस पर आधारित है कि इस पुस्तक को प्रमाणित माना जाए या न माना जाए।

जब यहूदी लोग विभिन्न लेखों को प्रामाणिक धर्मशास्त्र मानने के संबंध में विचार-विमर्श कर रहे थे तो एस्तेर की पुस्तक के संबंध में कुछ शंकाएँ थीं। इसका कारण यह था कि इस पुस्तक के इब्रानी रूप में धार्मिक दृष्टि-बिन्दु का अभाव था। तो भी ई० स० ७० में जामनिया में फ्रांसीसियों की जो अकादमी हुई उसमें इसे प्रामाणिक धर्मशास्त्र माना गया। ख्रिस्तियों में एस्तेर की पुस्तक को सदा ही प्रामाणिक धर्मशास्त्र के अंतर्गत स्वीकार किया गया है। यहूदी धर्मशास्त्र को अंतिम रूप दिए जाने के पश्चात शेष एस्तेर का स्थान सदा ही शंकास्पद रहा है।

२. विषय-सामग्री का सारांश

फारस के राजा क्षयर्ष के दरबार में एस्तेर पटरानी चुनी जाती है। क्षयर्ष के प्रधान पदाधिकारी हामान ने यहूदियों को नष्ट करने की योजना की। परन्तु परमेश्वर की योजना के अंतर्गत एस्तेर अपने लोगों के छुटकारे का साधन बनती है। पूरीम पर्व में इस महान छुटकारे को आनंद से मनाया गया।

३. रूपरेखा

एस्तेर—अपने लोगों के छुटकारे के निमित्त एस्तेर एक माध्यम बनी (नीचे दी हुई रूपरेखा में यूनानी अनुवाद सेपत्वागिता के क्रम का अनुसरण किया गया है, परन्तु उन्हीं भागों को क्रमबद्ध संख्याएँ दी गई हैं जो इब्रानी बाइबल में हैं। बाइबल सोसायटी के प्रकाशनों में अध्यायों का जो क्रम है, चाहे वह बाइबल संबंधी हो या अपक्रिफा संबंधी, उसी क्रम का अनुसरण किया गया है। कोष्टकों [ ] के अंतर्गत जो अंश दिए गए हैं वे सेपत्वागिता में ही मिलते हैं)।

(१) यहूदियों के विनाश की जोखिम (१–४)

[मोर्दकै स्वप्न में दो अजगर देखता है और यह भी देखता है कि परमेश्वर एक छोटे जल स्त्रोत के द्वारा धार्मिक जाति का छुटकारा करता है। (११ : २–१२)।

गबथा और थर्रा (विनाश और तेरेश) नामक दो खोजों के षडयंत्र का मोर्दकै ने भंडाफोड़ किया था (१२ : १–६)]

(क) राजा क्षयर्ष का अपनी पटरानी वशती को पद से उतारना (१)

(ख) एस्तेर पटरानी के लिये चनी जाती है। मोर्दकै उसे राजा के विरुद्ध षडयंत्र की सूचना देता है और एस्तेर राजा को सूचित करती है (२ . १–२३)।

(ग) आमान यहूदियों के सत्यानाश के लिए राजाज्ञा निकलवाता है (३ : १–१५)

[यहूदियों के विरुद्ध राजाज्ञा की नकल (१३ : १–७)–३ : १३ से आगे सम्मिलित की गई]

(घ) मोर्दकै एस्तेर से विनती करता है कि अपने लोगों को बचाए (४ : १७)।

[मोर्दकै परमेश्वर से सहायता के लिये प्रार्थना करता है (१५ : १ –१३)–यह अंश ४ : ८ के आगे सम्मिलित किया गया)। मोर्दकै

की प्रार्थना (१३ : ४–८) और एस्तेर की प्रार्थना (१४ : १–१९ –४ : १७ के आगे (सम्मिलित ।]

(२) यहूदियों का छुटकारा (५–१०)

(क) राजा के क्रोध की जोखिम उठाकर एस्तेर राजा के सामने जाती है। राजा प्रसन्न होकर उसका स्वागत करता है (५ : १–८)।
[राजा के सामने एस्तेर मूर्छित हो जाती है (१५ : ४–१९)– –५ : २ से आगे सम्मिलित]
(ख) मोर्दकै की फांसी के लिये हामान फांसी का खंभा बनवाता है (५ : ९–१४)।

(ग) मोर्दकै की फांसी के लिये हामान को राजा आज्ञा देता है (६ : १–१४)।

(घ) हामान अपने ही बनवाए हुए फांसी-खम्भ पर लटकाया जाता है (७)।

(च) मोर्दकै का प्रधान पदाधिकारी बनाया जाना। एस्तेर की विनती पर यहूदियों के विरुद्ध राजाज्ञा का निरस्त किया जाना (८)।
[राजा की नई आज्ञा (१६ : १–२४)–८ : १२ के आगे सम्मिलित]

(छ) यहूदी अपने शत्रुओं को नष्ट करते हैं और पूरीम का पर्व निर्धारित किया जाता है (९)।

(ज) फारसी राज्य में मोर्दकै का माहात्म्य। यहूदी उसे बहुत बड़ा मानते थे (१० : १–३)।

[मोर्दकै मानता है कि उसका स्वप्न पूरा हुआ। एस्तेर वह छोटा जल स्रोत थी। वह और हामान दो अजगर थे। इस्राइल धार्मिक जाति थी। परमेश्वर को धन्यवाद देने के लिये अदार महीने की चौदहवीं और पंद्रहवीं को पर्व सदा के लिए नियुक्त किया गया (१० : ४ : १३); अनुवादक की टिप्पणी ११ : १]

[टिप्पणी : 'शेष एस्तेर' में मोर्दकै का नाम मार्दोकियुस है।]

४. रचना, रचयिता, रचना तिथि

एस्तेर की पुस्तक दो रूपों में मिलती है। इब्रानी बाइबल में एक रूप है और सेपत्वागिता में दूसरा। आगामी अंश में दोनों के बीच संबंध की समीक्षा की जाएगी। इस अंश में यह प्रस्तुत है कि पुस्तक का इब्रानी रूप सामान्यता

एक पूर्ण साहित्यिक रचना माना जाता है और उसका एक ही लेखक माना जाना चाहिये। यदि इस रूप में से किसी अंश के संबंध में शंका की जाती है तो वह ९ : २० से १० : ३ का अंश है। इस अंश के लिये यह कहा जाता है कि पूरीम के संबंध में जो सामग्री इससे पहिले आई है उससे यह सुसंगत नहीं है। इसके विपरीत अन्य विद्वान यह मानते हैं कि यह अंश कथा की स्वाभाविक पूर्ति है और उससे पर्व अभी तक मनाने के संबंध में स्पष्टीकरण मिल जाता है।

सेपत्वागिंता में जो उसका विस्तृत रूप मिलता है, वह भी अपनी ही दृष्टि से एक पूर्ण साहित्यिक रचना है। लेखक को किस प्रकार अतिरिक्त सामग्री प्राप्त हुई, यह वास्तव में मूल स्रोत और मूल लेखों की समस्या है। इस समस्या का हल चाहे जो हो, यह निश्चित है कि सेपत्वागिंता में जो रूप मिलता है उसमें विषय और रचना की अखंडता और पूर्णता दृष्टिगोचर होती है। उसमें एस्तेर की कथा को मोर्दकै के स्वप्न की पूर्ति स्वरूप वर्णित किया गया है; और उस पूर्ति के स्मरणार्थ पूरीम का पर्व परमेश्वर के प्रति धन्यवाद व्यक्त करता है।

इसका लेखक अज्ञात है। एस. ९ : २० और ९ : ३० में मोर्दकै ने पत्र लिखे और भेजे हैं। इसके आधार पर यह विचार व्यक्त किया जाता है कि इस पुस्तक के लिखने में मोर्दकै का हाथ था। वर्णन करने में प्रथम पुरुषवाचक सर्वनाम का प्रयोग नहीं किया गया है। यदि मोर्दकै इसे लिखता तो यह अपेक्षा की जाती कि वह प्रथम पुरुषवाचक सर्वनाम का उपयोग करेगा। अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है कि मोर्दकै के संस्मरणों का उपयोग किया गया होगा। यह स्पष्ट है कि लेखक फ़ारसी रीति रिवाजों से भली भाँति परिचित था और यह साधारणतया माना जाता है कि लेखक कोई यहूदी व्यक्ति था जो फ़ारसी वातावरण में रहा था।

अंतर्साक्ष्य के आधार पर पुस्तक की तिथि निर्धारित की जाती है। बहिर्साक्ष्य नहीं मिलता। कोई भी ख्रिस्त-पूर्व लेखक इस पुस्तक का उल्लेख नहीं करता। नये नियम में इस पुस्तक से कहीं भी उद्धरण नहीं है। लेखक इस प्रकार लिखता है मानो वह जिन घटनाओं का वर्णन करता है उनके घटित हो जाने के बाद लिख रहा है (१ :१; १० : २)। लिखने सेऐसा लगता है कि यहूदियों का बिखरना बहुत पहले हो चुका है (३:८; ९:२०)। साथ ही कि फारसी प्रथाएँ अभी तक सुपरिचित हैं। इन तथ्यों के आधार पर फ़ारसी काल (ई. पू. ५३८–३३३) का समय इस पुस्तक का लेखनकाल माना जाता है।

तिथि-निर्धारण एक और आधार पर किया जाता है। इस पुस्तक में अयहूदियों के विरुद्ध एक बड़ी तीव्र भावना व्यक्त है। उसके लिये ऐतिहासिक वातावरण के युग की खोज के आधार पर तिथि-निर्धारण किया जा सकता है। अंतिओकस एपीफनेस और अनुक्रमिक मकाब युद्ध (ई, पू. १६७–१६४) के हेलनी सताव में इस प्रकार का वातावरण मिलता है। अतः योहन हिर्कान प्रथम (ई. पू. १३४–१०४) के शासन काल के पश्चात् अर्थात् लगभग ई. पू. १२५ में इस पुस्तक का लेखन-काल माना जाता है। यह द्रष्टव्य है कि इस पुस्तक में जो विवरण है उसका मकाबी काल से साम्य नहीं जुड़ता। कारण यह है कि पुस्तक के विवरण में यहूदी यह आशा करते हैं कि शासनकर्त्ता की कृपादृष्टि वे प्राप्त कर लेंगे, परंतु मकाबी काल में वे स्वतंत्रता तथा अपने निजी जीवन-पथ को अपनाने की आशा करते हैं।

फारसी के उद्धृत शब्दों के प्रयोग तथा फारसी प्रथाओं संबंधी लेखक की जानकारी से यह व्यंजित होता है कि मकाबी काल में नहीं, वरन् फारसी अथवा प्रारम्भिक हेलनी काल में यह पुस्तक लिखी गई। ख्रिस्त-पूर्व लेखकों में इस पुस्तक के उल्लेख का अभाव, विशेषकर बेन सीरख के प्रज्ञाग्रंथ (ल. ई. पू. १८०) में अभाव (प्रज्ञाग्रंथ में विश्वासी वीरों के क्रियाकलापों का वर्णन है, परंतु उसमें एस्तेर का उल्लेख नहीं है) का स्पष्टीकरण इस बात से किया जा सकता है कि इस पुस्तक का उद्गम पूर्वी बिखराव (dispersion) में है। इस आधार पर फारसी काल (ल. ई. पू. ३५०) के उत्तरार्द्ध अथवा हेलनी काल (ल. ई. पू. ३००) के पूर्वार्द्ध में इस पुस्तक की रचना तिथि मानी जाती है।

५. समीक्षात्मक समस्याएं

(१) एस्तेर की कथा के इब्रानी रूप और सेपत्वागिंता में क्या संबंध है? इस प्रश्न के उत्तर निम्न तर्कनुसार प्रस्तुत किए गए हैं :

(क) कथा का इब्रानी रूप मूलरूप है, अतः सेपत्वागिंता रूप में जो अतिरिक्त सामग्री है वह बाद में जोड़ी हुई है। इस मान्यता की पुष्टि में यह कहा जाता है कि कथा के सेपत्वागिंता रूप में कुछ पुनरावृत्ति है : जैसे २ : ५–६ और ११ : २–४ में मोर्दकै की वंशावली; २ : २१–२३ और १२ : १–३ में राजा के विरुद्ध षड़यंत्र; ३ : १२–१३, १३ : १–७, और ८ : १–१२; और १६ : १–२४ में दोनों राजाज्ञाओं के अंश, जो सारांश में और तब पूर्णरूप में दिए गए हैं। इस मान्यता के अनुसार सेपत्वागिंता रूप में सामग्री

जोड़ने का कारण यह है कि अतिरिक्त सामग्री से धार्मिक तत्व पर बल दिया जाता है जिसका अभाव इब्रानी रूप में दिखाई देता है। इब्रानी में जो रूप है उससे तो यह पुस्तक लौकिक पुस्तक जैसी लगती है, क्योंकि परमेश्वर का नाम उसमें एक बार भी नहीं आया है और उसकी भावना धार्मिक होने की अपेक्षा राष्ट्रीय अधिक है। इसके विपरीत सेपत्वागिंता में परमेश्वर से प्रार्थनाएँ सम्मिलित हैं। साथ ही उसमें घटनाओं को ऐसा प्रस्तुत किया गया है कि उनमें मोर्दकै को परमेश्वर द्वारा दिए गए दर्शन की पूर्ति होती है। जो विद्वान् यह विचार करते हैं कि कथा का इब्रानी रूप मकाबी काल की राष्ट्रीय भावना का प्रतिबिंब है, उनकी मान्यता यह है कि इसकी अतिरिक्त सामग्री किसी धर्मात्मा यहूदी ने जोड़ी है, और कि वह पलिश्तीन से बाहर रहता था। कदाचित वह मिस्र में रहता हो, जहाँ यूनानी अनुवाद (सेपत्वागिंता) किया गया था।

(ख) सेपत्वागिंता रूप ही कथा का मूलरूप है।

इस मान्यता की पुष्टि में ११ : १ में अनुवादक की टिप्पणी है, जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि मूल अंश इब्रानी में रहा होगा। मोर्दकै के स्वप्न के अर्थ के बाद ही यह टिप्पणी आती है। अतः उसमें "पूरीम (फ़ूराई) के पत्र" के उल्लेख में यह निहित है कि पुस्तक में मोर्दकै का स्वप्न सम्मिलित था—अर्थात् पुस्तक का मूल रूप वही था जो सेपत्वागिंता में है। कथा का सेपत्वागिंता रूप मूल रूप है—इस मान्यता के आधार पर यह विचार किया जाता है कि इब्रानी रूप कथा का संक्षिप्त रूप है, और कि यह संक्षिप्त रूप इसलिये किया गया कि परमेश्वर के नाम को निरादर और अपमान से बचाया जाय। यहूदी लोग पूरीम का पर्व अपने राष्ट्रीय दिवस के रूप में बड़े लौकिक रूप में मनाते थे। कथा में से परमेश्वर का नाम और प्रार्थनाओं को हटा देने के द्वारा पर्व समारोह के प्रचलित रूप को छूट मिल गई। लोग पाप और ईश-निंदा की जोखिम से मुक्त होकर पर्व को मना सकते थे।

सेपत्वागिंता में जो पुनरावृत्तियां हैं उनका स्पष्टीकरण इस अनुमान के द्वारा किया जाता है कि कथा के दोनों रूपों के बीच संगति और सामंजस्य करने का प्रयास किया गया है। सेपत्वागिंता की मौलिकता के पक्ष में इब्रानी में

अंतिम अध्याय (१०) को असंगत संक्षिप्तता को भी तर्कस्वरूप प्रस्तुत किया जाता है।

१६४७ में मृत्युसागर खर्रों (Dead Sea Scrolls) की खोज के पश्चात् सेपत्वागिंता के पक्ष में इस मान्यता को अधिकाधिक बल मिल रहा है कि सेपत्वागिंता का इब्रानी मूल पाठ उतना ही पुराना है जितना वह पाठ जो मानक माना गया और जिसे मसोरेती पाठ कहा जाता है। इस मान्यता से एस्तेर की पुस्तक की व्याख्या पर अवश्य प्रभाव पड़ता है।

(२) एस्तेर की पुस्तक में जो पात्र आए हैं उनकी ऐतिहासिक पहचान क्या है?

इस पुस्तक में निम्नलिखित पात्र हैं: एस्तेर, मोर्दकै, हामान, क्षयर्ष और वशती। क्षयर्ष को साधारणतया क्षयर्स प्रथम (Xerxes) (ई० पू० ४८६-४६५) माना जाता है। अहासुरस (Ahasuerus) इस नाम का इब्रानी रूप है। सेपत्वागिंता में अर्तक्षत्र है, फारसी में क्षयर्ष है। परन्तु यूनानी रूप क्षयर्ष (Xerxes) अधिक प्रचलित है। कुछ विद्वान अहासुरस को अर्तक्षत्र द्वितीय (ई० पू० ४०४—३५८) और वशती को उसकी रानी स्ततीरा (Stateira) मानते हैं। इतिहास लेखक हेरोदोतस के अनुसार क्षयर्ष प्रथम ने अपने शासन के तीसरे वर्ष (ई० पू० ४८३) में सूसा (शूशन) में अपने सरदारों को एकत्र किया कि वे यूनान से युद्ध करें। अपने शासन के छठवें वर्ष (ई० पू० ४८०) में उसने यूनान पर आक्रमण किया परन्तु असफल हुआ। यह विचार किया जाता है कि सरदारों को एकत्रित करना बाइबल की कथा से संगत प्रतीत होता है जहाँ एस्तेर १ : ३ में हाकिमों और कर्मचारियों, फारस और मादै के सेनापति और प्रांत प्रांत के प्रधान और हाकिम का एकत्रित होना वर्णित है और जिस राजसभा में वशती पटरानी के पद से उतारी जाती है। साथ ही यह भी विचार किया जाता है कि राजसभा की घटना और क्षयर्ष के अपने असफल आक्रमण से लौटने के बीच का जो समय है वह वशती के उतारे जाने तथा एस्तेर का पटरानी चुने जाने के बीच का समय है।

हेरोदोतस बताता है कि राजा क्षयर्ष प्रथम की रानी का नाम अमेसत्रिस था। वह फारस के सेनापति की पुत्री थी। हेरोदोतस न वशती का और न एस्तेर का उल्लेख करता है। एस्तेर और अमेसत्रिस को एक मानना कठिन है। हमें यह अनुमान करना पड़ता है कि वशती और एस्तेर हरम में रानियाँ थीं। बाइबल के अतिरिक्त और कहीं उनका उल्लेख नहीं मिलता।

सं० १९४० में बोरसिप्पा में कील-लिपि का पाठ मिला है। उस पर कोई तिथि अंकित नहीं है। उसमें क्षयर्ष प्रथम के राज्यकाल में सूसा के दरबार के एक उच्च पदाधिकारी मोर्दकै (मर्दूका) का उल्लेख हुआ है। एस्तेर ११ : ३ (सेपत्वागिंता) के अनरूप इस मौर्दकै को क्षयर्ष के तीसरे वर्ष के पूर्व और कदाचित पूर्ववर्ती राजा दारा प्रथम (ई० पू० ५२२–४८६) के राज्यकाल में उच्च पद प्राप्त था। बोरसिप्पा का यह पाठ मोर्दकै संबंधी बाइबली कथा के अनुरूप एक मात्र उल्लेख है।

बाइबिल से बाहर के मूलस्रोतों में बाइबली कहानी के हामान का कोई उल्लेख नहीं मिलता।

(३) पूरीम के पर्व का उद्गम कैसे हुआ ?

यह पर्व मूसा की व्यवस्था में नहीं पाया जाता। एस्तेर की पुस्तक में बताया गया है कि उसका आरंभ फारसी काल में हुआ और कि वह एक महान छुटकारे की स्मृति में आरंभ हुआ। संभव है कि पूरीम पहले कोई अयहूदी त्यौहार हो। पूरीम शब्द का उद्गम बाबुल देश से है। चिट्टी डालने या पासा के अर्थ में उसका प्रयोग होता था (पुरुअम और बाद में पुरु शब्द)। सूसा की खुदाई में चौकोर गोटियां मिली हैं जिन पर अंक भी खुदे हैं, मानो वे पासा फेंकने के काम में आती थीं। इन तथ्यों से एस्तेर ३ : ७ "एक दिन और एक महीने के लिये "पूर" अर्थात् चिठ्ठी अपने सामने डलवाई" पर प्रकाश पड़ता है। क्या यह एक धर्माचार था ? यह प्रयास किया गया है कि इसे बाबुल में मनाए जाने वाले नूतन वर्षोत्सव अथवा फारस में मनाए जाने वाले श्राद्ध दिवस के रूप में समझा जाए। मूल रूप इस पर्व का चाहे जो रहा हो, यह निश्चित है कि यहूदियों के लिये यह छुटकारे का स्मृति-पर्व बन गया। यह भी स्पष्ट है कि यहूदियों द्वारा इसे मनाने में जो समारोह और लौकिकता के तत्व इसमें थे उनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस पर्व का पूर्व वातावरण अयहूदी था।

(४) क्या एस्तेर की कथा ऐतिहासिक है।

परंपरागत मत यह है कि यह कथा ऐतिहासिक है। आधुनिक आलोचक इसमें शंका करते हैं। शंका का एक कारण यह है कि इसमें अतिशयोक्ति है। उदाहरणार्थ, ७५ या ८५ फुट ऊँचा फ़ांसी खंभ (५:१४), छः महीने तक उत्सव (१:४), कन्याओं के लिए एक वर्ष तक सौंदर्य-उपचार (२:१२), दसहज़ार किक्कार चांदी का दान (३:९)। अन्य कारण ये हैं कि फारसी इतिहास में एस्तेर और वशती जैसे पात्रों का कहीं उल्लेख नहीं है, कि यहूदियों के व्यापक सताव के लिये कोई ऐतिहासिक संकेत नहीं हैं और कि यूनान के विरुद्ध क्षयर्ष राजा

के आक्रमण का कोई ऐतिहासिक उल्लेख नहीं है। कुछ विद्वान एस्तेर की कथा को एक पौराणिक कथा मानते हैं जिसमें बाबुली देवता (मार्दुक और इश्तार–मोर्दकै और एस्तेर) का एलामी देवता हुम्मन-हामान और एक देवी-बशती) के साथ संघर्ष हुआ है। इस संबंध में फाइफर (Pfeiffer) की मान्यता अत्यंत उग्र है। उसकी मान्यता है कि इस पुस्तक का लेखक मकाबी काल का एक उग्र देशभक्त था और उसने इस पर्व की कल्पना की और उसकी पुष्टि के लिए एस्तेर की कथा गढ़ी। इस चमत्कारिक 'कल्पना' की सफलता इसलिए हुई कि योहन हिर्कान प्रथम (ई०पू० १३४–१०४) के शासन काल में यहूदियों में अयहूदियों के विरुद्ध बड़ी तीव्र भावना विद्यमान थी।

कथा की ऐतिहासिकता के पक्ष में निम्नलिखित तथ्य प्रस्तुत हैं: लेखक सूसा के भवन और फारसी राजप्रथाओं के संबंध में गहरी जानकारी रखता है। ईस्वी पूर्व दूसरी सदी में पूरीम पर्व का अस्तित्व था। (२ मक० १५:३७) और ऐसा प्रतीत होता है कि वह इससे पहले से प्रचलित था, बोरसिप्पा का कीलाक्षर लेख क्षयर्ष प्रथम के राज्य में किसी प्रधान पदाधिकारी मोर्दकै का उल्लेख करता है। सूसा में की गई खुदाई से चिट्ठियां डालने का प्रमाण (अर्थात 'पूर') का प्रमाण मिलता है (३:७)। यह माना जा सकता है कि लेखक ने अपनी विवरण -कला के कारण अथवा उसे प्राप्त घटनाओं के सुन्दर संचारण के लिए भले ही कथा में कुछ साज सज्जा और अतिशयोक्ति का प्रयोग किया है, परन्तु उपरोक्त तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वे एस्तेर की कथा की ऐतिहासिकता को मान्य करने के लिए पर्याप्त हैं।

६. धर्म शिक्षा

यह मानते हुए कि एस्तेर की पुस्तक के सेपत्वागिंता रूप के लिए प्रामाणिक आधार है और कि बाइबली संदर्भ में पुस्तक के इब्रानी रूप को उसी प्रकाश में देखा जा सकता है, हम इस कथा में ईश्वरीय योजना का एक अद्भुत उदाहरण पाते हैं। पुस्तक से यह शिक्षा मिलती है कि संक्रातिकाल में परमेश्वर ने अपने लोगों की रक्षा की। जब उसके ऊपर भारी विपत्ति के बादल थे, तब परमेश्वर ने उनकी सुध लेने के लिये एस्तेर को उठाया। परमेश्वर की यह पद्धति है कि वह अपनी योजना की पूर्ति के लिये मनुष्यों का उपयोग करता है, और परमेश्वर इस कथा में इस पद्धति को काम में लिया गया है। एस्तेर ने परमेश्वर की इच्छा को पूरा करने की चेष्टा की और परमेश्वर ने उसे मार्ग दिखाया। बिना बुलाए राजा के सामने जाना अपराध था, जिसका दंड मृत्यु था। एस्तेर बिना बुलाए गई परन्तु राजा ने उस पर कृपा की, और

सच्चाई की जानकारी देने में उसकी सतर्क योजना सफल हुई। इसी प्रकार मोर्दकै को यह अवसर मिला कि अपनी राजभक्ति का प्रमाण राज़ा के सामने प्रस्तुत करे और न्याय के पक्ष में राजा का कृपा-पात्र हो। जिसको दंड मिलना चाहिये था उसे मिला और परमेश्वर के लोग अपने जीवन-मार्ग का अनुसरण करने तथा परमेश्वर की भक्ति करने पाए। सेपत्वागिंता १० : ४ में लिखा है कि "ये बातें परमेश्वर की ओर से हैं"। सेपत्वागिंता १० : १२ में लिखा है कि "परमेश्वर ने अपनी प्रजा को स्मरण किया और उनका न्याय चुकाया"।

एस्तेर के चरित्र में हम परमेश्वर-भक्ति, अपने लोगों के प्रति प्रेम, आत्म-त्याग और बुद्धि के साथ कृपा-भाव के गुण देखते हैं। उसने अपनी सुन्दरता और बुद्धि परमेश्वर को उसके अभिप्राय के निमित्त समर्पित की। उस अभि-प्राय की पूर्ति के लिये, अर्थात् अपने लोगों को बचाने के लिये वह, आवश्यकता पड़ने पर, मरने को भी तैयार थी। इसी प्रकार मोर्दक भी अपने विश्वास में पक्का है और अपने लोगों की चिंता करता है। उसकी सच्चाई और योग्यता के कारण उसके शत्रु उससे जलते हैं, परंतु जब सच बात प्रकट होती है तो इन्हीं गुणों को मान्यता मिलती है। सेपत्वागिंता की कथा में मोर्दकै तथा एस्तेर की प्रार्थनाओं में सच्ची भक्ति प्रकट होती है। मनुष्य की बड़ाई की अपेक्षा परमेश्वर की बड़ाई को मोर्दकै ऊँचा स्थान देता है (१३ : १४), और प्रभु परमेश्वर में आनन्द के सामने एस्तेर को राजभवन का वैभव तुच्छ प्रतीत होता है (१४ : १८)

पच्चीसवां अध्याय

काव्य और नीति ग्रंथ

पुराने नियम की काव्य एवं नीति पुस्तकों को एक समूह में रखा गया है। इसका कारण यह है कि इनमें से कुछ पुस्तकों को हम काव्य और नीति दोनों कह सकते हैं, और कुछ को काव्य अथवा नीति के अन्तर्गत ही स्थान दे सकते हैं। यदि किसी पुस्तक के सम्बन्ध में कहा जाए कि वह काव्य है, तो हमारे कथन से विषय सामग्री का नहीं वरन् साहित्यिक रूप का बोध होता है। यदि यह कहा जाए कि अमुक पुस्तक नीति-पुस्तक है तो उससे विषय सामग्री का बोध होता है। नीति पुस्तकों को शिक्षात्मक या 'सीख' पुस्तकें भी कहते हैं। कभी तो "शिक्षात्मक पुस्तकें" शीर्षक का प्रयोग समस्त काव्य एवं नीति पुस्तकों के लिये किया जाता है, और कभी-कभी उनके लिये "काव्यात्मक पुस्तकें" शीर्षक का प्रयोग किया जाता है।

ऐतिहासिक तथा नबियों की पुस्तकों में भी काव्यात्मक अंश हैं। परन्तु जब हम "काव्य पुस्तकें" शीर्षक का प्रयोग करते हैं तो उनसे उन पुस्तकों का बोध होता है जो प्रायः पद्यबद्ध रूप में लिखी गई हैं। इनमें सीमित धर्मशास्त्र के अन्तर्गत अय्यूब, भजन, नीति वचन, श्रेष्ठगीत और सभोपदेशक सम्मिलित हैं। विस्तृत हेलनी धर्मशास्त्र में इनके अतिरिक्त सीरख और सुलैमान का प्रज्ञाग्रंथ भी हैं। विलापगीत भी पद्य में लिखा गया है, परन्तु परम्परा से वह यिर्मयाह की पुस्तक से संलग्न है इसलिये उसे नबियों की पुस्तकों में सम्मिलित किया गया है। इब्रानी, अंग्रेजी और हिन्दी बाइबलों में सभोपदेशक की पुस्तक पद्य की अपेक्षा गद्य में अधिक दृष्टिगोचर होती है, परन्तु सेपत्वागिंता एवं वुलगाता में आदि से अन्त तक उसका विन्यास पद्य में है। अतः उसे काव्य पुस्तकों में स्थान दिया गया है।

नीतिग्रंथों में नीतिवचन, अय्यूब और सभोपदेशक की पुस्तकों को सीमित धर्मशास्त्र के अन्तर्गत सम्मिलित किया गया है। विस्तृत धर्मशास्त्र के अन्तर्गत नीति ग्रंथों में उपरोक्त तीन पुस्तकों के अतिरिक्त सीरख और सुलैमान का प्रज्ञाग्रंथ भी हैं।

काव्य के रूप की दृष्टि से इन पुस्तकों का वर्णन निम्नानुसार किया जा सकता है। अय्यूब की पुस्तक एक शिक्षात्मक काव्य है जो नाटकीय सम्बाद में लिखित है; भजन संहिता भक्ति प्रवण गीतिकाव्य है; सभोपदेशक काव्य की दृष्टि से चिन्तनात्मक गीतिकाव्य है; श्रेष्ठगीत सम्वादात्मक कविता है; सीरख शिक्षात्मक गीतिकाव्य है, सुलैमान का प्रज्ञाग्रंथ, चिन्तनात्मक गीतिकाव्य है; और विलापगीत शोकगीति या विलाप गीतों का संकलन है।

इब्रानी कविता

इब्रानी कविता की प्रमुख विशषता समांतरता (parallelism) है, अर्थात एक विचार का समान विचार के साथ सन्तुलन। कोई भी विचार वाक्य के द्वारा व्यक्त होता है। अतः इब्रानी कविता के रूप का आधार वाक्य है और बहुधा एक पंक्ति में व्यक्त होता है। उसे हम एक चरण कहते हैं। दूसरी पंक्ति में एक और विचार की अभिव्यक्ति होती है। दोनों मिलकर दो पंक्तियाँ, दो चरण बन जाते हैं। हिन्दी में जैसे दोहा होता है कुछ उसी रूप की कविता इब्रानी कविता होती है। कभी-कभी दो के बदले तीन या अधिक पंक्तियां भी होती हैं। साधारण दो चरणों की इब्रानी कविता में पहले चरण के साथ दूसरे चरण के सम्बन्ध में समांतरता रहती है। यदि दूसरे चरण में प्रथम चरण के भाव की कुछ ही भिन्न रूप में ध्वनि होती है, तो समांतरता को समभावी (Synonymous) समांतरता कहते है। यदि दूसरे चरण में पहले चरण के भाव से विरोध है तो समांतरता को विभावी (antithetic) कहते हैं। यदि दूसरे चरण में पहले चरण के भाव का विकास और पूर्ति हो तो समांतरता को समन्वित (synthetic) समान्तरता कहते हैं। उदाहरण देखिए :

समभावी समांतरता :

वह जो स्वर्ग में विराजमान है, हंसेगा;

प्रभु उनको ठट्ठों में उड़ाएगा। भ. २ : ४

विभावी समांतरता :

परमेश्वर की महिमा गुप्त रहने में है;

परन्तु राजाओं की महिमा गुप्त बात के पता लगाने से होती है।

समन्वित समांतरता :

मैं लेटकर सो गया;

फिर जाग उठा, क्योंकि यहोवा मुझे संभालता है ।

कुछ विद्वान समन्वित समांतरता के तीन भेद करते हैं : कुन्तलाकार (न्य. ५ : ३०) (spiral), प्रगतिशील (भ. १ : ३) (progressive), और चरमसीमांतक (भ. १२१ : ३, ४) (climactic) ।

समांतरता की विशेषता यह है कि जिन शब्दों के अर्थ स्पष्ट या सुपरिचित नहीं है उनको समझने में सहायता मिले। उदाहरणार्थ, भ. ३३ : ६ में 'उसके मुंह की श्वास' शब्दों को 'यहोवा के वचन' शब्दों के पर्याय समझना चाहिए। ये दोनों शब्द समूह समान्तर हैं।

इब्रानी कविता में लय है । अर्थात् नियमित क्रम से पंक्तियों में सबल और अबल पदांश (syllable) हैं। सामान्यतया एक चरण में तीन या चार बलाघात (stress) होते हैं। परन्तु यह कोई कठोर नियम नहीं है। बल-स्थान इब्रानी शब्दों के साधारण स्वराघात (accent) के अनुरूप होते हैं। वे अंग्रेजी और जर्मन कविता के अनुरूप होते हैं। यूनानी, लतीनी, संस्कृत या भारतीय भाषाओं की कविता के अनुरूप नहीं। भारतीय भाषाओं में पदांश के आधार पर नहीं, वरन् मात्रा या गण के आधार पर कविता के चरणों में लम्बाई गिनी जाती है।

इब्रानी कविता प्राय: अतुकांत होती है। तुक का अर्थ है–चरणों के अन्त में ध्वनि साम्य । इब्रानी कविता अतुकांत पद्य होती है। इसलिये अन्य भाषाओं में उसका अनुवाद प्रभावोत्पादकता के साथ किया जा सकता है। वह तुक की विशेषता पर निर्भर नहीं रहती इसलिए अनुवाद करने में भाव-प्रवणता की उतनी कमी नहीं होती जितनी तुकांत कविता के अनुवाद में। समांतरता और स्वराघात की विशेषताओं की दृष्टि से उत्तरी कनानी भाषा (उगरिती) की कविता इब्रानी कविता के बहुत समान है और कुछ अंश में बाबुली कविता भी इब्रानी कविता के समान है।

इब्रानी कविता की लय को ४–४, ३–३, ४–३ या ३–२ अंकों के द्वारा इंगित किया जाता है। ये अंक दोनों चरणों में बलाघात की संख्या का संकेत करते हैं। समांतरता के जो उदाहरण ऊपर दिए गये हैं उनमें बलाघात दर्शाने का प्रयत्न किया गया है। भजन २:४ में ३–२ की लय है, नीतिवचन २५:२ में ४-४ की, और भजन ३:५ में ३–३ की लय है। यह द्रष्टव्य है कि आघात-

विहीन अक्षरों की संख्या से लय का कोई सम्बन्ध नहीं है। यह पर्याप्त है कि स्वराघातों का क्रमिक विधान हो।

शोकगीति के लिए सामान्यतया ३–२ की लय काम में ली जाती हैं। परंतु ३–२ का द्विपद केवल शोकगीति के लिए ही काम में नहीं आता। विलाप या शोक के लिये इब्रानी में क़िनाह (Qinah) शब्द है। इसलिए ३–२ की लय को क़िनाह लय कहते हैं। विलाप गीत पुस्तक में विशेषताः इसी का उपयोग किया गया है, उदाहरणार्थ :

'रात को वह फूट-फूट कर रोती है,

उसके आँसू गालों पर ढलकते हैं। (वि० १ : २)।

कभी कभी इब्रानी कविता में कई बड़ी बड़ी इकाइयां या छन्द (Strophe) होते हैं जिन्हें टेक के द्वारा इंगित किया जाता है, जैसे भजन ४२:५, ११ और ४३: ५, भ० ४६: ७ और ११। कुछ कविताएं इब्रानी वर्णमाला के बाइस अक्षरों के आधार पर नियोजित होती हैं (भ० ३४, ११९, नी० ३१: १०–३१, वि० १)। इसी कारण उनको वर्णमालात्मक या सूत्रात्मक (acrostic)[१] कविता कहते हैं। कुछ विद्वानों को पदों के अन्तर्गत पाई जाने वाली समांतरता छन्दों में भी मिलती है। इस प्रकार समभावी छंदात्मक समांतरता (भ० २२: २–२२, २३–३२), विभावी छंदात्मक समांतरता (यश० १४: ४ उ०–८, ९—११) और समन्वित छंदात्मक समांतरता (भ० १०४) होती है।

इब्रानी कविता रूपक एवं भावात्मकता में समृद्ध है। यह नबूवत के वचनों तथा आनन्दमय स्तुति की तीव्रता के अनुरूप है। सौभाग्य की बात है, या यों कहें कि परमेश्वर के अभिप्राय की विशेषता है, कि इब्रानी कविता की प्रमुख विशेषता 'समांतरता' है, जो अन्य भाषाओं में अनुवाद में नष्ट नहीं होती। इसी कारण यह संभव हो सका है कि भजन संहिता जैसी भक्ति-कविता उन सभी देशों में, जहां बाइबल का प्रसार हुआ है, अत्यन्त लोक-प्रिय हुई और लोगों के अंतरतम भावों की निधि बन गई है।

---

१. सूत्रात्मक कविता उसे कहते हैं जिसमें चरणों के प्रथम शब्दों में कोई सार्थक योजना रहती है। सार्थक योजना चाहे शब्द की हो, अथवा पद्यांश की अथवा वर्णमाला के अक्षरों की। यदि वर्णमाला के अक्षरों की हो तो उस कविता को वर्णमालात्मक कविता कहते हैं।

इब्रानी नीति साहित्य

इब्रानी नीति साहित्य की यह विशेषता है कि उसमें जीवन को विवेकशील या बौद्धिक दृष्टिकोण से देखा जाता है। धर्म के दावों को धर्म के मूल्यों के मान से व्यंजित किया जाता है। विशेषकर धर्म के व्यावहारिक मूल्य को व्यंजित किया जाता है, और मानव कर्त्तव्य को इस रूप में व्यक्त किया जाता है मानो वह उसके अधिकतम कल्याण का तथ्य है। जीवन की समस्याओं के विवेकपूर्ण भावन को मानव के सर्वश्रेष्ठ प्रयासों के योग्य माना जाता है।

नीतिवचन का प्रारंभिक रूप कहावत या लोकोक्ति है। लोकोक्ति में सत्य का बहुत छोटा तीक्ष्ण कथन होता है। वह अनेक स्थितियों में बड़ा उपयुक्त होता है और याद भी जल्दी हो जाता है। लोकोक्तियों के रचियता का बहुधा पता नहीं होता। कारण यह है कि वह सब की जबान पर रहती है और किसी भी समाज की सामान्य समझ की बात होती है। इस प्रकार वह लोकबुद्धि सर्वसाधारण रूप है। लोकोक्तियों में लोकबुद्धि या लोकनीति के कुछ उदाहरण देखिए : 'जैसी मां, वैसी पुत्री' (यहे. १६ : ४४); 'दुष्टता दुष्टों से होती है' (१ श. २४ : १३); 'निम्रोद के समान यहोवा की दृष्टि में पराक्रमी शिकारी' (उ. १० : ९)।

लोक बुद्धि की कहावतों के अतिरिक्त विवेकी मनुष्यों की रचनाएं हैं जो कहावतों या लोकोक्तियों में की गई हैं। यिर्मयाह के समय में इस्राएलियों के बीच ज्ञानी मनुष्य थे (यि. १८ : १८)। अय्यूब की पुस्तक में उनके विषय का उल्लेख हुआ है (अय. १५ : १८)। एदोम ज्ञानी मनुष्यों के लिये प्रसिद्ध था (ओ. १ : ८)। इस्राएल के ज्ञानी मनुष्य अन्य जातियों और देशों के ज्ञानियों से इस बात में भिन्न थे कि वे ईश्वरीय प्रकाशन को मानवी अनुभवों में निहित अर्थों की खोज का आधार मानते थे—'परमेश्वर का भय मानना बुद्धि का मूल है' (नी. १ : ७)। इस्राएलियों में दाऊद को स्त्रोत्रकाव्य का पिता माना जाता है। उसी प्रकार सुलैमान को नीति साहित्य या प्रज्ञा साहित्य का पिता माना जाता है।

परवर्ती इब्रानी प्रज्ञा साहित्य की एक विशेषता यह है कि उसमें बुद्धि का सृष्टि की रचना तथा प्रकाशन में परमेश्वर की कार्यशक्ति के रूप में मानवीकरण किया गया है (नी. ८ : २२-३१; ९ : १)। इससे 'वचन के सिद्धांत' के लिये मार्ग तैयार हुआ, जो यूहन्ना १ : १,२ में है 'आदि में वचन था और वचन परमेश्वर के साथ था,—यही आदि में परमेश्वर के साथ था'। अंत में इसी के द्वारा एक परमेश्वर में त्रिएकत्व के सिद्धांत का मार्ग प्रशस्त हुआ।

वाबुली और मिस्री लोगों में, विशेषकर मिस्रियों में प्रज्ञा साहित्य मिलता है। कुछ विद्वानों का तो यह विचार है कि नीतिवचन के एक अंश (२२ : १७-२४ : २२) का आमेन-एम-ओपेत (ई. पू. १०००–६००) के निर्देशों के साथ साहित्यिक साम्य है। एदोमियों का भी प्रज्ञा साहित्य अवश्य होगा परंतु दुर्भाग्य है कि वह हमारे युग तक बच नहीं पाया।

छब्बीसवां अध्याय

अय्यूब की पुस्तक

१. शीर्षक और प्रामाणिक धर्मशास्त्र में स्थान

इस पुस्तक का नाम उसके प्रमुख पात्र के नाम पर रखा गया है। इब्रानी में पुस्तक का नाम इययोव (Iyyob) है कदाचित इसका अर्थ 'सताया हुआ' है। सप्तति अनुवाद में इस नाम का रूप योब (Iob) है, जो बुल्गाता से लिया गया है। अंग्रेजी में योब नाम लिया गया है परंतु 'य' के स्थान पर 'ज' रखा गया है और 'जोब' हो गया है। भारतीय अनुवादों मे नाम का अरबी रूप 'अय्यूब' उपयोग में लिया गया है।

इब्रानी बाइबल में अय्यूब की पुस्तक कत्वीम या लेखों में सम्मिलित है और नीति वचन के बाद इसे स्थान दिया गया है। सप्तति अनुवाद में इसे श्रेष्ठ गीत के बाद और भजन की पुस्तक से कहीं दूर स्थान दिया गया है। भजन की पुस्तक का सप्तति अनुवाद में कत्वीम के अन्तर्गत प्रथम स्थान है। वुल्गाता में भजन संहिता से पहले स्थान दिया गया है। अंग्रेजी अनुवाद में बुल्गाता का अनुसरण किया गया है। भारतीय भाषाओं में भी यही स्थान है।

२. विषय सामग्री का सारांश

अय्यूब सर्वत्र धर्माचरण का आदर्श माना जाता था। वह परमेश्वर का आदर्श दास था। परमेश्वर ने उसे वहुत आशिष दी थी। एक दिन स्वर्ग-सभा के परीक्षक का अनजाने ही अय्यूब शिकार हो जाता है। यह परीक्षक यह सिद्ध करना चाहता है कि अय्यूब की धार्मिकता दिखावे की है। अय्यूब की संपत्ति और संतान नष्ट हो जाती है और इसके पश्चात् वह एक घृणित बीमारी का शिकार हो जाता है। बड़े कष्ट में अय्यूब राख पर बैठ जाता है। उसके तीन मित्र एलीपज, बिलदद और सोपर उसे सांत्वना देने आते हैं। अय्यूब के साथ उनके वार्तालाप के तीन दौर होते हैं जिनमें वे परंपरागत तर्क पर बल देते हैं। अय्यूब के कष्टों के कारण उसका पाप है, जबकि अय्यूब यह कहता है कि उसे निरापराध ही दंड भोगना पड़ रहा है। इसके पश्चात एलीहू नाम का एक जवान अपने विचार व्यक्त करता है। अंत में यहोवा ने अय्यूब को आंधी में से उत्तर दिया

जिससे अय्यूब को दीन बनाया परंतु उसके धर्माचार की पुष्टि की। यहोवा ने तीनों मित्रों को भी डांटा और अय्यूब को पहले से भी अधिक संपन्न किया।

३. रूपरेखा

अय्यूब—धार्मिक परमेश्वर के अधीन निर्दोष व्यक्ति के कष्ट सहने की समस्या

(१) प्रस्तावना (गद्य में) अय्यूब की परीक्षा और दृढ़ता (१–२)

(क) अय्यूब का धर्माचरण (१ : १–५) : अय्यूब खरा और सीधा था। परमेश्वर ने उसके काम पर बहुत आशिष दी।

(ख) पहली परीक्षा (१ : ६–२२)

(i) परीक्षक (शैतान) की शंका के कारण स्वर्गसभा में यह निर्णय किया गया कि अय्यूब के धर्माचरण की परीक्षा की जाए (१ : ६–१२)।

(ii) चार दुर्घटनाओं में अय्यूब की संपत्ति और संतान नष्ट हो जाती है (१ : १३–३२)।

(ग) दूसरी परीक्षा (२ : १–१०)

(i) स्वर्ग-सभा में अभी भी परीक्षक शंका करता है। इसलिए उसे अनुमति दी जाती है कि अय्यूब को वह पीड़ित करे परंतु उसके प्राण को छोड़ दे (२ : १–६)।

(ii) अय्यूब घृणित बीमारी से पीड़ित होकर राख में बैठता है। पत्नी का नैतिक बल उसे नहीं मिलता। फिर भी वह परमेश्वर के प्रति निष्ठावान बना रहता है (२ : ७–१०)।

(घ) अय्यूब के मित्र उसे सांत्वना देने आते हैं : वृद्ध तेमानी एलीपज, बुद्धिमान शूही बिलदद और प्रचण्ड नामाती सोपर अपने कपड़े फाड़कर उसका दुःख बहुत बड़ा जानकर सात दिन-रात उसके संग भूमि पर बैठे रहे।

(२) अय्यूब और उसके तीन मित्रों का वार्तालाप (३–३१) (कविता में)

(क) अय्यूब का विलाप (३) : अय्यूब अपने जन्मदिन को धिक्कारता है (३ : १–१०) अपने चालू जीवन को भी (३ : ११–१९)। मृत्यु चाहता है (३ : २०–२६)।

(ख) वार्तालाप का पहिला दौर (४–१४)

(i) एलीपज उसे स्मरण कराता है कि कोई निर्दोष कभी नाश नहीं हुआ। सपने में उसे ज्ञात हुआ कि कोई मनुष्य पवित्र नहीं; और कि अय्यूब को जो ताड़ना दी जा रही है वह उसके भले के लिये है (४–५)।

(ii) अय्यूब का उत्तर कि उसके कष्ट में भी वह निर्दोष ठहरा है, और कि उसकी आशा मृत्यु में है। वह अपने मित्रों के व्यवहार से निराश होता है और परमेश्वर से परिवाद करता है कि वह उसके लिये ताकनेवाला और सतानेवाला बन गया है (६–७)।

(iii) परमेश्वर के न्याय के प्रति शंका करने के लिये बिलदद अय्यूब को डांटता है और उसे पुरखाओं के ज्ञान की याद दिलाता है (८)।

(iv) अपने मन की कड़वाहट में अय्यूब उत्तर देता है कि परमेश्वर से मनुष्य का मुकद्दमा लड़ना व्यर्थ है। यदि उसके परमेश्वर के बीच कोई बिचवई होता, तो वह निडर होकर बोलता और मांग करता कि उसे बताया जाए कि परमेश्वर की ओर से जो व्यवहार मिल रहा है उसका क्या कारण है। यदि परमेश्वर ने अपने मन में मेरे विरुद्ध कुछ ठान रखा है—मुझे मृत्यु की शांति क्यों नहीं मिलती ? (९-१०)

(v) सोपर अय्यूब को उसके बकवाद के लिये डांटता है और परमेश्वर की अतिप्राकृतिक सिद्धता को प्रस्तुत करता है। साथ ही अय्यूब से आग्रह करता है कि वह अपने अपराध के लिये क्षमा मांगे और परमेश्वर उस पर कृपा दृष्टि करेगा (११)।

(vi) अय्यूब का उत्तर कि अय्यूब परमेश्वर की सिद्धता को जानता है। वह कहता है कि परमेश्वर की बुद्धि से भी परमेश्वर की शक्ति सीमित नहीं है। वह कहता है कि उसके मित्र परमेश्वर का पक्षपात कर रहे हैं। अय्यूब का कष्ट उसके अपराध का प्रमाण नहीं है। चाहे जो कुछ हो अय्यूब परमेश्वर के सामने बहस कर सकेगा। यदि परमेश्वर अपनी शक्ति का प्रयोग न करे तो अय्यूब उसके साथ मुकद्दमा लड़ने को प्रस्तुत

है। परमेश्वर चाहे वादी बन जाए या प्रतिवादी। क्या उड़ते हुए पत्ते को कंपित करने का कार्य परमेश्वर के योग्य है? मनुष्य कितना असहाय प्राणी है? काश कि अधोलोक के पश्चात् जीवन होता, तो अय्यूब अपना दुर्भाग्य सहन कर लेता (१२-१४)।

(ग) वार्तालाप का दूसरा दौर (१५-२१)

(i) एलीपज का तर्क है कि अय्यूब का अज्ञानता भरा और अशुद्ध कथन ही उसके अपराध एवं घमंड का प्रमाण है—परमेश्वर दुष्ट जन को दंड देता है (१५)।

(ii) अय्यूब अपने शांति देने वालों के प्रति निराश होता है। यद्यपि अय्यूब निर्दोष था तथापि परमेश्वर ने उसे अपने तीरों का निशाना बनाया है। अय्यूब का न्याय होना आवश्यक है और वह कहता है "अब भी स्वर्ग में मेरा साक्षी है और मेरा गवाह ऊपर है।" काश कि परमेश्वर के, जो मेरा सतानेवाला है, विरुद्ध मुकद्दमा के लिये कोई न्यायालय होता! परंतु अब तो अधोलोक ही मेरी आशा है (१६-१७)

(iii) बिलदद का वचन है कि इस बात में अय्यूब का दंभ दिखाई देता है कि वह चाहता है कि संसार उसकी धारणाओं के अनुकूल हो। परंतु अय्यूब को इसके विपरीत यह मानना चाहिये कि सब दुष्टों का दीपक बुझ जाएगा (१८)।

(iv) अय्यूब का उत्तर है कि उसके मित्रों को यह जानना चाहिये कि अय्यूब के कष्ट का कारण उसका अपराध नहीं, परमेश्वर की अपनी इच्छा है। अय्यूब के मित्र उसकी निंदा न करें वरन् उस पर दया करें। यदि उसका मुकद्दमा स्थायी रूप से लिखा जाए तो भविष्य उसकी निर्दोषिता की साक्षी देगा। मुझे निश्चय है कि मेरा परमेश्वर मेरा छुड़ानेवाला जीवित है और वह अंत में पृथ्वी पर खड़ा होगा और अय्यूब देखेगा कि परमेश्वर उसकी ओर है (१९)।

(v) सोपर का कथन है कि अय्यूब निरादर के शब्द काम में ले रहा है और दुष्ट के घर की बढ़ती क्षणिक होती है (२०)।

(vi) अय्यूब का उत्तर है कि उसकी बात सुनी जानी चाहिये क्योंकि उसकी दोहाई मनुष्य के प्रति नहीं, परमेश्वर के प्रति है।

बात यह है कि दुष्ट लोग कदाचित् ही दण्ड पाते हैं और उनके बच्चों को जो दंड मिलता है वह दंड उन्हें नहीं मिला है (२१)।

(घ) वार्तालाप का तीसरा दौर।

(i) एलीपज का वचन है कि परमेश्वर भला कार्य करने के लिये किसी को दंड नहीं देता, इसलिये अय्यूब का अपराध बहुत बड़ा होना चाहिये। यदि अय्यूब केवल दीनतापूर्वक पश्चाताप करे, परमेश्वर उसकी सुनेगा, और उसे सौभाग्यशाली करेगा (२२)।

(ii) अय्यूब का उत्तर है कि यदि अय्यूब परमेश्वर को पा लेता तो उसके सामने अपना मुकद्दमा पेश करता। परन्तु ऐसा लगता है कि परमेश्वर कदाचित् दुष्टों की विजय एवं निर्दोषों की पुकार के प्रति उदासीन है (२३–२४)।

(iii) बिलदद का तर्क है कि परमेश्वर सर्वशक्तिमान है और मनुष्य की क्या गिनती जो कीड़े और केंचुए के समान है (२५)।

(iv) अय्यूब अपने शांति देने वालों को उलाहना देता है (२६:१-४) (परमेश्वर की सामर्थ जगत में सर्वत्र है और उसके संबंध में मनुष्य का ज्ञान फुसफुसाहट मात्र है—बिलदद ?)

अय्यूब अपनी अंतिम सांस तक अपनी निर्दोषिता मानता रहेगा (२७ : १–६, १२)। (परमेश्वर अधर्मी की प्रार्थना न सुनेगा; अधर्मी का अंत बुरा होगा (२७:७–११, १३–२३)—सोपर ?)

केवल परमेश्वर ही बुद्धि का मूल जानता है; मनुष्य की बुद्धि यह है कि परमेश्वर की भक्ति करे (२८)।

अय्यूब अपनी बीती हुई सुखावस्था का, और वर्तमान दुःखावस्था का और और अपनी निर्दोषिता का स्मरण करता है (२९–३१)। (अध्याय ३१ में अय्यूब का नकारात्मक अंगीकार है)।

(३) बूजी एलीहू के वचन (३२–३७) (कविता में)

(क) भूमिका : एलीहू अभी तक चुप सुन रहा था और वह बोलने के लिये भड़क उठा, क्योंकि सर्वशक्तिमान का आत्मा जवान को भी समझ देता है (३२ : १–१०)।

(ख) पहिला वचन : परमेश्वर कष्ट के द्वारा मनुष्य को शिक्षा देता है (३२ : ११–३३ : ३३)।

(ग) दूसरा वचन : जब अय्यूब परमेश्वर के न्याय और योजना के विरुद्ध बोलता है तो अय्यूब भूल करता है (३४)।

(घ) तीसरा वचन : माना कि मनुष्य के कार्यों से परमेश्वर प्रभावित नहीं होता, परंतु परमेश्वर मनुष्य की चाल-चलन के प्रति उदासीन नहीं रहता। वह उनकी प्रार्थना सुनता है जो उसकी सहभागिता चाहते हैं (३५)।

(च) चौथा वचन : परमेश्वर सर्वशक्तिमान, दयालु और न्यायी है। अय्यूब नम्रतापूर्वक मान ले कि वह परमेश्वर के भेद को समझ नहीं सकता (३६-३७)।

(४) परमेश्वर आंधी में से अय्यूब से वार्तालाप करता है (३८ : १–४२ : ६) (कविता)।

(क) पहला वचन : समस्त सृष्टि, प्राकृतिक चमत्कारों और विचित्र जानवरों सहित परमेश्वर की सामर्थ की घोषणा करती है और मनुष्य उसको समझ नहीं सकता। अय्यूब अपनी बुद्धि-हीनता स्वीकार करता है (३८ : १–४० : ५)।

(ख) दूसरा वचन : उलाहना के रूप में अय्यूब को कहता है कि विश्व के शासक के रूप में परमेश्वर के स्थान पर वह आए। जलगज और लिव्यातान दो भयंकर जलजन्तु परमेश्वर की सामर्थ और मनुष्य की दुर्बलता के उदाहरण हैं। अय्यूब मान लेता है कि उसने अज्ञानता की बातें कीं और राख और मिट्टी में बैठकर पश्चाताप करता है (४० : ६–४२ : ६)।

(५) उपसंहार (गद्य में)

परमेश्वर अय्यूब के तीनों मित्रों की भर्त्सना करता है। अय्यूब की संपत्ति लौटाता है। उसे और भी समृद्ध करता है। सात पुत्र, तीन सुन्दर पुत्रियाँ, चिरायु, चार पीढ़ी तक अपना वंश देखने की आशिष देता है (४२ : ७–१७)।

४. रचना, रचयिता, रचना तिथि

(१) रचना—अय्यूब की पुस्तक प्रमुख पात्र की गद्यात्मक कथा से आरंभ होती है और अंत भी (१–२; ४२ : ७–१७)। इन दोनों गद्यांशों के बीच

रचना का मूल भाग उच्चकोटि की कविता है और बड़े तर्कपूर्ण क्रम में प्रस्तुत है। इसमें वार्तालाप के तीन दौर हैं। इन तीनों में अय्यूब के मित्र एक क्रम के अनुसार अपनी बात कहते हैं। उसके पश्चात् एलीहू का वार्तालाप है और अंत में आंधी में से परमेश्वर के वचन। एलीहू जहां बोलता है उस अंश को छोड़ एलीहू का उल्लेख अन्यत्र नहीं है। इसलिए यह प्रश्न उपस्थित किया जाता है कि क्या एलीहू का अंश मूल पुस्तक का भाग है अथवा नहीं। वास्तव में कुछ विद्वान तो परमेश्वर के वार्तालाप अंश के संबंध में भी यही प्रश्न उठाते हैं। इसका कारण यह है कि वार्तालाप के तीन दौर अपने में पूरी रचना प्रतीत होते हैं। अध्याय २८ में बुद्धि की प्रशंसा है और वह मौलिक विचार है। यदि वह अध्याय निकाल भी दिया जाए तो विचारधारा में किसी प्रकार की बाधा नहीं आती। इस अध्याय के संबंध में भी उपरोक्त प्रश्न किया जाता है। यह संभव है कि मूल कविता सुननेवालों को इतनी सुन्दर और विचारोत्पादक लगी कि उसे विस्तृत रूप में या आज की भाषा में कहें तो उसका संशोधित संस्करण प्रस्तुत करना आवश्यक हो गया। और वह भी मूल लेखक को ही करना पड़ा। एलीहू का वार्तालाप मूल कविता में जोड़ दिया गया होगा। प्रभु यहोवा के वचन कदाचित मूल कविता का ही अंश है।

यह प्रश्न भी किया गया है कि क्या गद्यात्मक प्रस्तावना और उपसंहार का लेखक वही है जो कविता का रचयिता है? क्या कविता की रचना पहले हुई और बाद में गद्यांशों को जोड़ दिया गया? अथवा क्या गद्यात्मक अंश पहले से कहानी के रूप में प्रचलित था और कवि ने दार्शनिक कविता की रचना में उसका उपयोग किया? यह अनुमान उचित ही है कि एक ही लेखक ने गद्य और पद्य अंश लिखे, क्योंकि गद्य अंशों में पद्यांशों की आवश्यक पृष्ठभूमि है। ऐसा लगता है कि अय्यूब की, अर्थात कष्ट उठानेवाले धार्मिक मनुष्य की प्रचलित कथा में कल्पना के रंग भरकर इस उद्देश्य से उसकी पुनर्रचना की कि सुन्दर पृष्ठ-भूमि के साथ निर्दोष के कष्ट सहने की समस्या को प्रस्तुत किया जाए। उसने दार्शनिक वार्तालाप के 'अचल नाटक' के साहित्यिक रूप को अपनाया।

ऐसा प्रतीत होता है कि वार्तालाप के तीसरे दौर में कथोपकथन में क्रम भंग हो गया है। बिलदद का कथन (अ. २५) बहुत ही छोटा है और सोपर का कथन है ही नहीं। इसका स्पष्टीकरण यों किया जा सकता है कि वार्तालाप में अय्यूब उत्तरोत्तर अपने मित्रों पर हावी होता गया, जिससे बिलदद कुछ अधिक न कह सका और सोपर को चुप हो जाना पड़ा, और अय्यूब अधिक बोलता गया। फिर भी यह द्रष्टव्य है कि अय्यूब का लम्बा उत्तर कहीं-कहीं असंगत

दिखाई देता है और ऐसा लगता है कि वह उसके विरोधियों के तर्क दे रहा है, जैसे २६ : ५–१४ और २६: ७–११, १३–२३। इस कारण यह अनुमान किया जाता है कि पाठ में क्रमभंग हो गया है। मूल क्रम की पुनर्रचना का प्रयास किया जाए तो बिलदद का कथन लम्बा हो जाएगा जिसमें २५, २६ : ५–१४ सम्मिलित हो जाएगा और सोपर को तीसरे दौर में स्थान मिल जाएगा। सोपर के कथन २७ : ७–११, १३-२३ होंगे। ऊपर जो रूपरेखा दी गयी है उसमें इस प्रकार की सम्भावना का संकेत किया गया है। इसका विकल्प यह है कि हम मानें कि अय्यूब व्यंग्यात्मक ढंग से अपने विरोधी मित्रों की बातों को दुहरा रहा है।

(२) रचयिता–लेखक अज्ञात है परंतु इतना निश्चय है कि वह उच्च कोटि का कलाकार होगा। क्विलर कूच अंग्रेजी साहित्य का एक माना हुआ आलोचक है। उसका कथन है कि अंग्रेजी महाकवि मिल्टन और शैली दोनों ने अय्यूब की कथा को अपनी काव्य-रचना का विषय चुना परंतु उन्होंने इस प्रयास को इसलिए छोड़ दिया कि इस उच्च कोटि की रचना को और अधिक सुन्दर और उदात्त बनाने में उन्होंने अपने आप को असमर्थ अनुभव किया। इस रचना में कलाकार न केवल मानव जीवन की एक गहनतम समस्या पर ही यथार्थवादी रूप से अभिव्यक्ति करता है, परन्तु वह उच्चतम कोटि की बुद्धि एवं भाव की गहराई एवं तीव्रता की भी अभिव्यक्ति करता है। इस कविता में विभिन्न क्षेत्रों से रूपकों की योजना की गई है। प्रकृति से रूपक जुटाए गए हैं, जैसे लोप होते हुए बादल, सूखी धारवाले नाले (७ : ९; ६ : १५); रूपक प्राणी जीवन से लिए गये हैं जैसे झपटते हुए उकाब, मकड़ी का जाला, अहेरी पशु (९ : २६; ८ : १४; १६ : ९); कृषक जीवन से लिये गए हैं, जैसे बोना, जोतना, लवना, गिरती हुई दाखलताएं, मुरझाते हुए फूल (४:८, २४:२४, १५:३३), मानवी श्रम और गाहर्स्थ जीवन से, जैसे मजदूर का सांझ की अभिलाषा करना, गड़े हुए धन की खोज करना, जुलाहे की धड़की, छाप लगाना, धोना, पीना (७:२, ३:२१, ७:६, ३८:१४, ९ : ३०, १५:१६), यात्रा के क्षेत्र से लिये गये हैं, जैसे हरकारा, वेग से चलने वाली नाव, कारवां (९:२५; ९:२६; ६:१८, १९)। कुछ वर्णन अत्यंत चित्रात्मक हैं। समुद्र नवजात शिशु के समान और बादल उसके वस्त्र के समान हैं (३८ : ९); उषा एक सुकुमारी है जो भोर की पलकों से क्षितिज से झांकती है (३ : ९); अंधकार उस डेरे के समान है जिसकी डोरियाँ शीघ्र कट जाती हैं (४ : २१)। कुछ पशुओं के चित्र भी बड़े स्पष्ट हैं, जैसे गधा, शुतुरमुर्ग, घोड़ा, जलगज, मगर (३९–४०)।

अय्यूब की पुस्तक में कई अरबीपन हैं। केवल एक का ही उल्लेख किया जाए। परमेश्वर का एकवचन रूप ही इसमें प्रयुक्त है, इब्रानी के समान बहुव-

चन रूप नहीं। अर्थात् एलोहीम के बदले एलोआह (ELoah) (दे. अरबी इलाह, अलइलाह या अल्लाह) का प्रयोग हुआ है। कुछ रूपक ऐसे हैं जो खानाबदोश समाज के लिये सार्थक हैं। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि लेखक यरदन नदी के पूर्व के क्षेत्र का रहनेवाला था जहां अरबी बोलनेवाले लोग रहते हैं। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि लेखक एदोमी था और कि उसने मूल रचना अरबी में की और इब्रानी रचना अरबी का अनुवाद है। इस संबंध में यह द्रष्टव्य है कि अय्यूब का प्रमुख मित्र एलीपज तेमान नगर का था। तेमान नगर एदोम में था। परंतु यह कल्पना करना अत्यंत कठिन है कि किसी एदोमी पुस्तक को इब्रानी प्रामाणिक धर्मशास्त्र में स्थान दिया जाए और कि एदोमी पुस्तक में शुद्ध एकेश्वरवादी दर्शन प्रस्तुत किया जाए जैसे कि अय्यूब की पुस्तक में है। अतएव इसका रचयिता इब्रानी व्यक्ति ही होना चाहिये।

(३) **तिथि**—रचना तिथि भी अज्ञात है। अत्यंत विभिन्न मत इस संबंध में व्यक्त किए गए हैं। मूसा और पूर्व-मूसा काल से लगातार मकाबी काल के सम्पूर्ण इब्रानी इतिहास के किसी भी काल में विद्वानों द्वारा इसकी रचना तिथि का अनुमान किया गया है। भाषा की विशेषताओं से यह पता चलता है कि यह पुस्तक उस समय लिखी गई जब प्राचीन इब्रानी प्रचलित हो रही थी अथवा यह परवर्ती काल में लिखी गई जब बोलचाल की भाषा अरामी भाषा में बदल रही थी। इसके विपरीत, भाषा की विशेषताओं का यह भी स्पष्टीकरण दिया जा सकता है कि लेखक अरब देश की भाषीय सीमा पर रहता था।

पुस्तक के तिथि-निर्धारण में एक महत्वपूर्ण आधार यह है कि बाइबल के उन अंशों के साथ साम्य देखा जाय जिनकी तिथि की जानकारी हमें है। इस आधार पर यह माना जाता है कि अय्यूब का स्वगत कथन (३:३–२६) की प्रेरणा यिर्मयाह के अंगीकार से मिली होगी (यि.२०: १४–१८) क्योंकि अय्यूब के समान यिर्मयाह भी अपने जन्म दिन को धिक्कारता है। अय्यूब २१:७–१६ यिर्मयाह १२: १–३ पर आधारित हो सकता है। दोनों में दुष्टों के संपन्न होने का उल्लेख है। इसके विपरीत शब्द भंडार के अध्ययन से पता चलता है कि यशायाह ४०–६६ अय्यूब की पुस्तक पर आधारित हो सकता है। थूक, मकड़ी और आकाशमंडल जैसे असामान्य शब्द दोनों में मिलते हैं (७:१९; ८: १४; २२: १४; दे. यश. ५०: ६; ५९: ५; ४०:२२)। अय्यूब यशायाह ४०–६६ से पहले की रचना है–यह इस बात से व्यंजित होता है कि दुःख की समस्या का एक कारण स्थानापन्न (Vicarious) दुःख उठाना हो सकता है–यह विचार यशायाह ४०–६६ में प्रमुख विचार है परंतु अय्यूब में यह विचार नहीं मिलता। इन तथ्यों के आधार पर अय्यूब की पुस्तक की रचना तिथि यिर्मयाह और

यशायाह ४०–६६ के रचना काल के मध्य मानी जाती है–अर्थात लगभग ई. पू. ५६० । अय्यूब १२:१८–२१ में राजाओं और पुरोहितों की बंधुवाई की अंतर्कथा निहित है । अतएव यह पुस्तक कम से कम ई. पू. ७२१ के बाद लिखी गई होगी जब शोमरोन का विनाश हुआ । बंधुवाई की कथा पाठकों या श्रोताओं के लिये उसी समय सार्थक हो सकती है जब कि उन्हें अपने इतिहास क्रम में या तो इस्राएल राज्य या यहूदा राज्य की बंधुवाई की जानकारी हो । इसलिये यह पुस्तक बंधुवाई के बाद ही लिखी गई ।

५. समीक्षात्मक रोचक समस्याएं

(१) साहित्यिक साम्य–'निर्दोष का दुःख सहना' मानव जीवन का एक सुपरिचित अनुभव है । अतएव यह आश्चर्य की बात नहीं है कि यह विषय विभिन्न जातियों के साहित्य में चिंतन का विषय हो । उदाहरणार्थ, भारतीय साहित्य में सत्य हरिश्चन्द्र की कथा है जिनके सत्य की परीक्षा देवताओं की शर्त के कारण हुई । अय्यूब की कथा में मिस्र और बाबुल के 'निराशावादी साहित्य' की झलक अधिक है । मिस्र के साहित्य में मध्य राज्य के समय से (ई. पू. २० वीं–१८ वीं सदी) 'वाक्पटु किसान की शिकायत' एक रचना है। उसमें कुछ कुछ काव्यरूप में नौ वार्तालाप हैं जिनकी प्रस्तावना और उपसंहार गद्य में हैं । ई. पूर्व १८ वीं सदी की रचना 'नेफेर-रोहू की नबूवत' नामक रचना के आरंभ और अंत में भी विवरणात्मक अंश हैं । 'अपने जीवन से थके मनुष्य का अपनी आत्मा से संवाद' रचना में एक मनुष्य मरना चाहता है परंतु वार्तालाप में उसकी आत्माविरोध करती है ।

बाबुली साहित्य में 'धार्मिक दुःख उठानेवाले की कविता' नामक रचना है जिसे 'बाबुली अय्यूब' भी कहा जाता है ('मैं बुद्धि के परमेश्वर की सराहना करूँगा') । इस रचना में वक्ता बड़े कष्ट में है । वह अपनी निर्दोषिता की दुहाई देता है, अपनी भक्ति का वर्णन करता है, अपने देवता पर उदासीन होने का अभियोग लगाता है और मनुष्य के ज्ञान और भाग्य के संबंध में निराशावाद व्यक्त करता है, 'ईशशास्त्र पर सूत्रात्मक कथोपकथन' नामक रचना भी है, 'मानवी दुर्दशा पर संवाद' अथवा 'बाबुली सभोपदेशक' भी है जिनमें ईश्वरीय न्याय और मनुष्य जीवन के अभिप्राय का विवेचन किया गया है । वह इस अर्थ में सूत्रात्मक है कि उसकी पंक्तियां किसी मंत्रकार के नाम के आधार पर नियोजित हैं । 'स्वामी और सेवक के बीच एक निराशावादी संवाद' नामक रचना भी है जिसमें मानवी जीवन के अनेक पक्षों की प्रशंसा की गई है और तत्पश्चात् व्यर्थता की चरम सीमा में उन्हें निकृष्ट ठहराया गया है ।

निराशावादी साहित्य के ये उदाहरण हमारे समक्ष इब्रानी साहित्य में निराशावादी तत्वों की प्रबुद्ध पृष्ठभूमि प्रस्तुत करते हैं। इससे हमें पता चलता है कि इस्राएल के एकेश्वरवादी विश्वास को मानवी अनुभवों के गहन निराशावादी पक्षों का सामना करना पड़ा। परन्तु इन पुस्तकों के आधार पर यह अनुमान नहीं लगाया जा सकता कि अय्यूब की पुस्तक इन पुस्तकों पर और विचारधाराओं पर आधारित है।

(२) **अय्यूब की ऐतिहासिकता**

अय्यूब की ऐतिहासिकता पर शंका की जाती है और अय्यूब की कथा की ऐतिहासिकता पर और भी अधिक शंका की जाती है। उसकी पशु-संपत्ति और उसके परिवार के आदर्श अंक से इतिहासकार की शुद्धता के बजाय कहानीकार की कला की व्यंजना होती है। स्वर्ग सभा के दृश्य, जिनमें परीक्षक को अय्यूब की परीक्षा लेने की अनुमति दी जाती है, स्वभावतया ही ऐतिहासिक प्रमाणों के बाहर की बातें हैं। दुर्घटना के आघात ऐसे हैं, जिनमें केवल एक ही व्यक्ति वर्णन करने के लिए बच जाता है, कि उनसे कल्पनाप्राण रचना का आभास मिलता है। लम्बे लम्बे संवादों में उच्चकोटि की काव्यात्मकता है। इनसे यह व्यंजित होता है कि यह रचना इतिहासज्ञ की नहीं, महाकवि की है। अंत में अय्यूब की संपत्ति और संतान उसे पुनः प्राप्त होती है। पशु संपत्ति संख्या में एकदम दुगुनी और संतान उतनी जितनी पहले थी। तीन पुत्रियाँ बहुत सुन्दर और नाम भी बड़े प्यारे-कपोती, संहिजनी, नयनरंजिनी। ये सब कथाकार की तूलिका के रंग हैं।

इसके विपरीत, यहेजकेल १४:१४,२० में एक अय्यूब का उल्लेख हुआ है। इनमें उसे भक्ति और धर्माचरण का सुप्रसिद्ध आदर्श कहा गया है। इससे संकेत मिलता है कि अय्यूब ऐतिहासिक व्यक्ति था। अतः हम यह मान सकते हैं कि अय्यूब एक ऐतिहासिक मनुष्य था जिसका नाम धर्माचरण, भक्ति और निर्दोष होते हुए दुःख उठाने में धैर्यवान का प्रतीक बन गया। परवर्ती काल में जब इस पुस्तक के लेखक को, जो गहन विचारक और उच्चकोटि का कवि था, निर्दोष के दुःख उठाने की समस्या से उलझना पड़ा, तो उसने अपने विचारों की पृष्ठभूमि के लिए अय्यूब की परंपरा को लिया और अपने अभिप्राय के अनुकूल कथा में रंग भर कर उच्च कोटि की रचना प्रस्तुत की।

(३) **शैतान**—'शैतान' अय्यूब की पुस्तक में परमेश्वर के पुत्रों में से एक है (१:६; २:१, आदि)। इब्रानी में शब्द का अर्थ 'विरोधी' है। वर्तमान संदर्भ में 'परीक्षक' है। अंग्रेजी में 'शैतान' शब्द के साथ उपपद 'दी' जुड़ा हुआ

हैं। इससे पता चलता है कि वह सामान्य संज्ञा है व्यक्तिवाचक संज्ञा नहीं। अय्यूब की पुस्तक में वह स्वर्गदूत-सभा का एक सदस्य है जिसका कार्य यह है कि आदर्श धर्माचरण संबंधी मानवी दावों के प्रति शंका और परीक्षण करने के माध्यम से स्वर्ग सभा के नैतिक आदर्शों को सुरक्षित रखे। रोमी कथोलिक कलीसिया में धन्य-घोषणा (beatification) की प्रक्रिया के निमित्त एक 'विश्वास का प्रोत्साहक' (Promotor Fidei) होता है जिसे बोलचाल में 'शैतान का अभिभाषक (वकील)' कहते हैं। अय्यूब की कथा में शैतान का काम इसी वकील जैसा है। रोमी कलीसिया में इस वकील का काम यह है कि जिस व्यक्ति के लिए धन्य-घोषणा की अपेक्षा की जाती है उसके धर्माचरण के पक्ष में प्रस्तुत प्रमाणों में त्रुटि की खोज करे। इसी प्रकार अय्यूब की पुस्तक में शैतान या परीक्षक अय्यूब के धर्माचरण का परीक्षण करता है। नये नियम और ख्रिस्तीय धर्मविज्ञान में जिसे यह नाम शैतान दिया गया है अर्थात् 'दुष्ट' उसके साथ इस शैतान को मिलाना उचित नहीं है। नये नियम का दुष्ट परमेश्वर का महा-विरोधी है और परमेश्वर की सभाओं में उसका कोई स्थान संभव नहीं। अय्यूब की पुस्तक में शैतान की कल्पना बुराई के सरदार के रूप में शैतान के समान है, और इस बात में समान है कि बुराई और कष्ट के अपने कटु अनुभवों में मानव दोनों से परिचित होता है। यह ध्यान देने की बात है कि ज्यों ज्यों इब्रानी लोगों को परमेश्वर का प्रकाशन अधिकाधिक पूर्ण मिलता गया, त्यों त्यों वे इन कटु अनुभवों के विभिन्न कारणों को पहचानने लगे, कि वे परमेश्वर के भेद के कारण हैं अथवा दुष्ट के कारण हैं।

६. धर्म शिक्षा

प्रस्तावना से हमें यह शिक्षा मिलती है कि अय्यूब आदर्श धर्माचरणवाला व्यक्ति था जिसने बड़े धैर्य के साथ विपत्ति और दुःख सहा। 'अय्यूब का धीरज' (या. ५:११) लोक प्रसिद्ध हो गया और इस प्रकार 'दुःख में धीरज' इस पुस्तक की शिक्षा है। परंतु इस पुस्तक के लेखक के मन 'धीरज के नमूने' को प्रस्तुत करने के अतिरिक्त और भी कुछ है। उसका मन इस समस्या से उलझ रहा था कि यदि परमेश्वर भला है, सर्व शक्तिमान है, तो वह क्यों दुष्टों को पनपने देता और धर्माचरण करने वालों को दुःख सहने देता है। यह समस्या बाइबल में अन्य स्थानों पर भी उठाई गई है जैसे भ० ३७, ४०, ५८, ७४ में और यिर्मयाह १२:१–४ में। अय्यूब की पुस्तक का लेखक इस समस्या का कोई स्पष्ट हल नहीं प्रस्तुत करता, परन्तु वह उस समाधान की नींव रखता है जो बाद में ख्रिस्तीय प्रकाशन में होनेवाला था। अय्यूब के मित्रों द्वारा इस समस्या की परंपरागत मान्यता को प्रस्तुत किया गया है, अर्थात्

कि परमेश्वर भलों को आशिष देता और बुरों को दंड। दूसरे शब्दों में यों कहें कि पाप का दंड दुःख है इसलिये दुःख पाप का प्रमाण है। यह विचार भी इसमें पाया जाता है कि दुःख एक सीख देने वाला तत्व है (५:१७; ३३:३०)। परन्तु अय्यूब को इन मान्यताओं से कोई सांत्वना नहीं मिलती, क्योंकि वह अपने अनुभव से जान रहा है कि निर्दोष का दुःख उठाना एक सच्चाई है, और वह यह भी जानता है कि सर्वशक्तिमान परमेश्वर, केवल परमेश्वर पर ही इस दुःख का और उससे उत्पन्न अन्याय का दायित्व है। यदि लेखक ने कोई समाधान प्रस्तुत किया है, तो वह प्रभु परमेश्वर के उन वचनों में है जो आंधी के माध्यम से कहे गये। जो कुछ परमेश्वर ने कहा उससे नहीं वरन् उसकी प्रभावशाली उपस्थिति से अय्यूब अपने दुःखों को भूलता है। ईश-दर्शन से अय्यूब अपनी परिस्थिति से ऊँचा उठता है और उस दशा में पहुँचता है जहाँ वह जानने मात्र से संतुष्ट नहीं है क्योंकि उसने नवीन दर्शन और दृष्टि प्राप्त कर ली है।

इस प्रकार अय्यूब की पुस्तक से यह शिक्षा मिलती है कि यद्यपि मनुष्य के अधिकांश कष्ट उसके पाप के कारण हैं तथापि सब कष्ट उसके पाप के कारण नहीं हैं। यह एक सच्चाई है कि कभी कभी धर्मपरायण व्यक्ति दुःख भोगता है जैसे अय्यूब ने भोगा। जब हमें इस प्रश्न का उत्तर देने चलते हैं कि दुःख क्यों मनुष्य को होता है, और उत्तर में यह कहते हैं कि दुःख पाप के दंड स्वरूप या मानव के शिक्षार्थ आता है, तो हमें इस बात को भी ध्यान में रखना चाहिये कि धर्माचारी और निर्दोष भी दुःख उठाता है जिसका कारण परमेश्वर के अगाध भेद की परिधि में रहता है। अय्यूब की पुस्तक के अध्ययन से इस भेद के समक्ष साहस से खड़े रहने के लिये आशा की कुछ किरणें दिखाई देती हैं। पहली, कि भविष्य में जीवन है जिसमें इस संसार के अन्याय को दूर किया जाएगा और न्याय की स्थापना होगी (१४: १४)। दूसरी, यदि कोई व्यक्ति इस संसार में ईश-शाप के कारण दुःख भोगता है तो उसकी निर्दोषिता के लिये 'स्वर्ग में (उसका) साक्षी है, और (उसका) गवाह ऊपर है'। तीसरी, कि दुःखी जन को परमेश्वर चाहे जितना कठोर जान पड़े, पर वही सत्य की रक्षा करेगा और निर्दोष दुःख उठानेवाले के लिये वही छुड़ानेवाला होगा (१९: २५)।

निर्दोष के दुःख भोग की समस्या के संबंध में जो कुछ भी समाधान इस पुस्तक में प्रस्तुत है, वह तार्किक न होकर व्यावहारिक है। परमेश्वर के महा पराक्रम और सामर्थ को अय्यूब देखता है–और फिर वह इस बात की चिंता नहीं करता कि वह अपने दुःख का कारण जाने। वह परमेश्वर के एक नये प्रकाशन का दर्शन करता है और नये अनुभव में ऊँचा उठ जाता है। यह समाधान इस समस्या के ख्रिस्तीय

समाधान की ओर इशारा करता है। सुसमाचार में हमें यह नहीं बताया गया कि निर्दोष क्यों दुःख उठाता है, परंतु हमें परमेश्वर के पुत्र यीशु ख्रिस्त में परमेश्वर का एक नया प्रकाशन मिलता है। यीशु ख्रिस्त निष्पाप था और उसने जगत के त्राण के लिये दुःख का मार्ग चुना। ख्रिस्त में इस नये प्रकाशन के सामने हम अपने दुःखों के संबंध में चिंता करना भूल जाते हैं। इसके विपरीत हम दुःख में घमंड करते हैं क्योंकि हम ख्रिस्त के अधिक पास आते हैं (फिल. ३: ८–१०)। क्रूस का भेद दुःख के भेद को आत्मसात कर लेता है–क्योंकि क्रूस का भेद परमेश्वर के उद्धारक और स्थानापन्न प्रेम का भेद है।

अय्यूब की पुस्तक में इस मूल शिक्षा के अतिरिक्त कुछ अन्य शिक्षाएं भी हैं। इस संसार पर परमेश्वर की सामर्थ और पूर्ण आधिपत्य का बड़ा स्पष्ट चित्रण है (५: ९–१४; ४०:१०–४१: २५; ४२:२)। परमेश्वर की बुद्धि की तुलना में मनुष्य का समस्त ज्ञान अज्ञान है (३८–३९)। अय्यूब के 'नकारात्मक अंगीकरण' (३१) में मनुष्य के नैतिक दायित्व प्रस्तुत हैं। इनमें दुर्बलों और अनाथों के प्रति दयाभाव, और इच्छा के पापों को मान लेना विशेष द्रष्टव्य हैं (३१: १)।

सत्ताइसवां अध्याय

भजन संहिता

१. शीर्षक और प्रामाणिक धर्मशास्त्र में स्थान

इब्रानी में यह पुस्तक तहिल्लीम (स्तुति-गीत) कही जाती है, यद्यपि पुस्तक के भीतर उसकी विषय सामग्री को दर्शाने के लिए तपिल्लीम (प्रार्थनाएँ) शब्द काम में लिया गया है। सेपत्वागिंता में प्सलमुइ (एक वचन प्सलमोस्) है। यह प्सल्लो से निकला है, जिसका अर्थ उंगली से तारवाले वाद्य को बजाना है। अतएव प्सलमोस ऐसा गीत होता था जो तारवाले बाजे के साथ गाया जाता था। सेपत्वागिंता का अनुसरण कर वुल्गाता में पुस्तक का नाम प्सालमी है और अंग्रेजी में वुल्गाता का अनुसरण किया गया है। भारतीय अनुवादों में या तो अरबी का अनुसरण कर जबूर या मजमूर या मिजामीर कहा गया है या फिर शब्द का अनुवाद किया गया है। हिन्दी में इसका अनुवाद पहले स्तोत्र संहिता किया गया था फिर भजन संहिता किया गया। भजन संहिता (Psalter) शब्द का प्रयोग भजन की पुस्तक के लिये किया गया है, और विशेषकर उस समय जब उसका उपयोग उपासना पद्धति के लिए किया जाता है।

इब्रानी बाइबल में लेखों (कतुवीम) के अंतर्गत भजन संहिता पहिली पुस्तक है। सेपत्वागिंता, वुल्गाता, अंग्रेजी और भारतीय भाषाओं की बाइबलों में उसे काव्यात्मक एवं प्रज्ञाग्रंथों के अंतर्गत अय्यूब की पुस्तक के बाद स्थान दिया गया है।

२. विषय सामग्री का सारांश

भजन संहिता एक सौ पचास भक्ति गीतों का संग्रह है, जिनमें परमेश्वर के संबंध में मनुष्य के विभिन्न भावों की अभिव्यक्ति है। इन भावों में निवेदन धन्यवाद, आनंद, अंगीकार और स्तुति जैसे भावों की तीव्र अनुभूति और अभिव्यक्ति है।

३. रूपरेखा

भजन संहिता -- इस्राएल की प्रार्थनाएं एवं स्तवगान

(१) पहिला भाग (१–४१)

सामान्यतया इस भाग में व्यक्तिगत प्रार्थना एवं धन्यवाद के भजन हैं। इन्हें विशेषतया 'दाऊद के भजन' कहा गया है।

(२) दूसरा भाग (४२–७२)

इस भाग में सामान्यतया राष्ट्रीय संदर्भ में प्रार्थना और धन्यवाद के भजन हैं। दूसरे भाग में निम्नलिखित उपविभाग हैं :

(क) कोरह वंशियों के भजन (४२–४९; ८४,८५,८७);

(ख) दाऊद के भजन (५१–७० में से अधिकांश भजन)।

(३) तीसरा भाग (७३–८९)

दूसरे भाग के समान इस भाग में भी सामान्यतया राष्ट्रीय संदर्भ में प्रार्थना और धन्यवाद के भजन हैं। इसमें एक विशेष इकाई है : आसाप के भजन (७३–८२, ५० भी)

(४) चौथा भाग (९०–१०६)

इस भाग के भजन साधारणतया उपासना विधि संबंधी हैं। इनमें मंदिर से सम्बन्धित स्तुति और धन्यवाद हैं। सामान्यतया इनके लेखक अज्ञात हैं और संगीत के चिन्ह इनमें बहुत कम हैं।

(५) पांचवा भाग (१०७–१५०)

चौथे भाग के समान इस भाग के भजन भी साधारणतया उपासना विधि संबंधी हैं, और लेखक सामान्यतया अज्ञात हैं तथा संगीत के चिह्न भी बहुत कम हैं। इस पुस्तक में विशेष उपविभाग निम्नलिखित हैं :

(क) यात्रा के गीत (१२०–१३४)। (ख) दाऊद के भजन (१३८–१४५)।

(ग) स्तुति या हल्लिलूयाह के भजन (१०४–१०७; १११–११७; १३५–१३६; १४६–१५०)। अधिकांश पांचवे भाग में हैं परन्तु चार चौथे भाग में हैं। पांचवें भाग को छोड़कर अन्य सब भागों के अंत में प्रशंसागान है (४१:१३; ७२:१८-२०; ८९:५२; १०६:४८)। पांचवें भाग के अंतिम भजन, १५० वें भजन को प्रशंसागान माना जा सकता है।

११३–११८ भजनों को हल्लेल (स्तुति) या सामान्य हल्लेल कहते हैं। ये महान पर्वों पर गाए जाते थे। फसह के पर्व पर भी इनका गान होता था (दे. मत्त. २६:३०)। १३६ वां भजनों या १२०–१३६ भजनों को महान हल्लेल कहा जाता है।

४ भजनों का वर्गीकरण

विषय सामग्री के आधार पर अनेक भजनों का वर्गीकरण निम्नानुसार किया जाता है :

चिन्तनात्मक या प्रबोधनात्मक—इनमें भजन लेखक परमेश्वर के संबंध में अपने अनुभवों पर विचार करता है और इस प्रकार जीवन के लिए शिक्षा ग्रहण करता है। भजन १, ८, १५, १९, ३३, ३४, ३७, ४९, ५०, ९०, १११, ११२, ११९, १३९ ऐसे भजन हैं।

ऐतिहासिक भजन—इनमें इस्राएल के इतिहास में परमेश्वर के कार्यों का प्राधान्य है। १८, ७८, ८९, १०५, १०६, १३२, १३५, १३६ ऐसे भजन हैं। और भी देखिए. ४६, ४८, ७६, ८३, ४४, ७४, ७९, १३७.

प्रकृति भजन—इनमें प्राकृतिक घटनाओं के अन्तर्गत परमेश्वर के कार्यों का वर्णन है १८, १९, ७४, १०४ ऐसे भजन हैं।

मसीह संबंधी भजन : इन्हें राजोचित भजन भी कहते हैं। इनमें दाऊद का राजा या अभिषिक्त के रूप में उल्लेख हुआ है। २, १८, २०, २१, ४५, ६१, ६३, ७२, ८९, ११०, १३२ भजन ऐसे हैं।

उपासना-विधि संबंधी भजन : इनमें मंदिर में आराधना संचालन का भाव विद्यमान है। ६७, ८४, १०७, ११८ और हल्लिलूयाह भजन इनमें सम्मिलित हैं (रूपरेखा देखिए)।

पश्चाताप के भजन : इनमें भजन-लेखक अपने पाप का अंगीकार करता है या परमेश्वर संबंधी अपनी आवश्यकता को व्यक्त करता है। ६, ३२, ३८, ५१, १०२, १३०, १४३ भजन ऐसे हैं।

शापवाचक भजन : इनमें शत्रुओं या दुष्टों को शाप दिया गया है, जैसे ३५, ५८, १०९ भजन।

ये वर्ग न तो पूर्ण हैं और न अमिश्रित हैं। यह वर्गीकरण केवल अध्ययन और भावन के लिये सुझाया गया है।

आधुनिक विद्वानों की रुचि इस बात में है कि जहाँ तक संभव हो उपासना पद्धति के संदर्भ में इन भजनों की मूल पृष्ठभूमि के संबंध में जानकारी प्राप्त करें। इस आधार पर भजनों का निम्नलिखित वर्गीकरण किया गया है (गुनकेल (Gunkel) का वर्गीकरण)।

मंदिर के अनुष्ठानों के सहगान अंश के लिये भजन—८, १९, २९, ३३।

राष्ट्रीय विपत्ति के संदर्भ में प्रयोग होने वाले समाज के विलाप भजन—४४, ७४, ७९ ।

राजोचित भजन, ई. पू. ५८६ के पूर्व शासन करने वाले राजा से संबंधित —२, १८, २० ।

व्यक्तिगत विलाप, जिनमें कठिन परिस्थितियों में सहायता की पुकार है— ३, ५, ६, ७, १३ ।

धन्यवाद के व्यक्तिगत भजन, जिनका प्रयोग मंदिर की उपासना विधि में भी किया जाता होगा—३०, ३२, ३४ ।

सिंहासन पर आसीन होने के भजन : सिंहासन पर आसीन होने के वार्षिकोत्सव के भजन—४७, ९३ ।

भरोसे के भजन—४, ११, १६, २३

प्रज्ञा कविता—१, ३७, ४९

उपासना विधि—८, ४२-४३, ४६

नबूवत की उपासना विधि : जिनमें उपासना के अंतर्गत नबी के पद को स्थान दिया गया है—१२, ७५

५. भजन संहिता की आलोचनात्मक रोचक विशेषताएँ

(१) भजनों को अंक देना—भजनों को संख्या या अंक देने की दो परंपराएं हैं (क) इब्रानी अंक पद्धति, जिसका अनुसरण प्रोतेस्तंत अंग्रेजी बाइबलों और प्रोतेस्तंत परंपरा के अनुवादों में किया गया है । (ख) सेपत्वागिंता पद्धति, जिसका अनुसरण वुल्गाता में और उस की परंपरा के अनुवादों में किया गया है । इब्रानी अंक पद्धति अधिकांशत: सेपत्वागिंता पद्धति से एक अंक अधिक है । यह नहीं कहा जा सकता कि एक परंपरा दूसरी से अधिक मौलिक है, क्योंकि भजन ९ और १० इब्रानी में भी पहले एक ही भजन थे जैसे कि सेपत्वागिंता में हैं, और भजन ११४ और ११५ इब्रानी में दो भजन हैं जब कि सेपत्वागिंता में एक ही हैं (११३) । सेपत्वागिंता में (परंतु वल्गाता में नहीं) एक भजन और है (१५१) जिसमें गोलियात के साथ दाऊद की लड़ाई का वर्णन है ।

दोनों परंपराओं की अंक-पद्धतियों का संबंध निम्नानुसार है :

इब्रानी (मसोरेती पाठ) और प्रोतेस्तंत बाइबल	सेपत्वागिंता, वुल्गाता और कथोलिक अनुवाद
१–८	१–८
९-१०	९
११–११३	१०–११२
११४-११५	११३
११६	११४-११५
११७-१४६	११६–१४५
१४७	१४६-१४७
१४८–१५०	१४८–१५०

(२) भजनों के शीर्षक—३४ भजनों को छोड़कर अन्य सब को शीर्षक दिए गए हैं। उदाहरणार्थ भजन ४ का शीर्षक यह है : 'प्रधान बजाने वाले के लिये। तारवाले बाजों के साथ। दाऊद का भजन।' इब्रानी में यह भजन का पहला पद है और इससे यह संकेत होता है कि यह इब्रानी पाठ का अंश है। इस शीर्षक को और वर्तमान अनुवादक जो शीर्षक देते हैं, जैसे 'परमेश्वर या भरोसे के लिए सायंकाल की प्रार्थना' (ए. एस. वी) दोनों को एक ही नहीं समझना चाहिये। अनुवादक द्वारा दिया हुआ शीर्षक इब्रानी पाठ में नहीं पाया जाता। आलोचना के अभिप्राय की दृष्टि से 'भजनों के शीर्षक' से केवल उन्हीं शीर्षकों का संकेत होगा जो इब्रानी पाठ के अंश हैं।

इब्रानी शीर्षक बहुत प्राचीन हैं। वे मसोरेती पाठ के अंश है। वास्तव में वे इतने प्राचीन हैं कि उनके मूल अर्थ का अब पता नहीं। फलस्वरूप इनके अनुवाद करने में अनुमान का सहारा लेना पड़ता है। यद्यपि ये शीर्षक बहुत प्राचीन हैं, परन्तु ऐसा प्रमाणित होता है कि भजनों के मूल भाग नहीं हैं, क्योंकि कई भजनों के संबंध में सेपत्वागिंता में पाए जाने वाले शीर्षक मसोरेती पाठ के शीर्षक से भिन्न हैं (उदा. ३३, ४३, ९३, ९६ आदि)। कुछ शीर्षक या शीर्षकों के अंश संगीत निर्देश जैसे प्रतीत होते हैं। उदाहरणार्थ, ४६वें भजन में 'अमालोत की राग पर' (यह कदाचित वॉयलिन का पंचम या सप्तम स्वर जैसा हो); ४ थे भजन में 'नगीनोत' जिसका अनुवाद 'तारवाले बाजों के साथ' किया गया है; ५वें भजन में 'नहीलोत' जिसका अर्थ कदाचित् 'श्वास से बजने वाले बाजों के साथ' हो सकता है; ६वें भजन में 'शेमीनित' जो कदाचित 'आठ तारवाले बाजों के नीचे सप्तक' के अर्थ में प्रयुक्त है। कुछ शीर्षकों से रागों के नाम का संकेत मिलता है, जैसे ५६ वें भजन में 'योनते-एलेम-रहोकीम (अर्थात दूर देश वालों की मौनी कबूतरी), और ६० वें भजन में 'मिक्ताम सूशनेदूत (अर्थात

साक्षी के सोसन) । कुछ शीर्षकों में ऐतिहासिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत है जैसे ५७ वें भजन में 'अल तशहेत' जिसमें दाऊद शाऊल से भागकर गुफा में छिप गया था, अथवा ६० वें भजन में जिसमें दाऊद लोन की तराई में एदूमियों पर विजयी हुआ था। कई भजनों में इब्रानी इतिहास के किसी प्रमुख व्यक्ति का नाम है और साथ ही लेखक या मूलस्रोत का भी; अन्य में ऐसे नाम हैं जो प्रसिद्ध नहीं अथवा अज्ञात हैं। शीर्षकों में निम्नलिखित नाम आए हैं: मूसा, एक भजन (९०); दाऊद, तिहत्तर भजन (पहिले भाग में ३७, दूसरे भाग में १८, तीसरे में १, चौथे में २, और पांचवें में १५); सुलैमान, दो भजन (७२ और १२७); आसाप, बारह भजन (७३–८३, ५०); एज्राहवंशी हेमान एक भजन (८८), एज्राहवंशी एतान एक भजन (८९); कोरहवंशी, ग्यारह भजन (४२–४९, ८४, ८५, ८७)। चौंतीस भजन बेचारे अनाथ है, अर्थात उनके कोई शीर्षक नहीं हैं।

विभिन्न अंग्रेजी अनुवादों में भजनों के शीर्षक की तुलना रोचक है। ४ थे भजन का उदाहरण लीजिए। ए. वी. (A. V.) में 'नगीनोत पर प्रधान बजाने वाले के लिये। दाऊद का भजन।', ए. एस. वी. (ASV) में 'प्रधान बजाने वाले के लिये; तार वाले बाजों पर। दाऊद का भजन'। आर. एस. वी. R. S. V.) में 'गायकमंडल के प्रधान के लिये: तार वाले बाजों के साथ। दाऊद का भजन।' वुल्गाता और सेपत्वागिंता के अनुरूप नोक्स (Knox) अनुवाद में 'गीतों में अंत तक: दाऊद का भजन।' कुछ विद्वानों का विचार है कि उस शंकास्पद शब्द का अनुवाद 'प्रधान बजाने वाला' या 'अंत तक' किया गया है, 'विजय' या 'विजयी' भी हो सकता है।

यह आवश्यक प्रतीत होता है कि यहां एक विशेष शब्द अर्थात 'सेला' का भी उल्लेख किया जाय। यह शब्द शीर्षकों में तो नहीं परन्तु पुस्तक में ७१ बार प्रयुक्त हुआ है (उ. भजन ४: २ और ४)। इसका मूल अर्थ है 'उठाना'। परंतु यह स्पष्ट नहीं है कि किस वस्तु को उठाना है या ऊँचा करना है। क्या स्वरों को ऊँचा करना है अथवा बाजों की ध्वनियों को, अथवा उपासनात्मक शब्द जैसे 'आमीन' या 'हल्लिलूयाह' को।

कुछ आधुनिक विद्वानों का मत है कि कई भजनों से भजनों की मूल उपासना-गत पृष्ठ भूमि पर प्रकाश पड़ता है।

(३) भजनों में परमेश्वर के नाम का प्रयोग—पंचग्रंथ के विश्लेषण से यह ज्ञात हुआ कि धर्मग्रंथ लेखक किन्ही अंशों में एलोहीम (परमेश्वर) शब्द का और अन्य अंशों में याहवे (यहोवा, प्रभु) का प्रयोग करता है। भजनों के संबंध में भी यही बात सत्य है। भजनों का विश्लेषण करने पर बड़ी रोचक बातें सामने

आती हैं : पहले भाग में याहवे का प्रयोग २७२ बार हुआ है और एलोहीम शब्द का १५ बार ; दूसरे भाग में याहवे का ३० बार और एलोहीम का १६४ बार प्रयोग हुआ है ; तीसरे भाग के प्रथम उपविभाग में (७३–८३) याहवे का १३ बार और एलोहीम का ७ बार ; द्वितीय उपविभाग (८४–८९) में याहवे का ३१ बार और एलोहीम का ७ बार प्रयोग हुआ है ; चौथे और पांचवे भागों में याहवे का ही प्रायः प्रयोग किया गया है (१०८ और १०९:९ को छोड़कर)। यह बात भी रोचक है कि १४ वें और ४० वें भजनों की, जिनमें याहवे का प्रयोग हुआ है, ५३ वें और ७० वें भजन में पुनरावृत्ति हुई है और उनमें एलोहीम का प्रयोग हुआ है। इन तथ्यों से इस पुस्तक की रचना के स्वरूप पर प्रकाश पड़ता है। आगे के अंश में हम इस विषय का विवेचन करेंगे।

६. रचना, तिथि और रचयिता

(१) 'भजनों का रचयिता दाऊद' के प्रश्न पर विचार—यह एक बड़ी समस्या है कि क्या दाऊद ने उन सब भजनों की रचना की जिनसे उसका नाम संबंधित किया गया है। ७३ भजन उसके नाम के हैं। परंतु 'दाऊद का भजन' शब्दों से कितनी सीमा तक यह समझना चाहिये कि वे भजन दाऊद द्वारा रचे गए हैं, अथवा उससे यह समझा जाय कि किस सिद्धांत पर भजनों को उनके शीर्षक दिए गए हैं ? भजनों की विषय सामग्री का कई बार शीर्षकों से मेल नहीं बैठता, जैसे भजन ३४। इस भजन का शीर्षक है 'दाऊद का भजन जब वह अबी-मेलेक के सामने बौरहा बना, और अबीमेलेक ने उसे निकाल दिया और वह चला गया।' दाऊद अबीमेलेक के सामने नहीं 'गत के राजा आकीश के सामने' निकाला गया था (१श. २१: १३)। परंतु भजन को पढ़ने से यह नहीं लगता कि उस घटना से भजन की सामग्री का कोई संबंध है। ५१ वें भजन में भी कुछ न कुछ संशोधन अवश्य हुआ होगा, तभी तो उसमें यरूशलेम की चहारदीवारी बनाने की प्रार्थना सम्मिलित है (५१: १८)। इसलिये भजनों के शीर्षक का उपयोग करने में हमें सतर्कता से काम लेना चाहिये। हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि उस युग में 'सर्वाधिकार सुरक्षित' जैसी कोई बात नहीं थी और लोग दूसरे की रचना को अपनी बनाकर उसमें संशोधन भी कर लेते थे। यह संभव है कि ऐसे समय आते रहते थे जब धर्माचरण का यह एक साधारण चिन्ह माना जाता था कि एक व्यक्ति अपनी प्रार्थना और स्तुति के लिये दाऊद या धर्ममय जीवन के अन्य संरक्षक की भावनाओं के साथ अपनी भावना को एकात्म कर लेता था। इसके साथ यह भी निश्चित है कि 'इस्राएल के मधुर भजन गायक' के रूप में दाऊद की परंपरा (२ श. २३: १) का आधार इस तथ्य में रहा होगा कि इस्राएल जाति में दाऊद भजन-गान का महान प्रवर्तक था।

(२) भजन संहिता की रचना—भजन की पुस्तक एक संकलित रचना है इस मान्यता के अनेक कारण हैं : (क) ऊपर जो संरचना प्रस्तुत की गई है, उससे अनेक इकाइयों के विद्यमान होने के प्रमाण मिलते हैं। (ख) कुछ भजनों की पुनरावृत्ति हुई है, जैसे भजन १४ और ५३ में परमेश्वर के लिये भिन्न शब्द के प्रयोग के अतिरिक्त सब पंक्तियां एकसी हैं। भजन ४०:१३–१७ और भजन ७० एक से हैं, १०८ और ५७: ७–११ + ६०:५–१२ एक से हैं। (ग) भजनों के लेखकों के अनेक नाम दिए गए हैं, जैसे दाऊद, मूसा, सुलैमान, आसाप, कोरह, आदि। (घ) परमेश्वर का नाम एलोहीम या याहवे विभिन्न भागों के अनुसार भिन्न है जिससे यह इंगित होता है कि किसी समय ये विभिन्न भाग अलग अलग इकाई थे।

(३) भजन संहिता का साहित्यिक विकास और रचना तिथि—यदि भजन संहिता एक संग्रह है तो यह निश्चित है कि विभिन्न भागों की रचना-तिथि भिन्न होगी और किसी तिथि के उल्लेख से यह संकेत होगा कि पुस्तक का अंतिम रूप कब मिला, अथवा अमुक अमुक भजन कब लिखे गए। यदि विभिन्न भजनों के लिये तिथि दी जाए तो इसका अर्थ यह होगा कि कई तिथियां प्रस्तुत होंगी। भजन संहिता के कुछ भाग तो बहुत प्राचीन काल से प्रचलित होंगे, अर्थात दाऊद के काल से जैसे भजन २३ या उससे पहले के। कुछ निर्वासन के समय (उदा. १३७) अथवा निर्वासन के पश्चात (उदा. १४७:२) जोड़े गए होंगे। इस प्रकार भजनों की तिथि का निर्धारण इब्रानी इतिहास के किसी भी काल में ई. पू. १००० से ई. पू. १५० तक किया जा सकता है। ख्रिस्तीय कलीसिया की अधिकृत गीत की किताब या पुस्तक में कई युगों के गीत संकलित हैं, उसी प्रकार भजन संहिता को, जिसे दूसरे मंदिर अर्थात जरूब्बाबेल के मंदिर की गीत-पुस्तक भी कभी कभी कहा जाता है, इब्रानी भक्ति-गीतों की पूरी परंपरा का संकलन माना जाना चाहिये। इसके अतिरिक्त जिस प्रकार ख्रिस्तीय कलीसिया की गीत-पुस्तक के गीतों का इस दृष्टि से संशोधन होता रहा है कि उनसे विश्वास की वृद्धि में अधिकतम सहायता प्राप्त हो, उसी प्रकार यह संभव है कि बदलती हुई आवश्यकताओं के संदर्भ में मूल गीतों में परिवर्तन और संशोधन किया गया हो इसके पूर्व कि उन्हें वह रूप प्राप्त हो जिस रूप में वे आज विद्यमान हैं। विद्वानों ने भजन संहिता के साहित्यिक विकास के चरणों का विश्लेषण किया है।

ऊपर हम शीर्षक और परमेश्वर के नामों का प्रयोग जैसी साहित्यिक विशेषताओं का उल्लेख कर आए हैं। साथ ही हमने कुछ भजनों की विषय सामग्री पर भी दो शब्द कहे हैं। इनके आधार पर यह अनुमान किया जाता है कि 'दाऊद का भजन' या 'आसाप का भजन' शीर्षक वाले भजन, इससे

पहले कि वे वर्तमान भजन संहिता में संकलित हों, संकलन रूप में विद्यमान थे। विकास के चरण कुछ निम्नानुरूप होंगें :

भजन संहिता का पांच भागों में विभाजन कदाचित् विकास का अंतिम चरण रहा होगा, क्योंकि यह द्रष्टव्य है कि चौथे और पांचवें भागों में विभाजन हल्लिलूयाह भजनों की मूल इकाई के अंतर्गत प्रतीत होता है।

७. भजनों की मूल पृष्ठ भूमि

पुराना नियम संबंधी अधुनातन विद्वानों की रुचि इस ओर है कि उन मूल उपासना या आराधनागत परिस्थितियों की खोज करें जिनमें ये भजन उपयोग में आते थे। कुछ भजन तो निश्चित रूप से विशिष्ट उपासना पद्धतियों से संबंधित हैं। उदाहरणार्थ, हल्लिलूयाह भजन हैं। वे जैसे पहले फसह के पर्व पर उपयोग में लाये जाते थे, वैसे आज भी लिये जाते हैं। जब यीशु और उसके शिष्यों ने अंतिम भोज के समय भजन गाया (मर· १४:२६), तो वह अवश्य हल्लिलूयाह भजनों में से एक रहा होगा। परन्तु अन्य भजनों की मूल पृष्ठ भूमि मानव-स्मृति में नहीं रह गई, विशेषकर यदि वे इस्राएल की निर्वासन पूर्व उपासना पद्धति से संबंधित थी। आधुनिक काल में पश्चिमी एशिया के संबंध में जो कुछ जानकारी खोज द्वारा प्राप्त हुई है उसके आधार पर आज के विद्वान भजनों की मूल पृष्ठभूमि को जानने की चेष्टा कर रहे हैं।

कुछ खिस्तीय गीत किसी विशेष परिस्थिति के संदर्भ में लिए गए और बाद में अन्य परिस्थितियों के संबंध में भी उनका उप्रयोग किया गया। संभव है ऐसी बात कई भजनों के संबंध में घटी हो। संभव है कि दाऊद या राजाओं के प्रारंभिक काल में उपासना के लिए किसी भजन की रचना हुई हो, जिसमें किसी जन समारोह अथवा उपासना में राजा को प्रमुख स्थान दिया गया।

यही भजन निर्वासनोत्तर काल में साधारण सामूहिक गान के लिए उपयोग में आया हो।

यह बात अब पूर्णतया स्वीकार की जाती है कि पश्चिमी एशिया के देशों के लोग अपने राजाओं को ईश्वरीय कृपा के विशेष माध्यम माना करते थे। वास्तव में वे उन्हें अपने राष्ट्रीय देवताओं के दृश्य प्रतिनिधि स्वीकार करते थे। 'नूतन वर्ष' के आरंभ में विशेष धर्मानुष्ठान होते थे जिनके आधार पर पूर्ण वर्ष के भाग्य या प्रवाह का निर्धारण होता था। बाबुल में एक अनुष्ठान होता था। उसे अकितु (Akitu) कहते थे। उसके अंतर्गत एक विधि यह होती थी कि राष्ट्रीय देवता को किसी अस्थायी स्थान पर ले जाया जाता था, राजा को कुछ समय के लिए गद्दी से उतारकर उसका मानमर्दन किया जाता था, एक दिखावटी युद्ध होता था जिसमें राजा के समस्त शत्रुओं को पूर्णतया पराजित किया जाता था — जैसे अंधकार की शक्ति का विनाश कर मार्दुक ने व्यवस्था या प्रकाश जगत में स्थापित किया था—और राजा का राज्य पूर्णतया स्थापित किया जाता था, राजा को पुनः सिंहासन पर बैठाया जाता था और देवता की मूर्ति को अपने स्थान में ले जाया जाता था। तत्पश्चात् वर्ष भर के लिये घोषणाओं द्वारा भाग्य का निर्धारण किया जाता था और राजा का पावन विवाह होता था, जिसके द्वारा राष्ट्र की उर्वरता और समृद्धि का निश्चय होता था।

क्या राजाओं के काल में इस्राएलियों में कोई इस प्रकार का अनुष्ठान था? यदि था तो यह बड़ा विचित्र जान पड़ता है कि उसका कोई प्रमाण न मिले। संभव है कि २२ भजन राजा की राजगद्दी-जयंती के लिये काम में आता हो, २४वीं भजन उस चल-समारोह के लिए जिसमें वाचा के संदूक की मंदिर में पुनर्प्रतिष्ठा होती हो और ४७ वां भजन उस पुनर्प्रतिष्ठा के अवसर के लिए काम में लिया जाता हो। संभव है कि भजन १८ और २० राजाओं के पुनः सिंहासनासीन होने के लिये प्रयोग किया जाता था, १८ वें भजन का कदाचित राजा स्वयं उच्चार करता था और २० वां भजन पुरोहित द्वारा बोला जाता था, और ९३ वें भजन के द्वारा अनुष्ठान अपनी चरमसीमा पर पहुँचता था। मूलभूत रूप से ही इस्राएलियों के नूतन वर्ष का समारोह अन्य जातियों के समारोह से भिन्न होता होगा क्योंकि याहवे अन्य देवी देवताओं से भिन्न था। इस्राएल के राजा का भाग अनुष्ठान में मानव रूप तक ही सीमित होगा, परंतु प्रथाओं में कुछ न कुछ साम्य अवश्य रहा होगा। यदि इस्राएली लोग भी ऐसा नूतन वर्ष समारोह मनाते थे तो २२ भजन जैसे भजन के संशोधन का कुछ रोचक इतिहास अवश्य होना चाहिए। पहले पहल उसका उपयोग किसी

राजा विशेष के सिंहासनासीन होने के समारोह में किया गया होगा। परंतु इस्राएल जाति के भक्त लोग, जो २ शमूएल ७:१२-१६ में प्रस्तुत ईश्वरीय प्रतिज्ञा पर विश्वास करते थे और एक आदर्श राजा या मसीह की आशा करते थे, इस भजन का उपयोग भविष्य की आशा के संबंध में करते होंगें। अतएव जब निर्वासन काल में इस्राएलियों का राजतंत्र समाप्त हो गया तो भी इस भजन का मसीह संबंधी अर्थ चलता रहा। इस प्रकार आलोचना एवं ऐतिहासिक दृष्टि से जो 'राजा संबंधी भजन' है, वह यहूदियों और मसीहियों के भाव-जगत में उतनी ही सच्चाई के साथ मसीह संबंधी भजन बन गया है।

८. धर्म शिक्षा

भजनों में इस्राएल जाति के भक्तों के भावों और मनोदशाओं की अभिव्यक्ति है। कविता में तर्कबद्ध विचारों की अपेक्षा भावसागर की अभिव्यक्ति होती है। ये भजन कविता हैं। इसलिये उनमें धर्मसत्यों का क्रमबद्ध कथन नहीं, वरन् मर्मस्पर्शिनी अभिव्यक्तियाँ हैं। उदाहरणार्थ कई स्थलों में ऐसी पंक्तियाँ हैं जिनसे यह व्यंजित होता है कि बलि चढ़ाना आवश्यक नहीं है (४०:६–८; ५०:१३–१५; ५१:१६, १७), परन्तु कई पंक्तियाँ ऐसी भी हैं जिनमें यह व्यंजित है कि मंदिर और बलि चढ़ाना दोनों आवश्यक हैं (६६:१३–१५; ११६:१४, १७)। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए भजन संहिता की शिक्षा का निम्नलिखित रूप में संक्षिप्त विश्लेषण किया गया है :

(१) परमेश्वर के प्रति भक्तिभावना––हमें प्रत्येक स्थिति में परमेश्वर के पास जाने की चेष्टा करना चाहिये। परमेश्वर पर सदा भरोसा करना चाहिये (३७:५; ५६:३; २७:१), क्योंकि वह अपने प्रेम, करुणा, सच्चाई और धार्मिकता में पूर्ण है (१०३:८, १३; १९:७ क्र., ६३:१–२)। पश्चाताप सहित उसके पास जाना चाहिये (५१:१)। उसकी पवित्रता की इच्छा हममें होना चाहिये (८४:२; १९:१३)। जब शंकाएँ और दुःश्चिंताएं हमें घेरती हैं, जब जोखिम और विपत्ति हम पर पड़ती है, तब भी हमें उसके पास ही जाना चाहिये (२२: १; ३९: १२, १३)। उद्धार और विजयोल्लास के समय उसे नहीं भूलना चाहिये (४०:१–३)। उसकी व्यवस्था एवं नियमों के माध्यम से हमें उसके पास आना चाहिये और उनसे भी प्रेम करना चाहिये (१९:१०; ११९:७९; १:२)।

(२) हृदय प्रधान धर्म––परमेश्वर की उपासना संपूर्ण हृदय से करना चाहिए (५१:१०)। परमेश्वर की आज्ञानुसार और इस्राएल की प्रथानुसार बलि चढ़ाना चाहिए, परंतु बलि चढ़ाना हृदय से होना चाहिये, प्रथा मात्र

नहीं (५१:१६; ४०:८)। भजन-संहिता के धर्म में यह प्रस्तुत है कि हृदय की भावना और बाह्य विधि विधान में समन्वय होना चाहिए (५०:१३–१५; ६६:१३–१५)। परमेश्वर के प्रति हमारे कर्तव्य के भाव पक्ष और विधि पक्ष दोनों ही में हृदय प्रधान धर्म अनिवार्य है।

(३) परमेश्वर की महानता के लिये उसकी स्तुति—भजनों में बार-बार सृष्टि में परमेश्वर की महानता की प्रशंसा की गई है। सृष्टि की सब वस्तुएं उसकी सामर्थ एवं महिमा का वर्णन करती है (१९:१; १०४:२,२४)। पृथ्वी उसके चरणों की चौकी है (९९:५; १३२:७), मेघ उसके मंडप के परदे हैं (१८:१०, ११), गर्जन सागरों पर उसका शब्द है, बिजली उसके बाण हैं (७७:१७, १८)। जो कुछ सृष्टि में घटित है वह उसके विधान अनुसार है (१०४:१९ क्र.)। यद्यपि उसकी सामर्थ और प्रभुता इनके माध्यम से दिखाई देती है, तथापि वह इनसे महान है और स्वर्ग में इनसे परे है (९२:८; ९९:२; ११३:४,५)।

(४) परमेश्वर की भलाई—परमेश्वर धार्मिकता, न्याय और सत्य की दृष्टि से केवल अच्छा ही नहीं है (८९:१४), वरन वह अपने लोगों इस्राएल जाति के साथ भला भी है। उसने इस्राएल को चुना, और उन पर अपनी अपार करुणा अनेक रूपों में प्रकट की (७८; १०५; १०६)। उसने अपने लोगों को आशिष दी कि उन्हें अपने मार्गों की शिक्षा दे (१०६:८)। उनके भले के लिये उसने दंड भी दिया (१०६:४३, ४४ इत्यादि)। अपने राज्य के विस्तार के लिये उसने इस्राएल को चुना (६१:१,२,७)। इस प्रकार इस्राएल जाति उसके निज लोग रहे (८०:१)। इस्राएल के शत्रु उसके शत्रु हैं और उनकी सफलता उसकी विजय है।

इस्राएल जाति की यह चेतना कि वे उसके निज लोग हैं एक तीव्र देश-भक्ति की भावना में व्यक्त होती है। इस देशभक्ति में अन्य जातियों से एक श्रेष्ठता की भावना और एक पृथकता की भावना भी आ गई है (७०:१० क्र.)। इस देशभक्ति की भावना को उस युग के ऐतिहासिक समय एवं धर्म-वैज्ञानिक सत्य के संदर्भ में समझना चाहिए। भजन उस युग में लिखे गए जिसमें धार्मिक विश्वास और राष्ट्र या जाति के ऐश्वर्य को परस्पर आधारित माना जाता था। फलस्वरूप विश्वास के प्रति समर्पण को देशभक्ति या जाति-भक्ति में व्यक्त किया जाता था। इसके अतिरिक्त ख्रिस्तीय धर्म विज्ञान की दृष्टि से हम यह कह सकते हैं कि परमेश्वर ने वास्तव में इस्राएल को अपनी निज प्रजा के रूप में इसलिए चुना कि उसमें से जगत का उद्धारकर्ता उत्पन्न

हो। अतएव जब भजन लेखक इस्राएल के प्रति परमेश्वर की भलाई का वर्णन करते हैं, तो वे मानो उन सब के लिए लिख रहे हैं जो ख्रिस्तीय प्रकाशन पर विश्वास करते हैं।

भजन लेखकों के आत्म-धार्मिकता के कथनों को भी इसी संदर्भ में देखना चाहिए (३५:१३, १४; १३९:२१–२४; ११३)। इन कथनों में लेखक की रुचि इस बात में नहीं है कि वह अपने को दूसरों से श्रेष्ठ बताए परंतु इसमें है कि वह अपने को परमेश्वर के विरुद्ध नहीं, वरन् परमेश्वर की ओर प्रदर्शित करे। इन कथनों को गर्व नहीं, समर्पण के रूप में देखना चाहिये, क्योंकि इस्राएल की योग्यता न होते हुए भी परमेश्वर की करुणा और भलाई उस पर थी और यदि उनमें अहंकार आ जाए तो वह उनके विनाश का कारण होता था।

शापात्मक भजनों में (५८; ६८; ६९; १०९) शत्रुओं के प्रति जो बदले की भावना मिश्रित आक्रोश है, उसके संबंध में भी हमें उपरोक्त दृष्टिकोण को अपनाना चाहिये। भजन लेखक के मन में यह बात है कि परमेश्वर की ओर होने या उससे प्रेम करने में उसके शत्रुओं से द्वेष करना निहित है (१३९:२१)। इसमें किसी प्रकार का समझौता नहीं हो सकता, किसी प्रकार का मध्यम मार्ग नहीं है। यदि वाचा के आज्ञापालन के द्वारा इस्राएल परमेश्वर की ओर है, तो परमेश्वर के शत्रु इस्राएल के शत्रु हैं और इस्राएल के शत्रु परमेश्वर के शत्रु हैं। उन शत्रुओं के प्रति परमेश्वर का न्याय परमेश्वर के न्याय एवं सामर्थ की अभिव्यक्ति है, जिससे इस संसार में नैतिक व्यवस्था बनी रहे। इसके अतिरिक्त, अंतिम एवं पूर्ण न्यायनिष्ठता सहित भावी जीवन का प्रकटीकरण अभी तक नहीं हो पाया था (दे. ११५. १७) और नई वाचा की भी अभी तक स्थापना नहीं हुई थी जिसके आधार पर अपने वैरियों से प्रेम करना संभव होगा (मत्ती ५: ४४)। इसलिये भजन लेखक के मन में यह विचार था कि वर्तमान जीवन में ही परमेश्वर के न्याय की अभिव्यक्ति होना आवश्यक है।

(५) मसीह—भजनों में मसीह के विषय कथन हैं, जिनके द्वारा परमेश्वर अपने अभिप्राय की पूर्ति और अपने राज्य की स्थापना करेगा। मसीह संबंधी भजन अनेक कोटि के हैं। कुछ भजन ऐसे हैं जिनमें उसे व्यक्तिगत छुड़ाने हारे के रूप में प्रस्तुत किया गया है (२,७२,११०)। यह द्रष्टव्य है कि बाइबली साहित्य के विद्वान इन भजनों को किसी राजा विशेष से संबंधित और विशेषकर उसकी राज्याभिषेक जयंती से संबंधित मानते हैं। ऊपर इसका उल्लेख किया जा चुका है। परंतु यह भी बताया जा चुका है कि इनके ऐतिहासिक उद्भव के कारण इस तथ्य में बाधा नहीं आती कि ये भजन मसीह संबंध आशा के माध्यम बन

गए। इन भजनों का मसीह संबंधी अर्थ परमेश्वर के प्रकाशन से उत्तरोत्तर समन्वित है। कुछ भजन ऐसे हैं जिनमें आनेवाले युग की तेजोमय आशिषों का वर्णन है। यह युग प्रभु के दिन से प्रारंभ होगा और उसमें धर्ममय न्याय और महिमा होगी (९६: १३; ९८: ९)। यद्यपि इन भजनों में एक व्यक्तिसंपन्न मसीह का उल्लेख नहीं है, तथापि वे इस अर्थ में मसीह संबंधी हैं कि उनमें मसीह के राज्य का उल्लेख हुआ है। २२ वां भजन भी इस अर्थ में मसीह संबंधी भजन है कि उसमें परमेश्वर के विश्वस्त दास की गहनतम आंतरिक दुःख की अभिव्यक्ति है। यह दुःख, असीम दुःख यीशु ख्रिस्त, 'मसीह' ने समस्त मानव जाति का प्रतिनिधि होकर मानव जाति के लिये वास्तविक रूप में सहा। यद्यपि कि इसका मसीह संबंधी अर्थ भजन के लिखे जाने के समय ज्ञात नहीं था परंतु यीशु मसीह में उस अर्थ की पूर्ति से इस भजन का मसीह संबंधी लक्षण दिखाई देता है।

(६) निर्दोष के दुःख उठाने की समस्या—भजन लेखक 'निर्दोष के दुःख उठाने' की समस्या से उलझते हुए दिखाई पड़ते हैं। बार बार वे यह पुकार उठते हैं कि दुष्ट लोग पराक्रमी और ऐसे फैलते हुए देखे जाते हैं जैसे कोई हरा पेड़ अपनी निज भूमि में फैलता है, और धार्मिक एवं भले लोग दुःख उठाते हैं (३७, ७३)। इस समस्या का जो सामान्य हल प्रस्तुत किया गया है कि दुष्ट की समृद्धि थोड़े दिन की है, उससे पूर्ण संतोष नहीं होता, जैसे अय्यूब को नहीं हुआ। साथ ही अनेक भजनों में दुःख की समस्या का विवेचन न करते हुए लेखकों ने परमेश्वर के शासन पर अपने विजयी विश्वास की घोषणा कर मन में संतोष प्राप्त कर लिया है (९९. १; ९७: १)। फिर भी हम यह कह सकते हैं कि ७३ वें भजन में नये नियम के सत्य का आभास है। इस भजन में जब इस समस्या के कारण भजन लेखक की बुद्धि चकराने लगती है तो वह परमेश्वर के पवित्रस्थान में, उसकी संगति में, उसकी उपस्थिति में उसका उत्तर पाता है और सारे भविष्य को उसके हाथ छोड़ देता है (७३: १६–१७, २३–२५)। परमेश्वर स्वयं ही मानवीय इच्छाओं की इतनी प्रचुर पूर्ति है कि अन्य समस्याएं नगण्य हो जाती हैं और उन्हें भूला जा सकता है।

अट्ठाईसवां अध्याय

नीतिवचन

१. शीर्षक

इब्रानी में इस पुस्तक का नाम मिशले शलोमो (सुलैमान के नीतिवचन) है। सक्षिप्त रूप मिशले है। मिशले या मिशलीम शब्द मशाल का बहुवचन है, जिसका अर्थ प्रतिवेदन है, जिसका अर्थ यह है कि वह कथन के अतिरिक्त और कुछ को भी प्रस्तुत करता है। यह शब्द तुलना के लिये, उपमा, दृष्टांत अथवा गल्प के अर्थ में भी काम में लाया जा सकता है परंतु सामान्यतया इससे मानवीय जीवन और नीति पर सूक्तियाँ (संक्षिप्त पैने कथन) ही परिलक्षित होते हैं।

सेपत्वागिता में इसका शीर्षक परुय्मय (Paroimiai) है। इसका अर्थ तुलना, उपमा, रूपक या सूक्तियाँ है। वुलगाता में इसका पर्याय प्रोवरबिया है (Proverbia) जिससे अंग्रेजी नाम प्रोवर्ब बना है। भारतीय भाषाओं में मूल इब्रानी शब्द का अनुवाद किया गया है। इस प्रकार हिन्दी में इस पुस्तक का शीर्षक 'नीतिवचन' है।

कलीसिया के पितृगण इस पुस्तक को 'सुलैमान के नीतिवचन या प्रज्ञा गंथ, के नाम से जानते थे। यह नाम तोबित-मकाबी समूह की एक पुस्तक को भी दिया गया है। इस प्रकार इन दोनों पुस्तकों के नाम के संबंध में कई बार गड़-बड़झाला हो जाता है।

२. विषय सामग्री का सारांश

नीतिवचन की पुस्तक में कविताओं और कहावतों का संकलन है। कवि-ताओं में मनुष्य के लिये परमेश्वर की योजना में बुद्धि के महत्व पर बल दिया गया है, और कहावतों में बुद्धि और नैतिक चालचलन के विभिन्न पक्षों पर अभिव्यक्ति की गई है।

३. रूपरेखा

नीतिवचन—बुद्धिमान की बुद्धिपूर्ण बातें और सम्मति

(१) बुद्धि की खोज के लिये प्रबोधन (१–६)

लेखक अपने शिष्य से कह रहा है। उसे वह अपना 'पुत्र' कहता है। लेखक अपने पुत्र को परीक्षाओं के और उन लोगों के संबंध में जो बुद्धि और शिक्षा को तुच्छ जानते हैं, चेतावनी देता है (१); बुद्धि सद्जीवन और परमेश्वर के भय का मार्ग है (२—७); लेखक मूर्खता को नहीं वरन् बुद्धि को अपने मार्ग दर्शक और मित्र के रूप में अपनाने का आग्रह करता है (८—९)।

(२) सुलैमान के नीतिवचन (१०:१—२२:१६)

इस भाग में ३७५ स्वतंत्र कहावतें या लोकोक्तियाँ संकलित हैं। किसी विशेषक्रम में संकलन नहीं है। ये साधारणतया विभावी समांतरता में प्रस्तुत हैं। ये मानवी आचरण पर द्विपदों के रूप में लौकिक और धार्मिक लोकोक्तियां हैं।

(३) बुद्धिमान के वचन (२२:१७—२४:२२)

ये द्विपदों से कुछ लम्बे रूप में हैं। पहले भाग के समान ये भी 'मेरे पुत्र' को संबोधित हैं। इनकी विजय सामग्री पड़ौसी के प्रति कर्त्तव्य और मद्य-त्याग है।

(४) बुद्धिमान के अन्य वचन (२४:२३—३४)

ये वचन पिछले अंश के समान हैं और उसके परिशिष्ट जैसे हैं। उनकी विषय सामग्री पड़ोसियों के प्रति कर्त्तव्य और आलस्य-त्याग है।

(५) हिजकिय्याह संकलन (२५-२९)

ये 'सुलैमान के नीतिवचन हैं जिनकी यहूदा के राजा हिजकिय्याह के जनों ने नकल की थी।' ये दूसरे भाग के नीतिवचन के समान हैं परंतु द्विपदों का इतना कठोर पालन नहीं हुआ है। इनमें विभावी समांतरता के साथ पर्याय और समन्वित समांतरता का प्रयोग विशेष रूप से हुआ है। दूसरे अंश के समान ही इसमें मानव आचरण संबंधी लौकिक और धार्मिक लोकोक्तियाँ हैं। इनमें से कई तो दूसरे अंश की लोकोक्तियों की पुनरावृत्ति मात्र हैं। दूसरे भाग की अपेक्षा इस भाग में राजा अधिक उदास प्रतीत होता है।

(६) याके के पुत्र आगूर के प्रभावशाली वचन (३०:१—१०)

इस छोटे अंश में ईश्वरीय बुद्धि और मनुष्य की दीनता पर सूक्तियाँ हैं।

(७) संख्यागत नीतिवचन (३०:११—३३)

ये वचन पहेलियों के रूप में हैं जिनमें संख्या चार को बहुत महत्व दिया गया है।

(८) राजा लमूएल की माता के प्रभावशाली वचन (३१:१–९)

राजमाता अपने पुत्रको उत्तम राजा के सदगुण बताती है।

(९) भली पत्नी की प्रशंसा (३१:१०–३१)

इनमें आदर्श पत्नी के गुणों का वर्णमालात्मक क्रम में वर्णन है—परिश्रम, मितव्ययता, दूरदर्शिता, सहायता, उदारता, बुद्धिमानी और सुन्दर चालचलन।

टिप्पणी : सेपत्वागिंता में इन भागों का क्रम भिन्न है। यदि हम विभिन्न भागों को ऊपर दिये हुए अंकों से इंगित करें तो सेपत्वागिंता का क्रम निम्न लिखित होगा : (१), (२), (३), (६), (४), (७), (८), (९), (५)।

४. रचना, रचयिता, रचना तिथि

(१) रचना एवं साहित्यिक विकास, तिथि—ऊपर रूपरेखा से यह स्पष्ट है और यह कहा भी जा चुका है कि नीतिवचन की पुस्तक एक संकलन है। पुराने नियम की कुछ अन्य पुस्तकों के समान इस पुस्तक का वर्तमान रूप भी धीरे-धीरे बढ़ते हुए बना है। यह सामान्यतया स्वीकार किया जाता है कि इस पुस्तक में प्राचीनतम संकलन सुलैमान के नीतिवचन हैं (१०: १–२२:१६), अर्थात् रूपरेखा का भाग २, जिसके साथ प्रज्ञाग्रन्थ के महान संरक्षक सुलैमान का नाम जुड़ा हुआ है। यह संकलन लगभग ई. पू. ८०० में हुआ होगा। बाद में कदाचित तीसरा और चौथा भाग परिशिष्ट के रूप में जोड़ा गया।

यहूदा के राजा हिजकिय्याह (ई. पू. ७१५-६८७) के सेवकों ने सुलैमान के नीतिवचनों का एक और संकलन किया। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रथम संकलन से स्वतंत्र यह संकलन किया गया, क्योंकि कई वचन दोनों में पाए जाते हैं। इससे अनुमान किया जाता है कि इन दोनों में समान वचनों के लिये कोई मौखिक परंपरा रही होगी।

सुलैमान के वचनों के ये दोनों संकलन (भाग २ और ५) परवर्ती काल में कदाचित निर्वासिन काल में एक किए गए। उस युग में अतीत के लेखों को खोजा गया और उनका संपादन कर उन्हें आने वाली पीढ़ियों के लिये स्थायी रूप दिया। पुस्तक का अंतिम भाग (भाग ७ और ९) निर्वासिन काल के पश्चात् जोड़े गए और अनुमान है कि ई. पू. २५० में इस पुस्तक का वर्तमान रूप हो गया। इस समय सप्तति अनुवाद का कार्य किया गया। इस बात से कि उन्होंने पुस्तक के विभिन्न भागों को कुछ भिन्न क्रम में रखा यह इंगित होता है कि पुस्तक के निश्चित क्रम की व्यापक स्थापना अभी तक नहीं हो पाई थी और कि इस काल के आस पास ही विभिन्न अंशों को एक पुस्तक में संकलित किया गया था।

(२) लेखक—इस पुस्तक में अनेक लेखकों की रचनाएं हैं। इस तथ्य की पुष्टि पुस्तक के संकलन रूप से होती है। हमारी रुचि इस विशेष तथ्य में है कि सुलैमान के साथ रचनाकार के रूप का कहां तक संबंध है। यह बिलकुल निश्चित है कि बुद्धि और लोकोक्तियों कथन के संबंध में सुलैमान की अपूर्व ख्याति थी (१श. ४: २९-३४)। पुस्तक के दो भागों के साथ निश्चित रूप से उनका नाम जुड़ा हुआ है। अन्य भागों को सुलैमान के नाम के साथ जोड़ना आवश्यक नहीं है। यदि यह कहा जाए कि शीर्षक में सुलैमान का नाम है तो हम यह कह सकते हैं कि पुस्तक का शीर्षक पूरी पुस्तक के लिए दिया गया है और यह आवश्यक नहीं कि उसके सब भागों पर शीर्षक लागू किया जाए। इस बात की पुष्टि इससे होती है कि शीर्षक (१:१) के बाद ही बुद्धि के महत्व का विश्लेषण किया जाता है।

क्या सुलैमान सभी वचनों का रचयिता था, जो उसके नाम से दूसरे और पांचवें भागों में हैं? यह बताया जाता है कि इनमें से कई लोकोक्तियाँ उसके कथन योग्य नहीं हैं। उदाहरणार्थ राजाओं के कुछ उल्लेख (१६: १०, १४; २०:२, ८, २८; २५ : २, ६) राजा के दृष्टि कोण से नहीं वरन प्रजा के दृष्टिकोंण से लिखे गए हैं। साथ ही उस व्यक्ति के मुँह से, जिसकी कई रानियाँ और रखेलियां थी, एक पत्नी की प्रंशसा संबंधी वचन कुछ उचित प्रतीत नहीं होते (११: ४; दे. १रा. ११: ३)। ऐसे ऐसे तथ्यो के कारण हमें निश्चित रूप से सुलैमान को लेखक मानने में कुछ सतर्कता से काम लेना पड़ता है। इस्राएल में सूक्तियों के महान प्रर्वतक और संरक्षक के रूप में सुलैमान वास्तव में प्रमुख केन्द्र बन गया जिसके आसपास सूक्ति साहित्य की विशाल राशि बन गई। यह कहना असंभव है कि सुलैमान स्वयं ने इन सूक्तियों में से कितनी गढ़ी या कहीं, और इस कोटि के साहित्य की सरिता में कितनी अन्य बूंदियां मिल गई। हमारे लिये इतना जानना पर्याप्त है कि इस्राएल जाति में सुलैमान को लोकोक्ति प्रज्ञासाहित्य का पिता माना जाता है।

५. नीतिवचन की पुस्तक में साहित्यिक समांतरता

बाबुली और मिस्री दोनों जातियों का अपना प्रज्ञा साहित्य था। अतः यह विचार किया जाता है कि उनके तथा इब्रानियों के साहित्य के बीच आदान-प्रदान हुआ होगा। बाबुल की पुस्तक 'बुद्धि की सम्मति' (Counsels of Wisdom) में पाठक को संबोधित करते हुए 'मेरे पुत्र' शब्दों का प्रयोग किया गया है, जैसे नीतिवचन के पहले और तीसरे भाग में किया गया है, और उनमें विचारों में भी समांतरता है। उदाहरण के लिये नीतिवचन १२:३ के साथ 'सम्मति' की निम्नलिखित पंक्तियों की तुलना कीजिए:

तुम्हारे मुँह में लगाम हो, तुम्हारे कथन संयमित हों।
मनुष्य की संपत्ति के समान, तुम्हारे ओंठ मूल्यवान हों।[१]

ऐसा माना जाता है कि अरामी भाषा में जो 'अहिकार के वचन' हैं, उनका उद्गम मेसोपोतेमिया से अश्शूर के राजा सन्हेरीब और एसारहद्दीन (ई. पू. ७वीं सदी) के समय में अहिकार एक ज्ञानी पुरुष था। उसकी निम्नांकित सूक्ति से नीतिवचन २३:१२–२४ की तुलना कीजिए :

पुत्र को यदि अनुशासन एवं शिक्षा दी जाए और उसके पावों में यदि जंजीरे हों तो वह फले-फूलेगा। अपने पुत्र को छड़ी से न बचा, अन्यथा तू उसे दुष्टता से न बचा सकेगा। हे मेरे पुत्र यदि मैं तेरी ताड़ना करूँ तो तू नहीं मरेगा, परंतु मैं यदि तुझे तेरी इच्छा पर छोड़ दूँ, तो तू न जीएगा।[२]

यह माना जाता है कि इब्रानी प्रज्ञा साहित्य पर मिस्री प्रज्ञा साहित्य का प्रभाव बाबुली प्रभाव से अधिक है। इस संदर्भ में सब से महत्वपूर्ण मिस्री प्रज्ञाग्रंथ 'आमेन-एम-ओपेत की सीख' है। नीतिवचन २२:१७––२४:२२ (बुद्धिमान के वचन) और इसमें कम से कम सोलह समांतर कथन हैं। टीकाकारों का विचार है कि नीति. २२:१७––२४:२२ के वचन इस सीख पर आधारित हैं। उदाहरण के लिये नी. २३:८ की निम्नलिखित पंक्तियों से तुलना कीजिए :

तूने अपने मुँह में वहुत बड़ा कौर निगल लिया है तू उल्टी करेगा,
तू अपनी भली वस्तु से भी रिक्त हो जाएगा।
संपत्ति के विषय में आमेनएम-ओपेत का कथन नीतिवचन २३:५ के समान है :

उन्होंने हंस के पंखों के समान पंख लगा लिये हैं,
और आकाश की ओर उड़ गए हैं।

नीतिवचन की पुस्तक में इस प्रकार विचार साम्य से यह प्रकट होता है कि इब्रानी संस्कृति आसपास की संस्कृतियों से पृथक नहीं थी, और कि विभिन्न संस्कृतियों में बहुत घात-प्रतिघात और विचारों का आदान-प्रदान हुआ है। इब्रानी प्रज्ञा साहित्य की अद्वितीयता बुद्धिपूर्ण और साहित्यिक अभिव्यक्ति की कला में नहीं परंतु परमेश्वर विषयक विशेष ज्ञान से संबंध और उस पर अवलं-

---

१. प्रिचर्ड, जेम्स बी. सी., एन्शेन्ट नियर ईस्टर्न टेक्स्ट्स, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, १९५०, पृ० ४२६

२. वही, पृ० ४२८

बन की भावना में है जिसकी प्रतिज्ञा उसने इस्राएल जाति से की। इस्राएल जाति में 'परमेश्वर का भय बुद्धि का आरंभ है और उसका अंत भी है' जितने अधिक और जिस रूप में पाया जाता है, उतना अन्य जाति में नहीं।

६. धर्म शिक्षा

प्रज्ञा साहित्य के अंश के रूप में नीति वचन की पुस्तक की विशेषता यह है कि उसमें जीवन और उसकी समस्याओं के प्रति वैचारिक दृष्टिकोण है। इस पुस्तक के पृष्ठों में आदर्श मनुष्य वह है जो बुद्धिमान है। नीति वचन का बुद्धिमान मनुष्य चिंतनात्मक समस्याओं में नहीं उलझता परंतु अच्छा जीवन व्यतीत करने के लिए व्यावहारिक सम्मति का विचार करता है। अतः दंड के संबंध में पुराने नियम की प्रचलित विचार धारा—कि धार्मिक को पुरस्कार और दुष्ट को इसी जीवन में दंड मिलता है—साधारणतया बिना तर्कणा के मान्य की गई है। अय्यूब की पुस्तक में इस समस्या पर बड़ी व्यथा के साथ विचार किया गया है, और यद्यपि नीतिवचन की इस पुस्तक में आगामी जीवन के निश्चय का अधिक संकेत नहीं है, जहाँ इस जीवन की असमानताओं का उपचार हो सकेगा फिर भी उसमें धर्मीजन के दुःख सहने की समस्या पर कोई गम्भीर और संवेदनापूर्ण विचार नहीं किया गया है। नीतिवचन में प्रधानतया यह विचार प्रस्तुत किया गया है कि बुद्धि आचरण का एक व्यावहारिक साधन है। परंतु जो कुछ भी प्रस्तुत किया गया उस सब के मूल में एक आधारभूत विचार या मान्यता है, और वह है इब्रानी विश्वास। इस पुस्तक के आरंभ में ही यह व्यक्त किया गया है। परमेश्वर का भय मानना बुद्धि का आरंभ है (१ : ७)। दूसरे शब्दों में यह कहें कि प्रकाशित सत्य (परमेश्वर का भय) समस्त तार्किक सत्य का सच्चा आधार है।

इस पुस्तक की शिक्षा को संक्षेप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है:

(१) बुद्धि जीवन का मुख्य ध्येय है। सब मनुष्यों को, विशेषकर जवानों को प्रबोधन दिया जाता है कि सब भली वस्तुओं के स्रोत के रूप में वे बुद्धि की खोज करें (२ : १, २; ४ : ७; ८ : ११)। बुद्धि परमेश्वर की ओर से है, और आरंभ से उसका परमेश्वर से विशेष संबंध रहा है, यहाँ तक कि सृष्टि के कार्य में बुद्धि परमेश्वर के साथ थी (८ : २२, ३०)। अतः बुद्धि की खोज करना मानो परमेश्वर की खोज करना है, जो जीवन का कर्ता है (८ : ३५)। इन सच्चाइयों को उनकी विरोधी बातों के समकक्ष रखकर प्रस्तुत किया गया है। बुद्धि का मूर्खता से विरोध बताया गया है (९ : १, १३)।

(२) खरा जीवन सब से सुखद और सब से अधिक पुरस्कृत जीवन है। मानवी आचरण पर जो विचार इस पुस्तक में व्यक्त किए गए हैं और जो

इस पुस्तक का अधिकांश है, उनमें यही मूल विचार पाया जाता है। उदाहरण के लिए देखिए १० : २ :

'दुष्टों के रखे हुए धन से लाभ नहीं होता,

परंतु धर्म के कारण मृत्यु से बचाव होता है'।

यह विचारणीय है कि ऐसा कहीं नहीं कहा गया है कि अच्छा जीवन बिताने से जो आशिष और पुरस्कार प्राप्त होते हैं उन्हीं के कारण हमें अच्छा जीवन बिताना चाहिए। अच्छा जीवन इसलिए आशिषमय होता है क्योंकि वह परमेश्वर की ओर से उत्पन्न होता है और सृष्टि की व्यवस्था में ही मानो यह लिखा हुआ है (१० : १६, २७)। अच्छा जीवन बिताने के लिए इस पुस्तक में व्यावहारिक कारण प्रस्तुत किए गए हैं, परंतु वह यह नहीं कहती है कि चूंकि अच्छाई का हमें प्रतिदान मिलता है इसलिए ही अच्छा जीवन बिताना चाहिए। 'परमेश्वर का भय' ही अच्छे जीवन का आधार है और इससे इस्राएली लोग ऐसे निष्कर्षों से बच जाते हैं जो जगद्वेषी निकालते हैं।

(३) अच्छा जीवन सद्गुणों में व्यक्त होता है। इन सद्गुणों में निम्न-लिखित का विशेष उल्लेख किया जा सकता है: आज्ञापालन (१० : १; १ : ८); नम्रता (११ : २; १५ : ३३); अनेक प्रकार से आत्म-निग्रह (१४ : १७; १६ : ३२; १८ : १३; २५ : २८); सत्यता (१० : १०; १२ : २२)। दया (११ : १७; १९ : २२); उदारता (११ : २५; २१ : २६); सपरिश्रम कार्य (१५ : १९; २२ : १३); प्रसन्नता (१५ : १३; १७ : २२); न्याय (२१ : १५); विश्वास योग्यता (२५ : १३)। इन सद्गुणों को साधारणतया मूर्खता या बुराई के क्षेत्र में उनके विरोधी दुर्गुणों के समकक्ष प्रस्तुत किया गया है।

उनतीसवां अध्याय

सभोपदेशक

१. शीर्षक

इब्रानी में इसका शीर्षक कोहलत है (कोहलथ या कोहलथ भी लिखा जाता है)। इसका साधारणतया अर्थ है सभा का नेता (काहाल), अर्थात् उपदेशक। सेपत्वागिंता में इक्कलेसिअस्तेस है, जिसका अर्थ है इक्कलीसिया अर्थात् सभा का नेता। वुल्गाता में सेपत्वागिंता का अनुसरण किया गया है परंतु लतीनी रूप में इक्कलेसिअस्तेस है। अंग्रेजी में यही लतीनी शीर्षक है। भारतीय भाषाओं में नेता के स्थान पर उपदेशक किया गया है। हिन्दी में सभोपदेशक है।

कोहलत शब्द एक समस्या उत्पन्न करता है क्योंकि वह स्त्रीलिंग कृदन्त है। यदि यह स्त्रीलिंग है तो फिर सुलैमान जैसे पुरुष की ओर कैसे संकेत कर सकता है (१: १)? इसका सामान्य स्पष्टीकरण यह है कि इससे उपदेशक का संकेत होता है जो न स्त्रीलिंग है और न पुल्लिंग। इटली में नगरपाल (Mayor) का पद पोदेस्ता (Podesta) है। यह शब्द स्त्रीलिंग है जिसका अर्थ प्रभुता होता है। कोहलत शब्द कुछ इसी प्रकार का है। एक स्पष्टीकरण यह भी दिया जाता है कि अरबी भाषा के समान, इस शब्द में स्त्रीलिंग का प्रयोग सिद्धता प्रकट करता है। इस दृष्टि से कोहलत का अर्थ सर्वश्रेष्ठ उपदेशक होगा।

२. विषय सामग्री का सारांश

सभोपदेशक का लेखक जीवन के अर्थ और अभिप्राय के संबंध में अनेक प्रकार के तार्किक अन्वेषण करता है, और बार बार इसी निष्कर्ष पर पहुँचता है कि सब कुछ व्यर्थ है—व्यर्थ ही व्यर्थ है। परमेश्वर ही सब बातों का अंतिम कारण जानता है, और वह सब कुछ नहीं बताता। इसलिये मनुष्य को चाहिये कि वह अपनी वर्तमान स्थिति से संतुष्ट रहे, परमेश्वर के भय के साथ अपने कर्तव्य का पालन करे, और शेष परमेश्वर पर छोड़ दे, जो अंत में सबका न्याय करेगा।

३. रूपरेखा

सभोपदेशक—क्यों और कैसे पर चिन्तन

(१) मानव जीवन व्यर्थताओं से भरा है (१—६)

(क) अपनी इच्छाओं के पूर्ति हेतु मनुष्य का परिश्रम व्यर्थ है (१–२:२३):

प्रकृति का चक्र निरंतर और उद्देश्यविहीन चलता है और मनुष्य का परिश्रम इस चक्र के भीतर है (१:२—११)।
ज्ञान के लिये मनुष्य का परिश्रम व्यर्थ है (१:१२–१८)।
बुद्धि के लिये मनुष्य का श्रम व्यर्थ है (२:१२–१७)।
अपने परिश्रम के लिये भविष्य में लाभ की आशा करना व्यर्थ है (२:१८—२३)।

उपसंहार : खाना-पीना और परिश्रम करते हुए अपने जीव को सुखी रखना अच्छा है (२:२४–२६), क्योंकि परिश्रम के फल परमेश्वर देता है।

(ख) जीवन का उद्देश्य जानने की चेष्टा व्यर्थ है (३:१–११): सब बातों का समय है, परंतु उनका अभिप्राय परमेश्वर के हाथ में है।

उपसंहार : परमेश्वर के दानों का भोग करो, जीवन भर भलाई करो और शेष परमेश्वर पर छोड़ दो (३:१२–१५)।

(ग) यह सोचना व्यर्थ है कि इस दुष्ट संसार में न्याय मिलता है (३:१६—५:१७): न्याय के स्थानों में अन्याय है; दुष्टता को दंड नहीं मिलता (३:१६–४:३१); अपव्यय भी लाभकारी सिद्ध होता है (४:४–६); कंजूस धन जमा करता है, (४:७–१२); और बूढ़े राजा की मूर्खता बताती है कि सब कुछ ठीक नहीं है (४:१३–१६)। फिर भी व्यक्ति को पवित्र चालचलन का होना चाहिये, क्योंकि परमेश्वर सब पर है (५:१–९)। धन और संपत्ति का मोल उनकी बढ़ती में नहीं (५:१०–१२)। जिसका धन है उसे उसकी कमाई का फल नहीं मिलता क्योंकि दुर्घघना या मृत्यु का वह शिकार होता है (५:१३–१७)।

उपसंहार : परिश्रम करो और बुद्धिमानी से रहो, अपने कर्त्तव्य का पालन करो और अपने भाग को लेकर आनंद से रहो (५:१८–२०)।

(घ) सामान्यतया मनुष्य का जीवन ही व्यर्थ है (६):
मृत्यु में सब का अंत होता है, इच्छाएँ कभी पूर्ण नहीं हो पातीं, इस जगत में कुछ भी नया नहीं है।

(२) बुद्धि की सम्मत्ति (७–१२:७)

(क) गंभीर और नम्र हो, जीवन की शोकांत घटनाओं के प्रति जागरूक रहो, अच्छे नाम की चेष्टा करो और जीवन में जो कुछ मिलता है उसमें संतुष्ट रहो (७:१–१०)।

(ख) समभाव से सुख और दुःख के दिनों को स्वीकार करो, और दोनों से शिक्षा लो (७:११–१४)।

(ग) सब बातों में संयमी रहो (७:१५–१८)।

(घ) मानवी बुद्धि के महत्व और सीमाओं का ध्यान रखो (७:१९–२९)।

(च) जिसकी आज्ञा का पालन करना है उसकी आज्ञाओं का सबुद्धि पालन करो (८:१–५)।

(छ) यह स्मरण करते हुए कि परमेश्वर के अभिप्राय अगम्य हैं, इस संसार की भली वस्तुओं का आनंद से उपयोग करो (८:६–१७)।

(ज) स्मरण रखो कि मृत्यु सब पर आएगी, और कि इस जीवन का कोई स्थायी महत्व नहीं है (९:१–६)

(झ) परिश्रम और निर्दोष आनंद के साथ इस व्यर्थ जीवन को व्यतीत करना (९:७–१०)।

(ट) स्मरण रखना कि बहुत बातें सुयोग पर अवलंबित हैं और कि संसार बुद्धि का सम्मान नहीं करता (९:११–१०:१)।

(ठ) बुद्धि, औचित्य, दूरदर्शिता, मीठी और संयमित वाणी के गुणों को अपना लो (१० : २–२०)।

(ड) सफलता में शंका होने पर भी अपने साधारण कर्तव्यों का निर्वाह किए जाओ (११:१–८)।

(ढ) अपनी जवानी में आनंद कर, यह स्मरण रखते हुए कि परमेश्वर तेरा न्याय करेगा। अपनी जवानी में अपने सृजनहार को स्मरण रख इससे पहले कि शरीर को शक्ति का ह्रास होने लगे (११:९–१२:७)।

(३) उपसंहार

उपदेशक का कार्य यह है कि इस व्यर्थता के जीवन में बुद्धि से जीने का मार्ग बताए, बहुत पुस्तकों की रचना की अपेक्षा विश्वसनीय एवं मूल सत्यों को

प्रकट करे, अन्त की बात यह है, 'परमेश्वर का भय मान और उसकी आज्ञाओं का पालन कर ; क्योंकि मनुष्य का संपूर्ण कर्तव्य यही है। क्योंकि परमेश्वर सब कामों और सब गुप्त बातों का, चाहे वे भली हों या बुरी, न्याय करेगा' (१२:८-१४)।

४. रचना, रचयिता, रचनातिथि

(१) **लेखक**---इस पुस्तक के प्रारम्भिक शब्दों (१:१) में यह निहित है कि इसका रचयिता सुलैमान है। परन्तु इस कथन को अक्षरशः सत्य मानने के विपक्ष में निम्नलिखित ठोस तर्क दिए जाते हैं : सभोदेशक की भाषा शैली परवर्ती काल की इब्रानी है, राजाओं के काल की इब्रानी नहीं। लेखक यह नहीं कहता कि मैं यरूशलेम का राजा हूँ, परंतु यह कहता है कि 'मैं उपदेशक यरूशलेम का राजा था' (१:१२)। वह अपने पहले के कई राजाओं की बात करता है (१:१६)। इस पुस्तक में जो सामाजिक और राजनीतिक स्थिति का आभास है, वह सुलैमान के युग की नहीं। सुलैमान स्वयं अपने राज्य काल की नैतिक बुराइयों की इस प्रकार चर्चा नहीं करता कि उसके राज्य पर ही छींटाकशी हो (४:१; ५:८; ८:६; १०:६,७,१६)। इसलिये सामान्यतया यह माना जाता है कि लेखक ने साहित्यिक उद्देश्य की दृष्टि से सुलैमान का नाम रख लिया, जैसे अफलातून ने अपने संवादों में सुकरात का नाम रखा। ऐसा करने से धर्मशास्त्र की प्रेरणा संबंधी समस्या पर कोई आँच नहीं आती, क्योंकि शास्त्र के सत्य को इस बात से समझा जा सकता है कि परमेश्वर की वाचा का उसके लोगों के साथ सम्बन्ध की अभिव्यक्ति करने में लेखक का मंतव्य क्या है।

इस पुस्तक में यूनानी संस्कृत का वातावरण प्रतिबिंबित है। केवल उसका दृष्टिकोण बौद्धिक है। इसलिये यह माना जाता है कि इसका लेखक यूनानी काल में रहा होगा। इस वातावरण की झलक इन कथनों में मिलती है : वर्तमान जीवन का आनंद लाभ करना (२:२४; ३:२२; ५:१८; ६:७); मानवी दुर्बलताओं पर, जीवन की व्यर्थता पर, भावी जीवन के निराशावाद पर चिन्तन (५:८; ८:६; १:२–१७; ३:१८क.) ; और प्रकृति के चक्र का वर्णन (१:५,६)। परंतु इस झलक से यह मान्यता प्रमाणित नहीं होती कि इस पुस्तक की विषय सामग्री यूनानी मूल स्रोतों पर आधारित है।

(२) **रचना**—सभोपदेशक की पुस्तक में ऐसे विचारों की अभिव्यक्ति की गई है जो तार्किक दृष्टि से परस्पर विरोधी हैं। १:२ में 'व्यर्थ ही व्यर्थ, सब व्यर्थ है' शब्दों में जो निराशावाद है वह १२:१३ में दी गई सम्मति से भिन्न है कि 'परमेश्वर का भय मान और उसकी आज्ञाओं का पालन कर।' ७:८ में इससे भी

पृथक परामर्श दिया गया है, 'किसी काम के आरम्भ से उसका अन्त उत्तम है ; और धीरजवन्त पुरुष गर्वी से उत्तम है ।' सर्वनामों के प्रयोग में भी भिन्नता है । १:१ और १२:६–११ में तृतीय पुरुषवाचक सर्वनाम प्रयोग किया गया है, जब कि अन्यत्र प्रथम पुरुष वाचक सर्वनाम का प्रयोग बहुत हुआ है (१:१२क.; ७:२३क.) । क्या इस विचार वैभिन्न्य को हम यह मानें कि एक ही लेखक के भावों की विभिन्नता है अथवा अनेक लेखकों की रचनाओं की भिन्नता है ? दोनों ही धारणाओं को माना गया है। मेकनील (McNeile) की सुप्रसिद्ध मान्यता है कि इस पुस्तक में चार लेखकों की रचनाएँ हैं : (क) मूल लेखक की, जो निराशावादी था (उदा.६:१०–१२) ; (ख) एक बुद्धिमान मनुष्य की, जिसने अच्छी सम्मति के सुन्दर कथन किए और बुद्धि की महत्ता को बनाए रखा, जो कदाचित मूल लेखक ने तुच्छ जाना (उदा.७:५–१३) ; (ग) एक धर्मात्मा यहूदी की, जिसने इसमें शास्त्रसम्मत बातों को सुरक्षित रखा, विशेषकर मनुष्य के इस कर्तव्य पर बल दिया कि वह परमेश्वर का भय माने, और इस बात पर कि परमेश्वर का न्याय निश्चित है (उदा.११:६; १२:१३–१४) ।

इन तर्कों के उपरांत भी इस पुस्तक की भावात्मक एकता को मान्यता दी जाती है। यह संभव माना जाता है कि एक विचारवान मनुष्य इस प्रकार निराशा और आशा, व्यर्थता और सामान्य बुद्धि, इच्छा और कर्तव्य की विरोधी भावनाओं की अनुभूति कर सकता है । यह सुझाव दिया गया है कि पुस्तक की क्रमहीनता का कारण यह है कि लेखक ने अलग-अलग समय पर अपने विचारों को लिखा, जैसे कोई अपनी दैनंदिनी लिखता हो। उन अंशों को, जिनमें उपदेशक के लिये तृतीय पुरुष वाचक सर्वनाम का प्रयोग किया गया है, कदाचित किसी संपादक या शिष्य ने लिखा। फिर भी पुस्तक में पर्याप्त अखंडता विद्यमान है।

(३) **तिथि**—ऊपर यह कहा गया है कि सभोपदेशक यूनानी काल की रचना है। यदि इस मान्यता को स्वीकार किया जाए तो 'सीरख' (Ecclesaisticus) से उसके संबंध से यूनानी काल के अंतिम भाग में इस पुस्तक की तिथि को रखना उचित होगा। 'सीरख' की रचना तिथि लगभग ई. पू. १८० है। सीरख के लेखक को सभोपदेशक के विचारों की जानकारी थी। इसलिये सभोपदेशक की रचना-तिथि ई. पू. १८० के पहले मानी जाती है। इसके साथ ही यह पुस्तक नीति वचन और अय्यूब के बाद लिखी गई, क्योंकि इन पुस्तकों में पृथ्वी पर ही दंड का विचार स्वीकृत है, जब कि सभोपदेशक में उसका त्याग किया गया है। इन तथ्यों के आधार पर सभोपदेशक की रचना तिथि ई. पू. २५०–२०० के मध्य मानी जाती है।

५. साहित्यिक समांतरता

सभोपदेशक और यूनानी लेखों के बीच कुछ साहित्यिक संबंध स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है, परंतु यूनानी काल के सामान्य बौद्धिक वातावरण के माध्यम से जो कुछ संबंध लगाया जा सकता है उससे अधिक हम कुछ भी निश्चित रूप से नहीं जान सकते। लेखक ने अपनी इब्रानी संस्कृति की सीमा के अंतर्गत ही अपने विचारों की अभिव्यक्ति की है। परन्तु इसके साथ यह ध्यान रखना चाहिये कि इस इब्रानी संस्कृति का वातावरण ऐसा था जिसमें हेलनी विचारों के साथ खाल्दी, ईरानी और मिस्री विचारों का सम्मिश्रण था।

मिस्र के प्रज्ञा-साहित्य में कुछ साहित्यिक समांतरता की संभावना प्रतीत होती है। 'वजीर प्ताह-होतेप की सीख' नामक रचना में शरीर पर वृद्धावस्था के प्रभावों का वर्णन है (दे. सभ. १२ : ३–७)। 'वीणा बजाने वाले का गीत' में, जो श्राद्ध-भोज के समय गाया जाता था, मृत्यु के विचारों के साथ-साथ जीवन में आनंद करने के भी विचार पाए जाते हैं। उनके शब्दों को देखिए :

> जब तक जीवित है, अपनी कामनाओं का अनुसरण कर।
> अपने मस्तक पर मुर लगा, झीनी मलमल के वस्त्र धारण कर,
> देवताओं के अद्भुत सुगंधित द्रव्यों से अभ्यंजित हो।
> अपनी सुन्दर वस्तुओं में वृद्धि कर;
> तेरा हृदय कभी न डूबे।
> अपनी कामनाओं का अनुसरण कर, अपनी भलाई के पीछे भाग,
> अपने ही मन के कहे अनुसार,
> पृथ्वी पर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर,
> उस समय तक जब तक कि शोक का दिवस तुझ पर न आ जाए।
> (दे. सभ. ९ : ७, ८, १०)।

गिलगामेश (X–३) नामक बाबुली महाकाव्य में भी इसी प्रकार के विचार पाए जाते हैं :

> हे गिलगामेश, तेरा पेट भरा रहे,
> रात को और दिन में भी तू आनंद कर।
> तेरे लिये प्रतिदिन आनंद का उत्सव हो,
> रात दिन नृत्य कर और क्रीड़ा होने दे :
> तेरे वस्त्र चमचमाते हुए हों,
> मस्तक धुला हुआ; जल से अच्छा स्नान कर।

जो सुकुमारी तेरा हाथ पकड़े हैं उसका ध्यान रख,
तेरी प्रिया तेरे अंक में आनंद करे :
क्योंकि मानव जाति का यही काम है ।

इन समान अंशों से यह प्रकट होता है कि सभोपदेशक का लेखक कदाचित मिस्री और बाबुली साहित्य से परिचित था । परंतु उसकी रचना उन साहित्यों पर आधारित नहीं है । उसने अपने युग के निवासी के समान लिखा और अपनी रचना में जीवन का सत्य सम्मिलित करने के द्वारा, इब्रानी लोगों को प्रकाशित परमेश्वर के ज्ञान के साथ जीवन की दु:खांत घटनाओं और निराशावाद की भावनाओं को मिश्रित करने के द्वारा उसने एक विशेष देन दी।

६. धर्म संबंधी विचार और शिक्षा

सभोपदेशक निराशावादी था । वह संसार की सब बातों में, विशेषकर मनुष्य के प्रयत्नों में व्यर्थता देखता है । परंतु उसके निराशावाद से एक सुन्दर परिणाम यह निकला कि परमेश्वर पर पूर्णत: अवलंबित रहने की भावना उसके हृदय में जम गई । यदि वह कोरा निराशावादी होता, तो अनेक प्रकार की व्यर्थताओं के वर्णन से पाठकों को कदाचित रसात्मकता मिल जाती, परंतु उससे कोई संदेश नहीं मिल पाता । उपदेशक परमेश्वर पर विश्वास करता था इसीलिए जीवन के चिरंतन अर्थ पर आस्था रख सका। वह विश्वास करता है कि परमेश्वर ने सब वस्तुओं की सृष्टि की (७ : १३; १२ : १), और यद्यपि हम परमेश्वर के गुप्त भेदों को समझ नहीं सकते, तथापि वह संसार का संचालन करता है । वह विश्वास करता है कि परमेश्वर भलों को पुरस्कार और बुरों को दण्ड देगा (३:१७; ८:१२,१३), यद्यपि कि वह जीवन के तथ्यों को देख कर इस विश्वास का समंजन नहीं कर सकता है । वह मानवी अनुभवों के अर्थहीन पक्षों से प्रभावित है : जैसे लाभरहित और निरर्थक परिश्रम (२:२२), योग्यता का विचार किए बिना धन का वितरण (४:८; ८:१४; ९:११), समाज में न्याय का अन्याय (१०:५; ९:१५; ८:४) । इस प्रकार के अनुभवों से बुद्धि चकराती है और परमेश्वर पर विश्वास अनेक हृदयों में डोल जाता है, क्योंकि भले परमेश्वर के साथ संसार में इतनी बुराई को कैसे संगत किया जा सकता है ? जहाँ तक इस प्रश्न के उत्तर की बात है, लेखक के पास यदि कोई उत्तर है तो वह इस पुराने युग के विचार में नहीं कि वर्तमान जीवन में ही प्रतिकारात्मक न्याय मिलता है, क्योंकि दैनंदिन अनुभव से इस विचार की पुष्टि नहीं होती । उसका उत्तर इस विचार में भी नहीं मिलता कि भावी जीवन में प्रतिकारात्मक न्याय मिलेगा,—क्योंकि भावी जीवन

संबंधी पूर्ण प्रकाशन अभी तक नहीं मिल पाया था। इसका उत्तर इस विचार में है कि परमेश्वर के भेद अगम्य हैं। उसे परमेश्वर के धर्ममय न्याय-निर्णयों में निश्चय है (३:१७ क्र.; ८:१२ क्र.; १६:६ क्र.), परंतु परमेश्वर की योजना इतनी अगम्य है कि मनुष्य उसे समझने की आशा नहीं कर सकता (७:१३, २४; ६:१)। सच बात यह है कि परमेश्वर के भेद के समक्ष मनुष्य अपनी ससीमता को स्वीकार नहीं करता, इसीलिए उसे विफलता मिलती है और वह अपने प्रयत्नों में व्यर्थता का अनुभव करता है (७:२६)।

दैनंदिन आचरण के लिए लेखक परामर्श देता है। वह सिखाता है कि मनुष्य को चाहिए कि वह अपने दैनिक परिश्रम में और अपने श्रम फल के संयमित उपभोग में आनंद प्राप्त करे (२:२४)। यहाँ 'खाओ, पीओ' की जो सम्मति दी गई है वह आनंदवाद (Epicurianism) की शिक्षा से भिन्न है, क्योंकि यहाँ पर खाने-पीने के आनंद अपने में जीवन उद्देश्य न होकर परमेश्वर प्रदत्त माने गए हैं। मनुष्य को भोग-विलास में लिप्त होने के बदले गंभीर वृत्ति का होने के लिए उपदेश दिया गया है (७:३–७)। मनुष्य को अपनी भावनाओं पर संयम रखना चाहिये (७:६)। उसे अपने कार्यों में बुद्धिमान होना चाहिए (११:१–६)। केवल अपने लिये जीने से दूसरों के साथ मिल कर रहना अच्छा है (४:६–१२)। जो हमारे अधिकारी हैं, यदि उनका शासन दमनकारी हो, तब भी उनके प्रति आज्ञाकारी होना चाहिए (८:२–८; १०:२०)। मनुष्य को सच्चे मन से परमेश्वर की आराधना करनी चाहिये (८:१२, १३), और उन बातों की व्यर्थ चिंता नहीं करनी चाहिये जो मनुष्य की समझ से बाहर हैं, और सदा याद रखना चाहिये कि अंत में परमेश्वर सब बातों का न्याय करेगा (१२:१४)। जब तक परमेश्वर की आशिषें मनुष्य को मिलती हैं, वह उनका संयम के साथ उपभोग करे और अपनी सीमा से बाहर की वस्तुओं की चेष्टा न करे (८:१६, १७; ११:६)। इसके विरोध में काम करने का अर्थ है व्यर्थता के पीछे भागना, क्योंकि परमेश्वर के भय से अलग सब कुछ व्यर्थ—व्यर्थ ही व्यर्थ है (१२:८, १३)।

तीसवाँ अध्याय

श्रेष्ठगीत

१. शीर्षक और प्रामाणिक धर्मशास्त्र में स्थान

इब्रानी में इस पुस्तक का शीर्षक शीर हशीरीम (श्रेष्ठ गीत) है, जो पहिले पद में विस्तृत रूप में यों है, 'श्रेष्ठ गीत जो सुलैमान का है'। सेपत्वागिंता में इसका शीर्षक असमा असमातोन (Asma Asmaton) है और वुल्गाता में कन्तिकम कंतिकोरमु (Canticum Canticorum) हैं। ये दोनों इब्रानी शीर्षक के शुद्ध अनुवाद हैं। अँग्रेजी में साधारणतया 'सुलैमान के गीत' शीर्षक है, परन्तु श्रेष्ठ गीत का भी उपयोग किया गया है। कभी-कभी पूरा शीर्षक 'श्रेष्ठगीत, जो सुलैमान का है' प्रयोग में आया है। हिन्दी में 'श्रेष्ठगीत' है।

इब्रानी में 'गीतों का गीत' शब्द उत्तमवाचक शब्द के अर्थ में मुहाविरा रूप है। इसी प्रकार का प्रयोग 'पवित्रों का पवित्र ' है। जैसे पवित्रों के पवित्र का अर्थ 'महा पवित्र' किया जाता है उसी प्रकार 'गीतों का गीत' का अनुवाद श्रेष्ठगीत किया जाता है।

इब्रानी बाइबल में श्रेष्ठगीत पर्व-कुंडलों में से एक है और कतूवीम में सम्मिलित है। पर्वकुंडल होने के कारण फसह पर इसका पाठ किया जाता था।

२. विषय सामग्री का सारांश

श्रेष्ठ गीत में प्रेम-गीतों की माला है जो एक दुल्हिन और उसका प्रियतम गाते हैं। दुल्हिन एक शलेम्मिन कुमारी है 'और सब कुमारियों में सुन्दर' है। उसका प्रियतम सुलैमान है। श्रेष्ठगीत में अन्य पात्र दुल्हिन के भाई और यरूशलेम की पुत्रियाँ हैं।

३. रूपरेखा

सुलैमान का गीत—दुल्हिन और उसके प्रियतम का गीत

(१) दुल्हिन की अपने प्रियतम के लिये लालसा : उनकी भेंट और परस्पर प्रशंसा (१:१–२:७)।

(२) उनकी प्रणय-याचना और प्रेमोद्दीपन (२:८–३:५) : वसंत ऋतु में दुल्हिन को मैदान में आने का आमंत्रण; सायंकाल को लौटना; प्रियतम के बिना दुल्हिन की बेचैनी ।

(३) उनकी सगाई (३:६–५:१) : सुलैमान का पालकी में आना; दूल्हा का दुल्हिन के प्रति आकर्षण ।

(४) दुल्हिन के प्रेम और स्थिरता की परीक्षा (५:२–६:६) : दुल्हिन का प्रियतम खो जाता है । दुल्हिन उसे पुनः पाती है ।

(५) प्रगाढ़ प्रेम के आनंद (६:१०–८:४) : दुल्हिन और दूलह एक दूसरे की प्रसंशा करते हैं; दुल्हिन अपनी भक्ति व्यक्त करती है ।

(६) प्रेम की पूर्णता : दूलह के भवन में दुल्हिन का स्वागत (८:५–१४) ।

४. पुस्तक की व्याख्या या भाष्य

पुस्तक में ऐसी कोई बात नहीं जिससे इसकी ईश्वरीय प्रेम संबंधी रूपक कथा के समान व्याख्या की जाए, तो भी परंपरागत रूप से इसकी ईश्वरीय प्रेम के रूपक काव्य की दृष्टि से व्याख्या की जाती है । यहूदियों में परमेश्वर के प्रेम के मान से इसकी रूपकात्मक व्याख्या की जाती है । परमेश्वर प्रेमी है और इस्राएल उसकी वधू है। होशे नबी की किताब में यह रूपक पाया जाता है (हो. २:१९; ३:१) । ख्रिस्तियों में ख्रिस्तीय मान से इसकी व्याख्या की जाती है । ख्रिस्त प्रेमी है और उसकी कलीसिया दुल्हिन । नये नियम में कलीसिया दुल्हिन है, यह साधारण रूपक है (इफ. ५:२५–३३; प्र. २१:२; २२:१७; मर. २:१९) । व्यक्तिगत भावना की दृष्टि से यह पुस्तक परमेश्वर या ख्रिस्त के साथ आत्मा के रहस्यात्मक संबंध का रूपक माना जाता है । यह व्याख्या उपरोक्त व्याख्याओं के साथ संगत है ।

धर्मशास्त्र के कुछ सूक्ष्म आलोचकों को यह रूपकात्मक व्याख्या स्वीकार्य नहीं है । प्राचीन युग से यह व्याख्या स्वीकार्य नहीं है क्योंकि इस पुस्तक में ऐसी कोई बात नहीं है जिससे रूपकात्मक व्याख्या का संकेत मिलता हो । परंतु यदि रूपकात्मक व्याख्या अस्वीकार की जाय तो यह पुस्तक मानवी प्रेम-कथा की लौकिक कविताओं का संकलन मात्र रह जाती है । साथ ही एक और समस्या उत्पन्न हो जाती है कि धर्मशास्त्र में इसको क्यों स्थान दिया गया है ?

अनेक लौकिक व्याख्याएँ यदा कदा प्रतिपादित की गई हैं । ई. सन् चौथी शताब्दी में मोपसुएस्तिआ के थियोदोर ने आध्यात्मिक अर्थ अस्वीकार किया, और यह मान्यता व्यक्त की कि सुलैमान ने फ़िरौन की पुत्री के साथ

अपने विवाह के अवसर पर इसकी रचना की। आधुनिक युग में इस पुस्तक के संबंध में नाटकीय मान्यता का प्रतिपादन किया गया है और यह अय्यूब की पुस्तक की नाटकीयता से साम्य के आधार पर किया गया है। इस मान्यता के अनुसार श्रेष्ठ गीत एक रोमानी नाटक का लेख है, परंतु नाटक के प्रमुख पात्रों की संख्या के संबंध में मत वैभिन्न्य है। डिलिट्ज़ (Delitzsch) की मान्यता है कि इसमें दो प्रधान पात्र हैं, अर्थात सुलैमान और एक ग्राम बालिका जिसका नाम शुल्लेमिन है। प्रणय–याचना बड़े आनंद से विवाह की बेला तक चलती है, परंतु उसी समय वियोग हो जाता है (रूपरेखा में (४) भाग)। इसके पश्चात उनका मिलन और तब स्थायी सुख। दूसरी मान्यता एवाल्ड (Ewald) की है। वह इसमें तीन प्रमुख पात्र मानता है, सुलैमान, शुल्लेमिन और प्रेमी गड़रिया। सुलैमान शुल्लेमिन को भगा ले जाता है और उसे राज-भवन के वैभव से लुब्ध कर अपनी बनाने की चेष्टा करता है। परंतु शुल्लेमिन अपने प्रेमी गड़रिये को ही प्यार करती है। यद्यपि उसका प्रेमी उससे दूर है, तो भी वह उसका सपना देखती है (चौथा भाग रूपरेखा में)। सुलैमान उसका प्रेम नहीं प्राप्त कर सका। नाटक का अंत शुल्लेमिन और उसके प्रीतम से मिलन में होता है। इन नाटकीय व्याख्याओं में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि पुस्तक में बोलने वाले पात्रों के नाम नहीं हैं, जैसे कि अय्यूब की पुस्तक में हैं, और कहीं भी कोई ऐसी टिप्पणी नहीं है जिससे यह इंगित हो कि यह पुस्तक नाटक है।

पिछली शताब्दी में जब अरामी विवाह प्रथाओं का सूक्ष्म अध्ययन किया गया तो इस पुस्तक के प्रति बहुत रुचि व्यक्त हुई। अरामी ग्राम के वर और वधू को एक सप्ताह भर राजकीय सम्मान प्रदान किया गया। उन्होंने एक के बाद एक अपने दरबार किए जिनमें उनका यशोगान हुआ। राजकीय वस्त्रों में मानो प्रजा के सन्मुख उनके दरबार हुए। इन प्रथाओं के अनुरूप जो निश्चित रूप से प्राचीन है, यह मान्यता व्यक्त की गई कि श्रेष्ठ गीत मूल रूप में पलिश्ती ग्राम के विवाह-सप्ताह में प्रयुक्त होने वाले विवाह-गीतों का संकलन है (बुड्डे) (Budde)। दूलह को उत्सव के समय 'सुलैमान' की महान उपाधि दी जाती है और दुल्हिन को शुल्लेमिन (अर्थात कुमारियों में सर्व-सुन्दर) की। अन्य विद्वानों का कहना है कि पुस्तक प्रेम-गीतों का संकलन-मात्र है और उसमें किसी प्रकार का उद्देश्य निहित नहीं है।

इस पुस्तक के संबंध में एक और मान्यता यह है कि उसमें सात कविताए हैं जो परस्पर समांतर हैं। प्रत्येक कविता में दुल्हिन और दूलह की एक दूसरे के प्रति लालसा, प्रशंसा और तब मिलन में आनंद की अभिव्यक्ति है। इस

मान्यता को हम रूपकात्मक अथवा लौकिक दोनों ही प्रकार की व्याख्या में स्थान दे सकते हैं, क्योंकि यह व्याख्या से नहीं, पुस्तक के रूप से संबंधित है।

जो लौकिक मान्यता इस पुस्तक को ग्राम-विवाह के उत्सव सप्ताह से संबंधित करती है वह इस माने में बड़ी आकर्षक है कि उसमें यथार्थ जीवन की स्थिति से उसकी भाव सामग्री का समन्वय होता है। परंतु यदि इस व्याख्या को स्वीकार किया जाए तो यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि इस पुस्तक को प्रामाणिक धर्मशास्त्र में कैसे स्थान दिया गया ? अतएव यह मानना आवश्यक है कि कोई व्यक्ति था जिसके हृदय में रूपक और रहस्य की भावना विद्यमान थी। वह ऐसा ही होगा जैसे सूफी कवि जो मानवी प्रेम को ईश्वरीय प्रेम का प्रतीक मानते हैं। उस व्यक्ति ने किसी प्रारंभिक समय में ग्राम-विवाहों के साधारण लौकिक गीतों को लेकर धार्मिक अभिप्राय के निमित्त उनका उपयोग किया। उसके पश्चात इन गीतों में एक स्थायी धार्मिक अर्थ आ गया और इस प्रकार वे धार्मिक रचना बन गए। फलस्वरूप जब प्रामाणिक धर्म-शास्त्र की रचना हुई तो इस पुस्तक को भी स्थान मिल गया। इस व्याख्या की संभावना होशे नबी की कथा से पुष्ट होती है, जिसमें होशे के जीवन की दुःखांत घटना और परमेश्वर की ओर से इस्राएल जाति को संदेश में निकट साम्य प्रस्तुत किया गया है।

अइब्रानी प्राचीन धर्मों के अध्ययन के आधार पर एक और व्याख्या हमारे समक्ष आती है। अइब्रानी धर्मों में नैतिक भावनाओं पर इब्रानी धर्म की अपेक्षा कम जोर दिया जाता था। उनमें धार्मिक अनुष्ठानों के अंतर्गत 'लौकिक' प्रेम गीतों को सरलता से स्थान मिल सकता था। अतः यह माना जाता है कि श्रेष्ठ गीत प्राचीन कालिक अयहूदी उपासना विधि का अंग है। ओसिरिस देवता या उसका समकक्ष देवता या ताम्मुज, अदोनी या बाल देवता दूलह होगा और इश्तर या अस्तर्त देवी उसकी दुल्हिन। यदि श्रेष्ठ गीत का उद्‌गम पलिश्तीन में हुआ, तो यह उत्पादन के देवता और देवी संबंधी उपासना-पद्धति होगी। नूतन वर्ष के त्यौहार (Akitu) संबंधी बाबुली प्रथाओं के अध्ययन से यह पता चलता है कि इन उत्सवों में एक प्रथा यह थी कि देश और देशवासियों की उर्वरता के निमित्त एक शर्त थी कि राजा रानी का एक धार्मिक विवाह भी हो। यह मान्यता पूर्णतया तर्क सम्मत है कि ऐसे प्रेमगीत जैसे श्रेष्ठगीत में हैं, धार्मिक विवाह से संबद्ध हों। अतएव यह नितांत संभव है कि जो गीत आधुनिक विद्वानों को लौकिक प्रतीत होते हैं, वे प्रारंभ में धर्म से संबंधित रहे हों। इस व्याख्या के साथ यह कठिनाई अवश्य सामने आती

है कि इब्रानी प्रामाणिक धर्मशास्त्र में अइब्रानी उपासनाविधि को कैसे स्थान मिल सका।

किसी भी संतोषप्रद व्याख्या से दो बातों का स्पष्टीकरण होना चाहिये—इस पुस्तक का धार्मिक संबंध और उसकी अधार्मिक भाव सामग्री। इस मान्यता में इसका संभाव्य समाधान हो सकता है कि निर्वासन-पूर्व काल में इब्रानियों का अपना नूतन-वर्ष उत्सव होता था जो उनके पड़ोसियों की प्रथाओं के समान माना जाता था। हम कल्पना करें कि बात कुछ ऐसी ही है, कि इब्रानी राजतंत्र काल में बाबुली अकितु के समान ही उपासना विधियाँ थीं, परंतु वे उनसे इस सीमा तक भिन्न थीं जिस सीमा तक इब्रानी विश्वास और धर्म अइब्रानी विश्वासों और धर्मों से भिन्न था। जब सुलैमान राजा ने अपनी राजसत्ता किसी पूर्वी सम्राट के समान प्रतिष्ठित की तो लोकप्रचलित माँग या प्रत्याशा की पूर्ति स्वरूप उसने अन्य जातियों की प्रथा के समान धार्मिक विवाह की विधि को उत्सव में स्थान दिया हो। इस्राएल जाति में इस प्रकार की धार्मिक विवाह-विधि को भी परंपरागत इब्रानी वाचा के मूलभूत नैतिक मानों की सीमाओं में अवश्य रखा गया होगा। यह ठीक उसी प्रकार हुआ होगा जैसे इस्राएल में राजतंत्र को वाचा के नैतिक मानों की सीमाओं में रखा गया। इस अनुष्ठान या उत्सव में जिन कविताओं का प्रयोग किया गया उनमें आरंभ से ही लौकिक प्रेम-भावना और धर्म-भावना दोनों तत्व विद्यमान थे। अपने लोगों के लिये परमेश्वर की कृपा प्राप्त करने के संदर्भ में इस अनुष्ठान को माना गया और अनुष्ठान से संबंधित कविताओं को धार्मिक भावना के संदर्भ में सुरक्षित रखा गया। नबियों के नैतिक प्रभाव के कारण इन कविताओं में परमेश्वर और इस्राएल के बीच वाचा के संबंध पर जोर दिया गया, ठीक उसी प्रकार जैसे होशे ने अपने वैवाहिक अनुभवों को वाचा से संबंधित किया। परवर्ती काल में जब इस्राएलियों के धार्मिक साहित्य को संकलित और स्थायी रूप दिया जाने लगा, तो ये कविताएँ भी अपने प्रचलित धार्मिक संदर्भ सहित संकलित की गईं। इस प्रकार प्रामाणिक धर्मशास्त्र में न केवल प्रेमगीत के रूप में, वरन रूपकात्मक गीतों के रूप में इन गीतों को स्थान दिया गया।

इस समस्या का पूर्णतया संतोषप्रद हल अभी तक नहीं मिल पाया है।

५. रचना तिथि और रचयिता

परंपरागत रूप से सुलैमान को श्रेष्ठगीत का रचयिता माना जाता है। फिर भी यह स्वीकार किया जाता है कि १:१ में सुलैमान का नाम एक साहित्यिक माध्यम मात्र है। ३:७–११ में सुलैमान का उल्लेख तृतीय पुरुषवाचक सर्वनाम

से हुआ है। इससे ऐसा लगता है कि और कोई इन गीतों को लिख रहा है। यह भी संभव है कि यह पुस्तक अनेक लेखकों की रचनाओं का संग्रह हो। कुछ विद्वानों की यही मान्यता है।

भाषा शैली के आधार पर पुस्तक की तिथि का निर्धारण किया गया है। अरामी और अन्य विदेशी शब्दों की उपस्थिति के कारण अनेक विद्वानों की यह धारणा है कि यह पुस्तक निर्वासन काल के बहुत समय पश्चात् यूनानी काल में रची गई। ४:१३ में बाग के लिये फारसी शब्द 'फिरदौस' का रूप परदीस (Pardes) है, और ३:९ में पालकी के लिये यूनानी शब्द फोरिऑन (Phoreion) का रूप अप्पीरिऑन (Appirion) है। भाषा शैली के आधार पर पुस्तक का रचना काल कुछ लोग ई. पू. ३००-२५० मानते हैं।

इसके विपरीत कुछ विद्वान यह मानते हैं कि इसकी कविताएँ साहित्यिक कृतियाँ न होकर लोक गीत हैं, इसलिये यद्यपि इनमें एकादि फारसी और यूनानी शब्द आ गए हैं, तथापि ये कविताएँ बहुत प्राचीन हैं। इस मान्यता में भाषा के अरामी रंग का स्पष्टीकरण यह किया जाता है कि वह परवर्ती काल का नहीं परंतु यह प्रकट करता है कि ये कविताएँ इब्रानी भाषा की बोली, कदाचित उत्तरी बोली में लिखी गईं। उदाहरणार्थ, शुल्लेमिन शब्द (६:१३) शूनेमिन शब्द का बोली रूप है (२रा.४:१२)। यरूशलेम के समकक्ष उत्तरी राजधानी तिर्सा के उल्लेख (६:४) तथा गिलाद और हेशबोन (४:१; ७:४) के उल्लेख से प्रारंभिक राजाओं के काल का संकेत मिलता है, उस काल का जबकि शोमरोन उत्तरी राज्य की राजधानी नहीं बना था (ई.पू. ८७१) और इब्रानियों ने गिलाद और हेशबोन नहीं खोए थ (ई.पू. ७३४)। अतः मूल कविताओं में परवर्तीकालीन संपादकीय टिप्पणियों की छूट मानते हुए यह स्वीकार किया जा सकता है कि इन कविताओं की राज्यकाल के प्रारंभिक युग में रचना हुई (ई.पू. ९००-८५०)। फिर भी पुस्तक के वर्तमान रूप के कारण उसकी तिथि ई.पू. ३००-२५० मानी जाती है।

६. धर्म शिक्षा

यदि प्रारंभिक युग से श्रेष्ठगीत का धर्म से संबंध रहा है, तो पुस्तक के धर्मशास्त्रगत स्थान तथा उसके धार्मिक महत्व से रूपकात्मक व्याख्या का घनिष्ठ संबंध माना जा सकता है। अतः इस पुस्तक की धर्मशिक्षा की जड़ें उसकी विषय सामग्री में इतनी नहीं जितनी कि उसके धर्म से संबद्ध होने के संदर्भ में हैं। इस पुस्तक का उपयोग किसी प्रमुख बाइबली सिद्धांत के तत्वों को प्रस्तुत करने में नहीं करना चाहिये। इसका उपयोग बाइबल में अन्यत्र प्रस्तुत सत्यों

के उदाहरण देने या उनको रुचिकर बनाने के लिये किया जाना चाहिये। इस पुस्तक का मूल्य सत्य के बौद्धिक ग्रहण में नहीं, वरन भावना के क्षेत्र में है।

ख्रिस्तीय दृष्टिकोण से, जिसमें यहूदी दृष्टिकोण की पूर्ति होती है, इस पुस्तक में इस भाव की अभिव्यक्ति है कि (स्वयं को ख्रिस्त में प्रकट करने वाला) परमेश्वर अपने लोगों से प्रेम करता है। यह चित्र नये नियम के अनुरूप है (२२:१-१४; ६:१५; यू.३:२६; २कुर.११:२; इफ.५:२३-३२; प्र.२१:२)। विश्वासी का प्रेम इस पुस्तक में प्रयुक्त सुन्दर शब्दावली के माध्यम से गहरा हो सकता है। वह ख्रिस्त है जो 'मेरा प्राणप्रिय' है (१:७), 'शारोन देश का गुलाब' है, 'तराई का सोसन फूल' है (२:१), 'दस हजार में उत्तम' है (५:१०)। ख्रिस्त की आशिषों का वर्णन इन शब्दों में किया जा सकता है, 'वह मुझे भोज के घर में ले आया, और उसका जो झंडा मेरे ऊपर फहराता है वह प्रेम है' (२:४)। ख्रिस्त को जानने के अनुभव का वर्णन इन शब्दों में किया जा सकता है 'गाने का समय आ पहुँचा है'। जो चिरंतन शांति ख्रिस्त देता है वह इन शब्दों में व्यक्त की जा सकती है, 'मेरा प्रेमी मेरा है और मैं उसकी हूँ, वह अपनी भेड़ बकरियाँ सोसन फूलों के बीच चराता है' (२:१६)। ख्रिस्त अपनी दुल्हिन, कलीसिया में जो सिद्धता चाहता था उसका वर्णन इन शब्दों में किया जा सकता है, मेरी प्रिय, तू सर्वांग सुन्दरी है, तुझमें कोई दोष नहीं। श्रेष्ठगीत से ऐसे पदों और पंक्तियों को ख्रिस्तीय भक्ति साहित्य एवं गीतों में स्थान मिल गया है और इस प्रकार भक्त आत्माओं का जीवन उच्च बन पाया है।

स्वभावतया ही रूपकात्मक व्याख्या वैज्ञानिक खोज के युग के लिये अपरिचित होती है। इसलिये वर्तमान युग में इस पुस्तक का भावग्रहण कुछ कठिन है। जो कुछ भी धर्मगत मूल्य इस पुस्तक का है वह उनके लिये है जो विज्ञान के वस्तुवादी नियमों से अपनी दृष्टि हटाकर धर्मभाव की आत्मानुभूतियों की ओर लगा सकते हैं। हमें स्मरण रखना चाहिये कि विश्वासियों की कई पीढ़ियों की आध्यात्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति बाइबल द्वारा की गई है और आज तक हो रही है और कि परमेश्वर ने उन विश्वासियों को ग्रहण किया है। इनमें से कई विश्वासी वर्तमान वैज्ञानिक वस्तुवादिता के युग के पहले रहे। हमें यह भी स्मरण रखना चाहिये कि जो अवर्णनीय और अकथनीय है उसकी थोड़ी-बहुत अभिव्यक्ति करने में हमें प्रतीकों की भाषा को अपनाए बिना काम नहीं चलेगा। यदि हम इन बातों को स्मरण रखें तो इस पुस्तक की व्याख्या और इससे शिक्षा ग्रहण करने में हमें अवश्य सहायता प्राप्त होगी।

इकतीसवां अध्याय

नबूवत की पुस्तकें

धर्मशास्त्र में नबूवत की पुस्तकों के अंतर्गत चार बड़ी पुस्तकें हैं—यशायाह, यिर्मयाह, यहेजकेल और दानिय्येल और बारह छोटी पुस्तकें हैं—होशे, योएल, आमोस, ओबद्याह, योना, मीका, नहूम, हबक्कूक, सपन्याह, हाग्गै, जकर्याह और मलाकी। छोटी पुस्तकों के नबियों को बारह छोटे नबी और बड़ी पुस्तकों के नबियों को बड़े नबी कहते हैं। नबूवत की पुस्तकों में विलाप गीत की पुस्तक को भी सम्मिलित किया जाता है। यह वास्तव में काव्य पुस्तक है परंतु यिर्मयाह के साथ परंपरा से इसका संबंध होने के कारण इसे नबूवत की पुस्तक में रखा जाता है। 'अधिक पुस्तकों वाले धर्मशास्त्र' में बारूक भी सम्मिलित है जिसे विलाप गीत के पश्चात स्थान दिया गया है। साथ ही दानिय्येल में कुछ अतिरिक्त सामग्री भी है जिन्हें 'तीन पवित्र युवकों का गीत', 'सुसन्ना का इतिहास', तथा 'बेल और अजगर' कहते हैं। बारूक की पुस्तक के अंतिम अध्याय को यिर्मयाह का पत्र भी कहते हैं।

सप्तति अनुवाद, वुल्गाता और अंग्रेजी एवं भारतीय भाषाओं की बाइबलों के अंतर्गत पुस्तकों के क्रम में जो बड़े और छोटे नबी हैं उन्हें इब्रानी बाइबल के अंतर्गत पूर्ववर्ती और परवर्ती नबियों के साथ नहीं मिलाना चाहिये और दोनों विभाजनों को एक नहीं समझना चाहिये। जिन पुस्तकों को हमने ऐतिहासिक पुस्तकें कहा है, अर्थात यहोशू, न्यायियों, शमूएल की दोनों पुस्तकें, राजाओं की दोनों पुस्तकें, वे पुस्तकें पूर्ववर्ती नबियों के अंतर्गत सम्मिलित हैं, और परवर्ती नबियों के अंतर्गत दानिय्येल और विलाप गीत को छोड़ कर बड़े और छोटे नबियों की समस्त पुस्तकें सम्मिलित हैं। इब्रानी बाइबल में दानि-य्येल और विलापगीत कतूवीम या लेखों में सम्मिलित की गई है। इब्रानी वर्गीकरण में विभिन्न लेखकों के नबूवतात्मक दृष्टिकोण का ध्यान रखा गया है, जबकि सप्तति और अंग्रेजी वर्गीकरण में उनके आकार पर ध्यान रखा गया है।

यिर्मयाह नबी की पुस्तक में हमें उस प्रक्रिया के दर्शन होते हैं जिसके द्वारा नबूवतात्मक पुस्तकों की रचना हुई और वे वर्तमान रूप में आईं। यिर्मयाह

को उन परिस्थितियों के संबंध में, जिनका सामना उसे करना पड़ा, परमेश्वर से प्रेरणा मिली (उदा० १४:१; १६:१)। उसे जो संदेश मिला वह 'प्रभु की ओर' से था या 'भारी वचन' था (यि. २३:३३; दे. यश. २३:१)। बचन के संबंध में यह माना जाता था कि वह नबी की अपनी अंतर्दृष्टि या विचार-शक्ति से बाहर के स्रोत से आता है, और उसमें आवश्यकता तथा त्वरिलता की इतनी तीव्र भावना होती थी कि वास्तव मे वह 'भारी वचन' (बोझ) होता था। 'बोझ' के लिये भी अनुवाद में 'वचन' शब्द का उपयोग किया गया है, क्योंकि यह संदेश ईश्वरीय प्रेरणा से अधिकृत होता था।

नबूवत की पुस्तकों में मूल इकाई यही 'वचन' है। प्रधानतया वह बोला जाता था। आवश्यकता पड़ने पर वह बाद में लिखा जा सकता था, या कभी न भी लिखा जाए। यिर्मयाह ने अपने वचन कदाचित इसलिए लेखबद्ध किये कि यदि उसकी पीढ़ी उसके बचनों को न माने तो शायद आने वाली पीढ़ी माने। यदि मनुष्य परमेश्वर की चेतावनी पर ध्यान न दे तो यह बड़ी गंभीर बात थी। इसलिये यिर्मयाह ने बारूक को अपने बचन लिखाए (३६:१८)। बिना किसी दयामया के राजा ने उन लेखों को नष्ट किया, तो यिर्मयाह ने फिर से बारूक को वे वचन लिखाए और उनमें कुछ वचन और जोड़े (३६:३२)। ये वचन इतने स्पष्ट थे कि यिर्मयाह को उन्हें स्मरण करके फिर से लिखाने में कोई कठिनाई नहीं हुई।

यिर्मयाह के बचनों को स्थाई रूप देने तथा अपने स्वामी के विषय कुछ विवरणों को आलेखित करने का कार्य बारूक ने किया। वचनों का संकलन और संपादन या तो यिर्मयाह के होते हुये ही, या उसकी मृत्यु के पश्चात या दोनों समयों में हुआ होगा। यद्यपि कि अन्य नबियों के शिष्यों का उल्लेख नहीं है, तो भी ऐसी ही स्थिति उनके वचनों के संबंध में भी रही होगी (उदा. यश. ८:१६)।

इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि नबूवत की पुस्तकों में मूलरूप से ईश्वरीय वचनों का संकलन है, परंतु इसके साथ ही उनके शिष्यों अथवा प्रशंसकों द्वारा नबियों से संबंधी कथाएँ हैं, और अंत में इस प्रकार का संपादन भी है जिससे वे उन्हें वर्तमान रूप मिल सका है। नबी के लिये तो ईश्वरीय वचनों को ईश्वरीय सामर्थ का अधिकार प्राप्त था, परंतु उनके शिष्यों को नबी के कथनों और कामों में भी परमेश्वर का हाथ (सामर्थ) दिखाई देता होगा। इस प्रकार उनके लिये संपूर्ण विवरण निश्चित रूप से परमेश्वर का वचन हुआ होगा।

निर्वासन के पश्चात इस्राएल की नबूवत परंपरा एक भिन्न अभिव्यक्ति की ओर मुड़ गई। उसे प्रकाशनात्मक परंपरा कहते हैं। पुराने नियम में दानिय्येल की पुस्तक इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है, परंतु जर्कयाह और यशायाह के के कुछ अंशों में हमें इस मोड़ या संक्रमण के दर्शन होते हैं। प्रकाशन साहित्य में लेखक अपने को ऐसा मानता है जो परमेश्वर का प्राचीन भक्त है और घटना-चक्र से मानो अपने को अलग रखते हुये वर्तमान दुष्ट संसार को देखता है कि वह संसार परमेश्वर के न्याय के चरम सीमा की ओर तीव्र गति से बढ़ रहा है। इसलिये समय के चिन्हों का उद्घाटन किया जाता है, और बूझने वालों के लिए दर्शनों या सपनों में परमेश्वर के अभिप्राय के रहस्य को प्रकाशित किया जाता है। कभी कभी इनका स्पष्टीकरण स्वर्गदूतों द्वारा किया जाता है और कभी गुप्त अर्थ के प्रतीकों द्वारा। इस प्रकार प्रकाशनात्मक संदेश से वर्तमान दु:ख और सताव सहने के लिये विश्वासियों को इस दृढ़ निश्चय द्वारा सामर्थ मिलती है कि प्रभु शीघ्र ही अपना उद्धार प्रकट करेगा और अपना अनंत राज्य स्थापित करेगा।

बत्तीसवां अध्याय

यशायाह

१. शीर्षक

इस पुस्तक का नाम आमोस के पुत्र यशायाह के नाम पर है। उसी के वचन और कार्यों का इसमें आलेख हुआ है। इस पुस्तक का इब्रानी रूप यशायाहू है। सेपत्वागिता में एसईआस और वुल्गाता में एसईयास है। अंग्रेजी वुल्गाता का अनुसरण करती है, अंतर केवल यह है कि अंग्रेजी में अंत कुछ इब्रानी जैसा किया गया है। इब्रानी के नाम का अर्थ 'याहवे का उद्धार, अथवा 'याहवे ही उद्धार है'। व्यक्तिवाचक संज्ञा के अंत में 'याहू' के आधार पर यह कल्पना की जाती है कि परमेश्वर का मूल नाम जो मूसा पर प्रकाशित किया गया यही होगा। वह किसी भयनीय रहस्य की ऐसी ध्वनि होगी जो कदाचित मानव की समझ से परे हो। इसीलिये उसका स्पष्टीकरण 'मैं जो हूँ सो हूँ' दिया गया है (नि. ३ : १४)। हिन्दी में इब्रानी रूप का अनुसरण किया गया है।

२. विषय सामग्री का सारांश

यशायाह की पुस्तक में नबूवत के वचनों का संकलन है जिसमें बीच-बीच में ऐतिहासिक घटनाओं का समावेश है। सामान्यतया ये दिव्य-वचन उस युग की तीन परिस्थितियों के लोगों को संबोधित किए गए हैं। पहले वे, ई० पू० आठवीं सदी में आमोस के पुत्र यशायाह के समकालीन लोगों को संबोधित किए गए। दूसरे वे, जो ई० पू० ६ वीं सदी में बाबुल में निर्वासित लोगों से कहे गए। तीसरे वे, जो निर्वासन के पश्चात पलिश्तीन में रहने वालों के लिये कहे गए। कई वचनों में इस्राएल और यहूदा पर उनके धार्मिक विश्वासघात के कारण परमेश्वर के दंड की अभिव्यक्ति हुई है। अन्य वचनों में विभिन्न जातियों की धृष्टता और पापाचार के विरुद्ध परमेश्वर के दंड की अभिव्यक्ति है। और अन्य वचनों में अपने लोगों के उद्धार के लिये तथा संसार के धर्म-केन्द्र एवं सार्वलौकिक आशिष के स्रोत के रूप में सैहून की महिमा के लिये परमेश्वर की अनुग्रहपूर्ण कृपा की घोषणा की गई है।

३. रूपरेखा

यशायाह–सिय्योन का उद्धार

(१) यशायाह प्रथम–चेतावनी की पुस्तक (१–३७; ई० पू० ८वीं सदी की परिस्थिति के लोगों को संबोधित)

(क) यशायाह की बुलाहट और प्रारंभिक वचन (१–१२)

(i) दिव्य वचन : नबी यहूदा की कृतघ्नता की भर्त्सना करता है और यह बतलाता है कि यहोवा केवल सद्जीवन से ही प्रसन्न होता है (१:१–२३)। दंड देने के पश्चात यहोवा सिय्योन को पुनः बसाएगा (१:२४–३१) और उसे परमेश्वर के वचन का केन्द्र बनाएगा (२:१–५)। उस दिन यहोवा ही ऊँचे पर विराजमान होगा (२:६–४:१), क्योंकि वह घमंडियों को नीचा करेगा। न्याय-निर्णय के पश्चात सिय्योन के लिये महिमामय भविष्य होगा (४ : २–६)। दाख–उद्यान के दृष्टांत में नबी लोगों के पाप की निंदा करता है (४ : १–७)। वह उन पर सात बार हाय मारता है और दंड की भविष्यवाणी करता है (५ : ८–३०)।

(ii) नबी की बुलाहट : उच्च स्वर से पुकारने वाले सारापों के बीच यहोवा महाराजाधिराज के दर्शन का वर्णन नबी करता है। तब अपनी बुलाहट और समादेशों का वर्णन करता है (६)।

(iii) दिव्य वचन और कार्य : आरामी एप्रैमी युद्ध के समय आहाज की नीति के विरुद्ध यशायाह अपने पुत्र शार्याशूब सहित आता है (एक शेषाँश लौटेगा) और इम्मानुएल के आने की नबूवत करता है (७)। नबी अपने दूसरे पुत्र का नाम महेर्शालाल्हशबज रखता है (अर्थात लूट शीघ्र आती, छिन जाना शीघ्र होता है) जो शोमरोन एवं दमिश्क के शीघ्र विनाश का चिन्ह है (८:१–१५)। वह अपने शिष्यों को कहता है कि वे इस विश्वास में उसकी शिक्षा को बंद कर उस पर छाप लगा दें कि यहोवा उसकी नबूवतों को सच्ची ठहराएगा (८ : १६–२२)।

शांति के राजकुमार के आने की नबूवत (९:१–७)। एप्रैमियों की बुराई करते रहने के प्रति नबी भर्त्सना करता है–यहोवा का क्रोध शांत नहीं हुआ और उसका हाथ अब तक बढ़ा है' (९ : ८–१० : ४)। अश्शूर पर हाय मारता है, जो यहोवा के क्रोध का लठ है, जिससे अश्शूरियों के आक्रमण की ओर संकेत होता है (१० : ५–३४)।

यिशै के ठूंठ की डाली से विश्वशाँति का युग और 'शेषांश' के बचाए जाने का युग आएगा (११) जिसके लिये धन्यवाद के गीत गाए जाएँगे (१२)।

(क) विशेषकर विदेशी जातियों के विरुद्ध दिव्य वचन (१३–२३) : बाबुल के विरुद्ध भारी नबूवत (१३:१–१४ : २३); अश्शूर के विरुद्ध (१४ : २४–२७); पलिश्तीन के विरुद्ध (१४ : २८–३२); मोआब के विरुद्ध (१५–१६); दमिश्क तथा अन्य के विरुद्ध (१७); कूश की नदियों के पार के देश के विरुद्ध (१८); और मिस्र के विरुद्ध, जहाँ यहोवा की भक्ति की जाएगी, उस समय इस्राएल, मिस्र और अश्शूर तीनों मिल कर पृथ्वी के लिये आशिष का कारण होंगे (१९)। आनेवाली बंधुवाई के चिह्न स्वरूप यशायाह अधनंगा और नंगे पाँव घूमता फिरता है (२०)। समुद्र के पास के निर्जन प्रदेश के विषय भारी वचन (२१:१–१०); दूमा (सेप. एदोम) के विषय (२१ : ११–१२); अरब के विषय (२१ : १३–१७); दर्शन की तराई के के विषय (२२); शेबना नाम भंडारी के विषय (२२ : १५–२५); और सोर के विषय भारी वचन (२३)।

(ग) प्रकाशनात्मक दर्शन (२४–२७) : सिय्योन में यहोवा के सिंहासन पर विराजमान होने की प्रतीक्षा में पृथ्वी पर और जातियों पर ईश्वरीय दंड आने पर है (२४); यहोवा सिय्योन पर सब देशों के लोगों के लिए जेवनार करेगा और मृत्यु को सदा के लिए नाश करेगा (२५); उसके लोग उस पर भरोसा करेंगे, उसके सच्चे न्याय के लिए उसकी सराहना करेंगे और मुर्दे उठ खड़े होंगे और जयजयकार करेंगे (२६); तीन अजगरों को यहोवा नष्ट करेगा, तब सुन्दर दाख की बारी का यश गाया जायगा, और यह प्रदर्शित होगा कि परमेश्वर जो दंड देता है वह जाति के भले के लिए ही होता है (२७)।

(घ) कूटनीति संबंधी दिव्यवचन (२८–३१) : एप्रैम और यरूशलेम पर बिनाश आनेवाला है। यरूशलेम ने मृत्यु के साथ वाचा बाँधी है, परन्तु 'यहोवा ने सिय्योन में नेव का पत्थर रखा है' (२८)। अरीएल (यरूशलेम) पर संकट आएगा, परन्तु उसके शत्रुओं के सन्मुख उसको सच्चा ठहराएगा। फिर भी उसमें रहने वाले अंधे हैं, कपटी हैं, अविश्वासी हैं (२९)। मिस्र की शरण में जाने पर हाय (३० : १–५) और दक्षिण देश के पशुओं के विषय भारी वचन (३० : ६–७)। यहूदा की वीरता कूटनीति की संधियों में नहीं परंतु 'शांत रहने और भरोसा रखने' में है (३० : ८–१७)। मिस्र की सहायता व्यर्थ और निकम्मी है, क्योंकि 'मिस्री लोग ईश्वर नहीं, मनुष्य हैं, और उनके घोड़े आत्मा नहीं, मांस ही हैं'—सेनाओं का यहोवा यरूशलेम की रक्षा करेगा (३१)।

(च) मसीह के युग संबंधी दिव्यवचन (३२–३५) : एक राजा धर्म से राज्य करेगा, और आत्मा ऊपर से उँडेला जाएगा (३२); नाश करनेवाला और अधर्मी नष्ट किए जाएँगे, यहोवा शोभा सहित राजा होगा, वह न्यायी और सिय्योन में राजा होगा (३३)।

(छ) एक प्रकाशनात्मक दिव्यवचन (३४–३५) : यहोवा जातियों का न्याय करेगा, आकाश कागज़ के सदृश लपेटा जाएगा, और एदोम को दण्ड दिया जाएगा (३४)। इस्राएल में जंगल और निर्जल देश प्रफुल्लित होंगे, और यहोवा के उद्धार किए हुए लौटकर जयजयकार करते हुए सिय्योन में आएँगे (३५)।

(ज) सन्हेरीब और हिजकिय्याह (३६–३९) (२ रा० १८–२० में सामग्री है) : रबशाके हिजकिय्याह राजा की खिल्ली उड़ाता है कि वह अश्शूर के सम्राट का विरोध करता है; रबशाके हिजकिय्याह को पत्र भेजता है कि वह अश्शूर के अधीन हो जाए; हिजकिय्याह उस पत्र को यहोवा के समक्ष रखता है; यशायाह यहोवा की ओर से स्वतन्त्रता का संदेश देता है; अश्शूरियों पर विपत्ति और उनका भागना (३६–३७)। हिजकिय्याह का रोगी होना; चंगे होने पर उसका गीत (३८)। हिजकिय्याह बाबुल के राजा मरोदक-बलदान के दूतों को अपने अनमोल पदार्थों का भंडार दिखाता है; यशायाह हिजकिय्याह राजा की भर्त्सना करता है (३९)।

(२) द्वितीय यशायाह, शांति की पुस्तक (४०–५५); छठवीं सदी ई० पू०, जो बाबुल में निर्वासितों को संबोधित है।

(क) शुभ समाचार (४०) : यरूशलेम की कठिन सेवा और दंड पूरा हुआ। शुभसंदेश देनेवाली वाणी एक नए निर्गम और परमेश्वर की महिमा की घोषणा करती है। वह सामर्थ्य सहित चरवाहे के समान अपने झुंड के पालन के लिए आता है। परमेश्वर अनुपमेय है, वह इस्राएल का पवित्र है। वह शक्तिहीन को बहुत सामर्थ देता है।

(ख) अनुपमेय उद्धारकर्ता (४१–५४)

(i) समस्त विरोधियों को परमेश्वर उसके वश में कर देता है (४१ : १ –४२ : १२) : किसने विश्व-विजयी को उठाया है और उसके आने का समाचार पहले से ही दिया है ? प्रभु ने ही यह किया है। यदि ऐसा हो तो सब जातियाँ यहोवा के लिए एक नया गीत गाएँ (दास काव्य, ४२ : १–४, ६, ७ : यहोवा अपने दास को अपना आत्मा देगा कि वह अन्य जातियों के लिए न्याय प्रकट करेगा; यह दास परमेश्वर का चुना हुआ है। वह नम्रता और सहानुभूति से, सच्चाई और निष्ठा से पृथ्वी पर न्याय की स्थापना करेगा। वह अपनी प्रजा के लिए व्यवस्थान और अन्य जातियों के लिए प्रकाश होगा।

(ii) अपने लोगों का उद्धार करने के लिए यहोवा की तीव्र भावना (४२ : १३–४ : २३) : इस्राएल की जड़ता के कारण परमेश्वर के उत्साह में बाधा

उत्पन्न होती है (४२ : १३–२५), परंतु निर्वासन से पुनः लौटाने की उसकी पुकार निश्चित है। जो अद्भुत कार्य वह करने पर है, इस्राएल उसके योग्य नहीं है, परंतु वह अपने नाम के निमित्त ही वह कार्य करेगा। इसलिये याकूब न डरे, परंतु भरोसा रखे—आकाश और समस्त सृष्टि परमेश्वर का यशोगान करे (४३ : १–४४ : २३)।

(iii) यहोवा ने अपना कार्य करना आरंभ कर दिया है (४४ : २–४६ : १३)—उसने कुस्रू राजा को इसलिए उठाया है कि वह दण्ड और मुक्ति का माध्यम बने (४४ : २४–४५ : ८)। इस्राएल इस पर शंका न करे कि एक अन्यजाति के व्यक्ति को माध्यम बनाया गया है, क्योंकि परमेश्वर मूर्तियों के समान नहीं है जो यह नहीं समझतीं कि क्या हो रहा है। परमेश्वर जो कुछ करता है उसे जानता है; सारी पृथ्वी के देशों के लोग उसकी ओर फिरें और उद्धार पाएँ (४५ : ९–२५)। बाबुल की मूरतों और यहोवा की भिन्नता ! बाबुल नाश होने पर है। इसलिये याकूब अविश्वासी न हो। यहोवा ने अपनी प्रजा को शांति दी है और अपने दीन लोगों पर दया की है (४६ : १–४९ : १३)।

(दास काव्य ४९:१–६) : दास को यहोवा ने बुलाया। परंतु दास यह अनुभव करता है कि उसने व्यर्थ ही परिश्रम किया; फिर भी परमेश्वर ने उसे एक और अधिक महान कार्य सौंपा, अर्थात कि वह अन्य जातियों के लिए एक ज्योति ठहरे कि परमेश्वर का उद्धार पृथ्वी की एक ओर से दूसरी ओर तक फैल जाए)।

(iv) सिय्योन की पुनर्स्थापना अवश्य होगी (४९ : १४–५४ : १७) यहोवा ने सिय्योन का परित्याग नहीं किया, क्योंकि सिय्योन का चित्र उसके हाथ पर खुदा हुआ है। सिय्योन निराश न हो, क्योंकि अब उसकी संतान इकठ्ठे होकर लौट रहे हैं– उसे दण्ड दिया गया परन्तु उसे त्यागा नहीं गया (४९ : ४–५० : ३)।

(दास काव्य, ५० : ४–९ : दास अपमानित होता और दुःख सहता है, फिर भी परमेश्वर की आज्ञा का पालन करने में वह दृढ़ और विश्वस्त रहता है।) निर्वासितों से आग्रह किया जाता है कि वे अपने मूलपुरुष अब्राहाम और अपनी माता सारा पर ध्यान करें, जिनसे परमेश्वर ने एक बड़ी जाति बनाई। वे स्मरण करें कि परमेश्वर ने उन्हें मिस्रनिवासियों से छुड़ाया और समुद्र में उनके लिए मार्ग निकाला। आज भी वही उनका पुनरुद्धार कर रहा है (५० : १०–५१ : २३)। इसलिये सिय्योन अपने शोभायमान वस्त्र पहिन ले और परमेश्वर के उद्धार का स्वागत करे, और यरूशलेम के सारे खंडहर जय-जयकार करें (५२ : १–१२) :

(दास काव्य, ५२ : १३–५३ : १२) : कौन परमेश्वर के उद्धार की रीति पर विश्वास कर सकता है ! उसने अपने धर्मी दास को अपमानित होने दिया, अपराधियों के पापों के लिए उसका प्राण दोषबलि बनाया गया—हमारे ही अपराधों के कारण वह घायल किया गया !)

सिय्योन जयजयकर करे, क्योंकि वह पुनः निर्माता, अपने निर्माता परमेश्वर की सुहागिन होगी (५४)।

(ग) उद्धार का सेंतमेंत वरदान (५५) : अनन्त वाचा के रूप में परमेश्वर के सेंतमेंत उद्धार का वरदान लोग ग्रहण करें। उन्हें इस बात का निश्चय रहे कि पुनर्स्थापना सम्बन्धी परमेश्वर का वचन अवश्य पूर्ण होगा।

(३) तृतीय यशायाह, सिय्योन-महिमा की पुस्तक (५६–६६); जो अधिकांशतः निर्वासन के पश्चात् पुनर्स्थापित समाज को सम्बोधित है)

(क) उद्धार के सम्बन्ध में कठिनाइयाँ और बाधाएं (५६–५९) इस्राएल को जो अधिकार दिए गये हैं उनमें परदेशी और खोजे भी सम्मिलित किए जाएँगे (५६:१–८); अन्याय और झूठे देवताओं की उपासना की निन्दा (५६ : ९–५७ : २१)। हृदय से नैतिक आचरण करना ही सच्चा उपवास और विश्रामदिन पालन है (५८); लोगों के पापों के कारण परमेश्वर के उद्धार में बाधायें आती हैं (५९)।

(ख) सिय्योन की भावी महिमा का चित्रण (६०–६३:६) : महिमान्वित सिय्योन, जो परमेश्वर के चिरंतन प्रकाश से, उद्धार की शहरपनाह से और जयजयकार के द्वारों से तेजोमय होगा, वह संसार का धर्म-केन्द्र होगा (६०); उन सब को जो शोक करते हैं, शांति प्राप्त होगी, और धार्मिकता एवं धन्यवाद की फल-ऋतु होगी (६१)। जब तक यरूशलेम सारी पृथ्वी पर उसकी धार्मिकता के प्रकाश के सदृश न हो जाए और उसका उद्धार जलते हुए पलीते के समान दिखाई न दे तब तक प्रार्थना चलती रहे (६२)। एदोम देश और अन्य जातियों को दंड देकर परमेश्वर निकल चुका है (६३ : १–६)।

(ग) परमेश्वर से सहायता की दुहाई (६३ : ७–६४ : १२) : इस्राएली लोग परमेश्वर की दया का स्मरण करते हैं और पिता और उद्धारकर्ता मानकर उससे विनती करते हैं (६३ : ७–१९)। वे उसे पिता कहकर पुकारते हैं और अपने पापों का अंगीकार करते हैं (६४)।

(घ) अंतिम न्याय और सिय्योन का उद्धार (६५–६६) : परमेश्वर विश्वासघातियों को दंड देगा और विश्वासियों को पुरस्कृत करेगा (६५ : १–

१६) । वह शांति के मसीहसम्मत युग की स्थापना कर नये आकाश और नयी पृथ्वी को उत्पन्न करेगा (६५ : १७–२५) । परमेश्वर भवन नहीं, वरन दीन और खेदित मन चाहता है (६६ : १–४) । वह यरूशलेम को शांति प्रदान करेगा, दुष्टों को दंड देगा, और सिय्योन सारे संसार का धर्म-केन्द्र बन जाएगा (६६ : ५–२४) ।

४—रचना, रचयिता, रचना तिथि

यशायाह की पुस्तक की विषय सामग्री के अध्ययन से यह स्पष्ट ज्ञात होगा कि पुस्तक की रचना बड़ी जटिल है । इसकी सामग्री का क्रम तैथिक नहीं है । यिर्मयाह और यहेजकेल की पुस्तकों में उनकी बुलाहट पुस्तक के पहले अध्याय में वर्णित है । यशायाह की पुस्तक में भी यह अपेक्षा की जा सकती है कि बुलाहट पहले अध्याय में होगी । परंतु वह छठवें अध्याय में है । विदेशी जातियों के विरुद्ध नबूवतों से ऐसा लगता है कि पुस्तक के कुछ भागों में विषयानुसार क्रम संगठन किया गया है । परन्तु पुस्तक की सर्वाधिक विचित्र विशेषता यह है कि उसमें प्रस्तुत नबूवतों के लिए विभिन्न ऐतिहासिक परिस्थितियों की प्राक्कल्पना की गई है । जो रूपरेखा ऊपर दी गई है उसमें इनका संकेत किया जा चुका है । उनके आधार पर पुस्तक के तीन बड़े उपविभाग किये गये हैं —प्रथम यशायाह, द्वितीय यशायाह और तृतीय यशायाह । प्रथम भाग आमोस के पुत्र यशायाह के युग को संबोधित किया गया है, जो उज्जियाह या अजरायाह (७८३–७८२ ई० पू०), योताम (ई० पू० ७४२–७३५), आहाज (ई० पू० ७३५–७१५), और हिजकिय्याह का समकालीन था ।

द्वितीय भाग में कुछ ऐसी परिस्थिति का अनुमान है, जिसमें उन लोगों को संबोधित किया गया है जो विभिन्न जातियों में बिखरे हुए लोगों में स्वतंत्र किए जाने वाले हैं (४३ : १–७) । इस स्वातंत्र्य का माध्यम कुस्रू है (४४ : २८; ४५ : १) । बाबुल के देवता, बेल और नबो को झुकाया गया है (४६:१) और निर्वासितों को बाबुल में से निकल जाने और कसदियों के बीच से भाग जाने को कहा जाता है (४८:२०) । इतिहास से पता चलता है कि कुस्रू (ई. पू. ५३९–५३०) ने बाबुल पर ई० पू० ५३९ में विजय प्राप्त की । अतः जिन निर्वासितों को इस भाग में संबोधन किया गया है, वे उसके समकालीन होंगे । इसका अर्थ यह हुआ कि यशायाह के पुत्र आमोस के लगभग दो सौ वर्ष पश्चात रहे होंगे ।

द्वितीय यशायाह की एक प्रमुख विशेषता यह है कि उसमें 'दास काव्य' हैं । इनमें जो विषय सामग्री है वह एकसी है, अर्थात यहोवा का चुना हुआ

दास तुच्छ जाना जाता है और दु:ख उठाता है। पुस्तक के इस भाग के शेष अंशों के साथ 'दास काव्य' कुछ संगत प्रतीत नहीं होता। सामान्यतया यह माना जाता है कि ये कविताएँ 'दास-काव्य' के अंतर्गत आती हैं (४२ : १–४, ६,७; ४९ : १–६; ५० : ४–९; और ५२ : १३–५३ : १२)। कुछ लोगों का विचार है कि इस प्रकार की साहित्यिक सामग्री इससे कहीं अधिक होनी चाहिये।

पुस्तक का तीसरा भाग, तृतीय यशायाह, और भी अधिक जटिल है। ५६ : १–८ से यह अनुमान किया जाता है कि भवन निर्मित हो गया और कि उपासना में बलि-विधियों की स्थापना हो चुकी है। विश्रामवार को मनाने की प्रधानता और परदेशियों के प्रवेश के विचारों से निर्वासनोत्तर परिस्थिति का संकेत मिलता है। इसके विपरीत ५६ : ९–५७ : १३ अंश का यदि पृथक रूप से विचार किया जाए तो वह निर्वासनोत्तर स्थिति के अनुकूल नहीं, वरन निर्वासनपूर्व स्थिति के अनुरूप जान पड़ता है और राजा की ओर संकेत करता है (५७ : ९)। इस अंश से पलिश्तीन के पहाड़ी प्रदेश का नहीं, वरन बाबुल के मैदानों की व्यंजना होती है (५७ : ५)। फिर ५८ वें अध्याय से उपवास और विश्रामवार पालन का संकेत मिलता है, जैसा जकर्याह नबी के काल में प्रचलित रहा होगा (दे० जक० ७ : १–७; ८:१९)। जकर्याह की नबूवत का काल ई० पू० ५२० है, जो निर्वासन से लौटने के उपरांत है। ६०, ६१ और ६२ अध्यायों की सामग्री द्वितीय यशायाह के अनुरूप है। उनसे यह संकेत मिलता है कि निर्वासित लोग अभी तक पलिश्तीन नहीं लौटे, परंतु लौटने की तैयारी में हैं। दूसरे शब्दों में यों कहें कि इन अध्यायों में मसीहसम्मत युग के अंतर्गत सिय्योन के तेजोमय होने का रूपकात्मक उल्लेख किया गया है। इसके विपरीत ६६ : १–२ से यह व्यंजित होता है कि लौटे हुए निर्वासितों ने भवन बनाना आरम्भ कर दिया है, जो ई० पू० ५२० में हुआ। तृतीय यशायाह के अनेक अंशों में इस प्रकार के वैषम्य से यह अनुमान किया जाता है कि पुस्तक का यह भाग एक संकलन है जिसमें निर्वासनोत्तर नबूवतों के साथ निर्वासन-पूर्व तथा निर्वासनकालीन नबूवतें सम्मिलित हैं।

कुछ विद्वानों का यह विचार है कि आमोस के पुत्र यशायाह को इस पुस्तक का लेखक मानना आवश्यक है, क्योंकि नये नियम में यश. २ और ३ अध्याय से उद्धरण दिए गए हैं और यह संकेत किया गया है कि यशायाह नबी ने यह लिखा है (दे० मत्त० ३ : ३; ४ : १४; रो० १० : १६, २०)। इस संदर्भ में हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि 'यशायाह नबी' और 'यशायाह नबी की पुस्तक' (लू० ४ : १७) व्यावहारिक दृष्टि से पर्याय माने जाते हैं, और आधुनिक अर्थ में जैसे हम रचयिता सम्बन्धी प्रश्नों का विवेचन करते हैं,

उस अर्थ में नया नियम के लेखकों के मन में रचयिता संबंधी प्रश्न उपस्थित नहीं थे। उस युग में इतना निश्चय पर्याप्त था कि अमुक धर्मवचन प्रभु की ओर से है। हमारे युग में भी वेब्सटर के अंग्रेजी शब्द कोष से किसी शब्द के विषय प्रमाण देते हुए यही कह देते हैं 'वेब्सटर कहता है', यद्यपि हम जानते हैं कि वर्तमान वेब्सटर शब्द कोष में बहुत सी सामग्री ऐसी है जो लगभग एकसौ वर्ष पूर्व मूल लेखक नोहा वेब्सटर की कल्पना में भी न थी।

हम यह कह सकते हैं कि आमोस का पुत्र यशायाह उन घटनाओं के संबंध में नबूवत कर सकता था जो उसके युग के दो सौ वर्ष पश्चात् होने वाली हों। यदि इस संभावना को मान भी लें, तब भी यह सच है कि इस्राएल के नबी उस समय भी जब वे भविष्य की बात करते थे, तब भी वे अपनी समकालीन परिस्थितियों को ही संबोधित करते थे। द्वितीय यशायाह में नबी अपने समकालीन निर्वासितों को संबोधित करता है, जो बाबुल में थे (४५ : १३; ४६ : १, ३; ४४ : २८)। अत: यह सामान्यतया स्वीकार किया जाता है कि कई नबूवतें, जो स्वयं यशायाह ने नहीं लिखीं, उसकी नबूवतों के साथ संबद्ध हो गई हैं। हमें यह ज्ञात होता है कि यशायाह के कुछ चेले थे (८:१६)। संभव है कि यह पुस्तक यशायाह-समूह की साहित्यिक निधि है, जो यशायाह को अपने समूह का संस्थापक मानता था। परंतु साथ ही वह समूह यशायाह परंपरा के अंतर्गत अन्य नबूवतों को भी मान्यता देता था।

आमोस के पुत्र यशायाह की नबूवत के प्रारम्भ की तिथि ६ : १ में उसकी बुलाहट के वर्णन में प्रस्तुत तैथिक टिप्पणी के आधार पर निर्धारित की जाती है। उसमें लिखा है 'जिस वर्ष उज्जिय्याह राजा मरा'। यह घटना ई. पू. ७४२ में हुई। यशायाह के जीवन की अंतिम घटनाएँ सन्हेरीब के आक्रमण से संबंधित हैं (३६ और ३७ अध्याय)। यह घटना ई. पू. ७०१ में हुई। अत: प्रथम यशायाह (१–३९) के अधिकांश भाग की तिथि ई० पू० ७४२ से ७०१ के बीच या उसके तुरंत उपरांत ही मानी जा सकती है।

द्वितीय यशायाह (४०–५५) कुस्रू द्वितीय, कुस्रू महान के उल्लेख के आधार पर निर्धारित की जाती है। इस राजा ने अनेक लड़ाइयों में विजय प्राप्त कर फारसी साम्राज्य की स्थापना की। इन विजयों की पराकाष्ठा बाबुल की विजय में हुई, जो ई. पू. ५३९ में की गई। नबूवतों में यह बताया गया है कि कुस्रू बाबुल की शक्ति को नष्ट करने में यहोवा के अभिप्राय को पूर्ण करने वाला है। अत: पुस्तक के इस भाग की तिथि ई. पू. ५३९ के कुछ पहले, अर्थात लगभग ई. पू. ५४० में मानी जाती है।

तृतीय यशायाह (५६-६६) की तिथि में इस भाग की जटिलता के

कारण कुछ कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं। साधारणतया उसकी तिथि निर्वासनोत्तर काल में या उसके बाद मानी जाती है। निर्वासन से लौटना ई. पू. ५३६ में हुआ। अतः इसकी तिथि ई. पू. ५३६-५०० के बीच में मानी जाती है। इस संदर्भ में हमें यह स्मरण रखना है कि इस भाग में निर्वासन-पूर्व और निर्वासनकालीन सामग्री भी सम्मिलित है।

५. यशायाह की पुस्तक की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

ई० पू० ७४५—अश्शूरी सम्राट तिग्लतपिलेसेर तृतीय (ई० पू० ७४५–७२७) ने असक्षमता दूर की और अश्शूरी साम्राज्य में स्वर्णयुग आया। ई० पू० ७३८ में उसने इस्राएल के राजा मनहेम से प्रचुर उपहार प्राप्त किया (२ रा. १५ : १९)।

ई० पू० ७४२—यहूदा के राजा उज्जियाह (अजर्याह) की मृत्यु हुई। उस वर्ष में यशायाह को बुलाहट मिली। अश्शूर के विरुद्ध युद्ध में मिस्र देश ने छोटे-छोटे देशों को दाँव पर लगाया। अश्शूरी जूए के नीचे बाबुल में क्रांति की भावना थी।

ई० पू० ७३४—आराम–ऐप्रैम युद्ध: अराम के राजा रसीन और इस्राएल के राजा पेकह ने यहूदा के राजा आहाज के विरुद्ध इस मंतव्य से चढ़ाई की कि 'तबील के पुत्र' को यहूदा का राजा बनाएँ। इस विपत्ति में आहाज ने अश्शूर से सहायता माँगी। यशायाह ने इस समय आहाज के सामने 'इम्मानुएल' संबंधी नबूवत प्रस्तुत की (७ : १–२५)। इस समय यरूशलेम पर घेरा डाला गया (२ रा. १६ : ५)।

ई० पू० ७२२–२१—शोमरोन के आसपास तीन वर्ष तक घेरा। उसके पश्चात शल्मनेसेर पंचम (ई० पू० ७२७–७२२) और सारगोन द्वितीय (ई० पू० ७२२–७०५) के काल में शोमरोन अश्शूरियों के अधीन हो गया।

ई० पू० ७०१—अश्शूर के राजा सन्हेरीब (ई० पू० ७०५–६८१) ने यहूदा पर चढ़ाई की। यरूशलेम घेर लिया गया परंतु यशायाह की नबूवत के अनुसार (३७ : ३६) अश्शूरी सेना के रहस्यमय विनाश के कारण यरूशलेम मुक्त हुआ।

ई० पू० ६१२—नबोपोलेस्सर (ई० पू० ६२५–६०५) ने नीनवे पर विजय प्राप्त की और नव-बाबुली साम्राज्य की स्थापना की। परंतु अश्शूरी राजा ई० पू० ६०९ तक लड़ते रहे।

ई० पू० ५९८—नबूकदनस्सर (नबूकद्रेस्सर) (ई० पू० ६०५–५६२) ने

यरूशलेम को जीत लिया और बहुत लोगों की बंधुवाई में ले गया। इस प्रकार यहूदियों की बाबुल में बंधुवाई आरंभ हुई।

ई० पू० ५८७---नबूकदनेस्सर ने यरूशलेम का विनाश किया।

ई० पू० ५३६---कुस्रू ने (ई० पू० ५३६-५३०) बाबुल को जीता और फारसी राज्य की स्थापना की।

ई० पू० ५३७---यहूदियों का बंधुवाई से लौटना।

ई० पू० ५२०-५१६---यरूशलेम के भवन का पुनर्निर्माण।

६. 'इम्मानुएल' नबूवत की समस्या

'सुनो, एक कुमारी गर्भवती होगी और पुत्र जनेगी और उसका नाम इम्मानुएल रखेगी' (यश ७: १४)। मत्ती रचित सुसमाचार में इस पद का ख्रिस्त के कुँवारी से जन्म लेने के संबंध में उद्धरण किया गया है (मत्त १: २३)। परंतु क्या 'कुँवारी से जन्म' की बात यशायाह के मन में थी, और क्या वह आने वाले मसीह के संबंध में नबूवत कर रहा था? तत्कालीन ऐतिहासिक संदर्भ में इस प्रकार की कल्पना संभव प्रतीत नहीं होती। ऐतिहासिक स्थिति की व्याख्या स्वयं भी एक समस्या है।

बालक की माता के लिए जिस इब्रानी शब्द का प्रयोग किया गया है वह 'अल्माह' (Almah) है। इस शब्द से तरुणाई प्राप्त युवती का बोध होता है। उससे यह पता नहीं चलता कि उस युवती को समागम का अनुभव है अथवा नहीं। जो इब्रानी शब्द कुँवारी के लिए प्रयुक्त होता है वह 'बेटुलाह' (betulah) है। सप्तति अनुवाद में 'अल्माह' का अनुवाद (यश ७: १४) पारथिनॉस (Parthenos) किया गया है। बाइबल से बाहर की यूनानी भाषा में यह शब्द युवती के लिए काम में आया है और उसमें समागम का अनुभव के होने न होने का कोई संकेत नहीं है। परंतु सेपत्वागिता में यह शब्द बराबर 'कुँवारी' के अर्थ में है, और उसी अर्थ में उसे यहाँ समझना चाहिए। अर्थात् मूल इब्रानी में यशायाह ने चाहे जिस अर्थ में लिया हो, सप्तति अनुवादकों ने यशायाह (७: १४) के युवती शब्द को कुँवारी के अर्थ में स्वीकार किया है। फिर भी, यह स्पष्ट नहीं है कि क्या सप्तति अनुवादकों ने यह विचार किया है कि 'कुँवारी होने की अवस्था' में ही बालक को जन्म दिया गया है। यहाँ पर यूनानी शब्द पारिथनॉस का अर्थ है एक नवयुवती, जो अभी कुँवारी है, जिसका विवाह होने वाला है, और जो साधारण रीति से गर्भवती होगी। जिन शब्दों का प्रयोग किया है, उनमें इससे अधिक अर्थ की आवश्यकता नहीं है।

इम्मानुएल नबूवत का ऐतिहासिक प्रसंग आहाज़ राजा की वह नीति है जो उसने अरामी—एप्रैमी युद्ध के समय अपनाई थी। अराम के राजा रसीन और इस्राएल के राजा पेकह ने आक्रमणकारी अश्शूरियों के विरुद्ध संधि की और इस नीति में वे आहाज को भी बलपूर्वक साथ लेना चाहते थे। अतः उन्होंने आहाज को राज्यासन से उतारने तथा उसके स्थान पर 'तबील के पुत्र' को बैठाने की योजना की (७ : ६)। इस आपत्तिकाल में आहाज ने अश्शूर से सहायता की याचना की। यशायाह ने परामर्श दिया कि यशायाह से सहायता माँगने के बदले आहाज शांत रह कर परमेश्वर पर भरोसा रखे (७ : ४, ९)। आहाज से कहा गया कि वह यशायाह के वचन की पुष्टि स्वरूप परमेश्वर से एक चिन्ह माँग ले। परंतु उसने चिन्ह माँगना अस्वीकार किया। फिर भी उसे एक चिन्ह दिया गया। एक कुँवारी (अथवा वह कुमारी) गर्भवती होगी और पुत्र जनेगी (अथवा, गर्भवती है), और उसका नाम इम्मानुएल होगा (परमेश्वर हमारे संग)। 'वह कुमारी' में यह निहित हो सकता है कि यशायाह किसी ऐसी कुमारी की ओर संकेत कर रहा हो, जिसे आहाज और वह दोनों जानते थे, अथवा वह किसी ऐसी कुमारी की ओर संकेत करे, जो नबी के वचन में तो गुप्त हो, परंतु नबी के मन में निश्चित ज्ञात हो। वह बालक मक्खन और मधु खाएगा। इसमें कदाचित खानाबदोश जाति के आहार की ओर संकेत है। इससे पहले कि वह लड़का बुरे को त्यागना और भले को ग्रहण करना जाने, अश्शूर की सेनाएँ इस्राएल और यहूदा दोनों पर अभूतपूर्व आक्रमण कर देंगी। इस प्रकार इम्मानुएल नबूवत के प्रसंग से यह प्रतीत होता है कि वह इतने समय में पूर्ण हो जाएगी जितने में बालक दूध छोड़ देता था, अर्थात अधिक से अधिक दो वर्ष में। यशायाह आहाज को जो चिन्ह देता है वह 'इम्मानुएल' का चिन्ह है। इससे यह संकेत होता है कि अराम के राजा की धमकी से यहूदा का राजा आहाज न डरे क्योंकि वे अश्शूर द्वारा शीघ्र ही नष्ट किए जाने पर हैं। साथ ही यह संकेत होता है कि आहाज अश्शूर से भी सहायता न माँगे, क्योंकि उसके लिये अश्शूर अराम और इस्राएल से भी बड़ा शत्रु है। हमारी धारणा है कि आहाज और उसके साथियों ने यशायाह को यह ताना दिया होगा कि 'जो कुछ हम करते हैं, उसमें परमेश्वर हमारे साथ है। यद्यपि तुम अपने को नबी कहते हो, तथापि परमेश्वर न तुम्हारे साथ है न तुम्हारे अनुगामियों के साथ'; क्योंकि ८ : ८ में इम्मानुएल (परमेश्वर हमारे साथ) शब्द का प्रयोग यहूदा के संबंध में किया गया है, जिस रूप में यहूदा का राजा उसका शासन करता था। यशायाह उन्हें उत्तर देता है, 'परमेश्वर तुम्हें एक चिन्ह देता है कि परमेश्वर तुम्हारे साथ नहीं, वरन हमारे साथ है (८ : १०)। परमेश्वर उस बालक

के द्वारा नवीन रूप से कार्य आरम्भ करेगा, क्योंकि उसकी माता इस्राएल की सच्ची प्राचीन परंपराओं में (खानाबदोश जीवन-प्रणाली में) उसका पालन पोषण करेगी'। इस प्रकार यहाँ मनुष्य की निकटवर्ती राजनीतिक योजना के, जो केवल मानवी साधनों पर निर्भर रहती है, और एक पुर्ननिर्मित राष्ट्र बनाने की परमेश्वर की योजना के बीच जिसमें एक नई मानवता का प्रारम्भ होगा, विषमता प्रस्तुत की गई है। कदाचित यशायाह के मन में पुर्ननिर्मित राष्ट्र की कल्पना उस विश्वासयोग्य शेषांश (remnant) से संबद्ध है जो वर्तमान राष्ट्र के नष्ट होने पर बचाया जाएगा। माता-पुत्र पद्धति परमेश्वर की वह पद्धति है जो वह अपने अभिप्रायों को पूरा करने में काम में लेता है।

यशायाह का विचार केवल तात्कालिक ऐतिहासिक परिस्थितियों को ही लागू नहीं। वह उनसे आगे पहुँचता है। यशायाह ९ : ६ में अद्भुत बालक वस्तुतः मसीह, के विषय नबूवत है। वह पराक्रमी परमेश्वर होगा, उसका नाम वही होगा जो परमेश्वर का नाम है। यशायाह ने जब माता-पुत्र के उस चिन्ह पर गहनता से विचार किया जो आहाज को दिया गया था, तो परमेश्वर की सहायता से उसने यह देखा कि मसीह सम्मत युग को लाने के लिये भी परमेश्वर की यही पद्धति होगी। अतः यद्यपि माता-बालक अथवा इम्मानुएल का चिन्ह का तात्कालिक राजनीतिक परिस्थिति से संबंध था, तथापि वह समस्त मानव जाति के लिये परमेश्वर के विशाल अभिप्राय का भी चिन्ह था। वह इस बात की आशा या नबूवत थी कि इसी पद्धति से परमेश्वर भविष्य में और महान कार्य करेगा।

एक प्रश्न और उपस्थित होता है। क्या ७ : १४ में ख्रिस्त के कुँवारी से जन्म लेने की नबूवत है? इसका उत्तर देते समय हमें नबूवत के स्वरूप को ध्यान में रखना होगा। नबी अपने दिक् और काल से सीमित है अवश्य, परंतु वह उसकी ओर से बोलता है जिसका अभिप्राय समस्त विश्व और सब कालों से संबंधित है। तो जो कुछ नबी कहता है उसका केवल तात्कालिक परिस्थितियों में ही महत्व नहीं है, परंतु इस बात में भी है कि वह अभिप्राय की दिशा को इंगित करता है और जिस दिशा की ओर वह संकेत करता है वह अभिप्राय की पूर्ति में ही पूर्णतया स्पष्ट होती है। यशायाह ने परमेश्वर की योजना के दर्शन की रूपरेखा मात्र ही प्रस्तुत की। यशायाह ने जो संदेश आहाज को दिया उसमें माता-बालक का चिन्ह सर्वाधिक महत्व की बात नहीं थी, क्योंकि उसमें 'बेतुलाह' शब्द के बजाय 'अलमाह' शब्द का प्रयोग किया गया है। महत्व की बात यह थी कि परमेश्वर की माता-बालक योजना और मानव की योजना में अंतर है। परमेश्वर की योजना की अन्य सूक्ष्म बातें अभी

बताई जाने को हैं। विश्वासी लोगों ने ज्यों-ज्यों इन नबूवतों पर मनन-चिंतन किया, त्यों-त्यों उन्हें अधिकाधिक यह प्रतीत होने लगा कि उस अद्‌भुत बालक, परमेश्वर के मसीह का जन्म अद्‌भुत होना चाहिये। फलतः उस समय तक जब इब्रानी धर्मशास्त्र का यूनानी भाषा में अनुवाद हुआ, बालक की माता 'कुँवारी' मानी जाने लगी और 'पारथिनोस' अर्थात 'कुँवारी' शब्द का प्रयोग किया गया। यह आशा परमेश्वर की ओर से थी, क्योंकि जब यीशु मसीह देहधारी हुआ, तो वास्तव में उसने कुँवारी माता से जन्म लिया। माता-बालक के चिन्ह में परमेश्वर का अभिप्राय उस समय स्पष्ट हुआ जब कुँवारी-बालक की घटना हुई। दोनों ही 'इम्मानुएल' थे। इस प्रकार यशायाह की नबूवत यीशु ख्रिस्त के कुँवारी से जन्म लेने का पूर्वाभास था।

७. धर्म-भावनाएँ और धर्म शिक्षाएँ

सुविधा के लिये इस पुस्तक की धर्म-शिक्षाओं को पुस्तक के तीन भागों के अनुसार प्रस्तुत किया जा रहा है।

प्रथम यशायाह

यशायाह की नबूवत की विषय सामग्री के अंतर्गत उस दर्शन का खिलना है जो नबी की बुलाहट के समय सबल रूप में उसे प्राप्त हुआ (अ. ६.)। मन्दिर में उसने प्रभु को ऊँचे सिंहासन पर वैभव में विराजमान देखा। साराप ('जलते हुए') उसकी सेवा में थे। वे उसकी आज्ञा के पालन के लिये तत्पर थे। वे बड़ी नम्रतापूर्वक पुकार रहे थे 'सेनाओं का यहोवा पवित्र, पवित्र, पवित्र है : सारी पृथ्वी उसके तेज से भरपूर है'। भूडोल और धुएँ से प्रभु का ऐश्वर्य और अधिक प्रभावशाली हुआ। यशायाह पुकार उठा, 'हाय! हाय! मैं नाश हुआ,''''''''क्योंकि मैंने सेनाओं के यहोवा महाराजाधिराज को अपनी आँखों से देखा है'। इसके पश्चात् वेदी पर से अंगारे के द्वारा उसके होठों को शुद्ध किया गया, तब बुलाहट हुई 'मैं किसको भेजूं, और हमारी ओर से कौन जाएगा? और उसका उत्तर दिया गया। 'मैं यहाँ हूँ, मुझे भेज'। तब यशायाह को संदेश दिया गया और बताया गया कि लोग उसकी न सुनेंगे। उसने प्रश्न किया कि कब तक यह संदेश दिया जाए? तब उसे बताया गया, कि यह तब तक दिया जाए जब तक नगर न उजड़े, और उनमें कोई रह न जाय, जब तक लोग बँधुवे न हो जाएँ और केवल थोड़े से ही बच रहें—वह शेषांश अथवा 'पवित्र वंश' जिससे परमेश्वर का अभिप्राय आगे बढ़ेगा।

इस बुलाहट के अनुरूप हम यशायाह की पुस्तक में यह पाते हैं कि उसमें परमेश्वर की पवित्रता और प्रताप पर बल दिया गया है। 'यहोवा इस्राएल का

पवित्र है' (१ : ४ ; ५ : २४)। उसके भय और प्रताप के कारण जातियों का न्याय होता है (२ : १०)। केवल वही सब मनुष्यों और देवताओं से ऊँचे पर विराजमान होगा (२ : ११)। सेनाओं का यहोवा न्याय करने के कारण महान ठहरता, और पवित्र परमेश्वर धर्मी होने के कारण पवित्र ठहरता है (५:१६)।

ऐसा परमेश्वर मनुष्य से भी धर्माचरण और न्याय की माँग करता है। आमोस और होशे के समान यशायाह ने अपने युग के दुराचरण की निंदा की। उसने कहा, 'भलाई करना सीखो, यत्न से न्याय करो, उपद्रवी को सुधारो, अनाथ का न्याय चुकाओ, विधवा का मुकद्दमा लड़ो' (१ : १७)। उसने पश्चात्ताप और परमेश्वर की ओर फिरने का आह्वान किया--'आओ, हम वाद-विवाद करें : तुम्हारे पाप चाहे लाल रंग के हों, तो भी वे हिम की नाईं उजले हो जाएँगे' (१ : १८)। यशायाह की बुलाहट में एक और शिक्षा निहित है जिसका विकास आगे होता है, कि परमेश्वर का अभिप्राय लोगों के 'शेषाँश' द्वारा ही पूरा किया जाएगा। अधिकांश लोग उनके पापों के दंड के कारण नष्ट हो जाएंगे, परन्तु विश्वासी 'अंश' नई इस्राएल का मूल बनेगा (१० : २०—२३)। नई इस्राएल में परमेश्वर का अभिप्राय मसीह के व्यक्तित्व के द्वारा पूर्ण होगा। यह मसीह दाऊद के वंश का होगा। उसे इतनी मात्रा में प्रभु का आत्मा मिलेगा कि वह परमेश्वर की योजना पूर्ण करेगा और विश्वव्यापी धर्म तथा शाँति के युग की स्थापना करेगा (९ : १—७; ११ : १—९; २ : १—४), और उसकी पवित्र इच्छा के वचन का केन्द्र होगा।

यशायाह में इतिहास की दार्शनिक भावना की अभिव्यक्ति है। परमेश्वर विभिन्न राष्ट्रों को दंड देने के लिये अश्शूर को माध्यमरूप प्रयोग करता है, यद्यपि कि स्वयं अश्शूरी जाति परमेश्वर को नहीं मानती और यह मानती है कि उसका आधिपत्य उसकी अपनी शक्ति के कारण है। अश्शूरियों का जब माध्यम के रूप में कार्य पूरा हो जायगा, तब वे स्वयं अपने घमंड के लिये दंडित होंगे (१० : ५—१२, १५, १६)। इससे यह शिक्षा मिलती है कि अधिकार और शक्ति परमेश्वर की ओर से धरोहर के रूप में रहना चाहिये।

यशायाह की पुस्तक में इस बात पर बल दिया गया है कि मनुष्य को परमेश्वर पर विश्वास करना चाहिये। आहाज की इस बात के लिये भर्त्सना की गई कि परमेश्वर पर उसका पूर्ण भरोसा नहीं था (७ : ९)। इस्राएल के पवित्र पर भरोसे की सामर्थ और मिस्र पर भरोसे की निर्बलता के बीच वैषम्य दिखाया गया है (३० : १५)। सन्हेरीब के आक्रमण के समय यशायाह का परमेश्वर पर भरोसा प्रमाणित किया गया है, जब हिजकिय्याह की विनम्र प्रार्थना के उत्तर में यशायाह ने सिय्योन की रक्षा के लिये कहा था, 'मैं अपने

निमित्त और अपने दास दाऊद के निमित्त, इस नगर की रक्षा कर उसे बचाऊँगा' (३७ : २२, ३३-३६) ।

द्वितीय यशायाह

यशायाह की पुस्तक के इस भाग में पुराने नियम में मानो 'सुसमाचार' है, क्योंकि इसमें उसकी प्रजा के उद्धार का सुसमाचार है ।

इसमें इस विचार को प्रधानता दी गई है कि सृष्टिकर्ता तथा शासनकर्ता के रूप में परमेश्वर की महानता अतुलनीय है । जिसे संसार महान मानता है, वह सब कुछ परमेश्वर के सामने नगण्य है, क्योंकि परमेश्वर ने उन सब की रचना की है (४० : १२–१७, २६) । उसके सामने मनुष्य के हाथों की बनाई हुई मूरतें कुछ नहीं हैं । वे बोल नहीं सकतीं, कुछ कर नहीं सकतीं । वे व्यर्थ हैं (४० : १८ क्र.; ४ : ७–१६) । परमेश्वर की तुलना उनके साथ नहीं की जा सकती, क्योंकि केवल वही परमेश्वर है—'मैं सबसे पहिला हूँ, और मैं ही अंत तक रहूँगा; और मुझे छोड़ कोई परमेश्वर ही नहीं' (४४:६; ४३ : १०) ।

इस्राएल के उद्धार के निमित्त परमेश्वर की सामर्थ सक्रिय है । वह इस्राएल का छड़ानेवाला है (४१ : १४) । वह उनके पापों को क्षमा करता है और उनके साथ सदा की नई वाचा बाँधता है, अर्थात दाऊद पर अटल करुणा की वाचा (४० : १, २; ५५ : ३;४३ : २५) । वह इस्राएल से कहता है, 'मत डरो, क्योंकि मैं तेरी सहायता करूँगा' (४१ : १३; ४० : २६) । वह इस तथ्य की ओर उनका ध्यान आकर्षित करता है कि कुस्रू को उठाने के द्वारा वह उनके उद्धार के लिये सक्रिय है (४१ : २५; ४४ : २८) । इस्राएल के लिये परमेश्वर के प्रेम का वर्णन इन सुन्दर शब्दों में किया गया है । 'वह चरवाहे की नाईं अपने झुंड को चराएगा, वह भेड़ों के बच्चों को अंकवार में लिये फिरेगा और दूध पिलानेवालियों को धीरे-धीरे ले चलेगा' (४० : ११) ।

ख्रिस्तीय सुसमाचार की प्रत्याशा की दृष्टि से दास-कविताएँ अत्यंत महत्वपूर्ण हैं (४२ : १–७; ४६ : १–६; ५० : ४–६; ५२ : १३–५३ : १२) । इनमें 'परमेश्वर के दास' का चित्रण है । वह नबी, आदर्श इस्राएल या मसीह, परमेश्वर का चुना हुआ दूत या प्रतिनिधि माना गया है । इस दास को एक सार्वलौकिक कार्य सौंपा गया है कि वह अन्यजातियों के लिये प्रकाश हो । नैराश्य, विफलता, दुःख और उसकी मृत्यु उसके लोगों के पापों के लिये प्रायश्चित होगा । पुराने नियम में स्थानापन्न दुःख एवं मृत्यु के द्वारा यीशु ख्रिस्त की उद्धारात्मक सेवा का जैसा सुन्दर और महत्वपूर्ण चित्रण यहाँ हुआ है वैसा अन्यत्र नहीं ।

तृतीय यशायाह

यशायाह की पुस्तक के इस भाग से हमें यह शिक्षा मिलती है कि विश्राम-वार मनाना, उपवास रखना और सामूहिक आराधना जैसी धार्मिक विधियों को हृदय की भावना से मनाना चाहिये (५८:१३; ५८ : ३–९; ६६:१, २)। यद्यपि परमेश्वर ने इस्राएल को विशेष रूप से चुना है, तथापि उसका अभिप्राय यह है कि समस्त जातियाँ उसे जानें और उसी की आराधना करें–'मेरा भवन सब देशों के लोगों के लिये प्रार्थना का घर कहलाएगा' (५६ : ७)।

परमेश्वर की महान भलाई इस बात में प्रकट होती है कि परमेश्वर ने इस्राएल पर करुणा की है, और विशेषकर इस बात में कि उनका उद्धारकर्त्ता होने के नाते वह उनके अपराधों के कारण घायल किया गया और अधर्म के कामों के हेतु कुचला गया, और परमेश्वर की आत्मा ने उनको विश्राम दिया (६३ : ७–१४)। इसीलिये परमेश्वर उनका पिता और छुड़ाने वाला है (६३ : १६–१७; ६४ : ८)।

परमेश्वर का अभिप्राय सिय्योन के तेजोमय होने में पूर्ण होगा। इस अभि-प्राय का बड़ा स्पष्ट एवं सुन्दर चित्रण किया गया है। सब जातियाँ उसके प्रकाश में चलेंगी। उसकी शहर पनाह का नाम उद्धार और फाटकों का नाम यश होगा (६० : १८)। 'फिर दिन को सूर्य तेरा उजियाला न होगा, न चाँदनी के लिये चंद्रमा, परंतु यहोवा तेरे लिये सदा का उजियाला और तेरा परमेश्वर तेरी शोभा ठहरेगा' (६० : १९)।

तैंतीसवाँ अध्याय
यिर्मयाह

१. शीर्षक

इस पुस्तक का नाम उस नबी की नबूवतों एवं कार्यों के आधार पर रखा गया है जो इसमें आलेखित हैं। इब्रानी नाम यिर्मयाहू है, जिसका अर्थ है 'याहवे फेंकता या ढीला करता है' (कदाचित गर्भ से)। सप्तति अनुवाद में इअरमीआस नाम है और वुल्गाता में भी यही है, जिससे अँग्रेजी नाम येरेमायाह (Jeremiah) निकला है।

इब्रानी बाइबल में यिर्मयाह की पुस्तक उत्तर नबियों में दूसरी पुस्तक है। सप्तति अनुवाद में उसका स्थान बारह छोटे नबियों के पश्चात रखा गया है। अन्य नबियों के मान से जो क्रम इब्रानी बाइबल में है उसे ही वुल्गाता में स्वीकार किया गया है। अँग्रेजी तथा भारतीय भाषाओं में भी यही क्रम अपनाया गया है।

२. विषय सामग्री का सारांश

यिर्मयाह की पुस्तक में यिर्मयाह की नबूवतों और कार्य-कलाप का संकलन है, जो योशिय्याह, यहोयाकीम और सिदकिय्याह राजाओं के शासनकाल में तथा यरूशलेम के घेरे जाने तथा पतन की अवधि में और उसके पश्चात किए गए थे। यिर्मयाह के आत्म-संघर्षों का उन अंशों में वर्णन है जो उसके 'अंगीकारों' के प्रसंग कहलाते हैं। ये अंश एक विशिष्ट प्रकार का धार्मिक साहित्य माने जाते हैं। पुस्तक की सामग्री किसी निश्चित क्रम के अनुसार संगठित नहीं है।

३. रूपरेखा

यिर्मयाह—व्यथा का नबी

(१) यिर्मयाह की बुलाहट (१)

यहोवा का वचन यिर्मयाह को दिया जाता है कि जातियों का नबी होने के लिए यहोवा ने यिर्मयाह को उसके जन्म के पूर्व ही चुना और बुलाया।

यिर्मयाह हिचकता है परन्तु परमेश्वर आग्रह करता है और उसे सामर्थ देने की प्रतिज्ञा करता है। बादाम की टहनी (पहरुए) के दर्शन में उसे यह निश्चय होता है कि परमेश्वर सजग है। उबलते हुए कढ़ाव के दर्शन में यिर्मयाह को सिखाया जाता है कि उत्तर दिशा से न्यायदण्ड अब आने वाला है।

(२) प्रारंभिक वचन (अधिकांश योशिय्याह के काल में) (२–६)

(क) लोगों का विश्वासघात (२ : १–४ : ४) : इस्राएल जाति जंगल में यहोवा के प्रति ऐसी भक्त थी जैस वधू। परंतु जब वह उपजाऊ देश में आ गई तो उसने जीवन जल के स्रोत यहोवा को त्याग दिया और बालीम के साथ व्यभिचार करने लगी (२)। अतः इस्राएल पश्चात्ताप करे, और यहूदा भी पश्चाताप करे, जिसने और भी भयंकर विश्वासघात किया है—'हे भटकने वाले लड़को! लौट आओ ·······अपनी पड़ती भूमि को जोतो······यहोवा के लिए अपना खतना करो; हाँ अपने मन का खतना करो' (३ : १—४ : ४)।

(ख) आसन्न न्यायदंड या विपत्ति (४ : ५–६ : ३०) : उत्तर दिशा से एक शत्रु परमेश्वर के न्याय के साधन स्वरूप आने पर है कि वह तुम्हारे देश को उजाड़ दे और तुम्हारे नगरों को ध्वस्त एवं सुनसान कर दे (४ : ५–३१)। क्या तुम एक भी ऐसा व्यक्ति बता सकते हो, जो न्याय से काम करे और सच्चाई का खोजी हो? इस्राएल जाति अनजाने देवताओं के पीछे चली है। अतः अनजानी जाति के द्वारा उसका विनाश होगा (५ : १–६ : ८)। उस समय जब शांति नहीं है, तो ऐसा कहने मात्र से कि 'शाँति है, शांति' प्रजा के घाव चंगे नहीं हो सकते। प्राचीनकाल के अच्छे मार्ग में चलो, तब तुम अपने मन में चैन पाओगे। परंतु खेद की बात है कि उत्तर दिशा से शत्रु चल निकला है, और अब उनके कामों से कुछ न बन पड़ेगा (६ : ९–३०)।

(३) यिर्मयाह के वचन और कार्य (अधिकांश यहोयाकीम राजा के शासन काल में) (७–२५)

(क) भवन सम्बन्धी प्रवचन (७ : १–८ : ३) : "यही यहोवा का मंदिर है ऐसा तुम क्यों कहते रहते हो? क्या ऐसा कहने से तुम बचोगे? आवश्यक यह है कि तुम अपनी चाल सुधारो, क्योंकि यह भवन डाकुओं की खोह बन गय है। यहोवा ने जैसे अपने स्थान शीलो को नष्ट किया वैसे ही इसे भी करेगा (७ : १–२०)। जब यहोवा ने तुम्हारे पूर्वजों को मिस्र की दासता से छुड़ाया था उस समय मैं ने ऐसी बलियों की आज्ञा न दी थी जैसी तुम आज चढ़ाते हो —यहोवा उसकी आज्ञा का पालन चाहता है (७ : २१–२८)। जिस तरह

में तुम बच्चों की बलि करते हो वहीं पर परमेश्वर के न्याय-दंड पर तुम घात किए जाओगे (७ : २९–८ : ३)।

(ख) विविध नबूवतें (८ : ४–१० : २५) : इस्राएल जाति का विश्वास-घात बहुत अप्राकृतिक है। प्रवासी पंछी भी जानते हैं कि उनका निवासस्थान कहाँ है, परंतु मेरी प्रजा यहोवा का नियम नहीं जानती (८ : ४–७)। आनेवाले विनाश की कल्पना से मन तड़प उठता है ! क्या गिलाद देश में कुछ बलसान की औषधि नहीं (८ : ८–९ : १) ? सब लोग धोखा देने वाले हो गए हैं–कोई भी अपने भाई और पड़ोसी पर भरोसा नहीं कर सकता ! इसलिए मृत्यु की भयानक फसल के कारण हम विलाप करें (९ : २–२२)। लोग अपनी उपलब्धियों पर घमंड न करें, परन्तु जो घमंड करे वह इस पर घमंड करे कि परमेश्वर यहोवा पृथ्वी पर करुणा, न्याय और धर्म के काम करता है (९ : २३–२६)। यहोवा के समान अन्य कोई महान नहीं है, केवल उसी का भय मानना उचित है। उसी ने आकाश और पृथ्वी की रचना की है। वह मूरतों के समान सामर्थहीन नहीं है। * 'हे यहोवा मैं जान गया हूँ कि मनुष्य का मार्ग उसके वश में नहीं है, मनुष्य चलता तो है, परंतु उसके डग उसके अधीन नहीं हैं। इसीलिए हे यहोवा मेरी ताड़ना कर, पर न्याय से; क्रोध में आकर नहीं, कहीं ऐसा न हो कि मैं नाश हो जाऊँ' (१०) *।

(ग) वाचा (११ : १–१७) : परमेश्वर की आज्ञा से यिर्मयाह 'वाचा के वचन' की यहूदा के समस्त देश में घोषणा करता है। फिर भी लोग नहीं मानते। यिर्मयाह से कहा जाता है कि वह उनके लिये अब बिनती न करे, क्योंकि पश्चात्ताप का समय बीत गया।

(घ) यिर्मयाह के विरुद्ध षड़यंत्र (११ : १८–१२ : १७) : * अनातोत के लोग, अर्थात यिर्मयाह के नगर के लोग उसका प्राण लेने का षड़यंत्र करते हैं। यिर्मयाह अनजान था, बध होनेवाले भेड़ के बच्चे के समान (११ : १८–२३)। वह पुकार उठता है कि परमेश्वर क्यों दुष्टों की चाल को सफल होने देता है ? परंतु यहोवा उसे डाँटता है और उससे कहता है कि आगे और भी बड़ी कठिनाइयाँ सामने आनेवाली हैं (१२ : १–६)* : यहोवा अपनी प्रजा को नष्ट करने पर है, और वह उनके पड़ोसियों को भी नष्ट करेगा (१२ : ७–१७)।

(च) चिह्न और दृष्टांत (१३) : यिर्मयाह बिगड़ी हुई पेटी के चिन्ह का प्रयोग कर यह प्रकट करता है कि यहोवा ने अपनी बहुमूल्य जाति को त्याग

***.....*—रूपरेखा में यिर्मयाह के 'अंगीकारों' के प्रारंभ एवं अंत का इस चिन्ह से निर्दिष्ट किया गया है।**

दिया है (१३ : १–११); जो लोग आनंद और निश्चिंतता के साथ यह कहते हैं कि दाखमधु के सब कुप्पे दाखमधु से भर दिए जाएँगे तो उनसे यह कहा जाए कि 'यहोवा यरूशलेम के सब निवासियों को अपनी कोपरूपी मदिरा पिलाकर अचेत कर देगा' (१३:१२–१४)। हम राजा (यहोयाकीम) और राजमाता (नहुश्ता) के लिये विलाप करें जो बन्दी बनाए जाएंगे (१३ : १८–१९)। यहूदा ने भलाई करने की शक्ति खो दी है—जैसे हब्शी अपना चमड़ा, व चीता अपने धब्बे नहीं बदल सकता वैसे ही यहूदा अपनी चाल नहीं बदल सकता (१३ : २०–२७)।

(छ) अनावृष्टि (१४ : १–१५ : ९) : भयंकर सूखा हो गया है, यहाँ तक कि वन पशु भी मर रहे हैं ! 'हे यहोवा, हमारे अधर्म के काम हमारे विरुद्ध साक्षी दे रहे हैं……तू अपने नाम के निमित्त कुछ कर…………क्योंकि तू ही इस्राएल का आधार है' (१४ : १–९)। शोक इस बात का है कि यहूदा का अधर्म इतना विकट है—चाहे नबी उन्हें झूठ कहे—कि उस पर दंड अवश्य आएगा; परन्तु हे यहोवा, अपने नाम के निमित्त हमें न ठुकरा; जो वाचा तूने हमारे साथ बाँधी है, उसे स्मरण कर और उसे न तोड़ (१४ : १०–२२)। यदि मूसा और शमूएल भी इनके लिये निवेदन करते, तब भी यहूदा को आसन्न विनाश और बंधुवाई से यहोवा नहीं बचाएगा (१५ : १–९)।

(ज) यिर्मयाह का अंतर्द्वन्द्व (१५ : १०–१६–२१): * यिर्मयाह पुकार उठता है, "हे मेरी माता, मुझ पर हाय, कि तूने ऐसे मनुष्य को जन्म दिया जो संसार भर से झगड़ा और वाद-विवाद करने वाला ठहरा है……मेरी पीड़ा क्यों लगातार बनी रहती है ? मेरी चोट की क्यों कोई औषधि नहीं है" ? यहोवा उत्तर देता है, 'यदि तू फिरे, तो मैं फिर से तुझे अपने सामने खड़ा करूँगा……मैं तुझे बचाऊँगा और……छुड़ा लूँगा' (१५ : १०–२१)*। यहोवा यिर्मयाह को विवाह करने तथा सामूहिक दुःख-सुख में सम्मिलित होने के लिये मना करता है, क्योंकि दंड आसन्न है (१६ : १–१३)। परन्तु बंधुवाई के पश्चात् यहोवा वापिस लौटा लाएगा और जातियों का भी हृदय परिवर्तन होगा (१६ : १४–२१)।

(झ) अमिट अपराध (१७) : यहूदा का पाप लोहे की टाँकी और हीरे की नोक से लिखा हुआ है, अतः वह मिटाया नहीं जा सकता (१७ :१–४)। स्रापित है वह मनुष्य जो मनुष्य पर भरोसा रखता है…… धन्य है वह मनुष्य जो यहोवा पर भरोसा रखता है—वह उस वृक्ष के समान होगा जो नदी के तीर पर लगा हो (१७ : ५–८)।* मन तो सब वस्तुओं से अधिक धोखा देने वाला होता है……यहोवा मन को खोजता और हृदय को जाँचता है।………

हे यहोवा मुझे चंगा कर, तब मैं चंगा हो जाऊँगा, मुझे बचा, तब मैं बच जाऊँगा (१७ : ६–१८) ।*

यिर्मयाह को आदेश दिया जाता है कि वह बिन्यामीनी या सदर फाटक में खड़ा हो और जो विश्रामवार को बोझ उठाते हैं उन्हें विश्रामवार मानने का संदेश दिया जाए (१७ : १९–२७) ।

(ट) कुम्हार का बर्तन (१८) यिर्मयाह को कहा जाता है कि कुम्हार के घर जा और तब यहोवा का यह वचन सुना, 'जैसे मिट्टी कुम्हार के हाथ में रहती है, वैसे ही हे इस्राएल के घराने, तुम भी मेरे हाथ में हो', यदि पाप के कारण मिट्टी विकृत हो जाए तो मैं उसे फिर ठीक कर सकता हूँ। इस्राएल का पाप प्रकृति-विरुद्ध है (१८ : १–१७) !

यिर्मयाह ने पुरोहितों, ज्ञानियों और नबियों के विरुद्ध वचन कहे हैं। अतः वे उसके विरुद्ध षड़यंत्र करते हैं (१८ : १८–२३) !

(ठ) तोपेत सम्बन्धी उपदेश (१९ : १–२० : ६) : यिर्मयाह मिट्टी की सुराही मोल लेता है। कुछ प्राचीनों को लेकर तोपेत जाता है, जहाँ हिन्नोमियों की तराई में बच्चों की बलि चढ़ाई जाती थी। वह यहोवा की ओर से तोपेत पर दंड का वचन बोलता है और सब के देखते हुए सुराही तोड़ देता है। फिर यिर्मयाह यहोवा के भवन के आँगन में खड़ा होकर दंड के वचन उच्चारता है। फलस्वरूप इम्मेर के पुत्र पशहूर ने, जो भवन का प्रधान रखवाला था, यिर्मयाह को मारा और काठ में डाल दिया। दूसरे दिन यिर्मयाह काठ में से निकलवाया गया। तब उसने पशहूर पर दंड का वचन कहा।

(ड) यिर्मयाह का प्रतिवाद (२० : ७–१८) : * 'हे यहोवा, तूने मुझे धोखा दिया, और मैंने धोखा खाया······दिन भर मेरी हँसी होती है······ यदि मैं कहूँ, मैं उसकी चर्चा न करूँगा······तो मेरे हृदय की ऐसी दशा होती है मानो मेरी हड्डियों में धधकती हुई आग हो, और मैं अपने को रोकते-रोकते थक गया पर मुझ से रहा नहीं जाता·······हे हृदय और मन के ज्ञाता, जो बदला तू उनसे लेगा, उसे मैं देखूँ, क्योंकि मैंने अपना मुकद्दमा तेरे ऊपर छोड़ दिया है·······स्रापित हो वह दिन जिसमें मैं उत्पन्न हुआ !······· मैं क्यों उत्पात और शोक भोगने के लिए जन्मा······कि अपने दिन नामधराई में व्यतीत करूँ' ?*

(ढ) यहूदा के राजाओं के सम्बन्ध में नबूवतें (२१–२२) : जब सिदकिय्याह राजा ने यिर्मयाह के पास सपन्याह को भेजा कि वह बाबुल के राजा

नबूकदनेस्सर के आक्रमण के संबंध में यहोवा की इच्छा बताए, तो यहोवा का यह वचन दिया गया, 'देखो, मैं तुम्हारे सामने जीवन का मार्ग और मृत्यु का मार्ग भी बताता हूँ.........क्योंकि मैंने इस नगर की ओर अपना मुख बुराई ही के लिए किया है, वह बाबुल के राजा के वश में किया जाएगा' (२१)। सब लोग कहेंगे कि यरूशलेम के विनाश का कारण यह है कि उन्होंने यहोवा की वाचा को तोड़ कर दूसरे देवताओं को दंडवत किया। योशिय्याह का पुत्र शल्लूम (यहोआहाज) फिर लौटकर न आने पाएगा (२२ : १०–१२)। यहोयाकीम को, जो अपनी उपरौठी कोठरियों को अन्याय से बनवाता है, गदहे के समान मिट्टी दी जाएगी, वह घसीटकर यरूशलेम के फाटकों के बाहर फेंक दिया जाएगा। राजा कोन्याह (यहोयाकीन) उसकी जननी समेत नबूकदनेस्सर और कसदियों के हाथ में कर दिया जाएगा, जहाँ से वे लौटने न पाएँगे (२२ : २४–३०)।

(त) चरवाहों और नबियों के संबंध में नबूवतें (२३) : 'उन चरवाहों पर हाय जो मेरी चराई की भेड़ बकरियों को तितर-बितर करते और नाश करते हैं'! परंतु मैं यहोवा दाऊद के कुल में एक धर्मी अंकुर उगाऊँगा, और वह यहूदा में न्याय और धर्म से प्रभुता करेगा। उसके दिनों में यहूदी लोग बचे रहेंगे (२३ : १–८)। यरूशलेम के नबी भक्तिहीन हो गए हैं और बुराई करने वालों को प्रोत्साहित करते हैं—'ये नबी बिना मेरे भेजे दौड़ जाते और बिना मेरे कुछ कहे नबूवत करने लगते हैं'। वे ऐसा न कहें कि 'यहोवा का भारी वचन' क्योंकि वे नबी परमेश्वर के लिए भार बन गये हैं (२३ : ९–४०)।

(थ) अच्छे और निकम्मे अंजीर तथा परमेश्वर की योजना (२४–२५): यकोन्याह (यहोयाकीन) और उसके साथियों की बंधुवाई के पश्चात् यिर्मयाह ने मन्दिर के साम्हने रखे हुए अच्छे और निकम्मे अंजीरों के टोकरों का दर्शन देखा। अच्छे अंजीर बंधुओं का प्रतीक हैं। उनके द्वारा यहोवा अपना अभिप्राय पूरा करेगा। सिदकिय्याह राजा के साथ यरूशलेम में जो रह गए वे निकम्मे अंजीर का प्रतीक हैं (२४)। निर्वासित लोग बाबुल के राजा की सेवा ७० वर्ष करेंगे। उसके पश्चात बाबुल और अन्य राष्ट्रों को दंड दिया जाएगा (२५ : १–१४)।

(सप्तति अनुवाद में ४६–५१ अध्याय २५ : १३ के बाद पाए जाते हैं।) यिर्मयाह ने यहोवा की कोप–मदिरा का कटोरा सब राष्ट्रों को, जिनके पास यहोवा ने उसे भेजा, पिला दिया—यरूशलेम, मिस्र, ऊस, पलिश्ती, एदोम, मोआब, अम्मोन, सोर, सीदोन, ददान, तेमा, बूजी, अरब, जिम्री, एलाम, मादै,

उत्तर दिशा के राजा और अन्त में शेषक या बाबुल को पिला दिया (२५ : १५–३८)।

(४) यिर्मयाह के संघर्षों का बारूक द्वारा विवरण (२६–२९)।

(क) भवन संबंधी प्रवचन (२६) : यिर्मयाह भवन के आँगन में खड़ा होकर उसके विनाश की नबूवत करता है––'यदि तुम मेरी सुनकर मेरी व्यवस्था के अनुसार न चलो,……तो मैं इस भवन को शीलो के समान उजाड़ दूँगा'। इस पर पुरोहित, नबी और लोगों ने यिर्मयाह को पकड़ा कि उसे प्राणदंड दिया जाए। यहूदा के हाकिमों ने नये फाटक में बैठकर उसका न्याय किया। पूर्व घटनाओं का उल्लेख किया जाता है कि मीकायाह ने सिय्योन के विनाश की नबूवत की थी परंतु उसे प्राण-दंड नहीं दिया गया। यहोयाकीम ने ऊरिय्याह को मिस्र से बुलवाकर मार डाला। इन प्रसंगों के आधार पर वे यिर्मयाह को प्राणदंड देना चाहते हैं। परंतु अहीकाम ने यिर्मयाह की सहायता की और यिर्मयाह वध होने से बच गया।

(ख) जूआ (२७–२८) : यिर्मयाह को कहा जाता है कि वह बंधन और जूआ बनवाकर अपनी गर्दन पर रखे। तब आसपास के राजाओं के पास दूतों द्वारा यह वचन पहुँचाया गया कि वे इसी प्रकार बाबुल का जूआ अपनी गर्दन पर ले लें। इसके पश्चात गिबोन के नबी हनन्याह ने सब लोगों के सामने कहा कि सेनाओं का यहोवा यों कहता है कि मैं ने बाबुल के राजा के जूए को तोड़ दिया है। परंतु यहोवा यिर्मयाह को यह वचन देता है, 'यहोवा यों कहता है, तू ने (हनन्याह) काठ का जूआ तो तोड़ दिया, परन्तु ऐसा करके तूने उसकी सन्ती लोहे का जूआ बना लिया है……मैं सब जातियों की गर्दन पर लोहे का जूआ रखता हूँ'।

(ग) निर्वासितों को पत्र (२९) : यिर्मयाह बाबुल में निर्वासितों को पत्र लिखता है। 'सेनाओं का यहोवा यों कहता है : घर बनाकर उस देश में बस जाओ……जिस नगर में मैंने तुमको बँधुआ कराके भेज दिया है, उसके कुशल का यत्न किया करो, और उसके हित के लिए यहोवा से प्रार्थना किया करो'। ७० वर्ष के बाद यहोवा उन्हें लौटा ले आएगा। यिर्मयाह नेहेलामी शमायाह को भी दंड की सूचना देता है। शमायाह निर्वासितों का नेता था और उसने यरूशलेम में सपन्याह के पास यह लिख भेजा था कि यिर्मयाह को पकड़ लिया जाए।

(५) आशा की नबूवतें (३०–३३)

(क) नवीन वाचा या व्यवस्थान (३०–३१) : यहोवा के दिन के संकट के पश्चात, यहोवा के दास इस्राएल का उद्धार होगा; सिय्योन के घाव चंगे किए जायेंगे और याकूब का वैभव लौटाया जाएगा (३०)। यहोवा कहता है, 'मैं तुझसे सदा प्रेम रखता आया हूँ'। सब राष्ट्रों में निर्वासित इस्राएली लौट आएँगे, इस्राएल और यहूदा का पुनर्वास होगा, और यहोवा का न्याय स्थापित होगा (३० : १–३०)। 'मैं इस्राएल और यहूदा के घरानों से नई वाचा बाँधूँगा······ मैं अपनी व्यवस्था उनके मन में समवाऊँगा और उसे उनके हृदय पर लिखूँगा'। जो नगर यहोवा के लिए पवित्र है, वह सदा बना रहेगा (३१ : ३१–४०)।

(ख) विश्वास के कारण खेत मोल लेना (३२) : अनातोत में खेत मोल लेने का सुअवसर यिर्मयाह को मिलता है। यहोवा यिर्मयाह के विश्वास के चिन्ह स्वरूप उसे खेत मोल लेने को कहता है। यद्यपि बाबुली लोग खेत को नष्ट करने पर हैं, फिर भी यिर्मयाह विश्वास प्रकट करता है कि यहोवा अन्त में अवश्य उद्धार करेगा। जब यिर्मयाह प्रार्थना करता है तो यहोवा उसके विश्वास को दृढ़ करता है।

(ग) धर्म की डाल (३३) : जब यिर्मयाह पहरे के आँगन में बंद था, तब भविष्य में धर्म की डाल के संरक्षण में पुनः बसाए जाने के संबंध में यहोवा ने उसे बड़ी गूढ़ बातें बताईं—'मैं ने दिन और रात के विषय में जो वाचा बाँधी है जब तुम उसे तोड़ सको·······तब ही जो वाचा मैंने अपने दास दाऊद के संग बाँधी है टूट सकेगी'।

(६) यरूशलेम के विनाश से पूर्व की घटनाओं के सम्बन्ध में बारूक द्वारा वर्णन (३४ : ३८)

(क) भग्न प्रण (३४) : जब सिदकिय्याह राजा ने यरूशलेम में सब इब्रानी दासों के स्वाधीन होने का प्रचार किया जिससे घेरे के समय लोगों में साहस की वृद्धि हो, तो लोगों ने दासदासियों को स्वतन्त्र करने का प्रण किया। परंतु जब कुछ समय के लिए घेरा ढीला हो गया तो वे अपने प्रण से विमुख हो गए, तो यहोवा का वचन यिर्मयाह ने कह सुनाया कि 'सुनो, मैं तुम्हारे इस प्रकार से स्वतन्त्र होने का प्रचार करता हूँ कि तुम तलवार, मरी और मँहगी में पड़ोगे।'

(ख) रेकाबी परिवार (३५) : यिर्मयाह ने रेकाबियों को दाखमधु पिलाने का प्रयास किया। परन्तु उन्होंने अपने पूर्वज की आज्ञानुसार दाखमधु पीना मना किया। यहोवा के प्रति यहूदा की निष्ठा कितनी भिन्न थी?

(ग) यिर्मयाह के वचन की पुस्तक आग में झोंकी गई (३६) : यह सोच कर कि यिर्मयाह की नबूवतों पर ध्यान दिया जाएगा, यिर्मयाह ने उन्हें बारूक को लिखाया। उपवास के समय मन्दिर की कोठरी में लोगों को बारूक ने वे वचन पढ़ सुनाए और तब हाकिमों को पढ़ सुनाए। यहूदी नाम हाकिम ने उन्हें राजा यहोयाकीम को पढ़कर सुनाया जब यहूदी तीन चार पृष्ठ पढ़ चुका, तब राजा ने उस लेख को चाकू से काटा और जलती अँगीठी में फेंक दिया।

(घ) यिर्मयाह बंदीगृह के तलघर में डाला जाता है (३७–३८) : सिदकिय्याह राजा के राज्य में जब फिरौन की सेना आक्रमण के लिये मिस्र से निकली तब कसदी जो यरूशलेम को घेरे हुए थे यरूशलेम से भाग गये। इस पर यिर्मयाह ने मिस्र के साथ संधि के विरुद्ध नबूवत की। फलस्वरूप उस पर अभियोग लगाया गया कि वह कसदियों से मिल गया है और उसे पीटा गया और बंदीगृह में डाल दिया गया। फिर सिदकिय्याह राजा ने उसे बुलवाया और पूछा 'क्या यहोवा की ओर से कोई वचन पहुँचा है?' यिर्मयाह ने उत्तर दिया 'हाँ, पहुँचा है' और उसने यरूशलेम के दंड संबंधी वही वचन कहे जो पहले कहे थे। तब राजा ने उसे तलघर से निकलवा कर कुछ अच्छे स्थान में रखा। परन्तु लोगों के हाकिमों ने आपत्ति उठाई कि यिर्मयाह कसदियों के अधीन होने को कहता ही जाता है इसलिये उसे मरवा डाला जाए। राजा ने यिर्मयाह को उन्हें सौंप दिया और हाकिमों ने उसे दलदली गड्ढे में डाल दिया। यदि राजा की अनुमति प्राप्त कर एबेदमेलेक कूशी यिर्मयाह को गड्ढे से न निकालता तो यिर्मयाह मर जाता। राजा ने फिर छिप कर यिर्मयाह से मंत्रणा की।

(७) यरूशलेम के विनाश के पश्चात् घटनाओं का बारूक द्वारा वर्णन (३९–४५) : कसदियों का यरूशलेम को जीत लेना। यर्दन के मैदान में (यरीहो के अराबा में) सिदकिय्याह पकड़ा जाता है। नबूकदनेस्सर ने आज्ञा दी कि यर्मयाह पर कृपादृष्टि रखी जाए और उससे अच्छा व्यवहार किया जाए। यिर्मयाह एबेदमेलेक को आश्वासन देता है कि उसका कुशल होगा (३९)। भूल से यिर्मयाह बन्दी बनाया जाता है और ज़ंजीरों से बाँधा जाता है। उसे स्वयं निर्णय के लिये कहा जाता है कि वह चाहे बाबुल चले जहाँ उस पर कृपा दृष्टि रहेगी या यहूदा में ही रहे। यिर्मयाह गदल्याह के साथ रहने का निर्णय करता है, जो मिस्पा में अधिकारी नियुक्त किया गया था (४०)।

इश्माएल ने अम्मोनियों के साथ षडयंत्र रचकर गदल्याह को मार डाला। जो यहूदी और कसदी योद्धा मिस्पा में थे उन्हें भी मार डाला और गदल्याह

के और बहुत लोगों को बंधुआ करके अम्मोनियों के पास ले जाने लगा । योहनान ने उन्हें छुड़ाया (४१) । योहानान और बचे हुए लोग यिर्मयाह से पूछते हैं कि वे किस मार्ग से चलें और क्या करें ? क्या वे मिस्र को भाग जाएँ ? दस दिन के बाद यिर्मयाह ने उन्हें यहोवा का वचन सुनाया कि वे इसी देश में रहें और बाबुल के राजा के अधीन हों (४२) । उन्होंने यिर्मयाह के वचन का उलंघन किया और वे यिर्मयाह और बारूक को भी मिस्र ले गए (४३) । यहोवा की बात न मानने तथा उससे विश्वासघात करने, विशेष कर 'आकाश की रानी' की भक्ति के लिये यिर्मयाह लोगों की भर्त्सना करता है । वह नबूवत करता है कि मिस्र का राजा फिरौन होप्रा भी बाबुल के अधीन हो जाएगा (४४) । यिर्मयाह बारूक से कहता है, 'क्या तू अपने लिये बड़ाई खोज रहा है ? उसे मत खोज'---क्योंकि उसके लिये इतना पर्याप्त है कि जहाँ कहीं वह जाएगा, वहाँ यहोवा उसका प्राण बचाकर उसे जीवित रखेगा (४५) ।

(८) अन्य जातियों के विषय वचन (४६-५१)

कर्कमीश के युद्ध के संदर्भ में (ई. पू. ६०५) मिस्र के विषय यिर्मयाह यहोवा का वचन कहता है, जब फिरौन निको को बाबुल के राजा नबूकदनेस्सर ने जीत लिया था (४४) । पलिश्तियों के विषय वचन (४७ : १-७); मोआब के विषय (४८ : १-४७); अम्मोनियों के विषय (४९ : १-६); एदोम (४९ : ७-२२); दमिश्क (४९ : २३-२७); केदार और हासोर के राज्यों के विषय (४९ : २८-३३); एलाम (४९ : ३४-३९), और बाबुल के विषय वचन कहे गए (५० : १-५१ : ६४) ।

(९) ऐतिहासिक परिशिष्ट (५२)

सिदकिय्याह के राज्य, यरूशलेम के घेरे जाने और विनाश का वर्णन (५२ : १-२७), जिसमें २ राजा (२४ : १८-२५ : ३०) के वर्णन की पुनरावृत्ति है । नबूकदनेस्सर तीन बार लोगों को बँधुआ बनाकर ले गया । उनकी गिनती दी गई है (५२ : २८-३०) । बाबुल का राज एवीलमरदोक यहोयाकीन राजा पर कृपा दृष्टि करता है (५२ : ३१-३४) ।

४. रचना, रचयिता, रचनातिथि

यदि हम यिर्मयाह नबी की जीवनी का तैथिक क्रमानुसार अध्ययन करने का प्रयास करें, तो हमें पुस्तक के विभिन्न भागों पर इधर-उधर उछलना होगा । ३७-४४ अध्यायों में तिथिबद्ध क्रम है । परन्तु २१-३३, ३०-३१ और ४६-५१ अध्यायों में विषयगत है । कहीं-कहीं तो किसी प्रकार का क्रम दृष्टिगोचर नहीं होता । कभी तो प्रथम पुरुषवाचक सर्वनाम का प्रयोग होता

है और कभी तृतीय पुरुषवाचक सर्वनाम का। इन सब तथ्यों के आधार पर हमें यह प्रतीत होता है कि इस पुस्तक के परोक्ष में कोई साहित्यिक इतिहास विद्यमान है।

पुस्तक से ही इस बात की कुछ सूचना मिलती है कि वह कैसे लिखी गई। ३६ वें अध्याय में यह बताया जाता है कि यिर्मयाह ने यहोवा के वचन अपने शिष्य और लेखक बारूक को लिखवाए जिसने उन्हें कुंडल पत्र में लिख दिया। यह अवश्य पापीरू (Papyrus) के रहे होंगे। जब उसकी विषय सामग्री यहोयाकीम को पढ़कर सुनाई गई, तो उसने उस कुंडल पत्र को काट डाला और आग में जला डाला। उसने आदेश दिया कि यिर्मयाह और बारूक को पकड़ लिया जाए। परंतु वे भाग गए। यह ई. पू. ६०५ के दिसंबर मास में हुआ, जिस वर्ष कर्कमीश का युद्ध हुआ। यह वर्ष यिर्मयाह के जीवन और नबूवत के अनुभव में विशेष वर्ष था क्योंकि उसी वर्ष में उत्तर दिशा से आने वाले शत्रु के संबंध में उसकी नबूवत पूरी हुई। जब यिर्मयाह छिपा हुआ था, तो उसके बारूक को फिर से अपने वचन लिखवाए और उनमें कुछ और जोड़ दिए (३६ : २७ क.)। इस दूसरी बार लिखवाने का कुंडल पत्र, जिसे सुविधा के लिये कभी–कभी 'बारूक का कुंडल पत्र' कहते हैं, कदाचित यिर्मयाह की पुस्तक का प्रथम संस्करण था। यह विचार किया जाता है कि उस में वर्तमान प्रथम छः अध्याय थे जिनमें यिर्मयाह की बुलाहट और प्रारंभिक संदेश प्रस्तुत हैं।

९ से २३ अध्यायों में सामग्री जो है वह ई० पू० ६०५ की घटनाओं से संगत जान पड़ती है, परंतु ई० पू० ५८७ में यरूशलेम के पतन के बाद की घटनाओं से नहीं। अतः यह अनुमान किया जाता है कि इन घटनाओं को किसी अन्य व्यक्ति ने यरूशलेम के पतन के पश्चात् संकलित किया होगा। कदाचित बारूक ने यह संकलन किया। ऊपर 'बारूक के कुंडल पत्र' का उल्लेख किया गया है। वह और यह संकलन यिर्मयाह की पुस्तक का द्वितीय संस्करण माना जा सकता है। इसमें यिर्मयाह के 'अंगीकार वचन', दंड या चेतावनी की नबूवतें अपने लिए या लोगों के लिये विलाप, और दृष्टांत सम्मिलित हैं।

२६–२९ और ३६–४५ अध्यायों में यिर्मयाह की जीवनी संबंधी बहुत सी सामग्री है। ये निश्चित रूप से बारूक द्वारा लिखे गये हैं। ये बारूक के संस्मरण कहलाते हैं। बारूक ने मिस्र में अपने संस्मरण समाप्त किए होंगे।

यिर्मयाह की पुस्तक में कई ऐसे अंश हैं जो विचार एवं शैली में व्यवस्था विवरण के समान हैं (तु० यि० ११ : १–८ और व्य० २७ : १–४, ८, १०,

२६, यि० २२ : ८–९ और व्य० २९ : २४–२८)। इसका एक स्पष्टीकरण यह दिया जाता है कि 'व्यवस्थाविवरणवादी' सम्पादक ने निर्वासनोत्तर काल में यिर्मयाह की पुस्तक का नया संस्करण किया। दूसरा स्पष्टीकरण यह है कि यिर्मयाह का दृष्टिकोण बहुत अंशों में व्यवस्थाविवरणवादी दृष्टिकोण था। इस मान्यता को कि यिर्मयाह ही ने व्यवस्थाविवरण की पुस्तक लिखी कोई विशेष अनुमोदन प्राप्त नहीं होता है।

यह बड़ी रोचक बात है कि यिर्मयाह का सेपत्वागिता मूल पाठ मसोरेती पाठ से कोई ⅛ भाग छोटा है और उसमें कई स्थलों पर भिन्नता पाई जाती है। एक महत्वपूर्ण अन्तर यह है कि अन्य जातियों के सम्बन्ध में वचन (४६–५१) का अंश सेपत्वागिता में २५ : १३ के पश्चात पाया जाता है, जहाँ 'समस्त जातियों' का उल्लेख हुआ है। इस प्रकार यिर्मयाह की पुस्तक दो रूपों में उपलब्ध है। यह कहना कठिन है कि कौनसा रूप मूल पाठ के अधिक निकट है और कि क्या कभी उसका एक ही मूल पाठ रहा है।

विशेष समस्यायें

(१) इस्राएल में बलि-विधि के सम्बन्ध में यिर्मयाह की मान्यता। यिर्मयाह ७ : २२, २३ के शब्दों से यह परिलक्षित होता है, कि इस्राएल के इतिहास की जो मान्यता यिर्मयाह के विचारों में थी, उसमें बलि के विषय परमेश्वर ने मूसा को कोई आज्ञाएँ नहीं दीं। 'यिर्मयाह के बचन' समकालीन साहित्यिक मूलस्रोत हैं, अतः ऐतिहासिक महत्व की दृष्टि से पी-प्रलेख जैसे गौण स्रोत की अपेक्षा यिर्मयाह के वचन के मूलस्रोत को प्राथमिकता दी जाती है। पी-प्रलेख में निर्गमन तथा लैव्यव्यवस्था में प्रस्तुत बलि-विधियों को सम्मिलित किया गया है (नि० २५–३१, ३५–४०; लै० १–१०)। यदि कोई सच्चाई से यह स्वीकार करे कि निर्जन प्रदेश में मूसा द्वारा प्रतिपादित धर्म में बलि-विधान को स्थान नहीं था, तो मूसा की बलि-विधियों का समस्त वर्णन निर्वासनोत्तर पुरोहितों की कोरी कल्पना मात्र रह जाता है। क्योंकि वह यिर्मयाह जैसे निर्वासन-पूर्व नबियों को प्रायः अज्ञात था। इस मान्यता की पुष्टि आमोस ५ : २५ से होती है, जिसमें यह निहित है कि आमोस की ृष्टि में मूसा के धर्म में बलि-विधान नहीं था। निर्वासनपूर्व नबियों में ऐसे अंश ही ग्रेफ–वेल हॉसन प्राक्कल्पना के उस पक्ष का आधार हैं, जिसमें 'व्यवस्था' को 'नबियों' के पहले नहीं वरन पश्चात माना जाता है, और जिसमें नबियों को मूल रूप से बलि-उपासना के विपक्षी माना जाता है।

इसके विपरीत, हमें यह विचार करना चाहिये कि नबियों के तीव्र

संवेदनापूर्ण संदेशों में कुछ तो आलंकारिक अभिव्यक्ति होनी चाहिये । यदि यिर्मयाह की यह निश्चित मान्यता थी कि मूसा के प्रारंभिक धर्म में बलि-विधान नहीं था, केवल नीति-विधान ही था, तो यह कहना कठिन है कि क्यों वह 'भवन' के लिये, जो स्वभावतया ही बलि-विधान का स्थान था, 'मेरे नाम से कहाएगा' शब्दों का प्रयोग करता है (७ : १०, १२) । बलि-विधान के विरोध में यशायाह के वचन भी काफी प्रभावशाली हैं । उनका भी शाब्दिक दृष्टि से यही अर्थ लगाया जा सकता है कि बलिकर्म परमेश्वर की व्यवस्था के विरुद्ध है (यश : १ : १०–१७) । परंतु यह महत्वपूर्ण बात है कि यशायाह को मंदिर में बुलाहट मिली और उसने वेदी के धधकते अंगारों के संदर्भ में ही अपने होठों के शुद्ध किये जाने का अनुभव प्राप्त किया । दूसरे शब्दों में यों कहें कि उसे बलि-विधान के उपासना के संदर्भ में ही अपनी बुलाहट और शुद्ध होने का अनुभव प्राप्त हुआ ।

अतः यिर्मयाह ने बलिदानों के संबंध में जो भर्त्सना की है, उसे हमें इस रूप में समझना चाहिये कि उसने अपने युग की अशुद्ध बलि-उपासना की भर्त्सना की है, जिसमें सच्चे विश्वास का अन्य असत्य बातों के साथ समझौता किया जाता था और नीति को नैतिकता से विलग रखा जाता था । उस भर्त्सना को हमें इस रूप में नहीं समझना चाहिये कि यिर्मयाह सिद्धांततया बलि-उपासना के विरुद्ध था ।

(२) राजा योशिय्याह के सुधारों से यिर्मयाह का संबंध — यि. ११ : १–८ में नबी यहूदा के नगरों तथा यरूशलेम के मार्गों में **इस 'वाचा के वचनों'** की घोषणा करता है । क्या इन शब्दों में वह ई. पू. ६२२ में योशिय्याह के धर्मसुधार संबंधी **'इस वाचा की पुस्तक के वचनों'** की ओर संकेत करता है (२ रा. २३ : २) ? यदि ये दोनों एक ही हैं तो यिर्मयाह उस सुधार के पक्ष में था और वह उस सुधार का एक मिशनरी था तथा उसने यहूदा में उसकी मान्यताओं का प्रचार किया । कुछ विद्वानों का विचार है कि ऐसी बात संभव नहीं है । उनका कहना है कि व्यवस्था विवरण की पुस्तक में, जो योशिय्याह के धर्म सुधार का आधार थी, बहुत-सी पुरोहितीय एवं विधिगत सामग्री है (दे. व्य. १२–१८), जो यिर्मयाह की भावना से संगत नहीं है । इस परिस्थिति में 'इस वाचा के वचन' जिनका प्रचार यिर्मयाह ने किया कुछ अन्य वचन होने चाहियें । यह कदाचित सीनै की वाचा की कोई भिन्न परंपरा होगी जिसमें नैतिक भावना पर बड़ा बल दिया गया हो और जिसके कारण योशिय्याह के धर्मसुधार से भिन्न भावना यिर्मयाह के मन में जागृत हुई हो । इस संबंध में एक और मान्यता यह है कि यिर्मयाह की पुस्तक के

इस अंश में किसी निर्वासनकालीन सम्पादक के कार्य की झलक है जिसका विचार यह था कि यिर्मयाह इस व्यवस्थाविवरणात्मक सिद्धांत का पोषक था कि इस्राएल जाति पर जो विपत्ति आई उसका कारण यह था कि उन्होंने वाचा की आज्ञा का उलंघन किया था। इस मान्यता को कम महत्व दिया जाना चाहिये।

यदि हम इस मान्यता को स्वीकार करें कि यिर्मयाह योशिय्याह के धर्म सुधार के पक्ष में था, और उसके सिद्धांतों के प्रचारक के नाते उसने सुधार में सहायता की, तो हमें आगे बढ़कर इस निष्कर्ष को भी अपनाना चाहिये कि बाद में यिर्मयाह उस सुधार के बाह्य-जीवनगत परिणामों से दु:खित हुआ और उसने हृदय पर एक नई वाचा लिखे जाने की आवश्यकता का संदेश दिया (यि. ३१ : ३३)।

६. यिर्मयाह की जीवनी का रेखाचित्र

यिर्मयाह को ई० पू. ६२७–६२६ में परमेश्वर की ओर से नबूवत कार्य की बुलाहट मिली (१ : २)। उस समय यिर्मयाह जवान था (१ : ६)। वह पुरोहित परिवार का था, जो अनातोत का निवासी था। यह स्थान यरूशलेम के उत्तर पूर्व में कोई चार मील पर था। संभव है कि यिर्मयाह शीलो के पुरोहित लेवी की वंश-परंपरा का हो, और दाऊद के पुरोहित अब्यातार की वंश-परंपरा का हो, जिसे सुलैमान ने राजसेवा से अलग किया था (१ रा. २ : २६–२७)। संभव है कि यिर्मयाह की बुलाहट सिथी (Sythian) आक्रमण की घटना से संबंधित हो, जिसमें नबियों को ईश्वरीय न्याय का चिन्ह दिखाई देता था (यि. १ : १५; सप. १:१४–१६)। न्याय-निर्णय के अनेक वचन सुनाने के पश्चात यिर्मयाह 'वाचा' का संदेश देने के लिये एक भ्रमण करने वाला मिशनरी हो गया (११ : १–१७)। यह वाचा साधारणतया वह व्यवस्था की पुस्तक मानी जाती है जिसके आधार पर ई. पू. ६२२ में योशिय्याह राजा ने धर्म-सुधार किया था। ऐसा लगता है कि इसके पश्चात् यिर्मयाह के जीवन काल में नैराश्य और अकेलेपन का एक समय आया। योशिय्याह की दु:खद मृत्यु से नैराश्य गहरा हो गया। बाबुली राजा नबूकदनेस्सर की कर्कमीश के फिरौन-निको पर विजय (ई. पू. ६०५) से यिर्मयाह के उस वचन की पुष्टि हुई कि परमेश्वर की ओर से दंड के माध्यम स्वरूप 'उत्तर दिशा से एक शत्रु' आएगा (१ : १४; ४ : ६; ६ : १)। इस समय से लेकर यिर्मयाह आगे को कभी अपने इस विश्वास में डाँवाडोल न हुआ कि बाबुली लोग परमेश्वर की ओर से दंड का माध्यम थे। अब से उसकी नबूवत का एक नया युग आरंभ

हुआ। घटनाओं की बदलती हुई परिस्थितियों में उसकी लगातार यह मान्यता रही कि यहूदा को बाबुली साम्राज्य की अधीनता स्वीकार कर लेनी चाहिये क्योंकि यह परमेश्वर की ओर से है। जब लोग उसकी अनसुनी करने लगे तो उसने अपने वचनों को लिखना आरंभ किया। अपने चेले बारूक को वह लिखाता था (३६ : ५)। जब यहोयाकीन राजा ने यिर्मयाह के वचनों को आग में झोंक दिया तो उसने उनको फिर लिखाया और उनमें कुछ और वचन जोड़ दिए। बाबुल का पक्ष करनेवाले वचनों के कारण यिर्मयाह को सिद-किय्याह के राज्य में बंदीगृह में कष्ट उठाना पड़ा (३८ : ६)। यदि कूशी खोजा एबेदमेलेक उसकी चिंता न करता तो कदाचित् यिर्मयाह वहां मर जाता।

ई० पू० ५९९ में बंधुओं का पहिला दल बाबुल को ले जाया गया (५२ : २८)। यिर्मयाह ने उनको यह सम्मति दी कि वे लोग वहीं बस जाएँ और निर्वासित राजा यहोयाकीन के साथ लौटने की आशा न करें (२९ : ४–७)। निर्वासितों को यिर्मयाह ने परमेश्वर की योजना के विकास का माध्यम माना (अच्छे अंजीर २४ : ५), और यह नबूवत की कि सत्तर वर्ष के पश्चात बंधुवाई से लौटना होगा (२५ : ११–१२)। उसने यह भी आशा व्यक्त की कि उत्तरी राज्य के बंधुवों का भी पुनर्वास होगा (३१ : ३–६)।

ई० पू० ५८८–८७ में यरूशलेम का पतन हुआ और दूसरा समूह बंधुवाई में ले जाया गया। यिर्मयाह को कहा गया कि या तो वह प्रतिष्ठा सहित बाबुल में चले या जो पलिश्तीन में बच रहे हैं उनके साथ रहे और यों दुःख भोगे। यिर्मयाह ने पलिश्तीन में रहने का निर्णय किया। बाबुल के प्रति उसकी भक्ति के स्वरूप उसने गदल्याह अधिपति का साथ दिया (४० : ४–६)। जब गदल्याह मार डाला गया तो भयभीत शेष लोग यिर्मयाह तथा बारूक को बलात् मिस्र ले गए। यिर्मयाह के जीवन के संबंध में हमें अंतिम बात यह पता चलती है कि वह मिस्र में उन बचे हुए यहूदियों को विदेशी देवताओं की पूजा करने के लिए भर्त्सना करता है और यह नबूवत करता है कि परमेश्वर के दण्ड-स्वरूप बाबुल की शक्ति का मिस्र तक भी विस्तार हो जाएगा (४४ : १५–२३, ३०)।

७. यिर्मयाह के काल का तिथि-क्रम

ई० पू० ६२७–६२६ सीथी आक्रमण यहूदा के पठार को छोड़कर मिस्र तक बढ़ जाता है। यिर्मयाह नबी होने के लिए बुलाया जाता है।

६२२ योशिय्याह का धर्मसुधार (व्यवस्था विवरणात्मक धर्मसुधार)। ६१२ नीनवे का पतन और नव–बाबुली साम्राज्य का उदय। अश्शूरी राजा ६०९ तक लड़ते रहे।

६०९ मगिद्दो में फिरौन-निको योशिय्याह राजा को मार डालता है। यहोआहाज राजा बनता है परंतु तीन महीने पश्चात् फिरौन उसे बाँधकर मिस्र ले जाता है। फिरौन यहूदा की गद्दी पर यहोयाकीम को बैठाता है।

६०५ कर्कमीश का युद्ध। नबूकदनेस्सर फिरौन-निको को हराता है और अपनी शक्ति का मिस्र की सीमा तक विस्तार करता है। यहोयाकीम तीन वर्ष तक नबूकदनेस्सर को भेंट भेजता है और उसके पश्चात बंद कर देता है।

५९९ नबूकदनेस्सर यरूशलेम को पराजित कर ३०२३ यहूदियों को बंधुवाई में ले जाता है (यि० ५२ : २८)।

५९८ यहोयाकीन को तीन महीने के राज्य के पश्चात् नबूकदनेस्सर बाँधकर ले जाता है (२ रा० २४ : १२; २ इति ३६ : १०)। इस घटना से बंधवाई की गणना की जाती है। सिदकिय्याह राजा बनाया जाता है।

५८९ फिरौन प्सामतिक द्वितीय के साथ सिदकिय्याह नबूकदनेस्सर के विरुद्ध षड्यन्त्र करता है।

५८८ जनवरी में नबूकदनेस्सर यरूशलेम को घेर लेता है।

५८७ में १८ महीने के घेरे के पश्चात् जुलाई में यरूशलेम का पतन होता होता है (यि० ५२ : २९)। शहर नष्ट किया जाता है और सिदकिय्याह का घात किया जाता है। मिस्पा में गदल्याह अधिपति नियुक्त किया जाता है। सात मास पश्चात वह मारा जाता है। बचे हुए यहूदी मिस्र को भाग जाते हैं और यिर्मयाह को भी साथ ले जाते हैं।

५८३ नबूकदनेस्सर का सेनानायक नबूजरदान ७४५ यहूदियों को बंधुआ बनाकर ले जाता है (यि० ५२ : ३०)।

योशिय्याह राजा के पुत्र (६४०–६०९) (१ इति० ३ : १५) :

(१) योहानान (२) एलीयाकीम, जिसका नाम यहोयाकीम रखा गया (६०९–५९८) जिसका पुत्र यहोयाकीन (कोन्याह); उसने तीन मास राज्य किया (५९८); फिर बंधुआ बनाकर बाबुल को ले जाया गया। (३) शल्लूम जिसका दूसरा नाम यहोआहाज रखा गया; तीन मास राज्य किया (६०९); मिस्र को बंधुआ बनाकर ले जाया गया। (४) मत्तनिय्याह, जिसका दूसरा नाम सिदकिय्याह हुआ (५९८–५८७)।

८. धर्म शिक्षा

यिर्मयाह की शिक्षा का उसके व्यक्तिगत अनुभव से निकट संबंध है। यिर्मयाह बड़े संक्रांति काल में हुआ। वह शान्तिप्रिय और एकाकी जीवन-प्रिय व्यक्ति था। परमेश्वर की बुलाहट स्वीकार करने में उसे संकोच हुआ परन्तु उस बुलाहट को मानने के लिए वह बाध्य हुआ (१ : ४–१०)। अतः वह ऐसे लोगों का आदर्श है जिनकी दुर्बलताओं में परमेश्वर की सामर्थ पूर्ण होती है (२ कु०१२ : ९)। अपने प्रायः सभी समकालीन लोगों का विरोध उसे झेलना पड़ा। विरोधियों में राजा और हाकिम, (४:९; अ ३६), पुरोहित (२:८, १८: १८) और नबी (२३ : १३–२१; २८) भी थे। साधारण जनता में भी वह लोकप्रिय नहीं था, क्योंकि वह सब के विनाश की नबूवत करता था (१५:१०)। अनातोत में उसके अपने लोगों ने उसे मार डालने का षडयन्त्र किया (११:१८–२३; २० : १०)। नबी के पद के लिए जो सुदृढ़ बुलाहट उसे मिली उससे यह अनिवार्य हो गया कि वह असामाजिक प्राणी हो जाए (१५ : १७)। उसके कारण वह साधारण गृहस्थ जीवन के सुखों से वंचित भी रहा (१६ : १)। वह परार्थ प्रार्थना के द्वारा सहानुभूति की भावना व्यक्त करने से भी वंचित रहा (७ : १६; ११ : १४)। उसके कोमल हृदय के कारण दूसरों के सुख-दुःख में भागी होने में उसे आनन्द प्राप्त होता। अपने व्यथापूर्ण एकाकीपन में वह उस भार के प्रति जो परमेश्वर की ओर से उस पर रखा गया है कराह उठता है (९ : १; १५ : १०–१८)। यद्यपि नबूवत के वचनों की घोषणा करना उसके प्राण के लिये आनन्द और प्रसन्नता की बात थी (१५ : १६), तथापि उसे ऐसा प्रतीत होता है कि परमेश्वर दबानेवाला और भयंकर है, मानो जैसे बड़ा दुष्ट हो (१५ : १८; २० : ७–११)। इन कारणों से यिर्मयाह का जीवन 'आजीवन रक्त साक्षी या शहीद' का जीवन कहा गया है, और यह मान्यता प्रस्तुत की गई है कि यशायाह ५३ में दुःखी दास का जो वर्णन है उसकी ऐतिहासिक पूर्व-घटना यिर्मयाह का जीवन है। जहाँ तक यिर्मयाह के युग का संबंध है उसकी नबूवत की सेवा व्यर्थ प्रतीत होती है, परन्तु आने वाली पीढ़ियों ने उसे परमेश्वर की योजना में एक महान व्यक्ति माना, क्योंकि 'उसने अपना प्राण मृत्यु के लिए उंडेल दिया और अपराधियों के संग गिना गया' (यश ५३ : १२)।

होशे नबी के समान यिर्मयाह भी परमेश्वर और इस्राएल के संबन्ध को विवाह के प्रतीक की दृष्टि से विचार करता है। लोगों का पाप प्रेम के वाचा बंधन का उलंघन है। (२ : १–५–२०–२५, ३२–३६; ३ : १, २)। इस्राएल जाति व्यभिचारिणी हो गई (३ : २)। कभी-कभी दोनों का संबंध

पिता पुत्र के संबन्ध जैसा नबी ने देखा है (३ : १९; ३१ : ९, २०)। पुन-स्थापित संबंध में इस्राएल जाति परमेश्वर को 'मेरे पिता' कहकर संबोधित करेगी (३ : १९)। चाहे विवाह का प्रतीत हो या पिता-पुत्र का, यह निश्चित है कि और इस्राएल के बीच वाचा में जो कर्तव्य निहित है वह इब्रानी शब्द ह़ेसेद (Hesed) द्वारा व्यक्त है जिसका अर्थ है 'करुणा' या 'प्रेम में निष्ठा'। जो ह़ेसेद से भरा हुआ है वह 'ह़सीद' है। यह शब्द उन लोगों का द्योतक है जो धर्मात्मा या संत हैं (भ. ४ : ३; ३० : ४)। यिर्मयाह ३ : १२ में परमेश्वर को ह़सीद कहा गया है, क्योंकि वह अपनी ओर से उस वाचा के प्रति जो उसने इस्राएल से की है अपार करुणामय है और निष्ठावान है।

यिर्मयाह को यह बुलाहट दी गई कि अपनी ही पीढ़ी के लोगों पर न्याय निर्णय के दंड की घोषणा करे। पहले-पहल तो उसने अपने लोगों को प्रचार किया कि वे अपनी चाल सुधारें—वे न्याय और धर्म के कार्य करें (७ : ५–७) और उसने यह आशा भी व्यक्त की कि परमेश्वर का दंड उन पर से हट जाएगा। परंतु परिस्थिति उत्तरोत्तर अत्यंत निराशाजनक प्रतीत हुई। इस्राएल के पाप की जड़ें उनके अंतस तक पहुँच चुकी थीं। अतः सच्चे पश्चात्ताप की संभावना न रही (१७ : १; १३ : २३–२७)। इसलिये यिर्मयाह से कहा गया कि वह अपने लोगों के लिये और प्रार्थना न करे (१४ : ११)। परमेश्वर का न्याय-दंड अनिवार्य है। इस प्रकार जहाँ तक यिर्मयाह की अपनी पीढ़ी के लोगों का संबन्ध है यिर्मयाह का निराशावाद उत्तरोत्तर पक्का होता गया। उसे ज्ञान हुआ कि इस्राएल जाति की आशा भविष्य में है, जब एक बार दंड के कारण जाति का विनाश हो चुकेगा। उस विनाश की राख से परमेश्वर एक नई जाति को उत्पन्न करेगा। तब यह पता चलेगा कि परमेश्वर की शाश्वत कारुण्य-योजना से उसके अपने कठोर न्याय-दंड के बंधन ढीले हो गए (२३ : ३, ४)। यहूदा के अयोग्य राजाओं और नेताओं के बदले, जिनके कारण देश का विनाश हुआ, 'दाऊद के कुल में से एक धर्मी अंकुर उगाऊँगा और वह राजा बनकर बुद्धि से राज्य करेगा और न्याय और धर्म से प्रभुता करेगा'—वह मसीह होगा, उसका नाम 'यहोवा, हमारी धार्मिकता' होगा (२३ : ६)। तब एक नई वाचा होगी जिसमें परमेश्वर उनके हृदयों पर अपनी व्यवस्था लिखेगा जिससे वे धार्मिकता में चलेंगे (३१ : ३१–३४)। जिस प्रकार इस्राएल के पाप की जड़ें उनके हृदय तक गहरी थीं, जिसके कारण पश्चात्ताप असंभव था, उसी प्रकार प्रत्येक के हृदय में नई वाचा से प्रत्येक व्यक्ति को परमेश्वर का ज्ञान मिलेगा और परमेश्वर और मनुष्य के बीच पाप की दीवार ध्वस्त हो जाएगी (३३ : ३४)। यह नई वाचा अनंत वाचा

होगी (३२ : ४०)। अतः यद्यपि अपनी पीढ़ी के लिये यिर्मयाह के पास विशुद्ध दंड का संवाद था, तथापि परमेश्वर पर उसके विश्वास के द्वारा वह अत्यंत विचित्र रूप में उन बातों का भविष्य कथन कर सका जो आज हम जानते हैं कि ख्रिस्त में पूरी हो गई हैं।

यिर्मयाह को व्यक्तिगत धर्म का नबी कहा जाता है। उसने धर्म को बाह्य चिन्हों से परे देखा। उसने वाचा के संदूक और मंदिर जैसे बाहरी चिन्हों से आगे बढ़कर हृदय को देखा जो परमेश्वर के साथ सच्चे संबंध का स्थान है। सच्चा खतना हृदय का है (४ : ४)। शाश्वत वाचा, जिसमें भविष्य की आशा विद्यमान है, हृदय की वाचा है (३२ : ३९)। परमेश्वर हृदय को देखता है—वह हृदय और मन का परीक्षण करता है (११ : २०)। वह बाहरी विधियों को इतना नहीं देखता। परमेश्वर के साथ ठीक संबंध का अर्थ है 'हृदय परिवर्तन'। सबसे अधिक हृदय ही धोखा देने वाला है (१७ : ९) इसीलिये मनुष्य का मार्ग उसके वश में नहीं है (१० : २३), परन्तु परमेश्वर के हाथ में है, जो 'विशुद्ध हृदय और विशुद्ध मार्ग' का दाता है (३२ : ३९)। परमेश्वर के साथ घनिष्ठ और व्यक्तिगत संबंध धर्म है—इस मान्यता के अनुरूप प्रत्येक व्यक्ति अपने पापों के लिये स्वयं उत्तरदायी है (३१ : ३०)। साथ ही यदि सच्चा धर्म हृदय में स्थित है, तो उसकी व्याप्ति और उसकी प्रियता समस्त मानव जाति तक होनी चाहिये—इसलिये समस्त जातियों का उन लोगों की सहभागिता में स्वागत होगा जो हृदय से परमेश्वर की भक्ति और सेवा करते हैं (३ : १७; ४ : २; १६ : १९; ३३ : ९)।

चौंतीसवां अध्याय
विलाप गीत

१. शीर्षक तथा प्रामाणिक धर्मशास्त्र में स्थान

इब्रानी में विलापगीत की पुस्तक का नाम उसके प्रथम शब्द 'एका' (ekah) के नाम पर रखा गया है। एका का अर्थ 'कैसा' है। हिन्दी में पहले पद में ही यह शब्द आया है, 'जो नगरी लोगों से भरपूर थी वह अब कैसी अकेली बैठी हुई है। यहूदी रब्बी लोग इस पुस्तक को किनोट (qinot) या शोकगीत कहते थे। इस शब्द का एकवचन रूप किनाह है, जिससे पुस्तक के विशिष्ट पद्यात्मक रूप का बोध होता है। किनाह लय में द्विपद की दूसरी पंक्ति पहली से छोटी होती है और साधारणतया पहली पंक्ति में तीन तथा दूसरी में दो बलाघात होते हैं। शोक गीति का यूनानी अनुवाद थ्रेनय (Threnoi) है। सेपत्वागिता में यही नाम है। वुल्गाता में लमेन्तातियोनेस है जिससे अँग्रेजी का शीर्षक लेमेन्टेशन्स आया है। हिन्दी में इसी का अनुवाद विलापगीत किया गया है।

इब्रानी धर्मशास्त्र में विलापगीत की पुस्तक कतूवीम या लेखों में सम्मिलित है। यह पाँच पर्व कुंडलों में से जिन्हें मेगिलोत कहते हैं, एक छोटी पुस्तक है। ये कुंडल पर्वों के समय प्रयुक्त होते थे। विलापगीत का उपयोग यरूशलेम के विनाश के स्मृति-दिवस पर किया जाता था। यह विनाश नबूकदनेस्सर ने आब मास की ९ वीं तिथि को किया था (जुलाई-अगस्त)। कुछ वर्षों पूर्व तक जब तक कि यरूशलेम में राजनीतिक परिवर्तन नहीं हुए थे, अर्थात लगभग १९५० तक वे लोग इसका प्रयोग करते रहे जो प्रत्येक शुक्रवार (सबत् की पिछली शाम) विलाप-दीवार (wailing wall) के पास एकत्रित हुआ करते थे।

सप्तति अनुवाद में पुस्तक का प्राक्कथन निम्नलिखित टिप्पणी के साथ है: 'जब इस्राएलियों को बंधुवाई में ले जाया गया और यरूशलेम का विनाश किया जा चुका, तो ऐसा हुआ कि यिर्मयाह बैठकर रोने लगा, और इस प्रकार यरूशलेम पर विलाप करने लगा'। यिर्मयाह के साथ इस संबंध के कारण सेपत्वागिता में इस पुस्तक को यिर्मयाह नबी की पुस्तक के उपरान्त स्थान

दिया गया है, यद्यपि काव्यात्मक पुस्तक होने के नाते इसका काव्य ग्रंथों में सम्मिलित किया जाना अधिक उचित होता। वुल्गाता में भी वही प्रारंभिक टिप्पणी है जो सप्तति अनुवाद में है। अंग्रेजी अनुवादों में पुस्तक का क्रम वही है जो सप्तति अनुवाद और वुल्गाता में है, परन्तु प्रारंभिक टिप्पणी को सम्मिलित करने में वैभिन्नय है। हिन्दी अनुवाद में इसका स्थान अँग्रेजी अनुवादों जैसा है परन्तु प्रारम्भिक टिप्पणी नहीं है।

२. विषय सामग्री का सारांश

विलापगीत की पुस्तक में पाँच शोक-गीतों की माला है। इनका संबन्ध यरूशलेम के पतन (ई० पू० ५८७) से है। इन गीतों के प्रमुख भाव ये हैं: दुःखांत घटना, इस्राएल जाति का पाप जिसके कारण यह दुःखांत घटना हुई, परमेश्वर के न्याय-दंड की कठोरता, और दया एवं पुनर्स्थापना के लिए याचना। अन्तिम विलाप को छोड़ अन्य चार वर्णमालात्मक हैं। अंतिम विलाप में भी (अध्याय ५) २२ पदों का इब्रानी वर्णमाला के २२ अक्षरों से साम्य है।

३. रूपरेखा

विलाप गीत—ध्वस्त सिय्योन का शोक

(१) प्रथम विलाप—ध्वस्त सिय्योन की व्यथा (अध्याय १)।

(क) सिय्योन का वर्णन (१ : १–११) : 'वह नगरी कैसी अकेली बैठी हुई है ⋯ ⋯वह रात को फूट-फूट कर रोती है⋯⋯उसके शत्रु उन्नति कर रहे हैं, क्योंकि यहोवा ने उसके बहुत से अपराधों के कारण उसे दुःख दिया है⋯⋯जितने उसका आदर करते थे, वे उसका निरादर करते हैं, क्योंकि उन्होंने उसकी नंगाई देखी है'।

(ख) सिय्योन का कथन (१ : १२–१६) : 'हे सब बटोहियो, क्या तुम्हें इस बात की कुछ भी चिन्ता नहीं है? दृष्टि करके देखो, क्या मेरे दुःख से बढ़कर कोई और पीड़ा है जो यहोवा ने अपने क्रोध के दिन मुझ पर डाल दी है⋯⋯यहोवा ने मानो कोल्हू में पेरा है⋯⋯मेरी आँखों से आँसू की धारा बहती रहती है, क्योंकि मेरा शांति-दाता मुझ से दूर हो गया⋯⋯मेरे लड़के वाले अकेले हो गए, क्योंकि शत्रु प्रबल हुआ है'।

(ग) सिय्योन नगरी अपने पाप का अंगीकार करती है (१ : १७–२२) : अपनी निस्सहाय अवस्था में वह कहती है, 'यहोवा सच्चाई पर है क्योंकि मैं ने उसकी आज्ञा का उलंघन किया⋯⋯हे यहोवा, दृष्टिकर, क्योंकि

मैं संकट में हूँ""""मेरा हृदय उलट गया """ मैं कराहती हूँ"""""मेरे सब शत्रुओं ने मेरी विपत्ति का समाचार सुना है; वे इससे हर्षित हो गए कि तू ही ने यह किया है"""""जिस दिन की चर्चा का प्रचार तू ने किया है, उसको तू दिखा, तब वे भी मेरे समान हो जाएँगे'।

(२) द्वितीय विलाप---सिय्योन को यहोवा की ओर से दंड (अध्याय २)

(क) यहोवा के क्रोध की तीव्रता (२ : १–१२) : 'यहोवा ने निष्ठुरता से नष्ट किया है"""उसने शत्रु बनकर धनुष चढ़ाया"""""उसने आग की नाईं अपनी जलजलाहट भड़का दी है।"""""उसने अपना मंडप गिरा दिया और मिलाप स्थान को नाश किया है"""""मेरी आँखें आँसू बहाते-बहाते रह गई हैं""""" मेरे लोगों के विनाश के कारण मेरा कलेजा फट गया है'।

(ख) क्या शान्ति दी जा सकती है ? (२ : १३–१७) : 'मैं तुझ से क्या कहूँ """""हे सिय्योन की कुमारी कन्या मैं तुझे कैसे शांति दूँ, क्योंकि तेरा दुःख समुद्र सा अपार है"""""सब बटोही यह कहकर ताली बजाते और सिर हिलाते हैं क्या यह वही नगरी है जिसे परमेश्वर सुन्दरी और सारी पृथ्वी के हर्ष का कारण कहते थे ?"""""यहोवा ने जो कुछ ठाना वही किया भी है"""""जो वचन वह प्राचीनकाल से कहता आया है, वही उसने निठुरता से पूरा किया है'।

(ग) अब केवल दया की भीख ही संभव है (२ : १८–२२) : 'हे सिय्योन की कुमारी, यहोवा की दुहाई दे—हे यहोवा दृष्टि कर और ध्यान से देख कि तूने यह सब दुःख किसको दिया है ? क्या स्त्रियाँ अपने गोद के बच्चों को खा डालें; हे प्रभु, क्या याजक और भविष्यवक्ता तेरे पवित्र स्थान में घात किए जाएँ ?'

(३) तृतीय विलाप—इस स्थिति का अनुभव कि परमेश्वर हमारे विरुद्ध है' (अध्याय ३)

(क) यह कटु अनुभव है (३ : १–१८) : 'उसके रोष की छड़ी से दुःख भोगने वाला पुरुष मैं ही हूँ""उसका हाथ दिन भर मेरे ही विरुद्ध उठता है""" वह मेरे लिए घात में बैठे हुये रीछ और घात लगाये हुए सिंह के समान है"""""उसने मेरे दाँतों को कंकरी से तोड़ डाला"""""उसने मुझे कुशल से रहित किया है"""""मेरी आशा जो यहोवा पर थी वह टूट गयी है'।

(ख) फिर भी परमेश्वर की भलाई पर हमारी आशा है (३: १९–३९) : 'परमेश्वर की दया अमर है"""""यहोवा मेरा भाग है; इस कारण मैं

उसमें आशा रखूंगा.......चाहे वह दुःख भी दे, तो भी अपनी करुणा की बहुतायत के कारण वह मनुष्यों को अपने मन से न देखता है और न दुःख देता है'।

(ग) हमारा काम यह है कि हम अपने चाल-चलन को ध्यान से परखें, और यहोवा पर आशा रखें (३ : ४०–६६) :'हम अपने चाल चलन को ध्यान से परखें और यहोवा की ओर फिरें.........हमने अपराध और बलवा किया है.........तूने अपने को मेघ से घेर लिया है कि तुझ तक प्रार्थना न पहुँच सके......मेरी आँख से लगातार आँसू बहते हैं, जब तक यहोवा स्वर्ग से मेरी ओर न देखे.... " हे यहोवा, तूने मेरा मुकद्दमा लड़कर मेरा प्राण बचा लिया है.........तू मेरा न्याय चुका'।

(४) चतुर्थ विलाप : उस भयंकर घटना पर पुनः दृष्टिपात (अध्याय ४)।

(क) जो है और जो था उसके बीच विषमता (४ : १–१२) : 'सोना कैसे खोटा हो गया...... सिय्योन के उत्तम पुत्र जो कुन्दन के तुल्य थे, वे कुम्हार के बनाए मिट्टी के घड़ों के समान कैसे तुच्छ गिने गए हैं.......जो स्वादिष्ट भोजन खाते थे, वे अब सड़कों में व्याकुल फिरते हैं.......दयालु स्त्रियों ने अपने ही हाथों से अपने बच्चों को पकाया है.......'।

(ख) सिय्योन के अगुवों के कारण वह विपत्ति आई थी (४ : १३–१६) : 'यह उनके भविष्यवक्ताओं के पापों और उनके याजकों के अधर्म के कारण हुआ है.......लोहू के छींटों से वे यहाँ तक अशुद्ध हैं कि कोई उनके वस्त्रों को नहीं छूता। लोग उनको पुकार कर कहते हैं "और अशुद्ध लोगो, हट जाओ! हमको मत छुओ।"..... 'यहोवा ने अपने कोप से उन्हें तितर-बितर किया'।

(ग) पतन की घड़ी (४ : १७–२०) : 'हमारी आँखें व्यर्थ ही सहायता की बाट जोहते-जोहते रह गई हैं.......हम ऐसी जाति की ओर ताकते रहे जो बचा नहीं सकी.......हमारा अंत निकट आया.......हमारे खदेड़ने वाले आकाश के उकाबों से भी अधिक चलते थे......यहोवा का अभिषिक्त, जो हमारा प्राण था, उनके खोदे हुए गड्ढों में पकड़ा गया'।

(घ) एदोम को उपालंभ (४ : २१–२२) : 'हे एदोम की पुत्री, तू हर्षित और आनंदित रह! ....परन्तु यह कटोरा तुझ तक भी पहुँचेगा....... तेरे अधर्म का दंड वह तुझे देगा'।

(५) पंचम विलाप : दया और पुर्नवास के लिये प्रार्थना (अध्याय ५)।

(क) परमेश्वर हमारी अधीनता की स्थिति की ओर दृष्टि करे (५ : १–१८) 'हे यहोवा, स्मरण कर कि हम पर क्या क्या बीता है.........हमारी नाम धराई को देख.........खदेड़ने वाले हमारी गर्दन पर टूट पड़े हैं.........हमारे ऊपर दास अधिकार रखते हैं.........हमारे लड़के बाले लकड़ी का बोझ उठाते हुए लड़खड़ाते हैं.........सिय्योनपर्वत उदास पड़ा है, उसमें सियार घूमते हैं'।

(ख) परमेश्वर हमें पुनः लौटा लाए (५ : १९–२२) : 'हे यहोवा, तू तो सदा तक विराजमान रहेगा; तेरा राज्य पीढ़ी–पीढ़ी बना रहेगा.........तूने क्यों हमको सदा के लिये भुला दिया है ?.........हे यहोवा, हमको अपनी ओर फेर तब हम फिर सुधर जाएँगे !

४. संरचना और रचनाकार

आधुनिक आलोचना पद्धतियों के प्रारंभ होने से पहले इस पुस्तक के लेखक के संबंध में कोई शंका नहीं की जाती थी। सेपत्वागिता में कथन है कि यिर्मयाह इस पुस्तक का लेखक है और यह साधारणतया मान्य किया जाता था। परन्तु आलोचना की नवीन पद्धतियों के पश्चात इस परंपरागत मत के प्रति आपत्तियाँ उठाई जाने लगी हैं। कारण यह है कि इस पुस्तक के कुछ अंश ऐसे हैं जिनमें यिर्मयाह के विचारों से विरोध पाया जाता है। वि. ५ : ७ में यह कहा गया है कि 'हमारे पुरखाओं ने पाप किया और उनके अधर्म के कामों का भार हमको उठाना पड़ा है'। इस विचार में यिर्मयाह ३१ : २९–३० से विरोध है। विलाप गीत में राजा, पुरोहित और भविष्य वक्ता संबंधी कई कथन हैं (वि. १ : ६, २ : २, ६ : ६, ४ : ७, २०; ५ : १२)। इनमें इन नेताओं के प्रति आदर व्यक्त किया गया है। इसी प्रकार विलापगीत में उपासना-विधि के प्रति इतना सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण है जितना यिर्मयाह से अपेक्षित नहीं है (वि. १ : ४, ६, १९; २ : ६, २०)। मिस्र पर भरोसा करने का विचार विलापगीत ४ : १७ में है। यह यिर्म. ३७ : ५–१० से भिन्न है, जहाँ इस प्रकार के भरोसे की निंदा की गई है।

इन भिन्नताओं को बहुत अधिक महत्व प्रदान करना सरल कार्य है। कारण यह है कि यिर्मयाह का व्यक्तित्व विरोधाभास से पूर्ण है। पहले तो वह लोगों के विरुद्ध परमेश्वर की ओर से आनेवाले न्याय-दंड के साथ तन्मय है (यि. १ : १३ क,), और उसके पश्चात जब लोगों पर दंड आता है तो लोगों के साथ तन्मय हो जाता है (यि. ८ : १९)। यही बात राजा, पुरोहित,

मन्दिर और नबियों के संबंध में उसके व्यक्तित्व में दिखाई देती है। इनके प्रति वह परमेश्वर की ओर दंड की घोषणा भी करता है, और साथ ही दुःख में समवेदना भी प्रकट करता है।

२ रे और ४ थे अध्यायों में इब्रानी वर्णमाला का जो क्रम है वह १ ले अध्याय के क्रम से भिन्न है। इससे यह प्रश्न उपस्थित होता है कि इस पुस्तक की रचना में एक से अधिक रचयिता का हाथ तो नहीं है? दूसरे और चौथे अध्यायों में यरूशलेम के विनाश का चित्रोपम वर्णन है। इससे प्रतीत होता है कि लेखक किसी आँखों देखी घटना का वर्णन कर रहा है। पहले अध्याय से ऐसा लगता है कि घटना के पश्चात वर्णन किया जा रहा है। तीसरे अध्याय में यिर्मयाह की वेदना विद्यमान है। इस अध्याय का पहला अंश यिर्म १५ : १०–१८ में यिर्मयाह के परिवाद के समान है। पाँचवें अध्याय से प्रतीत होता है कि प्रसंग उस समय का है जब बंधुवाई का कुछ समय व्यतीत हो चुका था। इस प्रकार यह प्रतीत होता है कि ये विभिन्न विलाप विभिन्न कालों में लिखे गये और कि कदाचित पाँचवें अध्याय का लेखक शेष पुस्तक के रचयिता से भिन्न व्यक्ति है।

परंपरागत मत को अमान्य करने के लिये हमारे पास पर्याप्त युक्तियाँ नहीं हैं। साथ ही यह आग्रह करना भी उचित नहीं है कि यिर्मयाह ने ही पूरी पुस्तक लिखी। कम से कम इतना निश्चित है कि इस पुस्तक की भावधारा यिर्मयाह नबी से अपेक्षित भावधारा के अनुरूप है।

५. धर्म शिक्षा

इस पुस्तक में उस विपत्ति का भावपूर्ण वर्णन है जिससे बड़ी विपत्ति इस्राएल जाति को उनके समस्त इतिहास में कभी नहीं सहनी पड़ी। जब कष्ट और व्यथा के दिन हमारे जीवन में आते हैं तो इस पुस्तक के समझने के प्रयास से हम परमेश्वर की चिरंतन भलाई के मार्ग पर आ जाते हैं। इस पुस्तक में हम अपने भावजगत में दुःख और शोक की गहराइयों में प्रवेश करते हैं······'हे सब बटोहियो, क्या तुम्हें इस बात की भी चिंता नहीं? दृष्टि करके देखो, क्या मेरे दुःख से बढ़कर कोई और पीड़ा है' (१ : १२)? यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि ये शब्द महानतम दुःख की घटना, ख्रिस्त के क्रूसित होने की घटना से संयुक्त किए गए हैं, क्योंकि जैसे परमेश्वर ने सिय्योन को नहीं बचाया, वैसे ही उसने अपने पुत्र को भी नहीं बचाया।

हम जानते हैं कि सिय्योन ने अपने अपराधों के कारण दुःख सहा। तो भी इस पुस्तक से हम यह सीखते हैं कि हम उस नगरी के प्रति सहानुभूति की

भावना के द्वारा सच्चे मानव बने रहें। साथ ही उन सब लोगों के प्रति जो दुःख सहते हैं, चाहे कारण कोई भी हो, हम सहानुभूति की भावना के द्वारा सदा सच्चे मानव बने रहें। इस पुस्तक में दुःख के तथ्य को उसकी समस्त भयंकरता तथा व्यथा के साथ स्वीकार किया गया है। दुःख से पलायन नहीं करना है, इस तथ्य का सामना करना है और उससे महान एक और तथ्य को हृदयंगम करना है—यही इस पुस्तक का समस्या सम्बन्धी भावात्मक हल है।

यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात है कि विलापगीत में परमेश्वर के सर्वाधिकार पर कहीं शंका नहीं की गई है। उस युग में लोगों के लिए यह अत्यन्त सरल होता कि वे यह कहते कि यहूदा के पतन और यरूशलेम के विनाश का कारण यह है कि कुछ तत्वों की शक्तियाँ इस्राएल के परमेश्वर के अधिकार के बाहर की बात थी। परंतु ऐसी बात की कहीं झलक भी नहीं है। इसके विपरीत उस भयंकर विपत्ति के द्वारा परमेश्वर के सर्वाधिकार तथा उसकी धार्मिकता का समर्थन किया गया है : 'हे यहोवा तू तो सदा तक विराजमान रहेगा; तेरा राज्य पीढ़ी-पीढ़ी बना रहेगा (५ : १९)।

हम यह भी सीखते हैं कि यदि हम पाप करते जाएँ तो पवित्र और धार्मिक परमेश्वर की ओर से हमें दंड की अपेक्षा करनी चाहिए। 'यहोवा सच्चाई पर है, क्योंकि मैं ने उसकी आज्ञा का उल्लंघन किया है' (१ : १८)। 'यहोवा ने जो कुछ ठाना वही किया भी है, जो वचन वह कहता आया है वही उसने पूरा भी किया है' (२ : १७) हम यह शिक्षा प्राप्त करते हैं कि परमेश्वर जिनको दण्ड देने पर बाध्य होता है उन पर दया भी करता है : 'वह मनुष्यों को अपने मन से न तो दबाता है और न दुःख देता है' (३ : ३३)। हम यह सीखते हैं कि सिय्योन के समान यदि हमारा जीवन और यह संसार खंडहरों का ढेर भी हो, तब भी परमेश्वर की सच्चाई और स्वरूप एक स्थाई नींव और आशा का आधार है—'हम मिट नहीं गए; यहोवा की महाकरुणा का फल है, क्योंकि उसकी दया अमर है'.........जो यहोवा की बाट जोहते और उसके पास जाते हैं, उनके लिये यहोवा भला है' (३ : २२, २५)। आशा का यह निश्चित आधार हमारे समक्ष रखा गया है और हमें यह बताया जाता है कि हम उस विनाश से, जो अपने पापों के कारण हम पर आया है, ऊपर उठें : 'हम अपने चाल-चलन को ध्यान से परखें और यहोवा की ओर फिरें' (३ : ४०)। तमसोमा ज्योतिर्गमय (अंधकार से प्रकाश की ओर ले चल) की ओर हमारे विचारों को उन्मुख करने के लिये इस पुस्तक का ३ : १९–३९ अंश विशेष महत्त्व का है।

पैंतीसवां अध्याय

यहेजकेल नामक पुस्तक

१. शीर्षक और प्रामाणिक धर्मशास्त्र में स्थान

इस पुस्तक का नाम उस नबी के नाम पर है जिसकी रचनायें इसमें हैं। पुस्तक के नाम का इब्रानी यहेजकेल है जिसका अर्थ 'परमेश्वर सबल बनाता है' है। सेपत्वागिंता में इसके नाम का रूप इअजकीएल है और वुल्गाता में एजेकिएल है। अंग्रेजी में वुल्गाता का अनुसरण किया गया है। हिन्दी में इब्रानी रूप का अनुसरण है।

इब्रानी बाइबल में यहेजकेल की पुस्तक परवर्ती नबियों के अंतर्गत है। सेपत्वागिंता में तीन नबियों की एक इकाई है, अर्थात यशायाह, यिर्मयाह और यहेजकेल। यह इकाई बारह नबियों की पुस्तक (होशे—मलाकी समूह) के पश्चात है। वुल्गाता में क्रम इसके विपरीत है। अंग्रेजी तथा भारतीय भाषाओं में वुल्गाता के क्रम का अनुसरण किया गया है।

२. विषय सामग्री का सारांश

इस पुस्तक में यहेजकेल नबी के दर्शनों तथा वचनों का संकलन है। ये प्रभु परमेश्वर के सिंहासन–रथ के महान दर्शन से प्रारम्भ होते हैं और नये मंदिर, नई पुनः निर्मित जाति और नये देश की संश्लिष्ट दर्शन से समाप्त होते हैं। ये सब नवीनताएँ परमेश्वर को पवित्रता के साथ पूर्णतया समर्पित हैं। इस पुस्तक में मूल भाग में ही ऐसे वचन हैं जिनमें प्रतीकात्मक रूप से यरूशलेम के पाप की निन्दा की गई है, परन्तु भविष्य में पुनर्स्थापन का निश्चय भी है।

३. रूपरेखा

यहेजकेल —पवित्रता में पुनर्स्थापना का नबी

(१) यहेजकेल की बुलाहट और उसे समादेश (१–३)

(क) दिव्य सिंहासन–रथ का दर्शन (१) : कबार नदी के तीर पर यहेजकेल ने चार जीवधारियों (जिन्हें आगे चलकर करूब कहा गया है) को अग्नि घटा से निकलते देखा। उनके सिर पर बर्फ जैसा श्वेत आकाश मंडल

है। उसके ऊपर नीलम के सिंहासन पर यहोवा आसीन है जिसके चारों ओर इंद्रधनुषी प्रकाश है। प्रत्येक जीवधारी के चार पंख और चार मुख हैं (मनुष्य, सिंह, बैल और उकाब के मुख जैसे)। प्रत्येक के पास फीरोज़ा जैसा एक एक पहिया था। पहियों के घेरों में चारों ओर आंखें ही आंखें थीं। पहिये की बनावट ऐसी थी मानो एक पहिये के भीतर दूसरा पहिया था जो अपनी चारों अलंगों की ओर चल सकता था। इस प्रकार किसी भी दिशा में वे पहिये मुड़ और चल सकते थे। यहेजकेल मुँह के बल गिर पड़ा।

(ख) नबी-कार्य समादेश (२–३) : यहोवा ने यहेजकेल से कहा, 'मनुष्य के संतान, अपने पांवों के बल खड़ा हो, और मैं तुझ से बात करूंगा। तब वह उसे पाँच समादेश देता है : (i) विद्रोही इस्राएल जाति को परमेश्वर का वचन सुनाया जाए—वचन की पुस्तक को यहेजकेल खाता है (२ : १–३:३); (ii) चाहे लोग सुने, व न सुनें, यहेजकेल निडर होकर परमेश्वर का वचन इस्राएलियों को सुनाए (३ : ४–९); (iii) उसे निर्वासितों को वचन पहुँचाना है—आत्मा यहेजकेल को उठाता है और तेलावीब नगर में रहने वालों के पास पहुँचाता है (३ : १०–१५); (iv) वह इस्राएल के लिये पहरुआ और उनके प्राण के लिये उत्तरदायी बनाया जाता है (३ : १६–२१); और (v) जब जब यहोवा उससे बातें करेगा तब ही वह बोलेगा अन्यथा मौन रहेगा (३ : २२–२५)।

(२) यरूशलेम के विरुद्ध प्रथम वचनावलि (४ : ११)

(क) यरूशलेम पर आने वाला घेरा (४–५) : एक ईंट को यरूशलेम के प्रतीक स्वरूप यहेजकेल लेता है और उसके आस पास घेरा डालता है। इस्राएल का संकेत करने के लिये वह अपने बायें पांजर पर लेटता है और यहूदा का संकेत करने के लिये दाहिने पांजर के बल लेटता है और दोनों के अधर्म का भार सहता है। अशुद्ध परिस्थितियों के बीच वह भोजन तैयार कर नपा तुला भोजन करता है। वह अपने सिर और दाढ़ी के बाल मूँड़ता है, और आग, तलवार और आंधी में नष्ट करता है। इस प्रकार यरूशलेम के विनाश का सांकेतिक चित्र उपस्थित करता है।

(ख) इस्राएल के पहाड़ों के विरुद्ध वचन (६–७) : सारे पूजा स्थान नष्ट किये जायेंगे और नगर उजाड़े जाएंगे। एक शेषाँश बचाया जाएगा (६)। अन्त निकट है (७)।

(ग) मंदिर में गुप्त पाप (८–११) : आत्मा यहेजकेल को यरूशलेम ले जाता

है और वहाँ नबी मन्दिर में मूर्तिपूजा देखता है–'डाह की मूर्ति', जन्तुओं की पूजा, तम्मूज और सूर्य की पूजा (८)। सन का वस्त्र पहने हुये एक पुरुष सच्चे लोगों के माथों पर चिन्ह बनाता है। उसके साथ शस्त्रधारी छ: पुरुष उनको घात करते हैं जिनके माथों पर चिह्न नहीं (९)। करूबों के नीचे से अंगारे निकालकर नगर पर छितराए जाते हैं और यहोवा अपने सिंहासन-रथ में जाने को प्रस्तुत हैं (१०)। दंड का वचन कहा जाता है, विशेष कर याज़न्याह और पलत्याह के प्रति; पलत्याह मर जाता है (११ : १–१३)। निर्वासितों को आशा का वचन (११ : १४–२१)। यहोवा का तेज नगर के बीच से उठकर उस पर्वत पर ठहर गया जो नगर की पूर्व ओर है। आत्मा यहेजकेल को कसदियों के देश में बन्धुओं के पास फिर पहुँचा देता है (११ : २२–२५)।

(३) यरूशलेम के विरुद्ध द्वितीय वचनावलि (१२–१९)

(क) आने वाले संकट का अभिनय (१२) : परमेश्वर के आदेश अनुसार यहेजकेल अपना सामान निकालता है और सांझ को अपने हाथ से भीत को फोड़ कर लोगों के देखते हुए सामान सहित चला जाता है। ऐसा ही हाल यरूशलेम के प्रधानों और इस्राएल के सारे घराने का होगा (१२ : १–१६)। यहेजकेल काँपते हुए रोटी खाता है और थरथराते हुए पानी पीता है — ऐसे ही इस देश के निवासी होंगे (१२ : १७–२०)। वचन पर शंका करनेवालों को कहा जाए कि अंत निकट है (१२ : २१–२८)।

(ख) कठोर विपत्तियाँ (१३–१५) : 'हाय, उन मूढ़ भविष्य वक्ताओं पर जो अपनी ही आत्मा के पीछे भटक जाते हैं, और जिन्होंने कोई दर्शन नहीं पाया'! (१३ : १–१६)। हाय, उन स्त्रियों पर जो अपनी कलाइयों के लिये कपड़े बनाकर उन पर जादू के मनके सीती हैं (१३:१७–२३)। जिन्हों ने मूर्तियां अपने मनों में स्थापित की हैं उनको दंड दिया जाएगा (१४ : १–११)। चाहे नूह, दानिय्येल और अय्यूब भी उस नगर में हों तो भी दंड से मुक्ति नहीं होगी। तलवार, अकाल, दुष्ट जंतु और मरी, यह चार प्रकार का दंड अवश्य आएगा (१४ : १२–२३)। यरूशलेम जंगल की अंगूर-लता के समान है वह केवल आग में झोंके जाने के योग्य है (१५)।

(ग) यरूशलेम की अयोग्यता (१६) : यरूशलेम की उत्पत्ति एमोरी पिता और हित्ती माता से हुई। जन्म के दिन ही घृणित होने के कारण खुले मैदान में वह फेंक दी गई थी। यहोवा ने उसे उठाया, बढ़ाया, ऊँचा

किया और वाचा बाँधकर उसका प्रेम प्राप्त किया (१६ : १–१४)। परंतु पति पराणय होने के बदले वह अपनी सुन्दरता पर भरोसा करके व्यभिचार करने लगी। इसलिये उसे दंड दिया जाएगा (१६ : १५–४३)। तेरी बहिनें शोमरोन और सदोम से कुछ तू अच्छी नहीं है (१६ : ४४–५२)। अतएव जब परमेश्वर यरूशलेम से अपनी शाश्वत वाचा बांधेगा तो यह उसकी योग्यता के कारण नहीं, वरन् परमेश्वर की करुणा के कारण होगा (१६ : ५३–६३)।

(घ) उकाबों का रूपक (१७) : एक बड़े उकाब ने (नबूकदनेस्सर) लबा-नोन जाकर एक देवदार की (यहोयाकीन) फुनगी नोच ली, और उसे लेनदेन करने वालों के देश (बाबुल) में ले गया; उसने उस देश का कुछ बीज (सिदकिय्याह) लेकर बोया, और वह उगकर छोटी फैलने वाली अंगूर की लता हो गई जिसकी डालियाँ उसकी ओर झुकीं। तब वह अंगूर लता अपनी डालियां दूसरे बड़े उकाब (फिरौन होप्रा) की ओर झुकने लगी जिसने उसे बहुत नदियों वाले देश (मिस्र) में लगाया—परंतु वह क्या फूले फलेगी? परमेश्वर देवदार की ऊँची फुनगी में से कुछ लेकर लगाएगा और वह डालियां फोड़कर बलवंत और उत्तम देवदार (मसीह) बन जाएगा, और उसके नीचे सब पक्षी बसेरा करेंगे।

(च) व्यक्तिगत दायित्व (१८) : लोग कहते हैं, 'जंगली अंगूर तो पुरखा लोग खाते, परंतु दाँत खट्टे होते हैं संतान के'। परन्तु प्रभु कहता है, सभी के प्राण मेरे हैं। जो कोई धर्मी है और न्याय और धर्म के काम करे वह निश्चय जीवित रहेगा। धर्मी मनुष्य का दुष्ट पुत्र निश्चय मरेगा और उसका खून उसी के सिर पड़ेगा। दुष्ट पिता का धर्मी पुत्र निश्चय जीवित रहेगा और जो दुष्ट मनुष्य धर्म के काम करेगा वह भी जीवित रहेगा। इस प्रकार परमेश्वर न्यायी और सच्चा है।

(छ) यहूदा के राजाओं के प्रति रूपकात्मक विलाप (१९) : यहूदा की माता कैसी सिंहनी थी और कैसे अपने बच्चों को पालती पोसती थी। लोग उसके एक बच्चे (यहोआहाज) को नकेल डाल कर मिस्र में ले गए। दूसरे बच्चे (याहोयाकीन) को कठघरे में बन्द कर बाबुल ले गए। यहूदा की माता दाखलता के समान थी (अधीनस्थ राज्य) जिसमें एक दृढ़ टहनी (सिदकिय्याह) थी, परंतु वह लता को उखाड़ कर भूमि पर गिराई गई और अब वह जंगल में लगाई गई है जिससे कोई मोटी टहनी उसमें न रहे।

(४) यरूशलेम के विरुद्ध दिव्य-वचनावलि (२०–२४)

(क) इस्राएल का विश्वासघात और यहोवा का तेज (२० : १–४४) : जब इस्राएल जाति को मिस्र से मुक्त किया और परमेश्वर ने उसको चुना, उस समय यह भी प्रतिज्ञा की कि मैं तुझे उस देश में पहुँचाऊँगा जो सब देशों का शिरोमणि है। तो भी उस जाति ने मिस्र में और निर्जन प्रदेश में भी बार बार परमेश्वर के प्रति बलवा किया। केवल अपने ही नाम के कारण परमेश्वर ने उनको बचाया। उसी प्रकार अपने नाम के कारण परमेश्वर उनका अनुशासन करेगा और उनमें पवित्र ठहरेगा।

(ख) परमेश्वर की ओर से आग और तलवार (२० : ४५–२२ : ३१) : दक्षिण के वन सब भस्म हो जाएंगे (२० : ४५–४६)। यरूशलेम के विरुद्ध यहोवा की तलवार म्यान में से खिंचेगी – वह सान चढ़ाई हुई तलवार होगी। बाबुल का राजा तिर्मुहाने या दोनों मार्गों के निकलने के स्थान पर यह बूझने के लिये खड़ा है कि वह अपनी तलवार लेकर यरूशलेम की ओर बढ़े या अम्मोनियों के रब्बा नगर की ओर। उसकी तलवार यरूशलेम की ओर बढ़ी, परंतु अम्मोनियों को भी उस तलवार का शिकार होना पड़ेगा (२१)

यरूशलेम हत्यारा नगर है। अतः यहोवा उसको बटोरकर अपने रोष की आग में फूंकेगा और उसे भट्टी में पिघलाएगा (२२ : १–२१)। हाकिमों, पुरोहितों और लोगों ने यहोवा की आज्ञाओं का उलंघन किया है। किसी ने परमेश्वर के सामने पश्चाताप भी नहीं किया। अतः यरूशलेम अवश्य नष्ट किया जाएगा (२२ : २३–३१)।

(ग) यहोवा की विश्वासघातिनी पत्नियां (२३) : आहोला (अर्थात् जिसके पास तंबू हैं) और ओहोलीबा (अर्थात् जिसमें तंबू है) यहोवा की पत्नियां हैं। ओहोला तो शोमरोन है, और ओहोलीबा यरूशलेम है। बड़ी बहिन शोमरोन को उसके व्यभिचार के लिये अपने मित्र अश्शूर के माध्यम से ही दंड दिया गया। छोटी अर्थात यरूशलेम और भी अधिक व्यभिचारिणी है और उसे उसके मित्र कसदियों के माध्यम से ही दंड दिया जाएगा।

(घ) हण्डे का दृष्टांत (२४) : जिस दिन बाबुल के राजा ने यरूशलेम पर घेरा डाला उस दिन यहेजकेल ने मोर्चा लगे हुए पीतल के हंडे का दृष्टाँत कहा। यरूशलेम के नागरिक उस में डाले हुये मांस के समान हैं (२१ : १–४)। यहेजकेल को कहा जाता है कि वह अपनी पत्नी की मृत्यु पर विलाप न करे, और नष्ट की जाने वाली यरूशलेम नगरी पर भी विलाप

न करे (२४ : १५–२७)।

(५) विदेशी राष्ट्रों के विरुद्ध दिव्य-वचन (२५–३२)

अम्मोन, मोआब, एदोम और पलिश्ती राष्ट्रों के विरुद्ध वचन : सोर एक जहाज के समान नष्ट होगा। सोर के नाश पर विलाप गीत (२६–२८)। मिस्र के विरुद्ध वचन जिसके अन्त में यह कहा गया है कि महाप्रतापी फिरौन अधोलोक को जायगा (२९–३२)।

(६) आशा के दिव्यवचन (३३–३९)

(क) पहरुआ (३३ : १–२०) : पहरुए के रूप में नबी के उत्तरदायित्व का वर्णन, साथ ही यह वर्णन कि परमेश्वर न्याय करने तथा क्षमा करने को तैयार है।

(ख) यहेजकेल का मुँह खुलता है—अच्छा मेषपाल (३३ : २१–३५ : १५): जब यहेजकेल यरूशलेम के विनाश के विनाश का समाचार सुनता है तब उसका गूँगापन हट जाता है (३३ : २१–२२)। वह उन लोगों की, जो बंधुवाई में नहीं ले जाए गए, उनके पापों के कारण निंदा करता है, और जो बंधुवाई में हैं उनके घिनौने कामों की भी निंदा करता है (३३ : २३–३२)। जो रखवाले अपना ही पेट भरते हैं उन पर न्यायदंड की घोषणा करता है (३४ १–१०)। परमेश्वर स्वयं ही अच्छा रखवाला है (३४ : ११–१६) जो भेड़ भेड़ के बीच न्याय करता है (३४ : १७–२२), और 'भेड़ों पर एक ऐसा चरवाहा ठहराऊंगा जो उनकी चरवाही करेगा, वह मेरा दास दाऊद होगा, वही उनको चराएगा और वही उनका चरवाहा होगा', और भेड़ों के साथ शांति की वाचा बाँधूंगा (३४ : २३–३१)। सेईर पर्वत (अर्थात् एदोम राष्ट्र) उजाड़ किया जाएगा जिससे वह परमेश्वर को जान लेगा (३५)।

(ग) पर्वतों के लिए आशा (३६) : इस्राएल के पहाड़ अन्य राष्ट्रों ने लूट लिये थे, परन्तु अब वे फूलें-फलेंगे कि सब लोग जान लें कि यहोवा ही परमेश्वर है (३६ : १–१५)। वह अपने पवित्र नाम के कारण कार्य करेगा और इस्राएल का उद्धार करेगा। वह अपने लोगों को एक नया मन देगा और उनके भीतर नई आत्मा उत्पन्न करेगा और उजाड़ देश को एदेन की बारी के समान संपन्न बनाएगा (३६ : १६–३८)।

(घ) सूखी हड्डियों से भरी तराई का दर्शन (३७) : विनष्ट इस्राएल की उपमा सूखी हड्डियों से दी जाती है जो तराई में भरी हैं। यहेजकेल को उन हड्डियों से नबूवत करने की आज्ञा दी जाती है और उसकी नबूवत

पर उनमें गति हुई, सांस आई और एक बड़ी सेना हो गई (३७ : १–१४) । जैसे दो लकड़ियां (यहूदा और यूसुफ) एक में जोड़ी जाती हैं, उसी प्रकार परमेश्वर यहूदा और इस्राएल को जोड़ेगा और उनका दाऊद वंशी एक चरवाहा और राजा होगा और परमेश्वर उनके साथ शांति की शाश्वत वाचा बांधेगा (३७ : १५–२८) ।

(च) अंतिम विजय (३८–३९) : उत्तर दिशा से गोग अपनी सेनाओं तथा संगी राष्ट्रों के साथ पुनर्वसित इस्राएल के प्रति आक्रमण करेगा परन्तु परमेश्वर उसे ओलों, आग और गंधक से नष्ट करेगा (३८), और उसके अस्त्र-शस्त्र जलाऊ लकड़ी के समान तथा उसकी सेना पक्षियों और वन पशुओं का आहार होगी (३९) । परमेश्वर का पवित्र नाम सबके सामने महान होगा ।

(७) नई इस्राएल का दर्शन (४०–४८)

(क) नया मन्दिर (४०–४१) : दर्शन की अवस्था में यहेजकेल इस्राएल के देश में लाया जाता है । वहाँ एक पुरुष उसके सामने मन्दिर संबंधी परमेश्वर की योजना का मापन बांस के द्वारा करता है ।

(ख) नई उपासना विधि (४२–४६) : याजकों के लिये कोठरियों का मापन (४२) । पूर्वी फाटक से सिंहासन-रथ पर परमेश्वर का तेज आता है (४३ : १–५) । परमेश्वर की वाणी पवित्र स्थान से आती है और यह कहती है कि वह वहाँ अनंतकाल तक निवास करेगा (४३ : ६–१२) । होमबलि की वेदी बलि से पवित्र की जाती है (४३:१३–२७) । वह पूर्वमुखी द्वार जिससे परमेश्वर का तेज प्रविष्ट हुआ था अब सदा के लिए बंद हो गया है, और केवल प्रधान ही वहाँ भोजन करने बैठ सकेगा । सादोक की संतान ही सेवा-भक्ति के लिए आऐंगे । लेवीय लोग अब अधीनस्थ टहलुए हो गए हैं (४४) । अर्पण और बलि के लिए नियम-उपनियम निर्धारित किए गये (४५–४६) ।

(ग) नया पवित्र-देश (४७–४८) : भवन की डेवढ़ी के नीचे से एक सोता निकलकर पूर्व ओर बह रहा है । वह किद्रोन घाटी में से बहता हुआ मृत्यु सागर तक जाता है । ज्यों-ज्यों वह आगे बढ़ता है त्यों-त्यों गहरा होता जाता है और उसके दोनों तटों पर जीवन और हरे भरे वृक्ष होंगे । मरुभूमि उपजाऊ खेतों में बदल जाएगी । उस नदी के किनारे फलदाई वृक्ष होंगें, जिनके फल खाने के, और पत्ते औषधि के काम आएँगे । मृत्यु सागर में भी बहुत मछलियां हो जाएँगी (४७ : १–१२), क्योंकि नदी का जल

पवित्र स्थान से निकला है। यह देश गोत्रों में विभाजित होगा। यरूशलेम के आस पास लेवियों का भाग होगा। इस नगर के बारह फाटक होंगे, और इस नगर का नाम 'यहोवा शम्मा' अर्थात यहोवा वहाँ है' होगा (४७ : १३–४८ : ३५)।

४. संरचना, रचयिता, तिथि

यहेजकेल की पुस्तक की विशिष्ट शैली से ही उसकी अखंडता प्रमाणित होती है। इसकी शैली में कल्पना की उड़ान, वस्तु की संश्लिष्टता, प्रतीकात्मक कार्य और रूपक का प्रचुर उपयोग हुआ है। दर्शनों के वर्णन में अपूर्व चित्रमयता है और उपासना विधियों की ओर विशेष झुकाव है। इसकी संरचना के संबंध में परंपरागत मान्यता यह है कि यहेजकेल ने इसकी रचना की। पुस्तक के साधारण पठन से इस मान्यता पर शंका करने का कोई कारण नहीं जान पड़ता। परंतु १ : २ में जो जीवनी संबंधी टिप्पणी है और दिव्य वचनों के वर्तमान क्रम के आधार पर यह अलबत्ता माना जा सकता है कि इस पुस्तक का कोई संपादक अथवा संशोधनकर्त्ता रहा होगा। २७ : १०–२५ में सोर नगर के व्यापार का जो गद्यात्मक वर्णन है उससे प्रसंग की काव्य धारा में व्यतिक्रम जान पड़ता है और यह अनुमान किया जा सकता है कि इस क्रम में किसी संपादक का हाथ है। प्रथम पुरुषवाचक एक-वचन सर्वनाम के प्रयोग से यह स्पष्ट होता है कि इस अंश का लेखक यहेजकेल स्वयं है।

दर्शनों और दिव्य वचनों की तिथियाँ ठीक ठीक दी गई हैं। सबसे पहली तिथि जिसका उल्लेख हुआ है वह १ : २ में इस प्रकार है, 'यहोयाकीम राजा की बंधुवाई के पाँचवें वर्ष के चौथे महीने के पाँचवें दिन को यहोवा का वचन ....यहेजकेल के पास पहुँचा'। यह वर्ष ई. पू. ५९३ है। अतः प्रारंभिक दर्शन की तिथि ई. पू. १ जुलाई ५९३ मानी जा सकती है। विद्वानों के मतानुसार इस युग के तिथि निर्धारण में एक वर्ष का हेर-फेर हो सकता है। अंतिम तिथि जिसका उल्लेख हुआ है वह याहोयाकीन का सत्ताईसवाँ वर्ष है (२९ : १७)। यह वर्ष ई. पू. ५७१ है। इस प्रकार यहेजकेल का नबूवत-काल ई. पू. ५९३ से ५७१ है। यदि संशोधनकर्त्ता ने इस पुस्तक का संपादन किया तो वह ई. पू. ५७१ के कुछ समय बाद ही होगा।

इधर कुछ वर्षों से इस पुस्तक के संबंध में अनेक आलोचनात्मक मान्यताऐं प्रस्तुत की गई हैं। पुस्तक की साहित्यिक अखंडता के संबंध में शंका की गई है। यह मत व्यक्त किया गया है कि पुस्तक के काव्यात्मक अंशों का

जैसे २५–३२ और ३५ अध्यायों में पाये जाते हैं और १–२४ अध्यायों में जो गद्यात्मक अंश हैं, उनका रचयिता एक ही व्यक्ति नहीं हो सकता। अथवा यह मत व्यक्त किया गया है कि दो संस्करणों का, एक प्रथम पुरुषवाचक सर्वनाम वाला (१ : ४) और दूसरा तृतीय पुरुषवाचक सर्वनाम वाला (२४ : २४), इस पुस्तक में एकीकरण किया गया है। अथवा यह मत व्यक्त किया गया है कि कई संपादकों ने यहेजकेल के उन दिव्यवचनों का संकलन किया है जो मौखिक रूप से प्रचलित थे।

यरूशलेम के मन्दिर में मूर्तिपूजा के लम्बे वर्णन हैं (८)। ये दर्शन की कल्पना नहीं वरन् आंखों देखे प्रतीत होते हैं। ११ : १३ में यह बतलाया गया है कि यहेजकेल की नबूवत के फलस्वरूप पलत्याह मर गया। यदि यहेजकेल यरूशलेम में उपस्थित हो तो यह घटना उचित समझी जा सकती है। बाबुल में रह कर नबूवत की जाए और उससे घटना यरूशलेम में घटे यह कुछ उतना बुद्धि संगत नहीं जान पड़ता। इसी प्रकार कुछ अन्य घटनायें हैं जो नबी के यरूशलेम में उपस्थित रहने से संगत जान पड़ती हैं और बाबुल में रहने से असंगत (१२ : २–३; ५ : २; २० : ३१)। ऐसे तथ्यों के आधार पर यह मान्यता व्यक्त की जाती है (जो ८ : ३ में व्यक्त विचार के प्रतिकूल जान पड़ती है) कि यहेजकेल की नबूवत का कुछ भाग पलिश्तीन में हुआ होगा। कुछ तो यहाँ तक कहते हैं कि उसका सम्पूर्ण नबूवत कार्य पलिश्तीन में हुआ और किसी सम्पादक ने ही इस प्रकार प्रस्तुत किया मानो वह बाबुल में किया गया है।

१ : १ में 'तीसवें वर्ष' का उल्लेख है। इस उल्लेख से यहेजकेल के जीवन का ३० वां वर्ष समझा जाता है। इस संबंध में एक मान्यता यह है कि तीसवें वर्ष से मनश्शे के राज्य (ई० पू० ६८७–६४२) के तीसवें वर्ष का संकेत होता है। कारण यह है कि यहेजकेल की पुस्तक में जिन पापों की निन्दा की गई है वे योशिय्याह के धर्मसुधार के पूर्व मनश्शे के राज्य में किए गए घिनौने कामों के अनुरूप हैं। इस मान्यता के आधार पर यहेजकेल निर्वासन-पूर्व कालीन नबी हो जाता है।

यहेजकेल की पुस्तक के कुछ अंश प्रकाशात्मक ग्रंथों के सदृश हैं (३८–३९)। इस आधार पर यह मान्यता व्यक्त की जाती है लेखक मकाबी काल में था (अर्थात ई० पू० २०० के पश्चात्)। प्रकाशनात्मक साहित्य के कला-शिल्प की एक विशेषता यह है कि लेखक किसी प्राचीनकालीन पात्र के सत्य या कल्पना पूर्ण दर्शनों में अपने विचारों का आरोपण करता है। इस विशेषता के आधार पर यह मान्यता व्यक्त की जाती है कि यहेजकेल का इस पुस्तक के लेखक के

मानस में ही अस्तित्व है, और यदि वह कोई वास्तविक व्यक्ति था, तो वह अपने समकालीन लोगों में प्रायः अज्ञात था।

इस प्रकार यहेजकेल की पुस्तक के संबंध में अनेक मान्यतायें हैं और उनमें मतैक्य नहीं है। इस संक्षिप्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि परंपरागत मान्यता और पुस्तक विषय सामग्री से व्यंजित तथ्य—कि यहेजकेल बाबुल में बंधुआई के समय नबी था और प्रायः समग्र सामग्री का रचयिता था—के संबंध में शंका करने के लिए कोई ठोस कारण नहीं है।

५. **यहेजकेल की जीवनी की रूपरेखा**

यहेजकेल पुरोहित था। वह कदाचित सादोक के वंश का था। वह बूजी का पुत्र था (१ : २)। यदि १ : १ में उल्लिखित तीसवें वर्ष से उसकी आयु का संकेत होता है तो ई० पू० ६२३ में उसका जन्म हुआ होगा। उसका नबूवत कार्य ई० पू० ५९३ से ५७१ तक था। वह ई० पू० ५९९ या ५९८ में बंधुआ बनाकर यरूशलेम से बाबुल को ले जाया गया। वह कसदियों के देश में कबार नदी के तीर पर तेल-अबीब नगर में बंधुओं के बीच रहता था। यह कदाचित फुरात नदी से निकाली गई प्राचीन नहर थी और कीलाक्षर लेखों में नारू कबारी (Naru Kabari) कहलाती थी। बंधुआई में पांच वर्ष रहने के पश्चात् उसे परमेश्वर के सिंहासन-रथ के तेजोमय एवं भव्य दर्शन के माध्यम से नबूवत-कार्य के लिए बुलाहट मिली (ई० पू० ५९३)। वह विवाहित था और उसका घर भी था (८ : १)। बंधुओं के पुरनिये उसके पास परामर्श के लिये आते थे (१४ : १; २० : १) वह अपने लोगोंकी 'पहरुए' और मंडलीपाल (Pastor) के रूप में सेवा करता था। अपनी नबूवतों का संदेश देने के हेतु वह कई बार प्रतीक-कार्यों का उपयोग करता था। कई बार बड़े-बड़े और उत्सुक जन समूह उसकी सुनने को आते थे (३३ : ३०–३२)। जब उसकी पत्नी मर गई, तो उसे शोक करने के लिए मना किया गया। यह इस बात की प्रतीक था कि यरूशलेम के भावी विनाश के लिए शोक न किया जाए, क्योंकि वह परमेश्वर की ओर से निश्चित किया गया था (२४ : १५–१७)। जब तक यरूशलेम के विनाश की सूचना न आई तब तक वह गूंगा रहा (२४ : २७; ३३ : २१–२२)। यरूशलेम के विनाश के पश्चात यहेजकेल के दिव्य वचनों में परिवर्तन आया। वे दंड-वचन न होकर आशा-वचन बन गए। अपने दर्शन में उसने पुनर्वसित भवन, लोग और देश को देखा जो पवित्रता में परमेश्वर को अर्पित किए गए।

(यहेजकेल के काल के तिथिक्रम के लिए, यिर्मयाह के काल के तिथिक्रम का अवलोकन कीजिए, दे अध्याय तैंतीस, बिंदु ७)

६. धर्मशिक्षा

यहेजकेल के दिव्यवचनों और विचार धारा की प्रमुख धारणा यह है कि परमेश्वर की पवित्रता लोकातीत है। १–३ अध्यायों में नबी की बुलाहट के समय परमेश्वर के सिंहासन-रथ का भव्य दर्शन नबी को होता है। दर्शन में परमेश्वर की लोकातीत पवित्रता प्रकट होती है। ४०–४८ अध्यायों में छुड़ाए हुए और पुनर्वसित देश का दर्शन है, जो परमेश्वर की पवित्रता को अर्पित है। परमेश्वर की पवित्रता पहले दर्शन से इस अंतिम दर्शन तक प्रकट होती रहती है। परमेश्वर की इस लोकातीत पवित्रता के अनुरूप यहेजकेल अपने आप को 'मनुष्य की संतान' कहता है (२ : १; ३ : १)। इस पद से मनुष्य का सीमित प्राणी होना, दुर्बलता और अशुद्धता का बोध होता है। यहेजकेल इतना अभिभूत हो जाता है कि उसे खड़े होने और सुनने के लिये परमेश्वर की ओर से एक विशेष आदेश की आवश्यकता होती है।

परमेश्वर के समस्त कार्य, चाहे वे कठोर न्यायदंड के हों अथवा उद्धार की करुणा के हों, परन्तु उनका उद्‌गम परमेश्वर के कल्याणकारी उद्देश्य और पवित्र स्वभाव से होता है (११ : १६–२१)। यरूशलेम का विनाश इसलिए हुआ कि परमेश्वर के पवित्र नाम की प्रतिष्ठा बनी रहे, जिस को इस्राएलियों ने वाचा के उलंघन से भ्रष्ट किया था। (३६ : २०)। पाप की भयानकता इस बात में है कि वह परमेश्वर की पवित्रता के प्रति उत्पात है। इस्राएल के उद्धार और पुनर्स्थापना की प्रतिज्ञा का आधार भी यही है कि परमेश्वर के नाम का गौरव सब जातियों में सुरक्षित होगा (३६ : २३–२४)। इस प्रकार इस्राएल का उद्धार और पुनर्स्थापना किन्हीं मानवीय योग्यताओं पर नहीं, परन्तु परमेश्वर के मुक्त अनुग्रह पर आधारित है, जिसका पवित्र नाम सारी जातियों में प्रतिष्ठित होगा।

यहेजकेल की पुस्तक में आशा का महान संदेश है। जब यहूदा राज्य का पतन हुआ और यरूशलेम नष्ट किया गया, तो यह स्वाभाविक बात थी कि जनता के हृदय में नैराश्य और अनास्था की भावना आ जाए और वे सोचने लगें कि यहोवा पराजित हो गया और अपने लोगों को बचाने में असमर्थ है। इस नैराश्य में यहेजकेल आशा का संदेश लेकर आता है। यहोवा पराजित नहीं होता है। इसके विपरीत सच बात यह है कि उसने नबियों को दिया हुआ अपना वचन पूरा किया है और सिद्ध किया है कि उसका वचन सत्य है। इसलिये उद्धार संबंधी उसकी प्रतिज्ञा भी सत्य होगी। शर्त यह है कि लोग पश्चाताप करें। उसने अपना पवित्र अभिप्राय वाचा में प्रकाशित किया है। और वह उसे अवश्य पूर्ण करेगा (१६ : ६०)। इस कार्य की पूर्ति में

उसकी सामर्थ सीमित नहीं है। वह अपने लोगो की सूखी हड्डियों को भी सप्राण कर सकता है (३७ : ३क.)। इस प्रकार परमेश्वर के पवित्र स्वभाव का जो प्रकाशन इस्राएल के साथ बाँधी गई वाचा में है, वही पवित्र स्वभाव यहेजकेल द्वारा प्रस्तुत आशा के संदेश का आधार है।

यहेजकेल ने परमेश्वर की लोकातीत पवित्रता का दर्शन किया। उसी प्रकार उसने यह भी देखा कि आशा का सुसंदेश भी काल और इतिहास के प्रवाह से परे है। पवित्र जाति की पुनर्स्थापना से दूसरी जातियों में ईर्ष्या और शत्रुता के भाव उत्पन्न होंगे। परिणाम स्वरूप दुष्टता की शक्तियों और परमेश्वर के लोगों के बीच एक अन्तिम संघर्ष होगा, जिसमें परमेश्वर विजयी होगा (दे. अध्याय ३८–३६, गोग और उसकी सेनाओं का वर्णन)। इस अंतिम युद्ध के पश्चात परमेश्वर सदा अपने लोगों के साथ रहेगा, वह उनसे अपना मुँह फिर कभी न फेर लेगा (३६ : २६)। वह अन्तिम संघर्ष या युगाँत सम्बन्धी युद्ध का विचार परवर्ती काल में उत्पन्न होने वाले प्रकाशनात्मक साहित्य की एक विशिष्टता बन गई।

यहेजकेल ने शिक्षा दी कि परमेश्वर व्यक्तियों और जातियों, व्यष्टि और समष्टि दोनों के लिये चिंताशील रहता है। उसका न्याय दोनों पर समान रूप से लागू होता है (१८ : ४)। जब लोग चिढ़चिढ़ाने लगे कि वे अपने पूर्वजों के पापों के कारण दुःख उठा रहे हैं (१८ : २), तब यहेजकेल ने परमेश्वर के न्याय और क्षमा दोनों के क्रियान्वन की व्याख्या की। यदि किसी व्यक्ति पर दंड आता है, तो इसका अर्थ यह है कि वह स्वयं पाप में है और केवल उसके पुरखा के कारण नहीं है। यदि उसे क्षमा प्राप्ति चाहिये तो वह स्वयं परमेश्वर के सामने पश्चाताप कर लौट आए। इस प्रकार, यद्यपि यहेजकेल यह मानता था कि पाप के प्रतिफल का दायित्व समाज और जाति पर भी है, तथापि परमेश्वर के सामने मूलतः व्यक्ति पर दायित्व है (१८ : २०)।

यहेजकेल के वचनों से यह शिक्षा भी मिलती है कि मनुष्य का संपूर्ण जीवन परमेश्वर की पवित्र इच्छा के अधीन होना चाहिये। पुनर्स्थापित देश और जाति और उसके जीवन के केन्द्र में आराधना के स्थान के दर्शन की मूल बात यही है (४०–४८)। लोगों के साथ व्यवहार में परमेश्वर का साध्य यह है कि परमेश्वर के राज्य की स्थापना हो, और उसके पवित्र नाम की पवित्रता की स्थापना का साधन हैं उसके समर्पित लोग। यदि हम नये नियम की भाषा का प्रयोग करें तो कह सकते हैं कि उसके राज्य और पवित्र नाम की स्थापना का साधन मंडली या कलीसिया है (४३ : ७)। यहेजकेल ने एक महान् कार्य यह किया कि उसने लोगों को इस विचार में अग्रसर किया कि

वे अपने को राजनीतिक इकाई न मानकर परमेश्वर की कलीसिया के रूप में मानें। इसके अतिरिक्त, परमेश्वर को अपने पवित्र स्थान में स्थान देने से हमें एक शाश्वत स्रोत मिलता है जिससे परमेश्वर के लोगों के लिये और समस्त संसार के लिये जीवन का जल बहता है। जीवन का सोता परमेश्वर के भवन से निकलता है और एक बड़ी नदी बन जाता है, जिससे सब जातियों को जीवन मिलता है और मृत्यु सागर भी संजीव हो जाता है (४७ : १–१२)। इस प्रकार यहेजकेल में नये नियम के सुसमाचार का पूर्वाभास है। यह सुसमाचार वहाँ प्रारम्भ होता है जहाँ परमेश्वर स्वयं को प्रकाशित करता है और समस्त विश्व को आशिष देने की ओर प्रवाहित होता है।

छत्तीसवां अध्याय

दानिय्येल की पुस्तक

१. शीर्षक और प्रामाणिक धर्मशास्त्र में स्थान

इस पुस्तक का नाम उसमें वर्णित घटनाओं और दर्शनों के प्रमुख पात्र के नाम पर रखा गया है। इब्रानी में इसका नाम 'दानिय्येल' है। इस शब्द का अर्थ 'परमेश्वर मेरा न्यायी है'। सेपत्वागिता 'दानिएल' है। वुलगाता और अंग्रेजी में भी दनिएल है। हिन्दी में इब्रानी रूप स्वीकृत हुआ है। विभिन्न बाइबलों में इसका स्थान भिन्न है। इब्रानी बाइबल में इसे लेखों (कतूबीम) के अन्तर्गत स्थान दिया गया है, नबियों में नहीं। उसमें एस्तेर के पश्चात इसे स्थान दिया गया है। सेपत्वागिता, वुलगाता और अंग्रेजी तथा भारतीय भाषाओं की बाइबलों में इसे नबियों की पुस्तकों के अन्तर्गत स्थान दिया गया है।

इसकी वस्तु-सामग्री भी विभिन्न बाइबलों में भिन्न है। इब्रानी बाइबल में सामग्री का रूप न्यूनतम है। काल्विनी परंपरा की अंग्रेजी बाइबलों में भी न्यूनतम रूप विद्यमान है। सेपत्वागिता में इसका विस्तृत रूप है। अतिरिक्त सामग्री में तीन इकाइयां हैं: सूसन्ना की कथा (जो प्रारंभ में पृथक इकाई है), तीन पवित्र युवकों का गीत (दानिय्येल की पुस्तक में ३ : २३ के पश्चात रखा गया है) और बेल एवं अजगर (जो अंत में पृथक इकाई है)। वुलगाता के क्लेमेंती संस्करण में तीन पवित्र युवकों का गीत ३ : २३ के बाद रखा गया और अन्य दो इकाइयों को पुस्तक के अंत में। प्रोतेस्तंत लोग तीनों इकाइयों को अपक्रिफा अर्थात ज्ञानवर्धक ग्रंथों के अन्तर्गत स्थान देते हैं।

इब्रानी बाइबल में यद्यपि इस पुस्तक की लिपि एक है तथापि यह दो भाषाओं में लिखी गई है। १ : १–२ : ४ और ८ : १–१२ : १२ इब्रानी में हैं, और २ : ४–७ : २८ अरामी भाषा में। सेपत्वागिता में जो अतिरिक्त सामग्री है वह यूनानी में ही है। यह सामग्री इब्रानी अनुवाद है अथवा नहीं यह एक समस्या है।

इब्रानी बाइबल में जो पदों की संख्या है वह अंग्रेजी बाइबल से भिन्न है। उदाहरणार्थ इब्रानी में जो ४ : १ है वह अंग्रेजी में ४ : ४ है।

२. विषय सामग्री का सारांश

दानिय्येल की इब्रानी पुस्तक में दानिय्येल और उसके तीन मित्रों की कथा है। ये चारों बाबुल में बंधुए थे और अपने विश्वास में पक्के रहे। प्रत्येक परीक्षा और सताव में, यहाँ तक कि राजा द्वारा सताव में भी परमेश्वर उनका रक्षक रहा। इसके अतिरिक्त परमेश्वर ने अनेक दर्शनों द्वारा अपने उन्मीलित होते हुए अभिप्राय के रहस्य को दानिय्येल पर प्रकट किया।

सेपत्वागिंता में जो अतिरिक्त सामग्री है उसमें हमें यह बताया जाता है कि निर्दोषों को बचाना तथा झूठी उपासना की प्रतिष्ठा कम करना दानिय्येल के जीवन की विशेषता था।

३. रूपरेखा

दानिय्येल--विश्वास के प्रति दृढ़ निष्ठा

(१) दानिय्येल और उसके साथियों की कथाएँ (१-६)

(क) राजदरबार में दानिय्येल और उसके साथी (१) : यहूदी बंधुओं में से दानिय्येल और उसके साथी तीन वर्ष के प्रशिक्षण के लिये चुने जाते हैं। वे राजा का भोजन खाने से इन्कार करते हैं कि अपने धर्म के साथ समझौता न करना पड़े। फिर भी वे जब राजा के समक्ष प्रस्तुत किए जाते हैं, तो बुद्धि और प्रवीणता में वे अन्य लोगों से श्रेष्ठ पाए जाते हैं।

(ख) नबूकदनेस्सर का विस्मृत स्वप्न (२) : राजा नबूकदनेस्सर स्वप्न देखता और भूल जाता है। वह व्याकुल होता है। तब उसने टोन्हे आदि को बुलवाया कि उसे स्वप्न बताएँ। परंतु वे बता न सके। दानिय्येल को इसकी सूचना मिलती है। वह अपने मित्रों की प्रार्थना मान लेता है। परमेश्वर की सहायता से वह राजा को स्वप्न और अर्थ दोनों बताता है : एक पत्थर किसी के हाथ के बिन खोदे पहाड़ में से उखड़ा, और उसने सोने, चांदी, पीतल, लोहे और लोहा मिली मिट्टी की लंबी चौड़ी मूर्ति को चूर-चूर कर दिया। इसका अर्थ यह है कि चार राज्यों के पश्चात स्वर्ग का परमेश्वर एक ऐसा राज्य उदय करेगा जो अनंतकाल तक न टूटेगा और न वह किसी दूसरी जाति के हाथ में दिया जाएगा।

(ग) आग का भट्ठा (३) : पूरा न म मैदान में नबूकदनेस्सर राजा ने सोने की मूरत स्थापित की। शद्रक, मेशक और अबेनदगो ने उस मूरत को दंडवत करने से इन्कार किया। वे आग के भट्ठे में डाले गए परंतु न जले। इसके विपरीत एक चौथा पुरुष आग के भट्ठे में उनके साथ है। राजा का मन परिवर्तन होता है और वह उन तीनों को मुक्त करता है।

(३ : २३ के पश्चात् सेपत्वागिता में 'तीन पवित्र युवकों का गीत' है जिसमें अजर्याह [अबेदनगो] की प्रार्थना और आग में भट्ठे में तीनों द्वारा गाया गया एक भजन भी है ।)

(घ) नबूकदनेस्सर का पागल हो जाना (४) : राजा ने स्वप्न में एक बड़ा वृक्ष देखा जो ठूंठ तक काटा गया और उस पर सात काल बीते। इसका अर्थ यह था कि नबूकदनेस्सर राजा दीन किया जाएगा जब तक वह यह न जान ले कि मनुष्यों के राज्य में परम प्रधान ही प्रभुता करता है। ऐसा ही हुआ। राजा मनुष्यों के बीच से निकाला गया और बैलों के समान घास खाने लगा जब तक कि उसने न जान लिया कि प्रभुता परमेश्वर की ही है।

(च) बेलशस्सर की जेवनार (५) : बेलशस्सर राजा ने बड़ी जेवनार में यरूशलेम के मन्दिर से निकाले हुए पात्रों में दाखमधु पिया। उसी समय एक हाथ दीवार पर यह लिख रहा था—'मने, मने, तकेल, ऊपर्सीन' (अर्थात गिने गए, गिने गए, तौला गया, और विभाजित हुआ।) दानिय्येल ने इसका अर्थ बताया कि बाबुल राज्य पर परमेश्वर का न्याय-दंड आएगा। उसी रात्रि बाबुल मादी राजा दारा के अधीन हो गया।

(छ) सिंहों की मांद में दानिय्येल (६) दानिय्येल के शत्रुओं ने एक राजाज्ञा निकलवाई कि यदि कोई राजा को छोड़ किसी और मनुष्य अथवा देवता की विनती करे, तो वह सिंहों की मांद में डाल दिया जाए। दानिय्येल अपने विश्वास में सच्चा रहा। अतः सिंहों की मांद में डाला गया। परमेश्वर ने सिंहों का मुँह बंद कर दानिय्येल की रक्षा की। राजा ने अनजाने ही अपनी राजाज्ञा दी थी। अतएव दानिय्येल के बच जाने पर वह बहुत आनंदित हुआ और उसके शत्रुओं को मांद में डलवा दिया।

(२) दानिय्येल के दर्शन (७–१२)

(क) चार जंतुओं का दर्शन (७) : समुद्र में से चार बड़े जंतु निकले—एक सिंह जिसके पंख उकाब के समान थे, एक रीछ जिसके दांतों के बीच तीन पसुली थीं, एक चीता जिसके चार पंख थे, और एक 'भयंकर जंतु' जिसके लोहे के दाँत और दस सींग थे। उन दस सींग के बीच एक छोटा सा सींग निकला जिसमें मनुष्य की सी आंखें, और बड़ा बोल बोलनेवाला मुंह भी है। 'अति प्राचीन' के द्वारा वह जंतु घात किया गया। इस अति प्राचीन 'मनुष्य के संतान' जैसे किसी पुरुष को अटल एवं अविनाशी राज्य सौंप

दिया। दानिय्येल को अर्थ बताया गया : वे पशु चार अनुक्रमिक राज्य हैं[१]* वे सींग राजा हैं[२] और छोटा सींग वह राजा है[३] जो परम प्रधान के विरुद्ध बोलता है, पवित्र लोगों[४] को रौंदताहै और समय और व्यवस्था को बदल डालता है। परन्तु परमेश्वर अपने पवित्र लोगों को अनंत राज्य प्रदान करेगा।

(ख) मेढ़े और बकरे का दर्शन (८) : दानिय्येल ने ऊलै नदी के किनारे दो सींगों वाला एक मेढ़ा देखा (मादी और फारसी)। पश्चिम से एक बकरा (यूनान) निकला। उसकी आँखों के बीच एक देखने योग्य सींग था (उसका प्रथम राजा)[५]। उसने मेढ़े को मार दिया। वह देखने योग्य सींग टूट गया और उसके स्थान पर चार देखने योग्य सींग (चार राज्य)[६] विकसित हुए। इनमें से एक से एक छोटा सींग[७] निकला, जो शिरोमणि देश तक बहुत बढ़ गया। वह स्वर्ग की सेना तक बढ़ गया। उसने होम-बलि भी ली और सच्चाई को मिट्टी में मिला दिया। मैंने यह सुना कि यह कब तक होता रहेगा? और यह उत्तर मिलता है कि २३०० सांझ और सवेरे[८] के बाद पवित्र स्थान शुद्ध किया जाएगा। जिब्राएल दूत दानिय्येल को इस दर्शन की बात समझाता है कि ये सब राज्यों और राजाओं की ओर संकेत करते हैं।

(ग) सत्तर सप्ताहों की नबूवत (९) : दानिय्येल अपने लोगों के लिए पापांगीकार करते हुए प्रार्थना करता है। जिब्राएल दूत उड़कर आता है और दानिय्येल को उन सत्तर सप्ताहों का अर्थ बताता है जिनकी नबूवत यिर्मयाह ने की थी (यि० २५ : ११)। ये ७० सप्ताह इसलिए निर्धारित किए गए थे कि लोगों के पाप का प्रायश्चित हो। यरूशलेम का पुर्ननिमाण करने की आज्ञा से लेकर 'अभिषिक्त प्रधान' के समय तक ७ सप्ताह[९]। ६२ सप्ताह बीतने पर अभिषिक्त पुरुष काटा जाएगा[१०] और 'एक 'विदेशी प्रधान' नगर और पवित्र स्थान को नष्ट करेगा[११] और एक सप्ताह के लिए बहुतों के साम्य दृढ़ वाचा बाँधेगा[१२]। इस सप्ताह में मेल बलि और अन्नबलि बंद होगी और 'उजाड़ने वाली घृणित वस्तुएं' दिखाई देंगी।[१३]

(घ) अंतिम दिनों का दर्शन (१०–१२) : हिद्देकेल (दजला) नदी के तीर पर दानिय्येल ने सन का वस्त्र पहिने हुए एक पुरुष को देखा। उसने बताया कि मीकाएल की सहायता से उसने फारस और यूनानी के प्रधानों (दूतों)

---

* यहाँ से जो क्रमसंख्याएँ दी गई हैं वे उन टिप्पणियों का संकेत करती हैं जो रूपरेखा के अन्त में दी गई हैं।

का सामना किया। तब दानिय्येल को भविष्य की बातें बताई गई : फारस का चौथा राजा [१४] यूनान के सामर्थी राजा द्वारा पराजित होगा [१५]। उस पराक्रमी राजा का राज्य टूटेगा और उखड़ कर चार अन्य लोगों को प्राप्त होगा[१६]। इन चारों में 'उत्तर का राजा'[१७] और 'दक्षिण का राजा'[१८] आपस में सन्धि करेंगे और लड़ेंगे। दक्षिण के राजा की राजकुमारी का उत्तर के राजा के साथ दुःखांत विवाह होगा (११ : ६)। थोड़े समय तक हार खाने के बाद[२०] अंत में उत्तर का राजा विजयी होगा, गढ़वाला नगर ले लेगा [२१]। उत्तर के राजा के एक उत्तराधिकारी बलपूर्वक ग्रहणकर्ता को देश में भेजेगा। परन्तु वह थोड़े दिन बाद ही नष्ट किया जाएगा[२२] (११ : २०)। उसका दूसरा उत्तराधिकारी 'तुच्छ मनुष्य' होगा, जो 'वाचा के प्रधान' से भी छल करेगा (११ : २१–२३)[२३]। वह अपनी कल्पना और पराक्रम दक्षिण के राजा को लेने के लिए भी करेगा, परन्तु वहाँ कित्तियों के जहाज उसका विरोध करके उसे रोकेंगे[२४]। उसकी सेना 'उस घृणित वस्तु को खड़ा करेंगे जो उजाड़ करा देती है', और यद्यपि बहुत से बुद्धिमानों को 'कुछ सहायता'[२५] प्राप्त होगी, फिर भी वह सेना उनको मार डालेगी। वह राजा अपने को सारे देवताओं से ऊँचा और बड़ा ठहराएगा और दृढ़ गढ़ों के देवता का ही सम्मान करेगा[२६]।

उत्तर का राजा बवंडर के समान दक्षिण के राजा पर आक्रमण करेगा और अपने राज्य का बहुत विस्तार करेगा, जब तक कि पूर्व और उत्तर से एक नये शत्रु का सामना उसे न करना पड़े[२७]। तब समुद्र और शिरोमणि पर्वत के बीच उसका अन्त होगा (११ : ४५)।

अंतिम विकट संकट के समय मीकाएल नाम बड़ा प्रधान लोगों के पक्ष में खड़ा होगा। जितनों के नाम परमेश्वर की पुस्तक में लिखे हुए हैं, वे बच निकलेंगे। बहुत से मृतक जाग उठेंगे, और सिखाने वाले तारों के समान चमकेंगे (१२ : १–३)।

दानिय्येल ने तब पुरुषों में से एक के द्वारा किए गए इस प्रश्न को सुना, 'इन आश्चर्य कर्मों का अंत कब तक होगा ?' यह उत्तर दिया जाता है कि साढ़े तीन काल तक यह दशा रहेगी, (१२ : ७)। साथ ही, 'जब से नित्य होमबलि उठाई जाएगी, और वह घिनौनी वस्तु जो उजाड़ करा देती है, स्थापित की जाएगी', तब से १२९० दिन बीतेंगे; क्या ही धन्य है वह, जो धीरज धरकर १३३५ दिन के अंत तक भी पहुँचे।'

(सेपत्वागिंता में, दानिय्येल की पुस्तक के साथ दो अतिरिक्त अंश हैं, एक

प्रारंभ में-–सुसन्ना की कथा, और दूसरा अंत में–बेल और अजगर । वुल्गाता में दोनों ही अंत में हैं ।)

सुसन्ना योआकीम नामक प्रतिष्ठित बंधुओं की सुन्दर ईश-भक्त पत्नी थी। जब उसने दो लोलुप न्यायाधीशों के प्रलोभनों को अस्वीकार किया, तो उस पर झूठा अभियोग लगाकर उसे मृत्यु दंड दिया गया । दानिय्येल ने साक्षी का पर्नविचार करवाया और सुसन्ना को निर्दोष सिद्ध कराया । उस पर अभियोग लगाने वालों को दंड दिया गया ।

बेल और अजगर : कुस्रू राजा और दानिय्येल ने मिलकर यह निर्णय किया कि बेल देवता की मूर्ति की परीक्षा की जाय कि वह जीवित ईश्वर है अथवा नहीं। बेल मूरत के सामने फर्श पर राख फैलाने के द्वारा दानिय्येल ने यह प्रमाण उपस्थित किया कि बेल को जो बलि चढ़ाई जाती है वह उसके पुरोहितों द्वारा ली जाती है और भोग की जाती है, बेल द्वारा नहीं, क्योंकि राख पर पुरोहितों के पग चिन्ह दिखे ।

इसी प्रकार दानिय्येल ने डामर, चर्बी और बालों का एक मिश्रण देकर अजगर को मारा जिसकी बाबुली लोग उपासना करते थे । बाबुली लोग बहुत क्रोधित हुए और दानिय्येल को सिंहों की मांद में डाल दिया। परन्तु सिंहों ने उसे कुछ हानि न पहुँचाई और हबक्कूक ने दानिय्येल को अद्‌भुत रीति से खिलाया–पिलाया ।)

४. उपरोक्त रूपरेखा में प्रस्तुत दर्शनों पर टिप्पणियां

१. चार राज्य (७ : १७) : सिंह बाबुल है। रीछ मादी है, चीता फारस है, और भयंकर जंतु यूनान है ।

२. दस सींग (७ : ७) : यूनानी राज्य में अन्तीओकुस एपीफनेस के पूर्व दस राजा । दस संख्या प्राप्त करने के लिये विभिन्न भावनाएं हैं :

सिकन्दर महान (नीचे हेलिओदोरुस का विकल्प मानते हुए), सात सेल्युकीवंशी जिनमें अन्तिम था सेल्यूकुस चतुर्थ, जो अपने मन्त्री हेलिओदोरुस द्वारा मारा गया ।

हेलिओदोरुस (ऊपर सिकन्दर महान का बिकल्प मानते हुए) । सेल्युकुस चतुर्थ के दो पुत्र जिन्हें अलग किया गया ।

३. छोटा सींग जो बड़े बोलवाला था (७ : ८, २५) : अन्तीओकुस चतुर्थ एपीफनेस (१७५–१६३ ई. पू.) जो अपने को एपीफनेस

(Epiphanes) या प्रकट ईश्वर कहता था। उसने यहूदियों को सताया और व्यवस्था को नष्ट करने का प्रयास किया।

४. पवित्र लोग (७ : २५) : इब्रानी में हसीदीम (Hasidim) शब्द आया है। इसका अर्थ है वे लोग जो यहूदी विश्वास की शुद्धता के लिये उत्साही थे। दानिय्येल की पुस्तक कदाचित् उनमें से एक ने लिखी। काल के अंत में परमेश्वर 'मनुष्य के पुत्र' के द्वारा उन्हें अनंत राज्य प्रदान करेगा (७ : १३)।

५. देखने योग्य सींग, पहला राजा (८ : ५, २१) : सिकन्दर महान (ई. पू. ३३६–३२३) जिसने फारसी राज्य का ई. पू. ३३१ में अंत किया।

६. चार सींग, चार राज्य (८ : ८, २१) : चार राज्य जिसमें सिकन्दर का साम्राज्य विभाजित हुआ (१) मकदूनिया जिसका राजा केसंदर था, (२) त्राके और क्षुद्र आसिया जिसका राजा लुसिमाकुस था, (३) अराम और मेसोपोतेमिया जिस पर सेल्यूकुस राज्य करता था, और (४) मिस्र जिसका राजा प्तोलेमी था। यह ई. पू. ३०१ में इप्सस की लड़ाई के बाद हुआ।

७ छोटा सींग (८ : ९–११, २३–२५) : अन्तीओकुस चतुर्थ एपीफनेस (ई. पू. १७५–१६३) जिसने पलिश्तीन में (शिरोमणि देश) हेलेनीकरण की कठोर नीति को अपनाया, जिसमें उसने मन्दिर में बलि-विधि (अनवरत अग्नि बलि) और यहूदी व्यवस्था को नष्ट करने का प्रयत्न किया।

८. २३०० सायं प्रातः (८ : १४) : इसमें उस घटना का उल्लेख है जिसमें अन्तीओकुस एपीफनेस ने मन्दिर में बलि विधि को बंद किया। मन्दिर में सायं काल और प्रातःकाल बलि चढ़ाई जाती थी और २३०० अंक में दोनों सम्मिलित हैं। अतः कुल समय ११५० दिन अर्थात ३½ वर्ष का होता है (ई. पू. १६८–१६५)।

९. सात सप्ताह (९ : २५) : इसका अर्थ है वर्षों के सात सप्ताह। इस प्रकार सात सप्ताह का अर्थ है ४९ वर्ष। यह लगभग बाबुल में निर्वासन के समय के बराबर है (ई. पू. ५८७ से, जब यरूशलेम का विनाश हुआ, ५३७ तक जब जरूब्बाबेल लौटा)।

१०. अभिषिक्त के काटे जाने तक ६२ वर्ष (९ : २६) : यह काल ६२ × ७ अर्थात ४३४ वर्षों का हुआ। यह ई. पू. ५३८ से जब कुस्रू

ने यरूशलेम के पुन: निर्माण की आज्ञा प्रसारित की (९ : २५), ई. पू. १७१ में मेनेलौस की उत्तेजना से सहायक ओनियास तृतीय के मारे जाने तक माना जाता है। इतिहास में यह काल लगभग ४३४ वर्षों का है। संभव है लेखक के मन में कोई अन्य गणना हो। महापुरोहित होने के नाते ओनियास एक 'अभिषिक्त व्यक्ति' था।

११. पवित्र स्थान को नष्ट करने वाला 'विदेशी प्रधान' (९ : २६) : अन्तीओकुस एपीफनेस ने ई. पू. १६७ में यूनानी देवना ओलिम्पी ज्यूस की वेदी मन्दिर की वेदी पर प्रतिष्ठित की और इस प्रकार मन्दिर को अपवित्र किया।

१२. एक सप्ताह के लिये सुदृढ़ वाचा (९ : २७) : यह समय सात वर्ष का है। यह विचार किया जाता है कि इस समय अन्तीओकुस एपीफनेस के सताव का समय था। इसकी गणना उसके राजा होने अर्थात ई. पू. १७५ से मन्दिर के अपवित्र किए जाने (ई. पू. १६७) तक की जाती है। अन्तीओकुस ने पलिश्तीन निवासी हेलेनीकरणवादी यहूदियों से 'दृढ़ वाचा' बाँधी जिससे वह अपनी नीति चला सके और इस काल के लगभग मध्य में उसने बलि-विधि बंद की।

इस एक सप्ताह से यिर्मयाह की नबूवत के सत्तर वर्ष पूरे हो जाते हैं : सात (९ : २५)+बासठ(९ : २६)+एक (९ : २७)=७०।

१३. उजाड़ करने वाली घृणित वस्तु (९ : २७; ११ : ३१) : अन्तीओकुस एपीफनेस ने न केवल मन्दिर की वेदी पर ओलिम्पी ज्यूस देवता की वेदी की स्थापना की, वरन् उसने परम पवित्र स्थान में भी ज्यूस की मूर्ति की स्थापना की। यह मूर्ति घृणित वस्तु है। 'उजाड़ करने वाली घृणित वस्तु' पद 'स्वर्ग के प्रभु' का व्यंग्यात्मक अनुकरण है।

१४. फारस के चार राजा (११ : २) : फारस के केवल चार राजाओं के उल्लेख से एक समस्या उत्पन्न होती है, क्योंकि इतिहास में १२ राजाओं का वर्णन है। कुस्रू (ई. पू. ५३९–५३०) से आरंभ कर दारा तृतीय कोदोमानुस (ई. पू. ३३६–३३१) तक, जिसे सिकन्दर महान ने पराजित किया था, बारह राजा इतिहास में

हुए। लेखक कदाचित चार अत्यंत प्रमुख राजाओं तक ही अपने को सीमित करता है। 'चार' संख्या से सार्वलौकिकता का बोध होता है अथवा यूनान से संघर्ष के लिये चार राजा पर्याप्त थे। लेखक का मुख्य उद्देश्य यूनान से संघर्ष प्रदर्शित करना है। चार राजा कदाचित प्रथम चार राजा हों: कुस्रू (ई. पू. ५३६–५३०), कम्बूसिस (ई. पू. ५३०–५२२), दारा प्रथम (ई. पू. ५२२—४८६), और क्षयर्ष प्रथम (ई. पू. ४८६–४६५) जिसने ई. पू.-४८० में यूनान के विरुद्ध सैनिक अभियान किया।

१५. एक पराक्रमी राजा (११ : ३); सिकन्दर महान (ई. पू. ३३६–३२३) जिसने दारा तृतीय को ई. पू. ३३३ में इस्सुस के युद्ध में पूर्णतः पराजित किया।

१६. चार राजा जो उसके वंश के न थे (११ : ४) : ये सिकन्दर महान् के उत्तराधिकारी राजा हुए। ये सेना नायक थे जो आपस में राज्य के लिये लड़ रहे थे। कुछ समय पश्चात् समस्त साम्राज्य चार राज्यों में बँट गया। देखिए टिप्पणी ६ (८:८,२१)।

१७, उत्तर का राजा (११:६) : अराम का सेल्यूकी शासक। इनमें से पहला सेल्यूकुस प्रथम निकातोर था (ई. पू. ३१२–२८०), जिसने सेल्यूकी वंश की स्थापना की।

१८. दक्षिण का राजा (११ : ५ आदि) : मिस्र का शासक प्तोलेमी। ११ : ५ में प्तोलेमी प्रथम सोतेर (ई. पू. ३२३–२८३) की ओर संकेत है, जिसका सेनाध्यक्ष सेल्युकुस अपने स्वामी से अधिक शक्तिशाली हो गया और अराम में सेल्युकी वंश स्थापित किया।

१६. एक दुखांत विवाह (११ : ६) : अराम और मिस्र के बीच संघर्ष को समाप्त करने के लिये प्तोलेमी द्वितीय फिलादेलफुस (ई. पू. २८३–२४६) ने अराम के अन्तीओकुस द्वितीय (ई. पू. २६१–२४७) के साथ ई. पू. २४६ में अपनी पुत्री बिरनीके का विवाह कर दिया। इस विवाह के निमित्त अन्तीओकुस ने अपनी पहली पत्नी लाओदिके का त्याग किया। लाओदिके ने बदला लिया। उसने अपने पति को विष दिया और बिरनीके तथा उसके पुत्र को मार डाला।

२०. एक पराजय (११ : ११) : मिश्र के राजा प्तोलेमी चतुर्थ ने अराम के राजा अन्तीओकुस तृतीय को रफ़िया के युद्ध में ई. पू.

२१७ में हरा दिया। परन्तु केवल थोड़े ही काल की पराजय थी।

२१. उत्तर का राजा गढ़वाल नगर ले लेता है (११ : १५) : अन्तीओकुस तृतीय, महान्, ने ई. पू. १६६ में सुदृढ़ गढ़वाले नगर अज्जा (गाजा) में प्तोलेमी चतुर्थ को पूर्णतः पराजित किया। या यह संदर्भ ई. पू. १६८ में सीदोन के घेरे जाने का भी हो सकता है।

इस युद्ध के बाद संधि हुई, जिसमें अन्तीओकुस तृतीय ने अपनी पुत्री क्लिओपेत्रा का प्तोलेमी चतुर्थ (११ : १७) से विवाह कर दिया (११ : १७)। वह सेनापति जिसने उसके अहंकार को मिटाया (११ : १८) लूकियुस कार्नेलियुस स्किपियो था जिसने ई. पू. १६० में मेगनेसिया में अन्तीओकुस तृतीय को मटियामेट कर दिया।

२२. तब उसके स्थान में कोई ऐसा उठेगा जो शिरोमणि राज्य में अंधेर करने वाले को घुमायेगा (११ : २०) : सेल्युकुस चतुर्थ ने (ई. पू. १८७–१७५) अपने प्रधान मन्त्री हेलिओदोरस को लगभग ई. पू. १८७ में भेजा कि मन्दिर की धन संपत्ति छीन लाए (२मक. ३ : १–४०)।

२३. एक तुच्छ मनुष्य वाचा के प्रधान को भी दबा लेगा (११ : २१–२२) : 'तुच्छ मनुष्य' पद में व्यंग्यात्मक रूप से 'प्रकट परमेश्वर' की ओर संकेत है। अन्तीओकुस चतुर्थ एपीफनेस ने यह पदवी धारण कर ली थी (ई० पू० १७५–१६३)। वाचा का प्रधान कदाचित महायाजक ओनियास तृतीय था, जो ई० पू० १७५ में अपने पद से पृथक किया गया।

२४. कित्तियों के जहाज़ (११ : ३०) : ये रोमी लोगों के जहाज हैं जो ई. पू. १६८ में मिस्र में आए और अन्तीओकुस तृतीय को मिस्र को दबाने से रोका। रोमी राजदूत पोपिलियुस लाइनस ने अन्ती ओकुस के आसपास रेत में एक गोलाकार खींच दिया और उससे कहा कि इस गोलाकार से बाहर निकलने के पहले वह मिस्र छोड़ कर जाने का निर्णय कर ले। अन्तीओकुस चला गया। उसने अपना क्रोध पलिश्तीन के यहूदियों को सताने में निकाला। 'उजाड़ करने वाली घृणित वस्तु' के लिए देखिए टिप्पणी १३ (११ : ३१)।

२५. थोड़ा बहुत सम्भलेंगे (११ : ३४) : इसका अर्थ मकाबी विद्रोह है जो ई० पू० १६७ में मोदिन में आरम्भ हुआ। हसीदीम लोग शुद्ध यहूदी विश्वास के भक्त थे और 'बुद्धिमान' (११ : ३३) कहलाते हैं। ये लोग शीघ्र ही राजनीतिक महत्वाकांक्षी मकाबियों से चिढ़ गये। इसलिए मकाबियों की सहायता थोड़ी सी सहायता मानी गई है, जिससे वे लोग थोड़ा बहुत संभल सकें।

२६. गढ़ों के देवता (११ : ३८) : इससे या तो यूपितर कपितोलीनुस देवता या ओलिम्पी ज्यूस देवता का संकेत होता है, जिसे अन्तओ-कुस एपीफनेस ने उन अरामी देवताओं से ऊपर प्रतिष्ठित किया था, जिन्हें उसके पूर्वज मानते थे। परन्तु यह निश्चित नहीं है।

२७. उत्तर और पूर्व दिशा से समाचार (११ : ४४) : ये आरमेनिया और पारथी देशों में विप्लव के समाचार थे (१ मक० ३ : ३७)। अन्तीओकुस एपीफनेस फारस तक बढ़ गया, परन्तु यहूदा मकाबी की सफलता के समाचार सुनकर वह लौटा और यहूदा के समूल विनाश की ओर ध्यान दिया। उसकी आक्रमण-योजना (११ : ४५) उसकी मृत्यु के कारण फिर कार्यान्वित न की जा सकी।

५. दानिय्येल की पुस्तक की संरचना

पुस्तक के समीक्षात्मक अध्ययन से इस परंपरागत मान्यता की पुष्टि हुई है कि यह पुस्तक एक पूर्ण साहित्यिक कृति है और एक ही लेखक द्वारा लिखी गई है। समीक्षा का यह परिणाम हमें उस समय वास्तव में आश्चर्यजनक प्रतीत होता है जब हम यह देखते हैं कि पुस्तक दो भाषाओं में लिखी गई है। (१ : १–२ : ४; ८–१२ इब्रानी में हैं और २ : ४–७ : २८ अरामी भाषा में हैं। अरामी का प्रयोग किन्हीं स्वाभाविक अंशों तक सीमित नहीं है जिससे यह माना जा सके कि किसी अन्य लेखक ने इन्हें लिखा या संपादक ने जोड़ दिया। ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक अपने विषय को इतना महत्वपूर्ण मानता था कि उसने उसकी गंभीरता को धार्मिक भावना की भाषा में आरंभ करना उचित समझा जाता। इब्रानी के प्रयोग के बाद वह अरामी में लिखने लगा जिससे लोकप्रिय भाषा में कथा का अधिकांश भाग जनता समझ सके। अन्त में वह फिर इब्रानी भाषा का प्रयोग करता है क्योंकि ईश्वरीय अभिप्राय के रहस्यों को वह इन दर्शनों में व्यक्त करता है।

६. तिथि और रचयिता

इस पुस्तक में दानिय्येल और उसके साथियों की कथाएँ हैं। इससे प्रतीत

होता है कि दानिय्येल के अतिरिक्त अन्य किसी व्यक्ति ने इन कथाओं को लिखा, यद्यपि कि इनके लिखने में प्रथम पुरुष वाचक सर्वनाम का उपयोग हुआ है। पुस्तक में यह कहीं संकेत नहीं है कि लेखक कौन था और कब रहा। परन्तु अनेक तथ्य ऐसे हैं जिनसे यह व्यंजित होता है कि मकाबी काल में (ई. पू. १६७ और उसके पश्चात्) जनता के सामने आई। ये तथ्य निम्नांकित हैं: (१) यह अंशतः अरामी भाषा में लिखी गयी है। यह भाषा निर्वासनोत्तर काल में यहूदियों द्वारा बोलचाल की भाषा बन गई थी। विशेषकर यूनानी काल में तो साधारण रूप से यहूदियों में इसका चलन था (२) इब्रानी धर्मशास्त्र में इस पुस्तक को लेखों (कतूबीम) में स्थान दिया गया है, अर्थात् उस समूह में जो अन्त में अधिकृत धर्मशास्त्र के रूप में विचाराधीन हुआ। इस तथ्य के आधार पर यह निशिचित रूप से तो नहीं कहा जा सकता कि पुस्तक बाद में लिखी गई होगी, परंतु फिर भी यह अनुमान तो अवश्य किया जा सकता है। (३) इसमें फारसी भाषा के शब्दों का यत्र-तत्र प्रयोग है। उदहरणार्थ १ : ३ में पारतेमीम अर्थात राजपुत्र। यूनानी शब्दों का भी प्रयोग किया गया है जैसे ३ : ५ में वाद्ययन्त्रों का जहाँ वीणा (Kith-aris), सारंगी (psalterion) और शहनाई (symphonia) निश्चित रूप से यूनानी शब्दों के रूपान्तर हैं। (४) यह पुस्तक प्रकाशनात्मक साहित्य के अन्तर्गत भी आती है। इस प्रकार का साहित्य यहूदियों में ई० पू० २०० के पश्चात् लोकप्रिय हुआ।

७. प्रकाशनात्मक साहित्य

एक प्रतिरूपी (Typical) प्रकाशित वाक्य में ऐसे साहित्यिक शिल्प का प्रयोग होता है जिसमें प्राचीन काल के किसी संत के दर्शनों के माध्यम से परमेश्वर की योजना का वर्णन किया जाता है। इसकी प्रधान धारणा यह है कि सब बातें परमेश्वर के हाथ में हैं और वह अपने शुभ अभिप्राय को कार्यान्वित करता है, चाहे हम अपनी कठिनाइयों और संकटों में उसे आज और अभी समझ न पाएं। हमारे प्रोत्साहन के निमित्त परमेश्वर ने अपने अभिप्राय के रहस्य उन लोगों पर प्रकट किए हैं जो उसके अनन्य भक्त होकर उसकी निकट संगति में रहते हैं। वह बहुधा स्वप्नों और दर्शनों के रहस्यों में में अपने अभिप्राय को प्रकाशित करता है। वे उस समय तो समझ में नहीं आते परंतु जैसे जैसे आत्मा हमें समझ देता है, हम उन को इतिहास की घटनाओं उन्मीलित होता हुआ देखते हैं (दे. यू. १६ : १२, १३)। इस प्रकार आज की घटनाओं को हम ऐसा देखते हैं मानो परमेश्वर के मन में ये घटनाएं पहले से ही विद्यमान थीं। सच बात तो यह है कि हमारे युग की घटनाओं

और इतिहास को ठीक रूप से समझना ही इस सत्य का प्रमाण है कि परमेश्वर ने अतीत में अपने संतों पर कुछ बातों को प्रकाशित किया था। संत का दर्शन इतिहास की प्रक्रिया के आरंभ में होता है और अंत में उसकी पूर्ति हमें दिखाई देती है। दोनों का कार्य एक ही है क्योंकि दोनों ही परमेश्वर के एक अभिप्राय की अभिव्यक्ति हैं। यदि कोई व्यक्ति परमेश्वर के अभिप्राय के संबंध में लिखना चाहे तो वह या तो प्रारंभ में उसके दर्शन के अनुरूप होगा, अथवा अंत में इतिहास की पूर्ति की जानकारी के रूप में होगा। इतिहास की पूर्ति की जानकारी के रूप में लिखना अधिक श्रेयस्कर होगा, क्योंकि इतिहास की वस्तुवादी जानकारी का उपयोग इस तथ्य के प्रकट करने में किया जा सकेगा कि परमेश्वर की योजना बराबर कार्यान्वित हो रही है। इस दृष्टि विन्दु से हम प्राचीन संतों के दर्शनों का और भी सच्चे रूप में वर्णन कर सकते हैं, क्योंकि हमने उनमें अभिप्राय की पूर्ति के दर्शन भी किए हैं। हमारे संदेश का मुख्य विचार इस तथ्य को प्रस्तुत करना होगा कि परमेश्वर अपने वचन का पक्का है जो उसने प्राचीनकाल में अपने संतों से कहा था। अतएव अंधकार और दुष्टता की शक्तियों के प्रभाव के कारण आज की परिस्थिति चाहे जितनी नैराश्यपूर्ण हो, तो भी हमें धैर्यवान और निष्ठावान बने रहना चाहिये। यदि प्राचीन संतों के समान हम अंत तक विश्वासयोग्य रहें तो हम परमेश्वर के सनातन राज्य में संभागी किए जाएंगे।

प्रकाशनात्मक कृति का लेखक बहुधा अज्ञात होता है। लेखक अपने विचारों को नहीं, वरन् प्राचीनकाल के किसी संत के दर्शनों का वर्णन करता है। इसीलिये वह यह मानता है कि उसका अपना नाम बाधा उत्पन्न करेगा। वह संत विशेष के दृष्टिकोण से लिखता है और उस संत के विचारों की व्याख्या करता है।

प्रकाशनात्मक साहित्य की विशिष्ट शब्दावली में प्रतीकात्मक भाषा का प्रयोग किया जाता है। दुष्टता की शक्तियों को साधारणतया पशुओं के प्रतीकों में व्यक्त किया जाता है। वे मानो दुष्टता का वर्तमान युग बन जाते हैं। वे प्रभु परमेश्वर को नहीं मानते। आगामी युग का प्रतीक मानव होता है। उनमें परमेश्वर अपनी अनंत भलाई और महिमा प्रकट करेगा और कोई उसका विरोध न करेगा। प्रतीकात्मक अंक और रहस्यात्मक पदविन्यास का भी प्रयोग होता है।

प्रकाशित वाक्य का लेखक यह अनुभव करता है कि वह युग के अंत में या अंत के बहुत निकट रहता है। उसे लगता है कि इतिहास बड़ी तीव्र गति से अपनी चरम सीमा की ओर बढ़ रहा है। यदि दुष्टता बढ़ रही है, तो यह इसलिये है कि परमेश्वर और दुष्टता की सेना के बीच अंतिम संघर्ष बिल्कुल

निकट है और उसके पश्चात् परमेश्वर की विजय तथा अनंत आनंद निश्चित हैं।

प्रकाशनात्मक कृति की तिथि निश्चित समीक्षात्मक पद्धति के आधार पर निर्धारित की जाती है। रहस्य में आवरित ऐतिहासिक संकेतों के पंचांग का परिचित ऐतिहासिक घटनाओं के पंचांग के साथ साम्य लगाया जाता है। जहाँ रहस्यमय संकेत अधिक संश्लिष्ट हो जाते हैं, जैसे बहुधा वर्णन के अन्त में होता है, तो यह माना जाता है कि लेखक अपने ही युग के निकटतम अतीत की घटनाओं का वर्णन कर रहा है। जब इस संश्लिष्ट वर्णन के पश्चात् ऐसे सामान्य कथन किए जाते हैं, जिनमें दुष्टता की शक्तियों की पराजय, परमेश्वर के सनातन राज्य की आशा व्यक्त होती है, तो यह समझा जाता है कि लेखक अतीत की परिचित घटनाओं के प्रवाह के संबंध में भविष्यवाणी कर रहा है। घटनाओं के तिथिपत्र में इसी विशेष बिन्दु से पुस्तक की रचना-तिथि निर्धारित की जाती है।

तिथि–निर्धारण की इस समीक्षात्मक पद्धति का अनुसरण कर दानिय्येल की पुस्तक के संबंध में हम इस अनुमान पर पहुंचते हैं कि वह ई. पू. १६७ में लिखी गई, अर्थात अन्तीओकुस एपीफनेस के कठोर सताव की नीति अपनाने के पश्चात और उसकी मृत्यु के पूर्व यह पुस्तक लिखी गई।

८. दानिय्येल की पुस्तक के विभिन्न अर्थ या व्याख्या

दानिय्येल की पुस्तक की दो प्रकार से व्याख्या की जाती है। उनको हम सृष्टि संबंधी और इतिहास संबंधी व्याख्याएं कह सकते हैं। **सृष्टि संबंधी** अर्थ यह है कि ऐसी व्याख्याओं में समग्र काल के सीमा–क्षेत्र का विचार किया जाता है, अर्थात् ई. पू. छठवीं सदी में दानिय्येल के युग से लेकर ई. स. २०वीं शताब्दी तक और उसके आगे इस संसार के अन्त तक। इस व्याख्या के अनुसार जिन पशुओं और सींगों का वर्णन दानिय्येल की पुस्तक में है उनसे आज तक की तथा आगामी किसी भी शताब्दी की सरकारों और नेताओं का संकेत होता है। इस प्रकार की व्याख्या में अन्तिम दिनों के दर्शनों में (१०–१२) जो रहस्यात्मक अंक दिये गए हैं वे किसी भी कुशल व्याख्याकार के लिये ख्रिस्त के द्वितीय आगमन की तिथि के गणना के निमित्त चुनौती और बौद्धिक व्यायाम बन जाते हैं। साथ ही इसमें इस बात को दृष्टि ओट कर दिया जाता है कि मर. १३ : ३२ में प्रभु ने इसके संबंध में यह कहा, 'उस दिन और उस घड़ी के विषय में कोई नहीं जानता, न स्वर्ग के दूत और न पुत्र; परंतु केवल पिता'। दानिय्येल की पुस्तक और बाइबल के अन्य समान अंशों

के प्रति इस प्रकार के उपागम के आधार पर बाइबल के सत्य के संबंध में अनेक दुखद भ्रम फैलाए जाते हैं।

ऐतिहासिक व्याख्या में यह अनुमान किया जाता है कि दानिय्येल की पुस्तक लेखक के अपने युग की परिस्थितियों और धार्मिक आवश्यकताओं के संदर्भ में लिखी गई। यह माना जाता है कि यह पुस्तक उन लोगों के लिये भी सार्थक है जिन्होंने पहले उसे पढ़ा या सुना। जो रहस्यात्मक ऐतिहासिक संकेत हैं वे परिचित घटनाओं और व्यक्तियों की ओर संकेत करते हैं। इस दृष्टिकोण से यदि लेखक को भविष्य की घटनाओं की कुछ जानकारी होती थी तो वह उसी रूप में जैसी हमें अपने युग में होती है—अर्थात् कि भविष्य उस परमेश्वर के हाथ में है जिसने हमारे विश्वास के माध्यम से हम पर अपना शुभ और विजयी अभिप्राय प्रकाशित किया है। अतीत के संबंध में जैसे हम अपने युग में, वैसे ही लेखक भी अतीत की घटनाओं में परमेश्वर की सामर्थ का दर्शन करता है, परंतु भविष्य के संबंध में वह केवल सामान्य कथन ही करता है। बाइबल की अन्य पुस्तकों के समान, दानिय्येल की पुस्तक का स्थायी महत्व उस सत्य में है जो अनंत अनादि परमेश्वर के तथा उसके साथ हमारे संबंध के विषय में इस पुस्तक में प्रस्तुत है।

वर्तमान लेखक ने अपनी इस पुस्तक में ऐतिहासिक व्याख्या की पद्धति का अनुसरण किया है। इस व्याख्या की तर्क सम्मतता और यहूदी धार्मिक इतिहास की सजीव परिस्थितियों से इसके गहरे संबंध के कारण यह बाइबल के सब गंभीर अध्येताओं के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

६. दानिय्येल की ऐतिहासिकता

ई. पू. १८० में सीरख की पुस्तक लिखी गई। उस पुस्तक में इस्राएल के महापुरुषों पर एक अंश है (४४ : १-५० : २४)। यह अपेक्षा की जा सकती है कि दानिय्येल का नाम उस अंश में होगा। परंतु उसमें वह नहीं है। अतः यहेजकेल १४ : १४ में नूह और अय्यूब के नामों के साथ दानिय्येल का जो नाम है, वह कदाचित कोई अन्य दानिय्येल है। दानिय्येल की पुस्तक का नायक या प्रधान पात्र यहेजकेल का समकालीन और उससे छोटा होगा। दोनों यहूदी बंधुए थे। इसके अतिरिक्त पुस्तक में जो स्पष्ट ऐतिहासिक उल्लेख हैं उनको अन्य सुपरिचित स्रोत की सामग्री के साथ संगत करना बहुत कठिन है। उदाहरणार्थ, ५ : ३१ में यह कहा गया कि दारा मादी ने बाबुल को पराजित किया। परंतु अन्य सब स्रोतों से यह ज्ञात होता है कि फारसी राजा कुस्रू ने बाबुल को पराजित किया (यह यश० ४५:१ में निहित है)। दानिय्येल

की पुस्तक से यह भान होता है कि बाबुली, मादी, फारसी और यूनानी राज्य अनुक्रमिक रूप से हुए (अध्याय ७)। इतिहास में मादी और फारसी एक ही साम्राज्य में सम्बद्ध थे। १ : १ में कहा गया है कि दानिय्येल यहूदा के राजा यहोयाकीम के राज्य के तीसरे वर्ष में बंधुआ बनाया गया (ई० पू० ६०५)। परंतु नबूकदनेस्सर के अपने अभिलेखों से पता चलता है कि वह इस समय तक यरूशलेम ही न पहुँचा था। ५ : १३, १८ में नबूकदनेस्सर को बेलशस्सर का पिता कहा गया है। इतिहास के स्रोतों से इसकी पुष्टि नहीं होती। ५ : ३१ में बाबुल का पतन इस प्रकार हुआ जिससे एक ऐसे युद्ध का संकेत मिलता है जिसमें बेलशस्सर मारा गया। परंतु उस युग के बाबुली इतिहास से पता चलता है कि बाबुल ने कुस्रू की अधीनता बिना किसी संघर्ष के स्वीकार कर ली, और कि बाबुली राजा नबोनिदुस उस समय उपस्थित नहीं था।

इन समस्याओं तथा अन्य ऐसी कठिनाइयों के कारण कुछ विद्वानों की यह मान्यता है कि प्रमुख पात्र दानिय्येल प्रकाशनात्मक साहित्यकार की कल्पना से प्रसूत व्यक्ति है। यह भी जान पड़ता है कि लेखक को यूनानी काल के इतिहास की तो अच्छी जानकारी थी परंतु बाबुली और फारसी काल के इतिहास की नहीं। दानिय्येल के संबंध में यह दृष्टिकोण उचित नहीं जान पड़ता। यह मान लिया जाए कि लेखक मकाबी काल में था, परंतु यदि उस युग में सामान्यतया यह न माना जाता कि दानिय्येल एक वास्तविक व्यक्ति था जो बंधुवाई में अपने विश्वास के प्रति सच्चा रहा तो इस पुस्तक के लिखने में लेखक का उद्देश्य सिद्ध न हो पाता। यह संभव है कि दानिय्येल और उसके साथियों की कथा के संचरण में कल्पना का पुट अवश्य दिया गया होगा परंतु यह निश्चित है कि उस कथा के मूल में ऐतिहासिकता अवश्य रही होगी। उसके संदेश की स्वीकृति की यह आवश्यक शर्त है, क्योंकि यहूदी धर्म अन्य धर्मों से इस बात में सर्वथा भिन्न है कि वह ऐतिहासिक घटनाओं के संदर्भ में ही परमेश्वर का प्रकाशन है। विशुद्ध काल्पनिक कथा अन्य लोगों के लिए भले ही रुचिकर हो, परंतु यहूदी लोग तो वास्तविक व्यक्तियों के, जिनको परमेश्वर ने अपना वचन दिया, मान से ही अपने विश्वास को मान्यता देते थे। इस सम्बन्ध में एक और बात पर विचार करना चाहिये, कि लेखक का उद्देश्य इतिहास लेखन नहीं है, परंतु इतिहास की पूर्ति में परमेश्वर की सामर्थ का प्रदर्शन है। उसके लिये राजाओं की ठीक संख्या (जैसे फारस के चार राजा यूनान के दस) की जाँच करना इतने महत्त्व की बात नहीं थी जितने महत्त्व की बात यह है कि आत्मा की प्रकाशनात्मक भाषा के अंश स्वरूप अंकों का प्रतिसाम्य रखा जाए। ७ : ५-७ में वह बताता है कि फारसी राज्य मादी राज्य

के बाद हुआ, परंतु ८ : २० में वह दोनों को समकालीन राज्य कहता है। अतीत के इतिहास के प्रति उसकी दृष्टि ऐसी है मानो कोई कलाकार पर्वतों की राशि को देख रहा हो। स्थान ज़रा सा बदला कि परिपेक्ष्य बदल गया। परंतु वह और उसके पाठक दोनों ही यह मानते हैं कि उसकी दृष्टि वास्तविक पर्वतों की ओर है। अत: भले ही शुद्ध इतिहास के साथ संगति सम्बन्धी कुछ समस्याएं हमारे सामने आती हैं, हम निश्चित रूप से यह देखते हैं कि दानिय्येल और उसके साथी वास्तविक व्यक्ति थे जो बंधुवाई के समय कठोर परीक्षा में अपने विश्वास के प्रति दृढ़ और निष्ठावान रहे। हम दानिय्येल के संबन्ध में यह भी मानते हैं कि यद्यपि दानिय्येल के दर्शनों के ब्यौरे हमारे समक्ष एक ऐसे लेखक के द्वारा प्रस्तुत किये गए हैं जिसने उनको पूर्ति की अवस्था में देखा, तथापि दानिय्येल ऐसा व्यक्ति अवश्य था जिससे परमेश्वर ने दर्शनों के माध्यम से बातें की।

१०. धर्म शिक्षा

दानिय्येल की पुस्तक की महान शिक्षा यह है कि हमारे विश्वास से समझौता करने की चाहे जितनी परीक्षाएं हम पर आएं और चाहे हम कितना भी सताए जाएं, तोभी हमें अपने विश्वास में निष्ठावान होना चाहिए। पुस्तक के आरम्भ में ही हमें यह बताया जाता है कि दानिय्येल और उसके साथी अपने विश्वास के नियमों का पालन करने में पक्के थे, इसलिये उन्होंने राजा के उत्तम भोजन का त्याग किया। उन्होंने केवल विरोध के लिए इन्कार नहीं किया था, परन्तु उन्होंने राजा की सेवा के लिए अपने को संयम सहित तैयार किया। जब परीक्षण हुआ तो यह स्पष्ट हो गया कि अपने विश्वास के प्रति उनकी निष्ठा न्यायोचित ही थी। इसी प्रकार हमें भी परमेश्वर के नियमों से, बिना समझौते के प्रेम करना चाहिये। हमारे लिए परमेश्वर का नियम-शास्त्र ख्रिस्त में प्रकाशित हुआ।

दूरा के मैदान में सोने की मूर्ति के सामने शदरक, मेशक और अबेदनगो ने दंडवत न किया। इसके फलस्वरूप तीनों पर सताव और संकट आया। दानिय्येल ने अपने सच्चे विश्वास के बदले राजा की उपासना करना अस्वीकार किया। उस पर भी संकट और सताव आया। परन्तु संकटकाल में परमेश्वर ने अपने सेवकों को निर्दोष ठहराया। परमेश्वर ने उन्हें जीवित बचाया। उनकी भक्ति और निष्ठा ऐसी थी कि वे शहीद होने को तैयार थे। हमारे विश्वास के प्रति हमारी निष्ठा भी इसी साँचे में ढली होनी चाहिए।

इस पुस्तक से यह शिक्षा मिलती है कि इतिहास की धारा परमेश्वर के हाथ में है। चाहे कुछ समय के लिए ऐसा दृष्टिगोचर हो कि सत्य और धार्मिकता

के विरुद्ध—मंडली के विरुद्ध——बुराई की बढ़ती हुई शक्तियाँ प्रबल हों, परन्तु अन्त में परमेश्वर निश्चित अपने राज्य की स्थापना करेगा। जब हमें यह ज्ञात है कि विजय सुनिश्चित है, तब हम धैर्य और आशा के साथ सब कुछ सह सकते हैं। सच यह है कि परमेश्वर की योजना में बहुधा ऊषाकाल के पहले गहन अंधकार होता है।

इस पुस्तक में यह आशा व्यक्त है कि 'मनुष्य के संतान' के द्वारा परमेश्वर का शाश्वत राज्य स्थापित किया जाएगा, और वह आकाश के बादलों समेत आयेगा (७ : १३)। लेखक ने इस पद 'मनुष्य के संतान' का उपयोग कदाचित सामूहिक भाव में किया हो और उसका अर्थ पवित्र लोग हो (दे० ७ : २७)। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि बाइबल में व्यक्ति और समाज दोनों भाव बहुधा एक में मिले रहते हैं। जो कुछ भी हो, यह निश्चित है कि जो भाव उस पद में अनुभूत हुए उनकी पूर्ति हमारे प्रभु यीशु ख्रिस्त में हुई। वह दीन-हीन रूप में देहधारण कर मानव पुत्र बनकर आया और परमेश्वर की योजना की पूर्णता पर महिमान्वित रूप में मानव-पुत्र होकर आएगा।

दानिय्येल की पुस्तक में मृतकों के पुनरुत्थान के विषय में स्पष्ट कथन है (१२ : २)। यह शिक्षा पुराने नियम के अधिकांश में नहीं मिलती। इसमें स्वर्गदूतों के नाम का भी उल्लेख हुआ है। जिब्राएल और मीकाएल नाम आए हैं (८ : १६; १२ : १) और यह संकेत मिलता है कि स्वर्गदूतों का संबंध जातियों और राष्ट्रों से है (१० : १३–२०)। स्वर्गदूतों के अस्तित्व अथवा अनास्तित्व के संबंध में हम वस्तुवादी तार्किक प्रमाण प्रस्तुत नहीं कर सकते। समस्त अतिप्राकृतिक तत्वों के सम्बन्ध में साधारणतया यह बात सच है। परंतु बाइबल में स्वर्गदूतों का अस्तित्व मान लिया गया है। दानिय्येल की पुस्तक में स्वर्गदूतों के नामों और उनके कामों के बीच संबंध है। जिब्राएल परमेश्वर की ओर से वचन-वाहक है। मीकाएल विश्वासियों का पक्ष लेने के लिए खड़ा रहता है।

विश्वास के प्रति निष्ठावान रहने की शिक्षा के साथ-साथ यह सुझाव भी हमें मिलता है कि दूसरों को इस विश्वास तक लाने में भी हमारा दायित्व है। पुनरुत्थान में आदर का स्थान उनको दिया जायेगा जो बहुतों को धार्मिकता की ओर लाएंगे (१२ : २, ३)।

सैंतीसवां अध्याय

होशे

१. पुस्तक का शीर्षक और प्रामाणिक धर्मशास्त्र में स्थान

इस पुस्तक का नाम होशे नबी के नाम पर रखा गया है। इस नबी के वचन इसमें हैं। इस नाम का इब्रानी रूप होशिआ (Hoshea) है, जिसका अर्थ 'बचाना' है। सप्तति अनुवाद में ओसी (Osee) है। वुल्गाता में भी ओसी है। अंग्रेजी रूप में होजिया (Hosea) है जिसमें इब्रानी और वुल्गाता दोनों के तत्व मिले हुए हैं। हिन्दी में इब्रानी नाम की अनुरूपता है और पुस्तक का नाम होशे है।

'बारह की पुस्तक' में से यह पहली पुस्तक है। अर्थात छोटे नबियों में यह पहली पुस्तक है। यद्यपि बारह की पुस्तकों का क्रम प्राचीन बाइबलों में भिन्न-भिन्न है, परंतु सब बाइबलों में होशे की पुस्तक का इस समूह के अंतर्गत पहिला स्थान है।

२. विषय-समग्री का सारांश

इसका मूल विषय है : परमेश्वर की अपनी प्रजा, इस्राएल जाति परमेश्वर के प्रेम को ठुकराती जाती है, उसको घायल करती है, फिर भी परमेश्वर लगातार प्रेम करता जाता है। इसी विषय को केन्द्र में रखकर होशे नबूवत करता है और वे नबूवतें इस पुस्तक में संकलित हैं। होशे का अपनी विश्वासघातिनी पत्नी के प्रति लगातार प्रेम से इस विषय का घनिष्ट संबंध भी है।

३. रूपरेखा

होशे–परमेश्वर के प्रेम का नबी

(१) होशे का गार्हस्थ्य अनुभव (१–३)

(क) घर और जाति में विश्वासघात (१:१–९) : परमेश्वर के निर्देशानुसार होशे दिवलैम की बेटी गोमेर को अपनी पत्नी बनाता है, यद्यपि वह उसके साथ वेश्या जैसा व्यवहार करनेवाली थी। उनके तीन बच्चे हुए और होशे ने उनके ऐसे नाम रक्खे जिनसे परमेश्वर द्वारा इस्राएल के परित्याग का संकेत होता है : यिज्रेल (क्योंकि थोड़े ही काल में येहू के घराने को यिज्रेल की हत्या का दण्ड मिलने वाला है); लोरूहामा (जिस पर दया नहीं हुई); लोअम्मी (मेरी प्रजा नहीं, अर्थात्, वाचा निरस्त की गई)।

(ख) परमेश्वर का स्थायी प्रेम (१ : १०–२ : १) : फिर भी यह परमेश्वर का अभिप्राय है कि इस्राएल का उद्धार करे। अतः यिज्रेल का अर्थ होगा 'उद्धार' और लोग कहेंगे 'अम्मी' (मेरी प्रजा) और 'रुहामा' (जिस पर दया हुई है)।

(ग) विश्वासघात की समस्या (२ : २–२३) : होशे इस्राएल की संतान से पुकारकर कहता है कि वे अपनी माता से, जो विश्वासघातिनी पत्नी रही है, परमेश्वर के लिये विवाद करें (२ : २–१०)। वह नहीं जानती थी कि बाल देवता नहीं, वरन यहोवा ही उसे अन्न, नया दाखमधु, तेल, चाँदी और सोना देता था। उसका दंड उसके अपराध के मान से ही होगा (२ ११–१५)। फिर भी यहोवा उसे मोहित कर जंगल में ले जाएगा, जहाँ उसने पहले उससे प्रेम किया, जहाँ वह बाल देवता के आकर्षणों से दूर रहेगी, और जहाँ मैं सदा के लिये उसे अपनी पत्नी करने की प्रतिज्ञा करूँगा' (२ : १६–२३)।

(घ) विश्वासघातिनी पत्नी का उद्धार (३ : १–५) : परमेश्वर, होशे को निर्देश देता है कि जाकर अपनी पत्नी से प्रीति कर, जो व्यभिचारिणी होने पर भी पति की प्यारी है, ठीक उसी प्रकार जैसे इस्राएलियों ने पराए देवताओं की भक्ति की, तो भी परमेश्वर उनसे प्रीति रखता है। तब होशे ने चाँदी के पन्द्रह टुकड़े और डेढ़ होमेर जव देकर उसे मोल लिया (कुल मूल्य लगभग ३० शेकेल है; दे. नि. २१ : ३२; २रा. ७ : १८)। तब उसके लिये परीक्षण काल निर्धारित किया कि उसके पश्चात उसका पूर्ण उद्धार हो जाए। इसी प्रकार परमेश्वर भी इस्राएल के साथ व्यवहार करेगा।

(२) अपने विश्वस्त परमेश्वर के प्रति इस्राएल का विश्वासघात (४–१३)।

(क) धार्मिक जीवन में विश्वासघात (४ : १–७ : ७) : अपनी प्रजा के साथ यहोवा का मुकद्दमा है, क्योंकि इस देश में न तो सच्चाई है, न करुणा न परमेश्वर का ज्ञान है, परंतु शाप देने, झूठ बोलने, वध करने, चुराने और व्यभिचार करने को छोड़ और कुछ नहीं होता (४ : १–३)। "जैसे लोग, वैसे पुरोहित", दोनों भ्रष्ट हैं इसलिये दोनों को दंड मिलेगा (४ : ४–१०)

इस्राएल झूठे देवताओं से परामर्श लेते हैं। वे पहाड़ों की चोटियों पर यज्ञ करते और धूप जलाते हैं (४ : ११–१४)। हठीली कलोर के समान इस्राएल मूरतों का संगी हो गया है, तो भी यहूदा दोषी न बने (४ :१५

–१६) । मिस्पा और ताबोर प्रलोभन के स्थान बन गए, एप्रैम अशुद्धता में डूबा हुआ और घमंड में चूर है । अतः उनके काम उन्हें परमेश्वर की ओर फिरने नहीं देते । व्यभिचार के लड़के पैदा किए गए हैं (५ : १–७) ।

प्रभु परमेश्वर, एप्रैम के लिये सिंह, और यहूदा के घराने के लिये जवान सिंह बनेगा जो उन्हें फाड़ डालेगा । अपने घाव और रोग की चंगाई के लिये एप्रैम अश्शूर के पास गया (५ : ८–१४) । वे यहोवा की ओर फिरें, वही उनको जिलाएगा (५ : १५–६ : ३) । परंतु सच्चे पश्चात्ताप की आवश्यकता है, क्योंकि 'मैं बलिदान से नहीं, स्थिर प्रेम से ही प्रसन्न होता हूं और होमबलियों से अधिक यह चाहता हूं कि लोग परमेश्वर का ज्ञान रखें' (६ : ४–६) । 'इसके विपरीत उन्होंने वाचा को तोड़ दिया । उनके राजा और हाकिमों को भी वे बुराई करने और झूठ बोलने में लुब्ध करते हैं' (६ : ७–७ : ७) ।

(ख) राजनीतिक जीवन में विश्वासघात (७ : ८–१० : १५) : एप्रैम ऐसी चपाती है जो उलटी न गई हो, एक भोली पण्डुकी के समान हो गया है; वे मिस्रियों की दोहाई देते और अश्शूर पर भरोसा रखते हैं; पर वे परमेश्वर की ओर नहीं फिरते जो उन्हें चंगा करने को तैयार है (७ : ८ –१६) ।

युद्ध की संकट-ध्वनि ! प्रभु का क्रोध उन पर भड़का है, क्योंकि उन्होंने अपने विनाश के लिए राजा ठहराए और मूर्तियाँ बनाई । शोमरोन का बछड़ा टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा । वे वायु बोते हैं और बवंडर लवेंगे···· इस्राएल निगला गया···· एप्रैम ने पाप करने को बहुत सी वेदियाँ बनाई हैं····वे परमेश्वर की व्यवस्था पराई समझते हैं' (८) ।

इस्राएल, परमेश्वर के देश में न रहने पायेंगे परंतु मिस्र और अश्शूर में अशुद्ध वस्तुएँ खायेंगे । 'इस्राएल ने पोर के बाल के पास जाकर अपने तईं को लज्जा का कारण होने के लिए अर्पण कर दिया और जिस पर मोहित हो गए थे, उसी के समान घिनौने हो गए' (६) । समय आ रहा है जब वे अपने निर्वाचित राजाओं की असमर्थता देखेंगे और बेतेल (बेतावन) के बछड़े के लिए डरते रहेंगे, क्योंकि वह अश्शूर देश पहुँचाया जाएगा, और लोग उस समय पहाड़ों से कहने लगेंगे कि हमें ढाँप लो । एप्रैम गिबा के दिनों से पाप करता आया है । अब बछिया की गर्दन जैसे उसकी सुंदर गर्दन पर जुआ रखा है (१०) ।

(ग) परमेश्वर का प्रेम (११ : १–११) : "जब इस्राएल बालक था, तब

मैंने उससे प्रेम किया और मिस्र से अपने पुत्र को बुलाया····मैं ने एप्रैम को पाँव-पाँव चलना सिखाया, और उनको गोद में लिए फिरता था'। परंतु इस्राएल विश्वासघात करने में ही लगा है ।····हे एप्रैम, मैं तुझे क्योंकर छोड़ दूँ ?····मैं मनुष्य नहीं परमेश्वर हूँ, मैं तेरे बीच रहनेवाला पवित्र हूँ, और मैं क्रोध करके नाश करने न आऊँगा।' इसके विपरीत मैं बंधुवाई से छुड़ाकर लौटाले आने आऊँगा।

(घ) एप्रैम की दुष्टता और दण्ड (११ : १२–१३ : १६) : एप्रैम लगातार झूठ और उत्पात को बढ़ाता रहता है। याकूब अब तक परमेश्वर की ओर चंचल और अडंगा मारने वाला है। एप्रैम के हाथ में छल का तराजू है; अंधेर करना ही उसको आता है। उसे धन का घमंड है। वह नबियों की अवहेलना करता है। मूर्तियाँ बनाता है (लोग बछड़ों को चूमते हैं)। इसलिए वे भोर के मेघ, तड़के सूख जाने वाली ओस, खलिहान पर से आंधी के मारे उड़ने वाली भूसी, या चिमनी से निकलते हुए धुएँ के समान होंगे (११ : १२–१३ : ३)। इस प्रकार वे उस परमेश्वर का परित्याग करते हैं जो कहता है, "मिस्र देश से ही मैं यहोवा तेरा परमेश्वर हूँ; तू मुझे छोड़ किसी को परमेश्वर करके न जानना, क्योंकि मेरे सिवा कोई तेरा उद्धारकर्ता नहीं।"····उनकी दुष्टता के कारण यहोवा उनके लिए सिंह सा बन गया है, वह चीते की नाईं मार्ग में घात लगाए रहेगा····उनके राजा उनको बचा न सकेंगे (१३ : ४–१६)।

(३) पश्चात्ताप के लिए पुकार और छुटकारे की प्रतिज्ञा (१४)।

इस्राएल अपने परमेश्वर यहोवा के पास यह कहते हुए लौट आएं, 'सब अधर्म दूर कर; अनुग्रह से हमको ग्रहण कर····अश्शूर हमारा उद्धार न करेगा, हम उसके घोड़ों पर सवार न होंगे, और न हम अपनी बनाई हुई वस्तुओं से कहेंगे "तुम हमारे ईश्वर हो"' (१४ : १–४)।

परमेश्वर उन्हें उत्तर देगा, 'मैं उनके भटक जाने की आदत को दूर करूँगा; मैं सेंतमेत उनसे प्रेम करूँगा····मैं इस्राएल के लिए ओस के समान हूँगा'···वे लौटेंगे और मेरी छाया में बैठेंगे और उद्यान के समान फले-फूलेंगे (१४ : ४–८)।

जो बुद्धिमान है वह इन बातों को समझेगा (१४ : ९)।

४. रचना, रचयिता, तिथि

ऊपर रूपरेखा में हम देख चुके हैं कि होशे की पुस्तक के तीन भाग हैं। अध्याय १–३ पहला भाग है। वह आत्मकथात्मक है और नबी के तीसरे बच्चे

के जन्म के पश्चात् लिखा गया होगा, और कदाचित दूसरे भाग (४–१३) की विभिन्न नबूवतों के बाद लिखा गया होगा। तीसरा भाग १४ वाँ अध्याय है। इसमें पिछले भागों के विपरीत आशा का संदेश है। कुछ विद्वानों का विचार है कि तीसरे भाग में जो आशा का अंश है वह परवर्ती सम्पादक का कार्य है। परन्तु पुस्तक के स्वरूप से इस मान्यता की पुष्टि नहीं होती। कारण यह कि होशे के गाहर्स्थ जीवन की दुखांत घटना से जो साम्य है, उसमें पुनरुद्धार की आशा निहित है। यह आशा नबी के गाहर्स्थ्य जीवन और इस्राएल के साथ परमेश्वर यहोवा के व्यवहार, दोनों में ही निहित है। इसके अतिरिक्त पुस्तक की लयात्मक शैली सारी पुस्तक में एक सी है।

यह मान्यता भी प्रस्तुत की गई है कि इस पुस्तक का एक यहूदापरक संशोधन हुआ, जिसमें इस्राएल को दिए गए मूल संदेश के अन्तर्गत यहूदा संबंधी उल्लेख जोड़ दिए गए। इनमें यहूदा के पक्ष में भी उल्लेख हुए हैं, जैसे १ : ७ और ११ : १२ में। परन्तु यहूदा के विपक्ष में भी उल्लेख हुए हैं, जैसे ४ : १५ और ८ : १४ में। इस्राएल को दोषी ठहराने के संदेश के समान यहूदा को दोषी ठहराना भी होशे का संदेश हो सकता है। नबी के मन में दोनों राज्य एक ही जाति थे।

संक्षेप में होशे की पूरी पुस्तक मूलतः एक ही व्यक्ति की, अर्थात होशे नबी की रचना है। इस पुस्तक के मसोरेती पाठ में जो अनेक समस्याएं विद्वानों के सामने उपस्थित होती हैं (जिनका स्पष्टीकरण सप्तति अनुवाद से हो जाता है), वे कदाचित इस कारण हैं कि नबी चालू बोली की शब्दावली में अपनी बातें लिख रहा है।

तिथि का निर्धारण सरल काम है। होशे ने अपना नबूवत–कार्य उस समय आरम्भ किया जब यारोबाम द्वितीय (ई० पू० ७८६–७४६) जीवित था (१: १ उत्तरार्द्ध)। ५ : १३ से यह संकेत मिलता है कि अश्शूर शक्तिशाली हो गया था और उसकी शक्ति से अन्य जातियों को भय होने लगा था। यह परिस्थिति यारोबाम की मृत्यु के पश्चात् विद्यमान थी। ई० पू० ७३५–७३४ का अरामी–एप्रैमी युद्ध ५ : ५–१०, १३ की पृष्ठभूमि प्रतीत होता है। इस प्रकार अंतर्साक्ष्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि होशे का नबूवत काल लगभग ई० पू० ७४६ से ७३४ तक था। यदि १ : १ में हिजकिय्याह राजा का उल्लेख ठीक है, तो होशे का नबूवत-कार्य ई० पू० ७१५ तक चलता रहा। परन्तु इस उल्लेख की शुद्धता में शंका है, क्योंकि पुस्तक की विषय सामग्री की घटनायें ई० पू० ७४६ से ७३४ तक सीमित हैं।

५. पुस्तक की व्याख्या की समस्या

१ : २ में यहोवा ने कहा, "जाकर एक वेश्या को अपनी पत्नी बना ले, और उसके कुकर्म के लड़के-बालों को अपने लड़के बाले करले।' यह कैसे संभव है कि यहोवा परमेश्वर, जिसने अपने आप को इस्राएलियों पर धार्मिक प्रकट किया था (नि० २० : १४), इस प्रकार की आज्ञा होशे को दे ? होशे यह कैसे विश्वास कर सकता था कि इस परिस्थिति में विवाह की प्रेरणा परमेश्वर की आज्ञा थी ? क्या होशे का विवाह वास्तविक घटना थी अथवा वह इस्रालियों को शिक्षा देने के लिए कल्पनात्मक एवं प्रतीकात्मक कथा थी ? इन प्रश्नों के विभिन्न उत्तर दिए गये हैं।

प्रतीकात्मक व्याख्या के अनुसार यह कथा एक रूपक कथा है जिसमें इस्राएल के साथ परमेश्वर के संबंध का वर्णन है। कदाचित होशे विवाहित नहीं था, और यदि विवाहित था तो उसकी पत्नी उसके प्रति पूर्णतः विश्वस्त थी।

शब्दशः व्याख्या के अनुसार, होशे ने एक वेश्या के साथ विवाह किया। उसकी आशा थी कि वह बदल जाएगी। उसकी पहली संतान औरस थी (१ : ३)। परंतु दूसरी दो जारज थीं, क्योंकि उनके संबंध में पिता का उल्लेख नहीं है। संभव है कि होशे से विवाह के पहले गोमेर मंदिर की देवदासी थी। उन दिनों में कनानी धर्म में देवदासी प्रथा प्रचलित थी। इस व्याख्या के संबंध में यह कठिनाई है कि होशे को क्यों आज्ञा दी गई, "जा, एक स्त्री से प्रीति कर" (३ : १) ?

सर्वसामान्य व्याख्या, जो परवर्ती दृष्टिकोण है, यह है कि १ :२ में 'वेश्या को पत्नी बनाने' का गोमेर संबंधी जो वर्णन है वह उस समय का है जब विवाह के कुछ समय पश्चात् होशे को ऐसी जानकारी होती है। विवाह के समय या उससे पूर्व उसे यह जानकारी नहीं थी। उसके दुःखद अनुभव के पश्चात् उसने लिखा। जो कुछ उसे बाद में पता लगा उसे उसने प्रारंभिक स्थिति पर आरोपित किया। फल से बीज का स्वभाव प्रकट हो गया और इसलिये बीज का वर्णन फल के रूप में किया जा सकता था। नबी होने के कारण होशे ने अपने गाहस्थ्र्य जीवन के अनुभव और इस्राएल के संबंध में परमेश्वर के अनुभव में साम्य देखा। दोनों में ही विवाह की वाचा उस समय तक सुखमय थी जब तक पाप के कारण दुःख न आया। जब गोमेर का विश्वासघात सिद्ध हो गया, तो होशे क्या करता ? इसी प्रकार परमेश्वर भी इस्राएल के साथ अपने संबंध के विषय में क्या करता ? जब होशे ने इन दोनों दुःखान्त

कथावस्तु को देखा – अपनी और परमेश्वर संबंधी–तो एक ओर तो गोमेर से लगातार प्रेम करने के लिये उसका हृदय द्रवित हुआ कि यदि वह सच्चा पश्चाताप करे, तो उसका पुनरुद्धार और उसकी पुनर्स्थापना करे (३ : १-३); और दूसरी ओर भटकी और विश्वासघातिनी इस्राएल जाति को, कि यदि वह सच्चा पश्चाताप करे, तो परमेश्वर के स्थायी प्रेम का उपदेश और आश्वासन दे।

६. होशे की जीवनी संबंधी टिप्पणियाँ

होशे इस्राएल के उत्तरी राज्य का नागरिक था। सामरिया के अन्यायों के संबंध में बोलते हुए वह 'हमारे राजा' शब्दों का प्रयोग करता है (७ : ५)। वह शहर का नहीं गाँव का रहने वाला था, क्योंकि वह जंगली जानवरों के फन्दों का (५ : १; ९ : ८), कृषक जीवन का (४ : १६; ८ : ७), और खेतों के फल, फूल एवं कांटों का वर्णन करता है (९ : १०; १० : १; १३ : १५)।

पुरोहिती कार्य के संबंध में उल्लेखों से कुछ विद्वानों का मंतव्य है कि होशे पुरोहित जैसा बोलता है और इसलिये वह पुरोहित परिवार का था (४ : ६–१४; ५ : १; ६ : ८–९; ८ : ९)। परंतु यह पक्की रीति से नहीं कहा जा सकता, क्योंकि कोई भी व्यक्ति जो बारीकी से देख सकता है इस प्रकार से लिख सकता है जैसे होशे ने लिखा।

यदि हम होशे के गाहस्र्थ्य जीवन के परवर्ती दृष्टिकोण वाली व्याख्या को मान लें, तो हम कह सकते हैं कि दिबलैम की पुत्री गोमेर के साथ होशे का विवाह उसके नबी होने की बुलाहट से संबद्ध है। उसके तीन बच्चे हुए जिनको उसने नबूवत के वचनों का प्रतीक बनाया। जब गोमेर ने धोखा दिया और उसे छोड़ दिया तो होशे के जीवन में दु:ख आया। इस्राएल के साथ परमेश्वर के व्यवहार के नमूने से प्रेरित होकर होशे ने मूल्य देकर गोमेर को या तो उसके यार से या मालिक से, जहाँ वह दासी थी, मोल लिया (३ : २) और उसकी पुनर्स्थापना के पहले एक परीक्षण काल निर्धारित किया।

७. धर्म शिक्षा

होशे को परमेश्वर के प्रेम का नबी कहा जाता है। यह ठीक है, क्योंकि होशे यह प्रस्तुत करता है कि यद्यपि इस्राएल जाति व्यभिचारिणी पत्नी के समान अपने स्वामी परमेश्वर के अयोग्य आचरण करती रही, तथापि परमेश्वर उससे लगातार प्रेम करता रहा। परमेश्वर पहले से ही इस्राएल से प्रेम करता

था (११ : १; १३ : ४) । उसने जंगल में सगाई के सारे आनंद सहित उससे विवाह की वाचा बाँधी (२ : १५), परंतु इस्राएल ने वाचा का भंग किया (६ : ७) और अपने को अयोग्य सिद्ध किया (२ : २–७; ४ : ११–१७) ।

परमेश्वर यहोवा और इस्राएल के बीच संबंध में वाचा को होशे केन्द्रीय स्थान देता है। इस संबंध का मूल गुण करुणा (Hesed) अथवा वाचा-प्रेम है। यह वह गुण है मानो कोई व्यक्ति परिवार के सदस्य जैसा रहता है, उसका स्वार्थ परिवार के अन्य सदस्यों के अधीन है, परिवार के आदर्श और नीति में वह परिवार के सम्मान को बनाए रखता है, परिवार में प्रत्येक के अधिकार का, विशेषकर दुर्बलों के अधिकार की रक्षा के दायित्व को स्वीकार करता है, और परिवार के मुखिया की आज्ञा का वह आनन्दपूर्वक पालन करता है। परमेश्वर के वाचागत प्रेम का यह आग्रह है कि सत्य और धार्मिकता के आदर्शों का पालन किया जाए (६ : ६), और उसमें यह निहित है कि इन आदर्शों के उल्लंघन के लिए कठोर दंड भी दिया जाए (४ : ३, ६–१०) । परमेश्वर किसी और के प्रति भक्ति को स्थान न देगा—अन्य देवताओं की भक्ति का अर्थ है व्यभिचार और विश्वासघात (४ : ११–६) । फिर भी उसके वाचागत प्रेम के कारण वह अपने भटके हुए लोगों की चिंता करता है (२ : ८) और उनको बचाने और चंगा करने का प्रयत्न करता है (७ : १, १३; ११ : ८–९; २ : १९) ।

होशे यह सिखाता है कि पाप की जड़ मन में है। इस्राएली लोगों के अंदर विश्वासघात की भावना (४ : १२; ५ : ४) से प्रभु की ओर फिरने का कार्य अधिकाधिक कठिन होता है। प्रभु की ओर फिरने के बदले वे अधिकाधिक मूर्ति-पूजा एवं कामुकता (४ : १२) और बाह्य रीति-विधियों को मानने की ओर बढ़ते जाते हैं। ये बातें परमेश्वर को प्रिय नहीं है (८ : ११–१३) ।

अड़तीसवाँअ ध्याय

योएल

१. शीर्षक

इस पुस्तक का नाम उसके लेखक, योएल नबी के नाम पर रखा गया है। इस नाम का अर्थ 'यहोवा ही परमेश्वर है।' पुराने नियम में अन्य कई व्यक्तियों का नाम योएल है। इस शब्द का इब्रानी रूप योएल है। सेपत्वागिंता और वुल्गाता में इओएल हैं। भारतीय भाषाओं में इब्रानी रूप अपनाया गया है और योएल नाम आया है।

२. विषय सामग्री का सारांश

योएल की पुस्तक में एक साथ ही दो विपत्तियों, टिड्डी और अकाल, के समय पर की गई नबूवतें प्रस्तुत हैं। इनसे आरम्भ होकर नबी का विचार अन्तिम समयों के वर्णन तक उठ जाता है और प्रभु के दिन का वर्णन किया जाता है जिसमें आत्मा का उंडेला जाना और जातियों का अंतिम न्याय होगा।

३. रूपरेखा

योएल—आत्मा के उंडेले जाने का नबी

(१) टिड्डी और अकाल से सीख (१ : १—२ : २७)

(क) वास्तव में विपत्ति आ गई है—अतः सब शोक करें, (१:१—२०): पुरनिये स्मरण करें कि इस समय की टिड्डी की विपत्ति के समान पहले कभी विपत्ति नहीं आई। इसमें टिड्डी की प्रत्येक अवस्था विनाश की नई लहर के समान है। दाख मधु पीने वाले शोक करें क्यों दाखलताएं सूख गई हैं। मन्दिर में याजक शोक करें क्योंकि भवन में अब अन्नबलि और अर्घ नहीं आते। किसान और फल-उद्यान के स्वामी शोक करें, क्योंकि खेत और उद्यान सूख गए हैं (१:१—१२)। लोग यहोवा के भवन में एकत्र हों और शोक करें तथा यहोवा की दोहाई दें। 'हे यहोवा, मैं तेरी दोहाई देता हूँ,

क्योंकि जंगल की चराइयाँ आग का कौर हो गईं······वनपशु भी तेरे लिए हाँपते हैं, क्योंकि जल के सोते सूख गए' (१:१३–२०)।

(ख) सब कंपित हों (२:१–११) : 'नरसिंगा फूंको', भय की सूचना दो, क्योंकि आक्रमणकारी (टिड्डियाँ) भयंकर हैं। 'उनके आगे की भूमि तो एदेन की बारी के समान होगी, परंतु उनके पीछे की भूमि उजाड़ मरु स्थल बन जाएगी·······वे सवारी के घोड़ों के समान दौड़ते हैं। उनके कूदने का शब्द ऐसा होता है जैसा पहाड़ों की चोटियों पर रथों के चलने का—वे शूरवीरों की नाईं दौड़ते, और योद्धाओं की भाँति शहरपनाह पर चढ़ते हैं·······वे घरों में ऐसे घुसते हैं जैसे चोर खिड़कियों में घुसते हैं। उनके आगे पृथ्वी कांप उठती है और आकाश थरथराता है······ यहोवा का दिन बड़ा और अति भयानक है।'

(ग) सब पश्चाताप करें (२:१२–१४) : 'यहोवा की यह वाणी है अभी भी ····अपने पूरे मन से फिरकर मेरे पास आओ। अपने वस्त्र नहीं, अपने मन ही को फाड़कर अपने परमेश्वर यहोवा की ओर फिरो। यहोवा अनुग्रह-कारी, दयालु, विलंब से क्रोध करने वाला और करुणा निधान है'।

(घ) उपवास और प्रार्थना के लिए महासभा की जाए (२:१५–१७) : 'सिय्योन में नरसिंगा फूंको, उपवास का दिन ठहराओ।.... याजक रो रोकर कहें, "हे यहोवा अपनी प्रजा पर तरस खा, और अपने निज भाग की नामधराई न होने दे···· जाति जाति के लोग क्यों कहने पाएं कि उनका परमेश्वर कहाँ रहा?" '

(च) परमेश्वर अपने लोगों की प्रार्थना पर ध्यान देता है (२:१८–२७): 'यहोवा को अपने देश के विषय में जलन हुई और उसने अपनी प्रजा पर तरस खाया।····उसने कहा, हे देश तू मत डर; तू मगन हो और आनंद कर····जिन वर्षों की उपज टिड्डियों ने खाली थी, मैं उसकी हानि तुम को भर दूंगा'।

(२) अंतिम दिन (२:२८–३:३१)

(क) आत्मा की प्रतिज्ञा (२:२८–३२) : 'उन बातों के बाद में प्राणियों पर अपना आत्मा उंडेलूंगा; तुम्हारे बेटे-बेटियाँ भविष्यवाणी करेंगी·······मैं आकाश में और पृथ्वी पर चमत्कार, अर्थात लोहू और आग और धूएं के खंभे दिखाऊंगा····जो कोई उस समय यहोवा से प्रार्थना करेगा, वह छुटकारा पाएगा'।

(ख) सारी जातियों का अंतिम न्याय (३:१–१६) : यहोवा सब जातियों को एकत्रित कर यहोशापात की तराई में ले जाएगा, और अपने निज भाग इस्राएल के विषय में मुकद्दमा लड़ेगा। सोर, सीदोन और पलिश्तीन का दिया हुआ बदला उनके ही सिर डाल दिया जाएगा।

जाति जाति के लोग युद्ध की तैयारी करें। 'अपने अपने हल की फाल को पीटकर तलवार, और अपनी अपनी हंसिया को पीटकर बर्छी बनाओ; जो बलहीन है वह भी कहे, मैं वीर हूँ'।········सब जाति के लोग आएं, यहोवा भी अपने शूरवीरों को वहाँ लाएगा—सब यहोशापात की तराई में —भीड़ की भीड़ के लिए निबटारे की तराई में—एकत्र हों। तब यहोवा सिय्योन से गरजेगा और अंतिम न्याय सुनायेगा।

(३) निष्पत्ति या पूर्णता (३:१७–२१) : 'यरूशलेम पवित्र ठहरेगा···· पहाड़ों से नया दाखमधु टपकने लगेगा, और टीलों से दूध बहने लगेगा······· यहोवा के भवन में से एक सोता फूट निकलेगा जिससे शित्तीम नाम नाला सींचा जाएगा।....इस प्रकार यहूदा और यरूशलेम का खून, जो अब तक मैंने पवित्र नहीं ठहराया था, अब उसे पवित्र ठहराऊंगा'।

४. संरचना, रचयिता और तिथि

इब्रानी मूलपाठ और समस्त प्राचीन अनुवादों में यह पूर्ण पुस्तक एक इकाई के रूप में उपलब्ध है। इसकी विषय सामग्री और शैली एक ही व्यक्ति की है और इसकी ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि भी एक रस है। अतः कुछ ही विद्वानों को छोड़ प्रायः समस्त विद्वान इसे अखंड रचना मानते हैं और योएल नबी को इसका लेखक मानते हैं।

इस पुस्तक की तिथि संबंधी कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। अतएव आलोचनात्मक विश्लेषण द्वारा तिथि का निर्धारण किया जाता है। इसमें न तो अश्शूर का और न बाबुल का उल्लेख है। अतः इसकी तिथि बाबुल राज्य के पतन के पश्चात् (ई. पू. ५३९) मानी जाती है। यूनानियों का उल्लेख हुआ है परंतु विश्व-साम्राज्य के रूप में नहीं (३:६)। अतः इसकी तिथि सिकंदर महान के पूर्व होनी चाहिए (ई. पू. ३३६–३२३)। सीदोन का न्याय अभी तक नहीं हुआ था (३:४)। इसलिए इसकी तिथि अतर्क्षत्र तृतीय द्वारा सीदोन के विनाश (ई. पू. ३४५) के पहले होनी चाहिये। यहूदा और यरूशलेम बंधुआई में गये (३:१), परंतु कुछ लौट आए और मंदिर का पुर्ननिमाण किया गया है (१:१३–१४; २:१७)। किसी राजा का उल्लेख नहीं है। परंतु याजक और पुरनिये लोगों के अगुवे हैं (१:२, १४; २:१७)। 'इस्राएल' शब्द का प्रयोग यहूदा के लिए भी किया गया है। दोनों एक ही माने गए हैं

(३:१–२)। यरूशलेम की शहरपनाह कदाचित बन चुकी हो (२:६), जो कार्य ई.पू. ४४५ में नहेम्याह द्वारा पूरा किया गया था। विचार और शैली की दृष्टि से भी निर्वासनोत्तर तिथि का संकेत होता है। ओबद्याह और मलाकी की पुस्तकों से उद्धरण इसमें आए हैं। इन तथ्यों के आधार पर इस पुस्तक की रचना तिथि लगभग ई. पू. ४०० जान पड़ती है।

नबी के संबंध में बहुत कम जानकारी मिलती है। केवल इतना ही पता चलता है कि वह पतूएल का पुत्र था (१:१)। यह अज्ञात व्यक्ति है। नबी की रचना से यह ज्ञात होता है कि उसका पूर्ववर्त्ती नबियों की रचनाओं से गहन परिचय था और कि वह स्वयं एक उच्चकोटि का कवि और लेखक था।

५. टिड्डियों का अर्थ लगाने की समस्या

पुस्तक के पहले भाग में टिड्डियों का वर्णन है। क्या उनका यथार्थ रूप से या प्रतीक रूप से अर्थ लगाया जाय? शाब्दिक या अभिधार्थ ही स्वीकार किया जाता है। किसी भी कृषिप्रधान जाति के लिये टिड्डीदल एक भयंकर विपत्ति होती है, जैसे अन्य आपत्तियाँ भी होती हैं। अतः टिड्डीदल का आक्रमण स्वभावतया लेखक के मन में परमेश्वर की ओर से न्याय के साथ संबद्ध हो जाता है और वह अंतिम दिनों के विषय में बोल उठता है। योद्धाओं और घोड़ों के समान टिड्डीदल का वर्णन बड़ा ही चित्रोपम और ठीक है। लेखक ने अवश्य टिड्डीदल देखा होगा।

कुछ प्राचीन टीकाकारों ने टिड्डियों का प्रतीकार्थ लगाया है। टिड्डीदल मनुष्यों की सेना है। वास्तव में, छठवीं शताब्दी के एक यूनानी पाठ में २:२५ में टिड्डियों के सम्बन्ध में जो अनेक शब्द प्रयुक्त हुए हैं, उनको आक्रमणकारी मिस्रियों, बाबुलियों, अश्शूरियों और यूनानियों के साथ संलग्न किया गया है। हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि यदि टिड्डियों की उपमा मनुष्यों से दी गई है, तो भी वे मनुष्य नहीं हो सकतीं।

एक और मान्यता है। वह भी प्रतीकार्थ है। वह यह है कि पुस्तक के दूसरे भाग के महान प्रकाशनात्मक उपसंहार में जो आक्रमणकारी सेनाओं का वर्णन है, उनका संकेत टिड्डियों से होता है। इसके सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि योएल ने टिड्डियों का जो वर्णन किया है उसमें 'हमारी आँखों के सामने' भोजन सामग्री के नष्ट होने का वर्णन है (१:१६)। इससे यह व्यंजित होता है कि वे वास्तविक टिड्डियां थीं।

अतएव यह स्पष्ट होता है कि योएल ने जिस टिड्डीदल का वर्णन किया है

वह यथार्थ टिड्डीदल था परन्तु उससे उसके मन में यहोवा के दिन का चित्र प्रेरित हुआ और उसने उसका शब्दचित्र प्रस्तुत किया।

६. धर्मशिक्षा

योएल की पुस्तक से हम यह सीखते हैं कि परमेश्वर को मानवीय नियति का नियंता स्वीकार करना चाहिये और इस रूप में ही उसके प्रति अपने सारे जीवन में व्यवहार करना चाहिये। टिड्डियों और अकाल जैसी विपत्तियों से हमें यह स्मरण कराया जाता है कि प्रभु का आना निकट है। वह न्याय अथवा आशिष के लिये आने वाला है। विपत्तियां हमारे लिये अपने आप को जांचने और पश्चाताप करने का अवसर होती हैं। यदि उनके कारण हम परमेश्वर की ओर फिरें (२:१४) तो हमें यह अनुभव होगा कि परमेश्वर अनुग्रहकारी और दयालु है (२:१३)। परमेश्वर की ओर फिरने का इससे अच्छा उपाय नहीं है कि हम महासभा में उपवास करें और भवन में प्रार्थना करें (२:१५)। हमारे पापों के लिये उपवास और पश्चाताप दिखावे का नहीं वरन हृदय से होना चाहिये (२:१३)।

परमेश्वर के चरम उद्देश्य में एक तथ्य यह है कि वह अपने लोगों पर अपना आत्मा उंडेलेगा (२:२८–२९)। यह परमेश्वर का सर्वश्रेष्ठ दान है। यह भोजन और सुरक्षा से अच्छा है (२:२६), क्योंकि इसमें परमेश्वर अपने आप को अपने लोगों को देता है। आत्मा का दान सब प्राणियों के लिये है, वे चाहे युवा हों या वृद्ध, चाहे स्वामी हों या दास। यह दान अंतिम दिनों की भयंकर बातों के सामने परमेश्वर के लोगों के लिये तैयारी में सहायक होगा (२:३०–३१)। प्रेरितों के काम २:१७–२१ में पतरस ने यह कहा कि योएल नबी की भविष्यवाणी पेन्तेकुस्त के दिन पूरी हुई।

अपने विरोधियों की समस्त सेना को एक अंतिम युद्ध में पराजित कर परमेश्वर सब जातियों का न्याय करेगा। पृथ्वी की सारी जातियों के लोग निर्णय की तराई में एकत्र होंगे (३:१४) जिसमें उनकी अंतिम नियति का निर्धारण होगा। परमेश्वर ने सिय्योन में अपने लोगों से जो वाचा बांधी थी उसे वह अनन्त काल तक सच्ची ठहराएगा (३:१७)। वह अपने उद्धार पाए हुए लोगों को बहुतायत से आशिष देगा (३:१८) और जो उसके शुभ अभिप्राय का विरोध करते हैं उनको वह दण्ड देगा (३:१९–२१)।

कभी-कभी योएल के संबंध में यह विचार किया जाता है कि उसकी राष्ट्रीयता संकुचित है क्योंकि वह परमेश्वर के अंतिम राज्य में अयहूदियों के एकत्र किये जाने का चित्र प्रस्तुत नहीं करता। हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि विभि-

न्न नबी परमेश्वर की योजना के और सत्य के विभिन्न पक्षों पर बल देते हैं। योएल नबी के लिये विचारणीय विषय यह नहीं था कि लोगों का सांस्कृतिक तथा राष्ट्रीय समूहों से कैसा व्यवहार है, परंतु यह था कि परमेश्वर के ऐतिहासिक प्रकाशन के साथ लोगों का क्या और कैसा संबंध है। ईश्वरीय प्रकाशन का एक उचित परिणाम यह था कि इस्राएल के साथ परमेश्वर की वाचा सच्ची ठहराई जाय, चाहे वह आत्मा के उंडेले जाने के द्वारा हो, चाहे जातियों के न्याय द्वारा हो। परमेश्वर किसी का पक्षपात नहीं करता, इसलिये आत्मा का उंडेला जाना सब प्राणियों के लिये है (२:२८), और वे सब जो परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं छुटकारा पाते हैं (२:३०)। जिस प्रकार यीशु ख्रिस्त ने अपना सेवा कार्य 'इस्राएल की खोई हुई भेड़ों तक' सीमित रखा (मत्त.१५:२४), उसी प्रकार योएल नबी ने भी अपना संदेश सीमित संदर्भ में ही दिया, परंतु जिस सत्य का उसने प्रचार किया उससे एक भिन्न संदर्भ में सार्वलौकिक क्रियान्वन का मार्ग खुल गया। आत्मा के उंडेले जाने के संबंध में योएल की नबूवत पेन्तेकुस्त की सार्वलौकिकता में सच्चे और उचित रूप में पूर्ण हुई। न्याय के संबंध में नबी की शिक्षा भी मूलतः वही है जो नये नियम में पाई जाती है।

उनचालीसवां अध्याय

आमोस

१. शीर्षक

इस पुस्तक का नाम आमोस नबी के नाम पर है जिसके दिव्य वचन और दर्शन इस पुस्तक की विषय सामग्री में हैं। आमोस शब्द का अर्थ 'वाहक' या 'वहित' है अर्थात परमेश्वर का वाहक या परमेश्वर द्वारा वहन किया हुआ। इब्रानी बाइबल के अतिरिक समस्त प्राचीन बाइबलों में इसकी वर्तनी प्राय: एक सी है। इब्रानी में शब्द के उच्चारण में कुछ भिन्नता है।

२. विषय सामग्री का सारांश

चरवाहा नबी आमोस के दिव्यवचन और दर्शन इस पुस्तक में हैं। इसका प्रमुख विषय यह है कि परमेवर के प्रति इस्राएल के विश्वासघात के कारण इस्राएल पर दंड आसन्न है। विश्वासघात का रूप सामाजिक अन्याय और भ्रष्टाचार है, जो यारोबाम द्वितीय के राज्य में व्यापारिक समृद्धि के कारण बहुत बढ़ गया था।

३. रूपरेखा

आमोस— परमेश्वर की ओर से नैतिक आचरण की मांग का नबी

(१) न्यायदंड पानेवालों की तालिका (१–२)

'यहोवा सिय्योन से गरजेगा''''चरवाहों की चराइयां विलाप करेंगी, और कर्मेल की चोटी झुलस जाएगी। यहोवा यों कहता है, दमिश्क के तीन क्या, वरन चार अपराधों के कारण मैं उसका दंड न छोड़ूगा क्योंकि उन्होंने गिलाद को लोहे के दांवनेवाले यंत्रों से रौंद डाला है। इसलिये मैं इस्राएल के राजभवन में आग लगाऊँगा (१:१-५)'।

इसी प्रकार के शब्दों में आमोस पलिश्तियों (१:६-८), सोर (१:६-१०) एदोम (१:११-१२), अम्मोन (१:१३-१५), मोआब (२:१-३), यहूदा (२:४-५), और इस्राएल (२:६-१६) पर दंड की घोषणा करता है।

यहूदा का अपराध यह है कि 'उन्होंने यहोवा की व्याख्या को तुच्छ जाना।' इस्राएल का अपराध यह है कि 'उन्होंने निर्दोष को रुपये के लिये और दरिद्र को एक जोड़ी जूतियों के लिये बेच डाला है'—अत्याचार, अन्याय, दुराचार—'जिससे मेरे पवित्र नाम को अपवित्र ठहराएं' (२:६-८)। यहोवा ने इस्राएल के लिये इतना किया, उसके बाद भी वे यह सब करते हैं (२:९-१२)। इसलिये दंड अनिवार्य है (२:१३-१६)

(२) विनाश और विनय के दिव्य वचन (३-६)

(क) घबराहट उत्पन्न करने वाले दिव्य वचन की प्रत्याशा क्यों न की जाय (३:१-८): परमेश्वर के सामने इस्राएल को विशिष्ट स्थान है अतएव दूसरों की अपेक्षा उसे अधिक कठोर दंड दिया जायगा (३:१-२)— 'पृथ्वी के सारे कुलों में से मैंने केवल तुम्हीं पर मन लगाया है, इस कारण मैं तुम्हारे सारे अधर्म के कामों का दंड दूँगा।'

इस्राएल यह अपेक्षा करे कि यहोवा अपने नबियों के द्वारा अपने क्रोध की गर्जना करेगा (३:३-८)—'सिंह गरजा; कौन न डरेगा! परमेश्वर यहोवा बोला; कौन भविष्यवाणी न करेगा?'

(ख) सामरिया में धनवानों के गढ़ों पर दंड (३-९-१५): पड़ोसी जातियों के लोग सामरिया पर एकत्रित होकर देखें कि उसमें क्या ही अंधेर हो रहा है!—अत्याचार, उपद्रव, हिंसा और डकैती उनके भवनों में एकत्रित हैं। इसलिये यहोवा यों कहता है, 'जिस भांति चरवाहा सिंह के मुँह से टांगें वा कान का एक टुकड़ा छुड़ाता है, वैसे ही इस्राएली लोग, जो सामरिया में बिछोने के एक कोने या रेशमी गद्दी पर बैठा करते है वे भी छुड़ाए जाएँगे' (३:९-१२)।

दंड के दिन, बेतेल की वेदी के सींग कुछ न कर सकेंगे, क्योंकि वे टूटकर भूमि पर गिर पड़ेंगे (३:१३-१५)।

(ग) विलासी स्त्रियों पर दंड (४:१-५)। 'हे बाशान की गायो, यह वचन सुनो, तुम जो सामरिया पर्वत पर हो, जो कंगालों पर अंधेर करतीं और दरिद्रों को कुचल डालती हो, और अपने-अपने पति से कहती हो कि ला, दे हम पीएं।'........तुम कटियाओं से खींच ली जाओगी (४:१-३)।

(घ) चितौनियों पर कुछ ध्यान नहीं दिया गया (४:६-१३)। अकाल, अनावृष्टि, वर्षा की अनिश्चितता, पौधों में कीड़े, टिड्डियां, मरी, युद्ध और विनाश सब तुम पर चितौनी के रूप भेजे गए परन्तु यहोवा

कहता है 'तुम मेरी ओर न फिरे'। इसलिये हे इस्राएल, परमेश्वर के सामने आने के लिये तैयार रह····देख, पहाड़ों का बनाने वाला···· पृथ्वी के ऊँचे स्थानों पर चलनेवाला, उसी का नाम सेनाओं का परमेश्वर यहोवा है।'

(च) विनाश का दंड आ ही रहा है-अब भी पश्चात्ताप करो (५:१-१७) : इस्राएल की कुमारी के लिये विलाप के लिये तैयार हो जाओ। उसका विनाश निकट है (५:१-३)। फिर भी 'यहोवा की खोज में रहो, तब जीवित रहोगे········जो कचपचिया और मृगशिरा को बनाने वाला है' ·····उसका नाम यहोवा है। वह तुरंत ही बलवंत का विनाश कर देता'–अर्थात तुम्हारा विनाश–'क्योंकि तुम कंगालों को लताड़ा करते और भेंट कहकर उनसे अन्न हर लेते हो ··· तुम धर्मी को सताते और घूस लेते······बुराई को नहीं, भलाई को ढूँढ़ो, ताकि तुम जीवित रहो····बुराई से बैर और भलाई से प्रीति रखो, और फाटक में न्याय को स्थिर करो, क्या जाने सेनाओं का परमेश्वर यहोवा ····अनुग्रह करे' (५:४-१५)।

अब विलाप का समय आ गया है और 'सब सड़कों में लोग हाय-हाय करेंगे!' (५:१६-१७)।

(छ) यहोवा के दिन का अर्थ है विनाश (५:१८-२७) : तुम्हारे लिये यहोवा के दिन की प्रतीक्षा करना मूर्खता है, क्योंकि 'वह तो उजियाले का नहीं, अंधियारे का दिन होगा।' परमेश्वर तुमसे तनिक भी प्रसन्न नहीं। वह कहता है, 'मैं तुम्हारे पर्वों से बैर रखता और तुम्हारी महासभाओं से प्रसन्न नहीं····परंतु न्याय को नदी की नाईं और धर्म को महानद की नाईं बहने दो।····तुम अपने राजा सक्कुथ को और अपने तारा-देवता कैवान को, जिनकी मूर्तियाँ तुमने बनाई हैं उनको लिए फिरते रहे;[1] इस कारण मैं तुमको दमिश्क के उस पार बंधुआई में कर दूँगा।'

(ज) अधर्ममय विलास में रहने वालों का विनाश (६) : 'हाय उन पर जो सिय्योन में सुख से रहते और उन पर जो सामरिया के पर्वत पर निश्चित रहते हैं'. जो अधर्ममय विलासी जीवन में सब जातियों से बढ़चढ़ कर हैं, 'जो हाथीदांत के पलंगों पर लेटते····जो सारंगी के

---

[1] आर. एस. वी. अनुवाद

साथ गीत गाते…जो कटोरों में दाखमधु पीते….परंतु यूसुफ पर आने वाली विपत्ति का हाल सुनकर शोकित नहीं होते—इस कारण वे अब बंधुआई में पहले जाएंगे' और घेरे जाने के संकट से आक्रांत होंगे (६:१–६१)। न्याय का अन्याय जो तुम करते हो वह वैसा ही अस्वाभाविक है जैसे घोड़ों का चट्टानों पर दौड़ना, और परमेश्वर की ओर से आनेवाले दंड के सामने तुम्हारी गर्वपूर्ण विजय व्यर्थ है (६:१२–१४)।

(३) पांच दर्शन (७ : १–६ : ७)

(क) टिड्डियों का दर्शन (७:१–३) : जब टिड्डियाँ घास खा चुकीं तब आमोस ने कहा, 'हे परमेश्वर यहोवा, क्षमा कर! नहीं तो याकूब कैसे स्थिर रह सकेगा ? वह कितना निर्बल है ?' यहोवा ने विपत्ति हटा ली।

(ख) भस्म करने वाली आग (७:४–६) : जब आग सब कुछ भस्म कर रही थी तो आमोस ने फिर पहले के समान प्रार्थना की और यह विपत्ति भी हट गई।

(ग) साहुल का दर्शन (७:७–६) : यहोवा ने कहा, 'देख, मैं अपनी प्रजा इस्राएल के बीच में साहुल लगाऊँगा। मैं अब उनको न छोड़ूँगा। इसहाक के ऊँचे स्थान उजाड़ हो जाएँगे।'

[बेतेल में आमोस (७:१०–१७) : 'बेतेल के याजक अमस्याह ने आमोस से कहा, हे दर्शी, यहाँ से निकलकर यहूदा देश में भाग जा और…वहीं भविष्यवाणी किया कर।…आमोस ने उत्तर दिया, मैं न तो भविष्यवक्ता था, न भविष्यवक्ता का बेटा, मैं तो चरवाहा था…और यहोवा ने मुझे बुलाकर कहा, जा मेरी प्रजा इस्राएल से भविष्यवाणी कर।' उसने अजर्याह के विरुद्ध भी भविष्यवाणी की।]

(घ) धूपकाल के फलों से भरी हुई टोकरी का दर्शन (८:१–३) : यहोवा ने कहा, 'मेरी प्रजा इस्राएल का अंत आ गया है; मैं अब उसको और न छोड़ूँगा….राजमंदिर के गीत हाहाकार में बदल जाएँगे।'

(अधर्मी इस्राएल जाति का विनाश (८:४–१४) : उन लोगों के लिए यहोवा का दिन भयानक दिन होगा जो 'दरिद्रों को निगलते, और नम्र लोगों को नाश करते हैं….जो एपा को छोटा और शेकेल को भारी कर देते हैं, और छल से दण्डी मारते हैं।'….लोग यहोवा के वचन की खोज में समुद्र से समुद्र तक और उत्तर से पूरब तक मारेमारे फिरेंगे, परंतु उसको न पाएँगे।)

(च) वेदी के ध्वंस का दर्शन (९:१–८) : आमोस ने यहोवा को वेदी के ऊपर खड़ा देखा और उसने आमोस से कहा, 'खंभे की कंगनियों पर मार जिसने डेवढ़ियाँ हिलें, और उनके सब लोगों के सिरों पर गिरा-कर टुकड़े-टुकड़े करें.... उनमें से एक भी न भाग निकलेगा.... चाहे वे खोदकर अधोलोक में उतर जाएँ, चाहे वे आकाश पर चढ़ जाएँ।' सेनाओं के परमेश्वर यहोवा के स्पर्श करने से पृथ्वी पिघलती है-- उसी का नाम परमेश्वर है (९:१–६) ; वही सारी जातियों–कूशी, पलिश्ती, आरामी या इस्राएल–को दी गई आशिषों के लिये उनसे लेखा चाहता है, और अपराधी जातियों को दण्ड देगा (९:७–८)।

(४) उपसंहार

परमेश्वर के लोगों का अंतिम उद्धार (९:९–१५) : 'इस्राएल का घराना सब जातियों में ऐसा चाला जाएगा जैसा अन्न चलनी में चाला जाता है.......उस समय मैं दाऊद की गिरी हुई झोंपड़ी को खड़ा करूँगा...और जैसा वह प्राचीन-काल में थी, उसको वैसा ही बना दूँगा....देखो, ऐसे दिन आते हैं, जब हल जोतने वाला लवनेवाले को मिला लेगा....मैं अपनी प्रजा इस्राएल के बंधुओं को फेर लाऊँगा....मैं उन्हें उन्हीं की भूमि में बोऊँगा और वे फिर कभी उखाड़े न जाएँगे।'

४. संरचना, रचयिता, रचना-तिथि

इस पुस्तक की संरचना में कहीं-कहीं असंगतियाँ हैं जिससे यह संकेत होता है कि इसके संचरण के संबंध में कुछ साहित्यिक इतिहास अवश्य है। हमें यह ज्ञात होता है कि ७:१०–१७ में जो जीवनी-संबंधी अंश है और ८:४–१४ में जो इस्राएल के विनाश संबंधी अंश है, वे दर्शनों की सूची में क्रम भंग जैसे हैं। साथ ही यह भी ज्ञात होता है कि ८:४–१४ में अध्याय १–६ की कुछ शब्दावली की पुनरावृत्ति हुई है (दे. ६:८ और ८:७; ८:१० और ५:१६–१७)। इसके आधार पर यह विचार किया जाता है कि अध्याय ८ में आमोस के वचनों की जो मौखिक परंपरा है वह अध्याय १–६ के वचनों की मौखिक परंपरा से भिन्न मानी जानी चाहिए। संभव है कि ९:१–४ के लिए एक तीसरी ही मौखिक परंपरा हो। इस अंश में सीधा दिव्य वचन नहीं है वरन वह किसी दर्शन से सम्बद्ध है।

इसके अतिरिक्त आमोस की पुस्तक का आरंभ भी विचित्र ढंग से होता है : 'आमोस के वचन........जो उसने देखा'। अपेक्षा तो यह की जाती है कि

या तो यह कहा जाए कि 'वचन जो उसने सुना', अथवा यह कहा जाए कि 'दर्शन जो उसने देखा'। इस विचित्र आरम्भ का एक स्पष्टीकरण तो यह दिया जाता है कि दो विभिन्न परम्पराओं के शीर्षकों को इसमें मिला दिया है—एक जो वचनों की परम्परा थी और दूसरी जो दर्शनों की परम्परा थी। इसके आधार पर यह कहना संभव है कि आमोस के संदेश, जो उसके श्रोताओं की स्मृति में थे, दो या तीन विभिन्न इकाइयों में लिखे गए। कुछ काल पश्चात ये विभिन्न इकाइयाँ एक पुस्तक के आकार में मिला दी गईं।

९:११ से इस पुस्तक के साहित्यिक इतिहास में एक और चरण का संकेत होता है। उस पद में दाऊद की गिरी हुई झोंपड़ी को फिर खड़ा करने की प्रतिज्ञा है। इससे प्रतीत होता है कि यरूशलेम का ध्वंस और बंधुवाई की घटनाएँ बीत चुकी हैं। यदि यह ठीक है तो यह अंश यरूशलेम के ध्वंस (ई. पू. ५८६) के समय लिखा गया होगा। ऐसा प्रतीत होता है कि जब भक्तों ने देखा कि आमोस का आराधनाओं में पाठ होता है, तो उन्होंने इस पद को जोड़ दिया होगा, ठीक उसी प्रकार जैसे हम 'प्रशंसा गान' (Gloria patri) को भजन-पाठ के अंत में जोड़ देते हैं। जिस व्यक्ति ने उसे जोड़ा उसे हम संपादक या संशोधक कह सकते हैं, परंतु हमें यह मानना पड़ेगा कि वह भक्तों में प्रचलित प्रथा को व्यक्त कर रहा था। जिस प्रकार परमेश्वर के आत्मा ने उस चरवाहे नबी के माध्यम से कार्य किया था जिसके वचनों पर विश्वासी लोग आस्था रखते थे, उसी प्रकार परमेश्वर का आत्मा इन भक्तों के माध्यम से भी कार्य कर रहा था।

तिथि का विचार कीजिए। आमोस 'भूकम्प के दो वर्ष पहले' नबूवत करने लगा था (१:१; दे. ९:१; जक. १४:५ । दुर्भाग्य से हमारे पास इस भूकम्प के संबंध में कोई ठीक जानकारी नहीं है। फिर भी जिस काल में आमोस ने नबूवत की उसके संबंध में शंका नहीं है। उसने यारोबाम द्वितीय के राजकाल (ई. पू. ७८६–७४६) में नबूवत की, जिसका यहूदा का राजा उज्जियाह समकालीन था (१:१)। यारोबाम के प्रारम्भिक वर्ष अराम के राजा के साथ युद्ध में बीते। आमोस के वचन सुरक्षा की स्थिति में समृद्धि के समय कहे गए। अतः यह माना जाता है कि आमोस की नबूवत का समय यारोबाम के राज-काल के मध्य का समय अर्थात लगभग ई. पू. ७६० होगा।

५. आमोस की जीवनी संबंधी टिप्पणियाँ

आमोस तकोई नगर का चरवाहा था। यह नगर यहूदा के पठार के किनारे था। यहूदा की मरुभूमि से लगा हुआ था। यरूशलेम से छः मील

दक्षिण में अथवा बेतलेहेम से दो मील दक्षिण में (१:१; ७:१४) था। आमोस के संबंध में चरवाहे के लिये एक विशेष शब्द नोकेद (Noqued) का प्रयोग किया गया है। उसका अर्थ वह चरवाहा है जो छोटे-छोटे पैरों की विशेष जाति की भेड़ों को चराता था। ये भेड़ें ऊन के लिये बहुत अच्छी मानी जाती थीं। आमोस को 'गूलर के वृक्षों को छांटनेहारा' भी कहा गया है (७:१४)। ये वृक्ष 'नीची भूमि प्रदेश' में होते थे। फल को चीरा दिया जाता था कि उनके कीड़े निकल जाएँ। मैदानों में जब वह जाता होगा तो उसने कई बार कारवाँ और सेनाओं को आते-जाते देखा होगा और विस्तृत संसार की गतिविधियों के संबंध में उसे जानकारी मिलती होगी। पठार पर अपने घर लौटने पर वह इन सब बातों पर विचार करता होगा।

आमोस किसी भी नबी-समूह का सदस्य नहीं था (७:१४)। परन्तु उसने नबूवत के लिये चरवाहे का काम केवल इसलिये छोड़ा कि परमेश्वर की ओर से उसे अदम्य बुलाहट मिली (७:१५; ३:८)। अमस्याह ने यह सूचना दी कि 'देश उसके सब वचनों को सह नहीं सकता' (७:१०)। इससे यह प्रतीत होता है कि आमोस समस्त इस्राएल देश में सब स्थानों में जाता था। विशेष रूप से वह सामरिया, गिलगाल और बेतेल को जाता था (४:१, ४)। बेतेल में अमस्याह याजक ने उसे बाहर निकलवाने का प्रयत्न किया। वह सफल हुआ अथवा नहीं, इसके सम्बन्ध में हमें जानकारी नहीं मिलती।

६. धर्म शिक्षा

आमोस प्रधानतया सामाजिक न्याय और धर्माचरण का नबी था। उसके संदेश का सारांश ५:२४ में है। उसने बताया कि यहोवा इस्राएल की उपासना से घृणा करता है—'मैं तुम्हारे पर्वों से बैर रखता और उन्हें निकम्मा जानता हूँ' (५:२१)। तब वह बताता है कि परमेश्वर क्या चाहता है : 'न्याय को नदी की नाईं, और धर्म को महानद की नाईं बहने दो' (५:२४)। व्यापार की बढ़ती के द्वारा पैसा और संपत्ति में वृद्धि होती है। उससे उत्पन्न अनाचार के लिए आमोस इस्राएली लोगों की निन्दा करता है। कंगालों के प्रति अन्याय, दूसरों की अभावग्रस्त स्थिति से अनुचित लाभ उठाना, और अधिक लाभ और विलास के हेतु सामान्य मानवीय सिद्धान्तों को तिलांजलि देना (२:५–८)—इनके लिये वह लोगों की निन्दा करता है। यारोबाम द्वितीय के समृद्धिशाली युग में व्यापारी वर्ग में इन बुराइयों के प्रति आमोस जैसे व्यक्ति का ध्यान विशेषरूप से आकर्षित हुआ, जो चरवाहों और कृषकों की परम्पराओं तथा जीवन चर्या में पला था और जिनको वह प्यार करता था। उस सीधे-साधे

समाज में चरित्र की दृढ़ता, भ्रातृत्व की भावना, और निष्ठा की अनन्यता को श्रेष्ठ माना जाता था। परन्तु केवल चरवाहा होने से ही आमोस इस बात के लिए प्रेरित नहीं हुआ कि इस्राएल में सामाजिक बुराइयों के प्रति आवाज उठाए। उसने यह अनुभव किया कि अन्याय, भ्रातृत्व भावना का अभाव और अनैतिक आचरण वाचा के नियमों के प्रति विश्वासघात है, और परमेश्वर के सामने घृणित काम है। सीधे-सादे पशुचारण समाज में वाचा का प्रकाशन हुआ था। परन्तु उसका प्रकाशन परमेश्वर की ओर से हुआ था। इसलिए वह यारोबाम द्वितीय के जटिल विस्तृत समाज के लिये भी उतना ही सत्य है जितना सादे चारण समाज के लिये। धनी और विलासी व्यापारी वर्ग का उदय मूलतः प्रजातांत्रिक गोत्र-भावना पर कठोर आघात था। साथ ही वह इस बात में धर्म त्याग भी था कि वाचा में छोटे भाई को परमेश्वर ने जो महत्व और मूल्य प्रदान किया था वह इस व्यापारी व्यवस्था ने हटा दिया था। परमेश्वर के लिए यह स्थिति इतनी घृणित बन गई थी कि यदि तुरन्त ही पश्चात्ताप का आश्रय न ग्रहण किया गया, तो इस स्थिति के सुधार का एकमात्र उपाय त्वरित दंड या आसन्न विनाश था। इस प्रकार आमोस 'दंड' का नबी था, इसलिए नहीं कि स्वभाव से वह निराशावादी था, परंतु इसलिए कि अपने समकालीन अन्य लोगों की अपेक्षा सत्य के प्रति उसकी अधिक पैनी दृष्टि थी। उसके समकालीन लोग आर्थिक और भौतिक मूल्यों के भँवर में अधिकाधिक फँसते जा रहे थे और धर्म को भी अपनी स्वार्थ सिद्धि का साधन बना रहे थे। आमोस की दृष्टि इन मूल्यों से परे वाचा के मूल्य पर थी।

आसन्न विनाश के मूल संदेश के प्रवाह में आमोस ने अन्य बड़े महत्व के सिद्धांतों की भी अभिव्यक्ति की। उनमें से एक यह था कि विशेष अधिकार के साथ विशेष कर्तव्य भी जुड़े हुए हैं। परमेश्वर ने इस्राएल को चुना। इसका यह अर्थ नहीं, जैसा साधारणतया लोग मानते थे, कि प्रभु के दिन में उन्हें पक्षपातपूर्ण विशेष पद प्रदान किया जाएगा। इसके विपरीत उसका यह अर्थ है कि उनसे उच्चकोटि के धरोहर-भाव और कर्म की अपेक्षा की जाएगी और उनका और अधिक कठोर न्याय होगा (३:२; ५:१८–२०)। जिसको अधिक दिया गया है उससे अधिक का लेखा लिया जाएगा।

आमोस ने एक और बड़ी शिक्षा यह दी कि इस्राएल का निर्वाचन इस तथ्य का प्रतीक है कि परमेश्वर समस्त जातियों से इसी रीति का व्यवहार करता है। उसने अन्य जातियों—पलिश्ती और अरामी आदि (९:७) जातियों को बुलाया कि वे विभिन्न रीति से परमेश्वर के शुभ अभिप्राय को पूर्ण करें।

इस्राएल पर न्याय-दंड का आना अनिवार्य है—इस संदेश का प्रचार करते हुए आमोस परमेश्वर की अतुलनीय महान सामर्थ्य का भी वर्णन करता है। परमेश्वर महान सृष्टिकर्ता है। उसने पहाड़ों और नक्षत्रों को बनाया (४:१३, ५:८)। वह समस्त प्राकृतिक शक्तियों पर प्रभुता करता है (९:५-६)। वह मानव राष्ट्रों की गतिविधियों पर भी शासन करता है और अपनी इच्छानुसार राष्ट्रों और जातियों को सामने लाता है (९:७) और अपने सनातन धर्ममय स्वरूप तथा अभिप्राय के अनुरूप उनको आशिष अथवा दंड देता है। परमेश्वर ही प्रकृति एवं इतिहास में सच्चा परमेश्वर है, इसीलिए उसका विरोध करने से विनाश अनिवार्य है। यदि इस स्थिति में कोई बचाव है तो वह उसकी करुणा की क्रियाशीलता में ही है।

चालीसवां अध्याय

ओबद्याह

१. शीर्षक

इस पुस्तक का नाम नबी ओबद्याह के नाम पर है। इब्रानी में ओबद्याह नाम है जिसका अर्थ 'याह (यहोवा) का दास' है। सेपत्वागिंता में अबद्युस है और बुलगाता में लगभग अबदियास है।

२. विषय सामग्री का सारांश

यह पुस्तक पुराना नियम की पुस्तकों में सबसे छोटी है। इसमें एदोम की हिंसा, भ्रातृत्वहीनता पर ईश्वरीय न्याय दंड की नबूवत है। साथ ही यहोवा की पूर्ण सामर्थ्य के दिन में सिय्योन के उद्धार का वचन है।

३. रूपरेखा

ओबद्याह—भ्रातृत्वहीनता की भर्त्सना करने वाला नबी।

(१) एदोम पर दंड (१ : १–१४)

(क) एदोम नीचा किया जायगा (१ : १–४) 'यहोवा की ओर से यह समाचार है, ...हे पहाड़ों की दरारों में बसने वाले........ तेरे अभिमान ने तुझे धोखा दिया है........चाहे तू उकाब की नाईं ऊँचा उड़ता हो, वरन् तारागण के बीच अपना घोंसला बनाए हो, तो भी मैं तुझे वहाँ से नीचे गिराऊँगा।'

(ख) एदोम का पूर्ण विनाश होगा (१ : ५–e) : 'जितनी हानि चोर नहीं करते और दाखलता उड़ाजनेवाले नहीं करते उससे अधिक हानि एदोम की होगी। एदोम में से बुद्धिमान और तेमान के शूरवीर नष्ट किए जाएँगे'।

(ग) एदोम के विरुद्ध यह अभियोग है कि उसमें भ्रातृत्वहीनता है (१ : १०–१४) : 'उस उपद्रव के कारण जो तूने अपने भाई याकूब पर किया, तू लज्जा से ढंपेगा · · · जिस दिन परदेशी लोग

उसकी धन संपत्ति छीन कर ले गए, और बिराने लोगों ने उसके फाटकों में घुसकर यरूशलेम पर चिट्ठी डाली, उस दिन तू भी उनमें से एक था। ··· यह उचित न था कि यहूदियों के नाश होने के दिन तू उनके ऊपर आनंद करता'।

(२) यहोवा का दिन (१ : १५–२१)

(क) सार्वलौकिक न्याय (१ : १५–१६) : 'सारी जातियों पर यहोवा के दिन का आना निकट है। जैसा तूने किया है, वैसा ही तुझ से भी किया जाएगा'।

(ख) याकूब और सिय्योन की पुनर्स्थापना (१ : १७–२१) : 'सिय्योन पर्वत पर बचे हुए लोग रहेंगे, और वह पवित्र स्थान ठहरेगा; और याकूब का घराना अपने निज भागों का अधिकारी होगा· · · और राज्य यहोवा का हो जाएगा'।

४. संरचना, रचयिता, तिथि

इस पुस्तक की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एकरस है और विचारों की शृंखला बँधी हुई है। इससे पुस्तक की अखंडता प्रमाणित होती है। परंतु यह भी प्रतीत होता है कि १–९ पदों में एदोम संबंधी कोई पुराना दिव्य वचन इसमें सम्मिलित है। इन पदों का यिर्मयाह ४९ : ७–२२ के साथ बहुत अधिक साम्य है। इन दोनों के बीच क्या संबंध है, यह एक समस्या है। यह विचार किया जाता है कि ओबद्याह और यिर्मयाह दोनों ने एदोम के विरुद्ध की गई किसी नबूवत का स्वतन्त्र रूप से उपयोग किया। अन्तर केवल इतना है कि यिर्मयाह ने उस नबूवत का प्रयोग यरूशलेम के विनाश के पूर्व किया (यि. ४९ : १२), और ओबद्याह ने उसके पश्चात् (पद ५)। ओबद्याह और योएल के बीच भी साम्य है जैसे ओबद्याह १ : १७ और योएल २ : ३२ में। ओबद्याह योएल से पहले की रचना है।

वह पुराना और रूपांतरित दिव्य वचन जो इसमें सम्मिलित है निर्वासन पूर्व का है, अन्यथा यिर्मयाह उसका उपयोग न कर पाता। परंतु ओबद्याह और उसकी पुस्तक की तिथि निर्वासनोत्तर है। ऐतिहासिक प्रसंग से ही इसकी लगभग तिथि निर्धारित की जा सकती है। बाइबल में उल्लिखित स्थान एज़ेन-गेबेर में जो खुदाई हुई है, उससे यह पता चलता है कि लगभग ई० पू० ६०० तक उस नगर का हाकिम एक एदोमी व्यक्ति था। परंतु ई० पू० पाँचवीं सदी में वह अरबी लोगों के अधिकार में था। ई० पू० छठवीं सदी के अन्त में अथवा ई० पू० पाँचवीं सदी के आरंभ में एदोमी का निष्कासन हुआ। यह

विचार किया जाता है कि इस घटना का ओबद्याह के ७ वें पद में संकेत हुआ है और यह घटना अतीत में हुई। जब अरबों द्वारा एदोमियों को अपने ही क्षेत्र से निकाल दिया गया तो एदोमी दक्षिणी यहूदियों में आ गए। जहाँ वे बसे, उस क्षेत्र को उन्होंने इदूमिया नाम दिया। ई० पू० दूसरी सदी में वे यहूदियों में मिल गए। ८-१० पदों में भावी न्याय संबंधी जो नबूवत ओबद्याह ने की वह इस मिल जाने के पहले और अरबों द्वारा विस्थापित किए जाने के बाद की होगी। साथ ही, यदि योएल ने ओबद्याह से सामग्री ली तो ओबद्याह की तिथि योएल से पहले होनी चाहिए। इन तथ्यों के आधार पर ओबद्याह की तिथि ई० पू० ४५० मानी जाती है।

५. धर्म शिक्षा

ओबद्याह की पुस्तक में दो प्रमुख शिक्षाएँ मिलती हैं : भ्रातृत्वहीनता के पाप की भयंकरता, और परमेश्वर के धर्ममय न्याय की तथा अन्त में परमेश्वर के राज्य की अनिवार्यता।

एदोम भ्रातृत्वहीनता का भारी उदाहरण है। एदोम और इस्राएल दोनों का ही गोत्र-भावना के प्राचीन आदर्शों में पोषण हुआ। अतः एदोम से यह अपेक्षा की जाती है कि इस्राएल की ओर भ्रातृभावना रखे, विशेषकर उस समय जब इस्राएल विपत्तिग्रस्त था और उसके शत्रु उसे नष्ट कर रहे थे। इसके विपरीत एदोम अपने भाई के विनाश से आनंदित हुआ, उसकी धन संपत्ति को ले लिया, और दूसरों का मानो साथ देकर भाई की दुर्दशा को और कठिन बना दिया। मूल सदाचार की भावनाओं को इस प्रकार ठोकर मारने के प्रति परमेश्वर उदासीन नहीं रह सकता। अतः जितना जघन्य अपराध, उसके मान से ही यहोवा की ओर से दंड।

यहोवा का दिन निकट है। तब सारी जातियों का न्याय होगा, और सबको उनके कर्म के अनुसार प्रतिफल दिया जाएगा (पद १५)। उस न्याय में यहोवा सिय्योन में, जो अब मुक्त और पवित्र किया जा चुका है (पद १७), अपने साकार ऐतिहासिक प्रकाशन को प्रमाणित करेगा, तथा एदोम जैसे शत्रुओं का विनाश करेगा। अन्त में 'राज्य यहोवा ही का हो जाएगा' (पद २१)।

इकतालीसवां अध्याय

योना

१. शीर्षक

अन्य छोटे नबियों की पुस्तकों के समान इस पुस्तक का नाम नहीं रखा गया है। अन्य पुस्तकें लेखकों के नाम पर हैं। योना की पुस्तक लेखक के नहीं, वरन कथा के नायक के आधार पर है। इब्रानी में 'योना' शीर्षक है, जिसका अर्थ 'कपोत' है। सप्तति अनुवाद और वुल्गाता दोनों में इओनस है। हिन्दी में इब्रानी के आधार पर योना है।

२. विषय सामग्री का सारांश

इस पुस्तक में यह बताया जाता है कि नीनवे के अविश्वासी लोगों के प्रति परमेश्वर की कृपा भावना योना नबी के लिये असह्य है। उसे आज्ञा दी गई कि वह उनके पास जाकर उनको पश्चाताप का संदेश दे। इस कार्य में उसने आज्ञालंघन, अरुचि, निरानंद और मुँह फुलाना प्रदर्शित किया। ये सब बातें परमेश्वर के स्वभाव के विरुद्ध हैं, क्योंकि परमेश्वर सब पापियों का उद्धार चाहता है, फिर चाहे वे उसकी निर्वाचित जाति में से हों अथवा विधर्मियों से।

३. रूपरेखा

योना--विधर्मियों से प्रेम रखने के लिये चुनौती

(१) योना अपनी बुलाहट से भाग जाता है (१)

यहोवा योना को आज्ञा देता है कि वह नीनवे को जाए और वहाँ के लोगों की बुराई के विरुद्ध प्रचार करे। विधर्मियों के उद्धार में योना की रुचि नहीं। इसलिये वह यापो नगर जाकर तर्शीश के जहाज पर चढ़ जाता है। (यह नगर नीनवे की विपरीत दिशा में बहुत दूर है)। परमेश्वर ने एक प्रचंड आंधी चलाई। जहाज के लोग नष्ट होने पर थे। मल्लाह लोग अपने देवताओं की दोहाई देते हैं। परंतु योना सोता है। वे चिट्ठियां डालते हैं तो पता चलता है कि योना के परमेश्वर के क्रोध के कारण यह आँधी आई, तो वे

श्रद्धा और डर से भर गए और योना से सम्मति चाही। उसकी सम्मति पर वे योना को समुद्र में फेंक देते हैं। समुद्र की लहरें शांत हो गई। एक मगरमच्छ योना को निगल लेता है, जिसे परमेश्वर ने ठहराया था।

(२) मगरमच्छ के पेट में योना का भजन (२)

"मैंने संकट में पड़े हुए यहोवा की दोहाई दी, और उसने मेरी सुन ली। अधोलोक के उदर में से मैं चिल्ला उठा, और तूने मेरी सुन ली.......तेरी भड़काई हुई सब तरंग और लहरें मेरे ऊपर से बह गई.......मेरे सिर में सिवार लिपटा हुआ था, मैं पहाड़ों की जड़ तक पहुँच गया था.......मेरी प्रार्थना तेरे वरन तेरे मंदिर में पहुँच गई.......परंतु मैं ऊंचे शब्द से धन्यवाद करके तुझे बलिदान चढ़ाऊंगा; जो मन्नत मैंने मानी, उसको पूरी करूंगा। उद्धार यहोवा ही से तो होता है'। मगरमच्छ ने योना को स्थल पर उगल दिया।

(३) अनिच्छा से काम करने वाले नबी का सफल कार्य (३)

मगरमच्छ के उदर में विनम्र किए जाने के अनुशासन के पश्चात् योना यहोवा का वचन मानता है, और नीनवे को लोगों को दंड का संवाद सुनाता है। उसकी आशा के विपरीत नीनवे के सब लोगों ने, राजा से लेकर छोटे से छोटे मनुष्य ने पश्चात्ताप किया और परमेश्वर ने उन पर दया की और अपनी इच्छा बदल दी।

(४) परमेश्वर योना के मन-परिवर्तन का प्रयास करता है (४)

योना को यह बात बुरी लगी कि नीनवे का नाश नहीं होगा। उसने परमेश्वर से परिवाद किया कि वह अनुग्रहकारी और दयालु परमेश्वर है, विलंब से कोप करने वाला करुणानिधान है। योना परमेश्वर से प्रार्थना करता है कि नीनवे का विनाश नहीं हुआ तो वह उसका प्राण ले ले। अतः वह एक छप्पर के नीचे मुँह फुलाकर बैठा हुआ यह देखने लगा कि नगर का विनाश होता है या नहीं

यहोवा रेंड़ का एक पेड़ उगाकर बढ़ाता है। योना उसकी छाया के कारण बहुत आनंदित हुआ। रात्रि को परमेश्वर ने एक कीड़ा भेजा जिसने रेंड़ का पेड़ काटा जिससे वह सूख गया। जब सूर्य उदय हुआ, तब परमेश्वर ने लू चलाई। योना क्रोधित हुआ और परमेश्वर से मृत्यु माँगी। परमेश्वर ने योना को समझाया, 'जिस रेंड़ के पेड के लिये तूने कुछ परिश्रम नहीं किया, न उसको बढ़ाया, जो एक ही रात में हुआ, और एक ही रात में नाश भी हुआ; उस पर तूने तरस खाई है। फिर क्या यह बड़ा नगर नीनवे, जिसमें एक लाख

बीस हजार से अधिक मनुष्य हैं, जो अपने दाहिने बायें हाथों का भेद नहीं पहिचानते, और बहुत घरेलू पशु भी उसमें रहते हैं, तो क्या मैं उन पर तरस न खाऊं ?' परमेश्वर ने नीनवे के लोगों में अपने सृष्टिमूलक प्रेम को व्यक्त किया और क्या वह उनके उद्धार की चिंता कर उन पर दया न करेगा ? कम से कम पशुओं पर तो दया करने दो ।

४. संरचना, रचयिता, तिथि

(१) इसमें शंका नहीं है कि योना नाम पुस्तक में एक पूर्ण कथा प्रस्तुत है । अत: वह एक अखंड और एक ही लेखक की रचना है । फिर भी यह न्याय संगत जान पड़ता है कि यह प्रश्न उपस्थित किया जाए कि २ : २–९ में जो भजन है, वह मूल कथा का भाग है अथवा नहीं ? यदि इस अंश को निकाल भी दिया जाए तो कथा की धारा में कोई बाधा नहीं होती। कथा का रूप इस प्रकार होगा : योना उस मगरमच्छ के पेट में तीन दिन और तीन रात पडा रहा। तब यहोवा ने मगरमच्छ को आज्ञा दी, और उसने योना को स्थल पर उगल दिया (१ : १७; २ : १०) । इसके अतिरिक्त, यदि हम भजन का उसके संदर्भ से पृथक करके अध्ययन करें, तो ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि वह मंदिर में धन्यवाद का भजन है, और भजन उस अवसर का है जब मृत्यु (अधोलोक के उदर, २ : २), या विशेषकर डूबने से बचाया गया है। तरंगों और लहरों का उल्लेख (२ : ३) रूपकात्मक भी हो सकता है जैसे भजन ४२ : ७ में है । इस भजन में मगरमच्छ का संकेत कहीं नहीं है । यह बिलकुल संभव जान पड़ता है कि लेखक ने गद्य में अपनी कथा लिखी, परंतु जब लोग रुचि लेने लगे, तो उसने अपने श्रोताओं की रुचि को तीव्र करने के लिए एक परिचित भजन का उपयोग किया जो बड़ी विनम्रता और परमेश्वर से सहायता के भावों से ओतप्रोत था ।

(२) रचयिता—रचयिता अज्ञात है। पुस्तक में योना नबी के दिव्य वचन नहीं है परंतु योना की कथा है । केवल ३ : ४ में ही योना के संदेश के शब्द प्रस्तुत हैं : 'अब से चालीस दिन बीतने पर नीनवे उलट दिया जाएगा' !

(३) तिथि—अमित्तै का पुत्र योना (२रा. १४ ; २५) यारोबाम द्वितीय राज्य (ई. पू. ७८६–७४६) में नबी था। परंतु वहां इस बात का कोई संकेत नहीं है कि उसके विषय में पुस्तक कब लिखी गई । तिथि का निर्धारण पुस्तक को शब्दावली और भाषा शैली से तथा उस ऐतिहासिक प्रसंग पर विचार करने से हो सकता है जो इसके संदेश से संगत जान पड़े । इसकी भाषा पर अरामी भाषा का प्रभाव जान पड़ता है जिससे यह संकेत होता है कि यह निर्वा-

सनोत्तर है। 'स्वर्ग का परमेश्वर' शब्द भी निर्वासनोत्तर है। पुस्तक का संदेश उस समय के उपयुक्त जान पड़ता है जब यह जोखिम उपस्थित थी कि यहूदी यह समझें कि परमेश्वर की चिंता केवल उन्हीं तक सीमित है और कि अन्य जाति के लोग उसकी करुणा की परिधि से बाहर हैं। एज्रा के सुधारों के पश्चात का काल इस परिस्थिति के अनुरूप जान पड़ता है। इसकी तिथि सीरख (ई, पू. १८०) से बहुत पहले होना चाहिये, क्योंकि उसमें योना की पुस्तक धर्मशास्त्र के अंतर्गत स्वीकार की गई है (सी. ४९ : १०) । इन तथ्यों के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि योना की पुस्तक ई. पू. ४०० से २०० के बीच लिखी गई और साधारणतया लगभग ई. पू. ३०० में लिखी गई।

५. **व्याख्या या निर्वचन** (Interpretation)

योना की पुस्तक की व्याख्या दो विशेष रूप में की जाती है : ऐतिहासिक और द्रैष्टांतिक। ऐतिहासिक व्याख्या में यह माना जाता है कि इस कथा का प्रधान पात्र, अमित्तै का पुत्र, योना एक ऐतिहासिक व्यक्ति है (२ रा० १४ : २५), इसलिए इस सारी कथा को एक सत्य आलेखन मानना चाहिए। यह भी मान लिया जाता है कि यीशु ख्रिस्त ने इस नबी को अपनी मृत्यु एवं पुनरुत्थान का पूर्व-प्रतीक माना (मत्त० १२ : ३९-४१), इसलिए हमें योना के मगरमच्छ के उदर में तीन दिन रहने को, तथा कथा के अन्य चमत्कारिक अंशों को शब्दशः सत्य स्वीकार करना चाहिए।

द्रैष्टांतिक व्याख्या में यह माना जाता है कि लेखक एक दृष्टांत या रूपक इस अभिप्राय से बता रहा है कि अपने श्रोताओं को वह एक धर्म-सत्य के संबंध में निश्चय कराये। अमित्तै के पुत्र योना जैसे ऐतिहासिक व्यक्ति का उपयोग वह अपने दृष्टांत के प्रारम्भ करने के हेतु करता है, जैसे शेक्सपियर अपने नाटक के लिए मेकबैथ के नाम का उपयोग करता है, अथवा जयशंकर प्रसाद अपने नाटक के लिए स्कंदगुप्त के नाम का उपयोग करता है। यीशु ख्रिस्त ने जैसे 'अच्छे सामरी' के दृष्टांत का प्रयोग यह सिखाने के लिए किया कि अपने पड़ोसी से प्रेम करने का क्या अर्थ है, उसी प्रकार लेखक ने योना के दृष्टांत का उपयोग यह सिखाने के लिए किया कि लोग विधर्मियों के प्रति अपनी भावना में सुधार करें।

व्याख्या की समस्या पर विचार करने के लिये, हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि बाइबल के किसी भी अंश की प्रेरणा से उसके लेखक के मंतव्य का घनिष्ट संबंध है। जब धार्मिक ग्रंथ-लेखक घटनाओं और उनके अभिप्राय का वर्णन करता है, तो इतिहास में ईश्वरीय कार्य के मान से हम परमेश्वर के

वचन को समझते हैं। जब लेखक प्रार्थना, स्तुति अथवा धन्यवाद में अपने मनोभावों को व्यक्त करता जैसे भजनों में, तो हम लेखक के अभिप्राय के मान से परमेश्वर के वचन को समझते हैं, और हम लेखक को अपनी कला में काव्यालंकारों की स्वतंत्रता देते हैं। जहाँ कोई धार्मिक ग्रंथ लेखक दृष्टांत देता है, तो हम दृष्टांत के उद्देश्य के मान से परमेश्वर के वचन को समझते हैं, और यह अपेक्षा नहीं करते कि दृष्टांत इतिहास की घटना के अनुरूप हो। इसलिए योना की पुस्तक के संबंध में मुख्य प्रश्न यह है कि इसके लिखने में लेखक का अभिप्राय क्या है? अन्य अधिकांश लेखकों के समान इस लेखक ने भी अपना अभिप्राय स्पष्ट नहीं किया, और यह इसलिये कि किसी भी प्रबुद्ध श्रोतासमूह के लिए अभिप्राय का स्पष्टीकरण आवश्यक नहीं है। जिन लोगों ने इस कथा को पहले पहल सुना, उनके लिये लेखक का अभिप्राय समझने में कोई कठिनाई नहीं थी, क्योंकि लेखक और श्रोता दोनों ही विचारों और जीवनचर्या के समनिष्ठ प्रसंग से परिचित थे। आगे आनेवाली पीढ़ियों का वातावरण बदल गया, और इसलिए लेखक के अभिप्राय को समझने के लिये उन्हें मूल प्रसंग की पुनर्कल्पना करनी पड़ी। अतएव पुस्तक की प्रेरणा की समस्या से पृथक हमें इस प्रश्न पर विचार करना चाहिये कि मूल प्रसंग में लेखक का अभिप्राय क्या था।

हमारा विचार यह है कि लेखक का अभिप्राय इतिहास की घटना का वर्णन नहीं, वरन दृष्टाँत कथन था। जो इतिहास-अध्ययन की पद्धतियों से परिचित हैं, कम से कम उनके लिये इस कथा को इतिहास मानना बड़ा कठिन है। यह माना कि परमेश्वर ने कई बार इस प्रकार से कार्य किया है, जिसमें प्रकृति के नियमों से स्वतंत्रता दिखाई देती है और जिन्हें हम चमत्कार कहते हैं, परंतु योना की पुस्तक में जो चमत्कार हैं, वे बाइबल में अद्वितीय हैं। चमत्कारिक कार्यों में प्रचंड आंधी का ठीक समय, इतने बड़े मगरमच्छ को तैयार करना कि मनुष्य निगल लिया जाए, मगरमच्छ को ठीक स्थान पर आना, उसकी पाचन शक्तियों का स्थगित होना, तीन दिन तक श्वास घोंट देने वाले स्थान में सचेत रहना, ठीक स्थान पर ठीक समय पर योना का उगला जाना, उसका कुछ न बिगड़ना, नीनवे का पूर्ण पश्चाताप (जो पुरातत्व की खोज से मेल नहीं खाता), रेंड़ के वृक्ष का रात भर में बढ़ जाना और फिर निर्धारित कीट द्वारा रात भर में सूख जाना। यह मानते हैं कि परमेश्वर यह सब कुछ अक्षरशः कर सकता है, क्योंकि उसकी सामर्थ किसी प्रकार भी सीमित नहीं है। परंतु चमत्कारों की यह माला प्रकृति में परमेश्वर के कार्यों से अथवा इस्राएल के प्रति उसके प्रकाशन संबंधी कार्यों से इतनी भिन्न है कि हम इस तथ्य में शंका कर सकते हैं कि इस कथा का यह अभिप्राय था कि वह

अक्षरशः सच मानी जाए। बाइबल की यह विशेषता है कि चमत्कारों के प्रयोग में परमेश्वर एक संयत मितव्ययता काम में लाता है। यह यीशु के सेवा कार्य से स्पष्ट हो जाता है। यदि योना की कथा को अक्षरशः सत्य माना जाए, तो हमारे समक्ष चमत्कारों या आश्चर्य कर्मों का अपव्यय समझा जाएगा।

योना के मछली के पेट में तीन दिन रहने का चिन्ह यीशु ख्रिस्त ने कबर में अपने रहने के लिये दिया था। परंतु इससे भी हम इस बात को स्वीकार करने के लिये बाध्य नहीं होते कि मछली के पेट में रहने का कथन अक्षरशः सत्य है। यीशु की मृत्यु और पुनरुत्थान अपने में ही वास्तविक घटनाएं हैं। वे इस बात पर निर्भर नहीं हैं कि उनका भविष्य कथन करने में यीशु ने सत्य घटना या दृष्टान्त का प्रयोग किया। साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिये कि जब यीशु ने योना का उल्लेख किया तो उसकी मृत्यु और पुनरुत्थान की घटनाओं की ऐतिहासिकता विचाराधीन नहीं थी। प्रभु के विचार में योना की कथा मानव-पुत्र के संबंध में परमेश्वर की योजना को व्यक्त करने के लिये एक चिन्ह या उदाहरण मात्र थी (मत्त. १२ : ३९)। साथ ही प्रभु के विचार में वह कथा परमेश्वर की ओर से जीवित वचन की उपेक्षा की गंभीरता के विषय उसकी पीढ़ी को चेतावनी भी थी (मत्त. १२ : ४१–४२; लू. ११ : २९-३२)।

संभव है कि योना के संबंध में कोई परंपरा रही हो जिससे इस पुस्तक की द्रैष्टांतिक कथा के लिये एक मोटा आधार मिला हो। यह पूर्णतः संभव है कि योना नीनवे को प्रचार हेतु गया, जैसे आमोस ने पड़ोसी जातियों के विरुद्ध दिव्य वचन कहे, और इससे पूर्व एलीशा का दमिश्क की गतिविधि में हाथ रहा। यह भी संभव है कि कोई बड़ी मरणांतक दुर्घटना से बच जाने पर योना नीनवे को गया। फिर भी पुस्तक में जिस रूप में कथा दी गयी है, वह तो जितनी इतिहास नहीं उतनी दृष्टांत लगती है, विशेषकर इसलिये कि वह एक विशिष्ट सत्य को प्रमाणित करने की ओर उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है—वह सत्य है अन्य जातियों की ओर परमेश्वर की करुणा। वास्तव में यह पुस्तक 'शुभ संदेश प्रचार' की याचिका (plea) है।

यह कथा रूपकात्मक (allegorical) है और द्रैष्टांतिक भी। अर्थात् इसकी शिक्षा केवल एक ही मुख्य विचार में नहीं, परंतु प्रतीकों द्वारा अनेक विचारों में प्रतिपादित है। योना परमेश्वर के उन लोगों का प्रतीक है, जो उसके युग में संकुचित भावना रखते थे, साथ ही उनके हृदय में वह आशा भी थी जो बाद में यीशु ख्रिस्त में पूर्णतः प्रकट हुई। योना के समान इस्राएल को भी अन्य जातियों के लिये प्रकाश बनने की बलाहट दी गई। इससे पूर्व कि

इस्राएल पूर्ण आज्ञापालन सीखे, उसे अन्य जातियों ने निगल लिया और इस प्रकार वह विनम्र किया गया (दे० यि० ५१ : ३४)। संकट की अवस्था में वह परमेश्वर की ओर फिरा। कालान्तर में वह निर्वासन के पश्चात् अपने देश को लौटा और अपने देश में पुनः संजीव किया गया। यद्यपि कुछ अंश में इस्राएल ने आज्ञापालन सीख लिया, फिर भी उसे परमेश्वर के असीम प्रेम एवं करुणा के संबंध में और भी सीखना था, और वह यह कि उस प्रेम की परिधि में अन्य जातियां भी हैं। इसी ढांचे में आदर्श इस्राएल, यीशु ख्रीस्त का पूर्वाभास योना में है। यीशु ख्रिस्त समस्त जातियों की सच्ची ज्योति है और वह निष्पाप होते हुए भी, तीन दिन तक कबर में पूर्ण दीन हुआ। इसी दीनता के द्वारा उसने उद्धार-कार्य पूरा किया जिसके पश्चात नये प्रतिज्ञा-देश, अनुग्रह के युग अर्थात पुनरुत्थान की स्थापना हुई।

६. धर्म शिक्षा

पुस्तक की व्याख्या का विवेचन करते इस पुस्तक की धर्मशिक्षा प्रस्तुत की जा चुकी है। यहाँ पर उसका सारांश देना पर्याप्त होगा।

(१) इस पुस्तक की प्रमुख शिक्षा यह है कि हमें परमेश्वर के प्रेम को केवल विश्वासी लोगों तक ही सीमित नहीं करना चाहिए। लेखक के युग में यहूदी लोग विश्वासियों का समाज थे, आज हमारे युग में ख्रिस्तीय कलीसिया विश्वासियों का समाज है। परमेश्वर के प्रेम की परिधि इनसे आगे है। परमेश्वर सब मनुष्यों का उद्धार चाहता है, और यह उसकी इच्छा है कि हम भी इस चाह में सम्भागी रहें। उसकी यह इच्छा नहीं है कि जैसे योना अपनी ईश्वरीय बुलाहट के क्रियान्वन में संकुचित था, वैसे ही हम भी अपनी बुलाहट के क्रियान्वन में संकुचित रहें। इस कथा से इस संकुचित भावना की क्षुद्रता और व्यर्थता प्रतिपादित होती है।

(२) सारी जातियों तक उद्धार का संदेश पहुँचाने के कार्य को संपन्न करने के लिये परमेश्वर के पास एक पद्धति है। वह यह है कि वह दीन बनाने के द्वारा अपने लोगों को आज्ञाकारी बनाए। इसी पद्धति से वह अपने दासों को इस योग्य बनाता है कि वे संसार तक जीवित वचन के वाहक हों। यहूदी लोग इसी प्रकार उनकी बंधुआई में दीन किए गए। योना के निगले जाने से इस तथ्य की ओर संकेत है। यही बात मानव-पुत्र के संबंध में सत्य है, जिसने निष्कलंक होते हुए भी अपने को दीन किया और यहाँ तक आज्ञाकारी रहा कि क्रूस की मृत्यु भी सह ली, और कबर में निगले जाने तक की दीनता के ारा उसने समस्त संसार के उद्धार का कार्य पूरा किया।

बयालीसवाँ अध्याय

मीका

१. शीर्षक

इस पुस्तक का नाम मीका नबी के नाम पर है। यह नाम कदाचित् मीकायाह का छोटा रूप है (दे० १ रा० २२ : ८)। इब्रानी में मीकायाह का अर्थ है 'जो याह अर्थात यहोवा के समान है' (दे० मीक० ७ : १८; नि० १५ : ११)। यह सदा ही छोटे नबियों के अन्तर्गत मानी जाती रही है। इब्रानी, वुल्गाता और अंग्रेजी बाइबलों में छोटे नबियों में इसे छठवाँ स्थान दिया गया है, परन्तु सेपत्वागिंता में इसे तीसरा स्थान है। सेपत्वागिंता में इसका नाय मीकायास है ओर वल्गाता में मीकेअस है।

२. विषय-सामग्री का सारांश

मीका की पुस्तक में इस्राएल और यहूदा के विशेषकर यरूशलेम के अपराधों के विषय विविध नबूवतें हैं। साथ ही सत्य धर्मगत नैतिक आचरण की मांग तथा मसीहसम्मत युग की आशा प्रस्तुत है।

३. रूपरेखा

मीका—साधारण मनुष्य का नबी

(१) आसन्न न्याय (१–२)

(क) परमेश्वर न्याय करने को अग्रसर है (१ : १–६) : हे जाति-जाति के सब लोगो, सुनो ! हे पृथ्वी,''''देख यहोवा अपने पवित्र स्थान से बाहर निकल रहा है''''पहाड़ उसके नीचे गल जायेंगे, जैसे मोम आग की आँच से' (१ : १–४)। 'और यह सब याकूब के अपराध के कारण''''याकूब का अपराध क्या है ? क्या सामरिया नहीं ? और यहूदा का पाप क्या है ? क्या यरूशलेम नहीं ? इस कारण मैं सामरिया को मैदान के खेत का ढेर कर दूँगा''''उसकी सब मूरतें टुकड़े-टुकड़े की जाएंगी''''इस कारण मैं छाती पीटकर हाय करूंगा; मैं लुटा हुआ सा और नंगा फिरा

करूंगा....क्योंकि उसका घाव असाध्य है; और विपत्ति यरूशलेम के फाटक तक पहुँच गई हैं' (१ : ५–६)

(ख) नीची भूमि प्रदेश में भय की सूचना (१ : १०–१६) : 'गत नगर में इसकी चर्चा मत करो, और मत रोओ; ....बेतआप्रा में धूलि में लोटपोट करो; हे शापीर की रहने वाली, नंगी होकर निर्लज्ज चली जा....लाकीश की रहने वाली अपने रथों में वेग से चलने वाले घोड़े जोत ;....तू गत के मोरेशेत को दान देकर दूर कर देगा...वे बंधुए होकर तेरे पास से चले गये हैं'।

(ग) दुराचार, जिससे प्रभु क्रोधित होता है (२ : १–११) : 'हाय उन पर, जो बुराइयों की कल्पना करते हैं—वे घरों का लालच करते और उन्हें छीन लेते हैं.....वे किसी पुरुष और उसके दायभाग पर अंधेर करते हैं... मेरी प्रजा शत्रु बनकर मेरे विरुद्ध उठी है; तुम शांत राहियों के तन पर से चादर छीन लेते हो....मेरी प्रजा की स्त्रियों को....तुम निकाल देते हो और उनके नन्हें बच्चों से तुम मेरी दी हुई उत्तम वस्तुएं सर्वदा के लिये छीन लेते हो'।

(घ) फिर भी यहोवा उन्हें प्रतिज्ञा देता है (२ : १२–१३) : मैं इस्राएल के बचे हुओं को इकट्ठा करूंगा; बोस्रा की भेड़ बकरियों की नाईं एक संग रखूंगा...उनका राजा उनके आगे आगे चलेगा, यहोवा उनका सरदार और अगुवा है'।

(२) प्रधानों को संबोधन (३)

(क) न्याय का अन्याय होता है (३ : १–४) : 'हे याकूब के प्रधानो सुनो..... क्या न्याय का भेद जानना तुम्हारा काम नहीं ? तुम तो भलाई से बैर, और बुराई से प्रीति रखते हो, मानो तुम लोगों पर से उनकी खाल उधेड़ लेते हो'।

(ख) नबी झूठे हो गए हैं (३ : ५–८) : 'यहोवा का यह वचन है कि जो भविष्यवक्ता मेरी प्रजा को भटका देते हैं, और जब उन्हें खाने को मिलता है तब "शांति-शांति" पुकारते हैं....दर्शी लज्जित होंगे और भावी कहलाने वालों के मुँह काले होंगे।....परंतु मैं तो यहोवा के आत्मा से शक्ति, न्याय और पराक्रम पाकर परिपूर्ण हूँ कि मैं याकूब को उसका अपराध और इस्राएल को उसका पाप जता सकूँ'।

(ग) बुराई के संबंध में एक निश्चिंतता की भावना है (३ : ९–१२) : यरूशलेम के 'प्रधान घूस ले लेकर विचार करते हैं, और याजक दाम ले

लेकर व्यवस्था देते हैं, भविष्यवक्ता रुपये के लिये भावी कहते हैं, तो भी वे यह कहकर यहोवा पर भरोसा रखते हैं, "यहोवा हमारे बीच में है, इसलिये कोई विपत्ति हम पर न आएगी।" इसलिये तुम्हारे कारण सिय्योन जोतकर खेत बनाया जाएगा'।

(३) भविष्य के लिये परमेश्वर की योजना (४–५)

(क) शांति का राज्य (४·१–८) : 'अंत के दिनों में ऐसा होगा''''बहुत जातियों के लोग आएंगे और कहेंगे, आओ हम यहोवा के पर्वत पर चढ़कर, याकूब के परमेश्वर के भवन में जाएं; तब वह हमको अपने मार्ग सिखाएगा, और हम उसके पथों पर चलेंगे''''क्योंकि यहोवा की व्यवस्था सिय्योन से निकलेगी''''वे अपनी तलवारें पीटकर हल के फाल और अपने भालों से हंसिया बनाएंगे''''और लोग आगे को युद्धविद्या न सीखेंगे''''मैं प्रजा के लंगड़ों को मैं बचा रखूंगा''''और यहोवा उन पर सिय्योन पर्वत के ऊपर से सदा राज्य करता रहेगा'।

(ख) शांति के राज्य के पहले पीड़ा आना अनिवार्य है (४: ९–१३) : हे सिय्योन की बेटी, जच्चा स्त्री की नाईं पीड़ा उठा''''तू बाबुल तक जाएगी''''वहीं तू छुड़ाई जाएगी''''बहुत सी जातियां तेरे विरुद्ध इकट्ठी होंगी'''' वे यहोवा की कल्पनाएं नहीं जानते, न उसकी युक्ति समझते हैं'।

(ग) दाऊद वंशी शासक (५ : १–९) : 'हे बेतलेहेम–एप्राता, यद्यपि तू ऐसा छोटा है कि यहूदा के हजारों में गिना नहीं जाता, तोभी तुझ में से मेरे लिए एक पुरुष निकलेगा जो इस्राएलियों में प्रभुता करने वाला होगा ''''और वह यहोवा की शक्ति से अपने झुंड की चरवाही करेगा''''जब अश्शूरी हमारे देश पर चढ़ाई करें''''तब हम उनके विरुद्ध सात चरवाहे वरन आठ प्रधान मनुष्य खड़े करेंगे''''वही पुरुष हमको उनसे बचाएगा।'

(घ) जो कुछ प्रलोभन का कारण है, वह सब नष्ट होगा (५ : १०–१५) : 'यहोवा की वाणी है, उस समय मैं तेरे बीच में नाश करूंगा; और तेरे रथों का विनाश करूंगा। मैं तेरे देश के नगरों को भी नाश करूंगा''''तेरे तंत्र-मंत्र नाश करूंगा''''तेरी खुदी हुई मूरतें और तेरी लाटें तेरे बीच में से नाश करूंगा। ''''तेरी अशेरा नाम मूरतों को तेरी भूमि में से उखाड़ डालूँगा।'

(४) यहोवा का वादविवाद (६)

(क) मैंने तुम्हारे साथ भलाई की है (६ : २–५)। 'यहोवा का अपनी प्रजा के साथ मुकद्दमा है''''हे मेरी प्रजा, मैं ने तेरा क्या किया ? और क्या

करके मैंने तुझे उकता दिया है ? मेरे विरुद्ध साक्षी दे। मैं तो तुझे मिस्र देश से निकाल ले आया, और दासत्व के घर में से तुझे छुड़ा लाया; और तेरी अगुवाई करने को मूसा, हारून और मरियम को भेज दिया।'

(ख) मैं जो तुझ से चाहता हूँ वह स्पष्ट और न्याय संगत है (६ : ६–८) : 'मैं क्या लेकर यहोवा के सन्मुख आऊं ?····हे मनुष्य वह तुझे बता चुका है कि अच्छा क्या है; और यहोवा तुझ से इसे छोड़ और क्या चाहता है, कि तू न्याय से काम करे, और कृपा से प्रीति रखे, और अपने परमेश्वर के साथ नम्रता से चले' ?

(ग) फिर भी तुमने बुराई की इच्छा की (६ : ९–१६) : 'क्या अब तक दुष्ट के घर में दुष्टता से पाया हुआ धन और छोटा एपा घृणित नहीं है ? क्या मैं कपट का तराजू और घटबढ़ के बटखरों की थैली लेकर पवित्र ठहर सकता हूँ ?····वे ओम्री की विधियों पर और अहाब के घराने के सब कामों पर चलते हैं'।

(५) नबी की मनोव्यथा और आश्वासन (७)

(क) उसकी मनोव्यथा (७ : १–६) : 'हाय मुझ पर। क्योंकि मैं उस जन के समान हो गया हूँ जो धूपकाल के फल तोड़ने पर हो जाए····भक्त लोग पृथ्वी पर से नाश हो गए हैं····मित्र पर विश्वास न करो ·· क्योंकि पुत्र पिता का अपमान करता, और बेटी माता के विरुद्ध उठती है····मनुष्य के शत्रु उसके घर के लोग होते हैं'।

(ख) उसकी सांत्वना (७ : ७–२०) : 'मैं यहोवा की ओर ताकता रहूँगा।, मैं अपने उद्धारकर्ता परमेश्वर की बाट जोहता रहूँगा····यहोवा मेरे लिये ज्योति का काम देगा·······तू लाठी लिए हुए अपनी प्रजा की चरवाही कर, अर्थात् अपने निज भाग की भेड़-बकरियों की····वे पूर्वकाल की नाईं बाशान और गिलाद में चरा करें।····तेरे समान ऐसा परमेश्वर कहाँ है, जो अधर्म को क्षमा करे और अपने निज भाग के बचे हुए के अपराध को ढांप दे ?····तू उनके सब पापों को गहरे समुद्र में डाल देगा। तू याकूब के विषय में सच्चाई और इब्राहीम के विषय में अपनी करुणा पूरी करेगा'।

४. संरचना, रचयिता, तिथि

(१) तिथि—१ : १ का प्रारंभिक कथन एक सम्पादकीय टिप्पणी सा लगता है। उससे पता चलता है कि मीका का नबूवत कार्य योताम (ई० पू० ७४२-७३५), आहाज (ई. पू. ७३५-७१५) और हिजकिय्याह (ई. पू. ७१५-६८७)

राजाओं के राज्यकाल में हुआ। यिर्मयाह नबी की पुस्तक में भी यह उल्लेख है कि मीका ने हिजकिय्याह राजा के दिनों में भविष्यवाणी की और कहा कि सिय्योन खेत के सदृश जोता जाएगा (यि० २६ : १८–१९; मी० ३ : १२)।

मीका के दिव्य वचनों की पृष्ठभूमि अश्शूरी आक्रमण था (५ : ५; १ : ८–१६)। हिजकिय्याह के राज्य में दो अश्शूरी आक्रमण हुए। पहला शलमनेस्सर चतुर्थ के शासन में हुआ। सारगोन ने उसे चालू रखा। परिणामस्वरूप ई० पू० ७२१ में सामरिया का पतन हुआ। दूसरा ई० पू० ७०१ में सन्हेरीब के शासन में हुआ। उस समय यरूशलेम पराजित हो जाता। परन्तु यशायाह की घोषणानुसार परमेश्वर की सामर्थ से वह विपत्ति टल गई (२ रा० १९ : २०, २१, ३५)। हिजकिय्याह का सीधा सम्बंध दूसरे आक्रमण से ही है। अतः कुछ विद्वानों का विचार है कि जब यिर्मयाह के समकालीन लोगों ने मीका की वाणी का उल्लेख किया तो उनका संकेत इस दूसरे आक्रमण की ओर होगा। इस संभावना को अधिक महत्त्व दिया जाता है कि यिर्मयाह में जो कथन है वह मीका की पुस्तक में सम्पादकीय टिप्पणी की अपेक्षा अधिक ठीक जाना पड़ता है। यदि हम इस मान्यता को स्वीकार करें तो मीका के नबूवत कार्य का समय ई० पू० ७१५ से ७०० तक होगा।

अधिक मान्य मत यह है कि मीका को प्रथम अश्शूरी आक्रमण से संबंद्ध किया जाता है और उसके नबूवत-कार्य का समय सामरिया के पतन के पूर्व रखा जाता है। मीका १ : ६ के साधारण अनुवाद में यह निहित है, 'मैं सामरिया को मैदान के खेत का ढेर कर दूंगा।' इस संदर्भ में मीका का समय ई० पू० ७२५ से ७१५ माना जाता है और पुस्तक की विषय-सामग्री से इसकी पुष्टि की जाती है। यदि मीका ने योताम और आहाज के राजकाल में भी नबूवत की (१ : १) तो उसके दिव्यवचनों का या तो अभिलेख न हुआ या फिर अभिलेख सुरक्षित न रहा।

(२) संरचना और रचयिता—पुस्तक की संरचना के संबंध में बहुत मतभेद है, विशेषकर इस संबंध में कि कितना अंश मीका का है और कितना परवर्ती कलाकारों का। बाबुल में बंधुवाई (४ : १०) की भविष्यवाणी यिर्मयाह के काल से अधिक संगत होगी, उससे एक सदी पहले के काल से नहीं, जिस समय अश्शूर के आक्रमण का भय था। १ : २–४ के प्रारंभिक पद भविष्य–आशा संबंधी है अतः कुछ विद्वानों के विचार में वे निर्वासनोत्तर हैं। मसीहसम्मत युग की भविष्यवाणियों के संबंध में भी यही सच प्रतीत होता है (५ : १–९; ७ : ७–२०)। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि यिर्मयाह के काल में मीका ३ : १२ का उद्धरण (यि. २६ : १८–१९) मीका के संदेश की

चरम सीमा है। अत: १–३ अध्याय ही केवल मीका के माने जाते हैं।

पुस्तक की संरचना की समस्या का इस बात से घनिष्ट संबंध है कि निर्वासिन पूर्व नबियों द्वारा आशा के संदेश संबंधी प्रचार की भावना के विषय में हमारी क्या धारणा है। हम यह मानें कि उन्होंने केवल दंड का ही प्रचार किया, तो समस्त आशा-गर्भित अंश निर्वासनोत्तर संपादकों के माने जाएंगे। हमारा विचार है कि होशे के संदेश से यह स्पष्ट रूप से प्रमाणित होता है कि यद्यपि निर्वासिन - पूर्व नबियों के प्रचार में प्रधान भाव दंड का था, तथापि उनमें आशा की भावना भी विद्यमान थी। राजतंत्रकाल में राजत्व के स्वरूप के विषय उत्तरोत्तर बढ़ते हुए ज्ञान से यह व्यंजित होता है कि निर्वासनपूर्व काल में मसीह विषयक आशा की संकल्पना का ठोस आधार बन चुका था। अत: हमें इस परंपरागत मान्यता को अस्वीकार करने के लिये पर्याप्त प्रमाण नहीं मिलते कि मीका की पुस्तक में मूलत: मीका का संदेश ही प्रस्तुत है। केवल इतना ही माना जा सकता है कि बाबुल संबंधी उल्लेख परवर्ती काल के संशोधन में सम्मिलित किए गए।

मीका ४ : १–४ के यशायाह २ : २–४ के साथ संबंध की समस्या अभी तक हल नहीं हो पाई है। यह संभव नहीं कि एक ने दूसरे से उद्धरण किया हो। हमारे समक्ष दो विकल्प हैं : या तो हम यह मानें कि दोनों पुस्तकों में परवर्ती काल में यह अंश जोड़ दिया गया, अथवा यह कि मीका और यशायाह दोनों ने किसी प्रचलित दिव्यवचन का प्रयोग किया।

५. जीवनी संबंधी टिप्पणी

मीका की जीवनी संबंधी हमें केवल इतनी ही जानकारी मिलती है कि मीका मरेशाह नामक स्थान का है। उसकी दूसरी वर्तनी मोरेशेत या मोराशत है (मी. १:१, १४, १५; यि. २६:१८)। माना जाता है कि वर्तमान ग्राम मरिस्सा वही स्थान है। वह उस भौगोलिक भाग में है जिसे शेपेलाह या निचली भूमि कहते हैं, जो यहूदा के पठार और पलिश्ती के मैदान के मध्य में है। संघर्षकालीन समय में यह अराजक भूमि कहलाती थी और दोनों ओर से इस पर आक्रमण हो सकता था। यहाँ सेनाओं की गतिविधि और आक्रमण की जोखिम से मीका का निजी परिचय संभव था।

६. धर्म शिक्षा

मीका की पुस्तक की प्रमुख शिक्षाएं निम्नानुसार हैं :

(१) परमेश्वर सामान्य मनुष्य के अधिकारों की रक्षा करता है। मीका गरीबों या सामान्य मनुष्य का नबी कहलाता है। वह स्वयं मारेशाह या गात के मोरेशेत नामक निचली भूमि के गाँव से था। वहाँ का जीवन सादा किसानी,

भेड़बकरी चराने, और द्राक्षपालन (गात का अर्थ है दाख रस निकालने का स्थान) का जीवन था। यरूशलेम की संपन्नता तथा व्यापार वृद्धि का जीवन नबी को गांव के जीवन से बहुत भिन्न लगता होगा। मीका को धनवानों की बुराइयाँ बहुत स्पष्ट दिखाई देती थीं (उदा. २ : १–२; ३ : १–३; ६ : १०–१२)। प्रधानों और नेताओं के स्थानों में भ्रष्टाचार ने अड्डा जमा रखा था (३ : १०–११)। यह सारा पाप और अपराध उसके लिये दो राजनगरों में, अर्थात यरूशलेम और सामरिया में, केन्द्रीभूत था। मीका ने छोटे किसानों के खेत छीनकर बड़ी-बड़ी भूसंपत्ति बनाने की प्रवृत्ति की निंदा की (२ : १–२)। उसने व्यापारी वर्ग की धन लिप्सा की (२ : ८), व्यापार के भ्रष्ट व्यवहारों की (६ : १—१२) निन्दा की। उसने न्यायाधीशों के घूस लेकर ऐसे घृणित कार्यों को दृष्टि-ओट करने के लिये उनकी निन्दा की (३ : ११)।

(२) परमेश्वर हमसे सीधे और न्यायसंगत काम चाहता है, और ऐसे काम जो हमारे भी भले के लिए हैं। मीका इस बात के लिए सुप्रसिद्ध है कि उसने नैतिक व्यवस्था का एक महानतम सारांश प्रस्तुत किया है। परमेश्वर केवल होमबलि से, अथवा हमारे अपराध के प्रायश्चित्त में केवल हमारे पहिलौठों से वा हमारे पाप के बदले अपने पुत्र-पुत्रियों की बलि से प्रसन्न नहीं होता। 'हे मनुष्य, वह तुझे बता चुका है कि अच्छा क्या है ; और यहोवा तुझ से इसे छोड़ और क्या चाहता है कि तू न्याय से काम करे, और कृपा से प्रीति रखे, और अपने परमेश्वर के साथ नम्रता से चले' ? (६ : ८)। परमेश्वर के प्रति हमारी कर्तव्य भावना वही है जो यीशु के वचन में है, "मेरा जूआ अपने ऊपर लो ...क्योंकि मेरा जूआ सहज और मेरा बोझ हल्का है" (मत्त ११ : २९–३०)।

(३) अपने लोगों के लिए परमेश्वर की जो योजना है उसमें छोटी नगरी बेतलेहेम से 'मसीह' का निकलना भी सम्मिलित है। भविष्य में शांति के राज्य का जो चित्र मीका ने प्रस्तुत किया है, वह उसके ज्येष्ठ समकालीन नबी यशायाह द्वारा प्रस्तुत चित्र के समान है। इस तथ्य के निर्णय करने के लिए हमारे पास कोई साधन नहीं है कि शांति का मसीहसम्मत राज्य संबंधी दिव्यवचन (मी० ४ : १–४; यश० २ : २–४) मीका की मौलिक भावना थी अथवा यशायाह की अथवा दोनों ने उसे किसी प्रचलित परंपरा से प्राप्त किया था। मीका की एक विशिष्टता यह है कि उसने यह प्रस्तुत किया है कि 'मसीह' दाऊद के नगर बेतलेहेम से निकलेगा (५ : २)। इस प्रकार वह 'मसीह' को दाऊद के वंश को बताता है। परमेश्वर ने इस भविष्यवाणी को न केवल इस रूप में पूर्ण किया कि यीशु दाऊद के वंश में था और दाऊद के अनुरूप था परन्तु इसमें भी कि बेतलेहेम में उसका जन्म हुआ।

ततालीसवाँ अध्याय

नहूम

१. शीर्षक

इस पुस्तक का नाम नहूम नबी के नाम पर रखा गया है। इब्रानी में इस शब्द का अर्थ 'आश्वासन' या 'शांति देनेवाला' है। सेपत्वागिंता में नऊम है और वुलगाता में नहूम है।

२. विषय-सामग्री का सारांश

अश्शूरी साम्राज्य की राजधानी नीनवे के आसन्न पतन के समय अश्शूर पर ईश्वरीय न्याय-दंड संबंधी गौरवगीति इस पुस्तक में है।

३. रूपरेखा

नहूम—नीनवे के विनाश का नबी

(१) परमेश्वर का सच्चा न्याय (१) (एक सूत्रात्मक (एक्रोस्टिक) कविता[1])

(क) परमेश्वर के न्याय कर्म, उसके स्वभाव और चरित्र के अनुकूल हैं: 'यहोवा जल उठने वाला और बदला लेने वाला ईश्वर है'''''यहोवा विलम्ब से क्रोध करने वाला और बड़ा शक्तिमान है; वह दोषी को किसी प्रकार निर्दोष न ठहराएगा।' उसकी सामर्थ आंधी, अनावृष्टि, भूकंप और ज्वालामुखी में दिखाई देती है। 'उसके क्रोध का सामना कौन कर सकता है?''''यहोवा भला है, संकट के दिन में वह दृढ़ गढ़ ठहरता है और अपने शरणागतों की सुधि रखता है। परंतु वह''' अपने शत्रुओं को खदेड़ कर अंधकार में भगा देगा'।

(ख) नीनवे के विरुद्ध उसका न्याय वचन (१ : १४): 'आगे को तेरा वंश न चले;''''मैं तेरे देवालयों में से ढली और गढ़ी हुई मूरतों को काट डालूँगा। मैं तेरे लिये कबर खोदूँगा, क्योंकि तू नीच है'।

---

१ पच्चीसवें अध्याय में पाद टिप्पणी १ देखिए।

(ग) उसकी दमित प्रजा का उद्धार (१ : १५) : 'देखो, पहाड़ों पर शुभ समाचार का सुनाने वाला और शांति का प्रचार करने वाला आ रहा है.... हे यहूदा, अपने पर्व मान, क्योंकि वह ओछा पूरी रीति से नाश हुआ है' ।

(२) नीनवे का आसन्न पतन (२-३) (लम्बी कविता)

(क) निर्णायक युद्ध (२ : १–३ : ३) : 'गढ़ को दृढ़ कर; मार्ग देखता हुआ चौकस रह; अपनी कमर कस; अपना बल बढ़ा दे....रथ पलीतों के समान दिखाई देते हैं....भाले हिलाये जाते हैं....रथों का वेग बिजली का सा है....नहरों के द्वार खुल जाते हैं चांदी को लूटो, सोने को लूटो,.... वह खाली, छूछी और सूनी हो गई है....कोड़ों की फटकार और पहियों की घड़घड़ाहट हो रही है; घोड़े कूदते फाँदते और रथ उछलते चलते हैं ! लोथों का बड़ा ढेर, मुर्दों की कुछ गिनती नहीं' ।

(ख) नीनवे का अपराध जिसके लिये उसे दंड दिया जा रहा है (३:४–७) : 'यह सब उस अति सुन्दर वेश्या के छिनाले की बहुतायत के कारण हुआ, जो छिनाले के द्वारा जाति-जाति के लोगों को, और टोने के द्वारा कुल-कुल के लोगों को बेच डालती है' ।

['हत्यारी नगरी, छल और लूट के धन से भरी हुई है'—(३ : १)]

(ग) उसका विनाश और तुच्छ किया जाना (३ : ८–१३) : 'क्या तू अमोन नगरी से बढ़कर है, जो नहरों के बीच बसी थी ?....तू भी मतवाली होगी, तू घबरा जाएगी; तू भी शत्रु के डर के मारे शरण का स्थान ढूंढ़ेगी' ।

(घ) उसका विनाश निश्चित है (३ : १४–१९) : 'तलवार से तू नाश की जाएगी । वह टिड्डी की नाईं तुझे निगल जाएगी ।...तेरा घाव न भर सकेगा, तेरा रोग असाध्य है' ।

४. रचना, रचयिता, रचना-तिथि

पुस्तक के पहले अध्याय में ईश्वरीय न्याय के सामान्य सिद्धान्त हैं । शेष अध्यायों में नीनवे के दंड का वर्णन है । पहले अध्याय की सूत्रात्मक रचना भी उसे शेष अध्यायों से विशिष्टता प्रदान करती है । सूत्रात्मक रचना सिद्ध नहीं है । आधे से कुछ अधिक वर्णमाला ही ठीक रूप से प्रस्तुत है । सूत्रात्मक रचना केवल इब्रानी में ही दिखाई देती है । अनुवादों में नहीं आ सकती । ऐसा प्रतीत होता है कि परमेश्वर की धार्मिकता संबंधी वर्णमालात्मक भजन

से उतना ही अंश लिया गया जितना उसके विशेष विषय, नीनवे पर परमेश्वर का न्याय दंड के लिये, आवश्यक था। अथवा परवर्ती काल के किसी सम्पादक ने यह कार्य किया होगा।

कुछ विद्वानों का विचार है कि अध्याय २ और ३ की 'लम्बी कविता' के आरंभ में १ : ११ और १ : १४ होना चाहिए, तब फिर वह २ : १ से आगे चलती है। अतएव वर्तमान क्रम का यह स्पष्टीकरण दिया जाता है कि किसी संपादक ने लम्बी कविता के अंतर्गत सूत्रात्मक भजन जोड़ दिया।

लम्बी कविता का आरंभ हम चाहे जहाँ मानें, यह निश्चित है कि युद्ध का जैसा चित्रोपम वर्णन इसमें है, उतना पुराने नियम में कहीं नहीं मिलता। कलात्मक मान से यह उतना ही उच्च कोटि का है जितना दबोरा का गीत (न्य० ५) और शाऊल तथा योनातान के संबंध में दाऊद का विलाप (२ श० १ : १९–२७)।

'लंबी कविता' का रचयिता नहूम था। वर्णमालात्मक भजन से कहाँ तक उसका नाम संबद्ध किया जाए यह अभी तक प्रश्न ही बना है। इसका हल नहीं।

नीनवे का पतन ई० पू० ६१२ में हुआ। इस घटना के संदर्भ में ही इस पुस्तक की रचना तिथि निर्धारित की जाती है। बाबुली और मादी दोनों सेनाओं ने मिलकर उसे पराजित किया था। कुछ विद्वानों का विचार है कि यह कविता इस घटना के बाद लिखी गई। परंतु साधारणतया यही माना जाता है कि यह आने वाली घटना के विषय में भविष्यवाणी थी और विजयी सेनाओं के नीनवे पहुँचने के थोड़े समय पूर्व लिखी गई। इसलिए नहूम की पुस्तक की रचना तिथि ई० पू० ६१२ ही मानी जाती है और नीनवे के पतन के कुछ समय पूर्व ही इसकी रचना हुई।

५. नबी के विषय में जानकारी

नबी के संबंध में केवल इतना ही लिखा है कि वह एल्कोश का था। इस स्थान के विषय में भी कोई जानकारी नहीं प्राप्त होती। परंपरा यह है कि वह नीनवे के निकट था परंतु येरोम मानता है कि यह स्थान उत्तरी गलील में था। अन्य विद्वान मानते हैं कि यह स्थान यहूदा में था।

६. धर्म शिक्षा

नहूम की पुस्तक से यह शिक्षा मिलती है कि दुष्टों पर यहोवा का न्यायदंड अनिवार्य और भयंकर है, परंतु उसका उद्देश्य भलाई है। अपनी धार्मिकता

की स्थापना में वह जल उठने वाला और बदला लेने वाला है (१ : २)। वह प्रकृति की भयंकर शक्तियों के समान भयंकर है, और वे शक्तियाँ भी उसके अधिकार में हैं (१ : ४–६)। तो भी उसका चरित्र विश्वसनीय है— वह उनके लिये भला है, जो उसकी शरण में आ जाते हैं (१ : ७)।

नीनवे एक महत्वपूर्ण इकाई के सदृश है जिसके संबंध में यहोवा के भयानक न्याय-निर्णय प्रस्तुत होते हैं। उसके पापों के कारण उसे दंड दिया जाता है— उसकी हत्या और लूट के लिये (३ : १), उसके छिनाले के लिये (३ : ४), जातियों के प्रति उसकी क्रूरता के लिये (२ : ११, दे० ३ : १० में भी ऐसा ही दंड) उसे दंड मिलता है। प्राचीन काल में अश्शूरी लोग अपनी अतुलनीय क्रूरता के लिए कुख्यात थे।

नहूम अपने विश्वास के कोमल, उद्धारक पक्षों की अभिव्यक्ति नहीं करता। नीनवे के पतन के संदर्भ में वह न्याय के कठोर पक्ष को ही प्रस्तुत करता है। इस विषय में उसकी उस अज्ञात नबी से विषमता का विचार किया जाता है, जो अपने लोगों को 'शांति देने वाला' था। उसने बाबुली अधिकार से मुक्ति की घोषणा की। नहूम के नाम का अर्थ भी 'शांति देने वाला' है और उसने अश्शूरी शक्ति से मुक्त होने की घोषणा की। दोनों के 'शांति कार्य' में भिन्नता है। इस भिन्नता में मूल एकता उनके इस विश्वास की है कि परमेश्वर न्यायी है और भला भी है।

चवालीसवाँ अध्याय

हबक्कूक

१. शीर्षक

इस पुस्तक का नाम हबक्कूक नबी के नाम पर है। इब्रानी में हब्बक्कूक शब्द का मूलार्थ है 'आलिंगन'। अश्शूरी में यह एक पौधे का नाम है। सेपत्वागिंता में 'अंबकुम' नाम है और वुल्गाता में हबकुक।

२. विषय सामग्री का सारांश

पुस्तक में परमेश्वर और नबी के बीच इस विषय पर वार्तालाप है कि यहोवा क्यों उत्पात को देखता ही रहता है। इसका उत्तर विश्वास है और विश्वसनीयता है। दुष्ट जाति के प्रति विपत्ति है और परमेश्वर के प्रति विश्वास का स्तोत्र है।

३. रूपरेखा

हबक्कूक—शंका करने वाला नबी

(१) नबी के प्रश्न (१)

(क) यहोवा क्यों न्याय का खून होने देता है? (१ : १–४) : 'हे यहोवा, मैं कब तक दोहाई देता रहूँगा, और तू न सुनेगा?.... दुष्ट लोग धर्मी को घेर लेते हैं, और न्याय का खून हो रहा है'।

(ख) उत्तर : परमेश्वर चुप नहीं बैठा है, अभी भी काम कर रहा है (१ : ५–११) : 'अन्य जातियों की ओर चित्त लगा कर देखो....क्योंकि मैं तुम्हारे ही दिनों में ऐसा काम करने पर हूँ कि जब वह तुमको बताया जाए तो तुम उसकी प्रतीति न करोगे। देखो, मैं कसदियों को उभारने पर हूँ, वे क्रूर और उभारने वाली जाति हैं....उनके घोड़े चीतों से भी अधिक तेज चलने वाले हैं, और सांझ को आहेर करने वाले हुंडारों से अधिक क्रूर हैं'।

(ग) यहोवा ऐसे बुरे साधन का क्यों उपयोग करता है? (१ : १२–१७) 'हे मेरे प्रभु यहोवा, पवित्र परमेश्वर, क्या तू अनादि काल से नहीं है?

.........तेरी आँखें ऐसी शुद्ध हैं कि तू बुराई को देख ही नहीं सकता.... ....तो जब दुष्ट निर्दोष को निगल जाता है, तब तू क्यों चुप रहता है ? क्या यह दुष्ट शक्ति 'जाल को खाली करने और जाति-जाति के लोगों को निर्दयता से घात करने से हाथ न रोकेगी' ?

(२) नबी की गुम्मट पर उत्तर (२)

(क) धर्मी जन अपने विश्वास के द्वारा जीवित रहेगा (२ : १–४) : 'मैं अपने पहरे पर खड़ा रहूँगा.......यहोवा ने मुझ से कहा, "दर्शन की बातें लिख दे.........साफ साफ लिख दे.........जिसका मन सीधा नहीं है, (वह असफल होगा, परंतु धर्मी अपने विश्वास के द्वारा जीवित रहेगा'।

(ख) दुष्ट का विनाश होगा (२ : ५–२०) : "अहंकारी पुरुष घर में नहीं रहता........क्या सब (जातियाँ) उसका दृष्टांत चलाकर, और उस पर ताना मारकर न कहेंगे, 'हाय उस पर, जो पराया धन छीन छीन कर धन-वान हो जाता है—जो तुझ से कर्ज लेते हैं, क्या वे लोग अचानक न उठेंगे ....क्या तू उनसे लूटा न जाएगा' ?

"हाय उस पर, जो अपने घर के लिये अन्याय के लाभ का लोभी है....... क्योंकि घर की भीति का पत्थर दोहाई देता है और उसके छत की कड़ी उनके स्वर में स्वर मिला कर उत्तर देती है।

"हाय उस पर, जो हत्या करके नगर बनाता है.......देखो, क्या सेनाओं के यहोवा की ओर से यह नहीं होता....कि राज्य-राज्य के लोगों का परिश्रम व्यर्थ ही ठहरता है ? क्योंकि पृथ्वी यहोवा की महिमा के ज्ञान से ऐसी भरी जाएगी जैसे समुद्र जल से भर जाता है।।

"हाय उस पर, जो अपने पड़ौसी को मदिरा पिलाता.......तू भी पी और अपने को खतनाहीन प्रकट कर, । जो कटोरा यहोवा के दाहिने हाथ में रहता है, सो घूम कर तेरी ओर भी आएगा। "हाय उस पर, जो काठ से कहता है, जाग, वा अबोल पत्थर से, उठ ! क्या वह सिखाएगा ?... ...परंतु यहोवा अपने पवित्र मन्दिर में है; समस्त पृथ्वी उसके सामने शांत रहे"।

(३) हबक्कूक की प्रार्थना (३)

'हे यहोवा मैं तेरी कीर्ति सुन कर डर गया........इसी युग में तू उसको प्रकट कर। क्रोध करते हुए भी दया करना स्मरण कर। ईश्वर तेमान से आया, पवित्र ईश्वर परान पर्वत से आ रहा है। उसका तेज आकाश पर छाया हुआ है,.........वह खड़ा होकर पृथ्वी को नाप रहा है; उसने देखा और जाति जाति के लोग घबरा गए;.........तू अपनी प्रजा के उद्धार के लिये निकला;

हाँ अपने अभिषिक्त के संग होकर उद्धार के लिए निकला......सब सुनते-ही मेरा कलेजा काँप उठा। मैं शांति से उस दिन की बाट जोहता रहूँगा जब दल बाँध कर प्रजा चढ़ाई करे'।

'चाहे अंजीर के वृक्षों में फूल न लगें, और न दाख-लताओं के फल लगें' ....वह मेरे पाँव हरिणों के समान बना देता है, वह मुझ को मेरे ऊँचे स्थानों पर चलाता है'।

४. रचना, रचयिता, रचना-तिथि

ऐसा प्रतीत होता है कि अंतिम अध्याय में हबक्कूक की प्रार्थना पुस्तक का मूल भाग नहीं था। दीर्घकाल से इस संबंध में शंका की जाती रही है, क्योंकि यह प्रार्थना संगीत के चिन्हों के साथ एक भजन है (शिग्योनीत की रीति पर ३ : १; और ३:३, ९, १३ में सेला भी है) जिससे यह स्पष्ट होता है कि भजन संहिता में इसका स्थान उपयुक्त है। इधर कुछ वर्षों में मृत्यु सागर कुंडल पत्रों (Dead Sea scrolls) से इस शंका का समर्थन हुआ है। इन कुंडल पत्रों में से एक है 'हबक्कूक टीका'। यह 'हबक्कूक के उस मूल पाठ पर है जिसमें अन्तिम अध्याय नहीं है। इसका यह अर्थ नहीं कि हबक्कूक इस पुस्तक का लेखक नहीं, परन्तु केवल यह अर्थ है कि हबक्कूक की प्रार्थना एक पृथक साहित्यिक इकाई के रूप में थी और कि नबी की रचना की कुछ प्रतिलिपियों में विद्यमान है, कुछ में नहीं।

समालोचक अध्याय १ और २ में तीन प्रकार की साहित्यिक सामग्री देखते हैं (१) यहोवा के विरुद्ध एक परिवाद कि वह बुराई को चलने देता है (१ : २–४, १२ पूर्वार्द्ध, १३; २ : ४)। (२) लूटने वाली जाति के दो चित्र 'एक क्रूर और उतावली जाति' (१ : ५–११, १२ उत्तरार्द्ध), और एक जो जातियों को अपने महाजाल में फँसा लेती है (१ : १४ : १७)। (३) जो अहंकारी और लालची है, उसके ऊपर पाँच बार हाय (२ : ५–२०)। इन तीन इकाइयों या विभिन्न प्रकार की साहित्यिक सामग्री के आधार पर यह मत प्रतिपादित किया जाता है कि पुस्तक का एक लंबा साहित्यिक इतिहास है, जिसका आरम्भ हबक्कूक के दिव्य वचन से होता है कि कसदी परमेश्वर की ओर से न्यायदंड के साधन हैं (१ : ५–११, १२ उ०, १४–१७) और जिसकी तिथि ई० पू० ६०० है। इसके बहुत समय पश्चात (ई० पू० ५००–२००) किसी संपादक ने परिवाद का तथा उसके उत्तर का भजन भी दिव्यवचन में सम्मिलित किया (१ : २–४,१२ पू., १३; २ : १–४)। तब उसी संपादक या अन्य किसी सम्पादक ने पाँच 'हाय' अंशों को भी मिला दिया (२ : ५–२०)। अंत में कुछ प्रतियों में अध्याय ३ जोड़ा गया।

यह मत सामान्यतया स्वीकार नहीं किया जाता है। सामान्यतया यह माना जाता है कि विभिन्न इकाइयों से विभिन्न रचयिताओं का संकेत नहीं होता। इन सब में एक ही विचारधारा की एकता है और इसलिए यह माना जाता है कि सबका लेखक एक ही था। साथ ही यह संभव है कि रचयिता ने धार्मिक शब्दावली की प्रचलित परंपराओं का प्रयोग किया।

माना कि १ और २ अध्याय एक साहित्यिक इकाई हैं और हबक्कूक की कृति हैं, फिर भी हमें निम्नलिखित प्रश्नों के संबंध में व्याख्या के वैभिन्य का सामना करना पड़ता है : (१) वे दुष्ट कौन हैं (१ : ४) जिनके विषय नबी परिवाद करता है ? (२) दुष्टों को दंड देने के लिए किस जाति को कोड़े स्वरूप उपयोग किया है (१ : ५–१०) ? (३) वह कौन सी जाति है जिसके प्रति पाँच 'हाय' मारे गये हैं ? इन प्रश्नों के उत्तर निम्न रूप में दिये जाते हैं।

(१) दुष्ट लोगों (१ : ४) से साधारणतया यहूदा के लोगों की ओर संकेत है, जो नैतिक नियमों को भ्रष्ट करते और अपने भाइयों पर अत्याचार करते थे। अर्थात दुष्ट वे हैं जो देश के भीतर ही शत्रु हैं।

इस सम्बन्ध में एक मान्यता और है कि दुष्ट लोग वे हैं जो बाहरी शत्रु हैं, अर्थात अश्शूरी लोग। इस मान्यता को इस अनुमान से बल मिलता है कि १ : ५–११ का स्थान बदल दिया गया है और कि उसका स्थान २ : ४ के पश्चात होना चाहिए। इस प्रकार के क्रम से १ : १४–१७ का जो स्पष्ट चित्रण है वह अश्शूरी की ओर संकेत करेगा। दुष्ट अश्शूरियों का आगे बढ़ते आना ही नबी के लिए एक समस्या है। उसी के लिए वह गुम्मट पर उत्तर पाता है (२ : १–४) कि कसदी लोग अश्शूरियों को दंड देने के लिये उठाए जा रहे हैं (१ : ५–११)। इस प्रकार की व्याख्या से हबक्कूक की एक ही समस्या रह जाती है (परमेश्वर दुष्ट अश्शूरियों को क्यों नहीं रोकता ?)। दो समस्यायें नहीं रह जातीं (अर्थात : परमेश्वर दुष्टों को क्यों नहीं रोकता ? और दुष्ट कसदियों को क्यों अपना साधन बनाता है ?)।

(२) परमेश्वर ने जिस जाति को कोड़े स्वरूप प्रयोग किया, वह सामान्यतया कसदी लोग, अर्थात बाबुली जाति मानी जाती है (१ : ५–११)। यह पद १ : ६ से बिलकुल स्पष्ट प्रतीत होता है जहाँ कसदियों का नाम आया है। यह द्रष्टव्य है कि हबक्कूक की टीका (मृत्यु सागर कुंडल पत्रों में) में यह व्याख्या है कि ये कसदी लोग कित्तीम या यूनानी लोग थे, और कि 'कसदी' शब्द को अलग कर देने से इब्रानी काव्य की लय सुधर जाती है इसलिये यह विचार किया जाता है कि 'कसदी' शब्द मूल रूप में हाशिया में लिखा हुआ

होगा जो बाद में मूलपाठ में आ गया। यह मान्यता कि कसदी के बदले कित्तीम या यूनानी की ओर संकेत है इस तथ्य से पुष्टि होती है कि यदि इब्रानी मूल पाठ का तनिक सुधार किया जाए तो २ . ५ में 'दाखलता' शब्द 'यूनानी' हो जाता है। ए० व्ही० में 'वह एक अहंकारी पुरुष है जो घर में नहीं रहता' (२ : ५) से सिकंदर महान का अच्छा चित्रमय वर्णन होता है।

यदि यह मान्यता स्वीकार की जाए तो १ : ४ के दुष्ट लोगों से निर्वासनोत्तर यहूदियों का संकेत होता है जो यहूदी व्यवस्था का पालन नहीं करते, और सिकन्दर की सेना वह कोड़ा है जो उनको दंड देने के लिए है। इससे नबी के लिए एक नई समस्या खड़ी हो जाती है। इस मान्यता के आधार पर हबक्कूक की तिथि अरबला में सिकन्दर की विजय (ई० पू० ३३१) के कुछ पहले, अर्थात ई० पू० ३३२ में मानी जाएगी।

(३) पाँच विपत्तियों (२ : ५–२०) से कसदियों की ओर संकेत होता है। यद्यपि परमेश्वर इन लोगों का दुष्टों के लिए कोड़े स्वरूप प्रयोग करता है, तथापि नबी के लिए उनकी क्रूरता के कारण वे स्वयं एक समस्या बन जाते हैं।

इस अनुमान के आधार पर कि १ : ५–११ का अंश २ : ४ के बाद आना चाहिए (जैसा ऊपर निर्देश किया गया है), पाँच विपत्तियाँ अश्शूरियों के विरुद्ध हैं। इस प्रसंग में ये विपत्तियाँ १ : १४–१७ की ही पुनरावृत्ति करेंगी, जहाँ अश्शूरियों की निंदा की गई है।

सारांश में हम कहें, तीन प्रकार की व्याख्याएँ की गई हैं : (१) आंतरिक दुष्टता—कसदी कोड़ा—कसदियों के विरुद्ध विपत्तियाँ। यही सामान्यतया स्वीकृत व्याख्या है और इस पुस्तक में ऊपर रूपरेखा बनाने में इसी मान्यता का अनुसरण किया गया है। इसके आधार पर हबक्कूक की तिथि ई० पू० ६२१–६०० होगी। आगामी परिच्छेद में तिथि के संबंध में विवेचन किया जाएगा। (२) बाह्य दुष्टता, अर्थात अश्शूरी लोग—कसदी कोड़ा—अश्शूरियों के विरुद्ध विपत्ति। इसके आधार पर हबक्कूक की तिथि नीनवे के पतन के (ई० पू० ६१२) के कुछ ही पूर्व होगी। पाँच विपत्तियाँ इसके बाद ही आ सकती हैं। (३) निर्वासनोत्तर काल में आंतरिक दुष्टता—सिकंदर और उसकी मकिदूनी सेना (यूनानी) कोड़ा—मकिदूनियों के विरुद्ध विपत्तियाँ। इसके आधार पर हबक्कूक की तिथि लगभग ई० पू० ३३२ होगी।

हबक्कूक की तिथि सामान्यतया स्वीकृत व्याख्या के अनुसार (ऊपर तीन में से पहली) बाबुली राज्य के उदय के संबंध के आधार पर निर्धारित की

जाती है। बाबुली (कसदी) लोगों ने ई० पू० ६२५ में अश्शूरी साम्राज्य से अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त की, ई० पू० ६१२ में मादियों की सहायता से नीनवे को पराजित किया, और ई० पू० ६०५ में कर्कमीश के युद्ध में मिस्रियों को पूरी तरह हरा दिया, जो साम्राज्य स्थापित करने में उनके प्रतिद्वन्द्वी थे। कर्कमीश के युद्ध के पूर्व वे दुष्टता को दंड देने के लिये परमेश्वर के कोड़े स्वरूप दिखाई दिये। कर्कमीश के पश्चात् जब उनका पलिश्तीन के साथ सीधा संबंध हुआ, तो उनकी क्रूरता सामने आई। अतएव हबक्कूक की विपत्ति संबंधी नबूवतें कर्कमीश के पश्चात् अर्थात् ई० पू० ६०० के पश्चात् मानी जा सकती हैं। उसके नबूवत कार्य की तिथि व्यवस्था के प्रति ढीलेपन के संदर्भ में (१ : ४) निर्धारित की जा सकती है। यह प्रसंग योशिय्याह के सुधार के पश्चात नैतिक गिरावट (ई० पू० ६२२) का हो सकता है। इस प्रकार हबक्कूक की तिथि लगभग ई० पू० ६२१ से ६०० तक है।

५. जीवनी संबंधी टिप्पणी

हबक्कूक की जीवनी के संबंध में बहुत ही कम जानकारी मिलती है। हबक्कूक की प्रार्थना के प्रारंभ में संगीत के संकेतों (३ : १) से यह निर्देश प्राप्त हो सकता है कि हबक्कूक संगीतज्ञ था। 'बेल और अजगर' के अनुसार वह लेवी वंश का था, जिसमें से पुरोहित और लेवीय नियुक्त होते थे। संभव है कि वह मंदिर के लेवीय गायक मंडल में से हो। 'बेल और अजगर' में बताया गया है कि जब दानिय्येल सिंहों की माँद में था, तो हबक्कूक चमत्कारिक रूप से दानिय्येल को भोजन देने के लिए बाबुल पहुँचाया गया। इससे यह व्यंजित होता है कि नबी के रूप में हबक्कूक को बहुत सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था जिससे वह इस किवदंती का आधार बन सका।

६. धर्म शिक्षा

हबक्कूक को दार्शनिक नबी कहा जाता है, क्योंकि वह ईशशास्त्र (theodicy) की समस्या से उलझता है, अर्थात इस समस्या से कि यदि परमेश्वर भला और सर्व शक्तिमान है तो धर्मियों को क्यों दु:ख उठाने और दुष्टों को क्यों समृद्धिशाली होने देता है। इस समस्या के कुछ पक्ष भजन (उदा० ३७, ४९, ७३), यिर्मयाह (१२ : १; १५ : १७-१८) और विशेषकर अय्यूब की पुस्तक में पाए जाते हैं। हबक्कूक की समस्या दुहरी है। पहले तो उसका प्रश्न है कि परमेश्वर क्यों दुष्टों को पनपने और धर्मियों को सताने देता है (१ : १–४) ? इसका उत्तर उसे यह मिलता है कि परमेश्वर कसदियों को कोड़े स्वरूप उठा रहा है कि दुष्टों को दण्ड दिया जाए (१:६)

इसलिये धैर्य रखा जाए। परंतु इस उत्तर से एक नई समस्या खड़ी हो जाती है। परमेश्वर, जो भला और पवित्र है कसदी लोगों जैसे दुष्ट साधन का उपयोग कैसे कर सकता है?—वे तो उन लोगों से अधिक दुष्ट हैं जिन दुष्टों को दण्ड देने का साधन उन्हें बनाया जा रहा है (१ : १३–१७)। इस दूसरी समस्या का उत्तर नबी को गुम्मट पर एक दर्शन में दिया जाता है : धर्मी अपने विश्वास (अथवा विश्वास योग्यता) के द्वारा जीवित रहेगा (२ : ४) और दुष्ट साधन का भी न्याय होगा और उसे भी दण्ड दिया जाएगा।

पुस्तक के इस तर्कक्रम को प्रस्तुत करते हुए हम निम्नानुसार पुस्तक की धर्मशिक्षा का सारांश दे सकते हैं।

(१) परमेश्वर को यह स्वीकार है कि हम अपने विश्वास के संबंध में सच्ची शंकाएँ उसके समक्ष प्रस्तुत करें। हबक्कूक ने यही किया। बाइबल में जिस विश्वास का प्रकाशन है वह ठोस सत्य पर आधारित है। उसके प्रति हमारी सच्ची शंकाएँ हमारे विश्वास को अधिक गहराई से समझने में, परमेश्वर के अभिप्राय के अधिक स्पष्ट दर्शन में, और यदि इसमें नहीं, तो एक अनंत रहस्य में परमेश्वर के साथ अधिक घनिष्ट संगति रखने में सहायक होती हैं।

(२) हबक्कूक को जो पहला उत्तर दिया गया, उससे हम यह सीखते हैं कि यद्यपि दुष्टता का हाथ बलवंत होता दिखाई देता है, तथापि परमेश्वर न तो चेष्टा हीन है और न उदासीन रहता है (१ : ६)। परमेश्वर की ही प्रभुता है, और वह अपने शत्रुओं की गतिविधियों को होने देता है या नहीं होने देता है। हमारा यह काम है कि वह जिस रूप में अपनी योजना कार्यान्वित करता है, हम धैर्य धारण करें।

(३) परमेश्वर मनुष्य के क्रोध का भी इस प्रकार प्रयोग करता है कि उसकी स्तुति हो। यशायाह ने यह शिक्षा दी कि यद्यपि अश्शूरियों का यह इरादा नहीं था कि वे परमेश्वर के न्याय का साधन हों, तथापि वे साधन हुए (यश० १० : ५, १५)। इसी प्रकार हबक्कूक भी कसदियों को परमेश्वर के न्याय का साधन मानता है, यद्यपि कि ये लोग विधर्मी थे (२ : ६)।

(४) हबक्कूक अपनी इस शिक्षा के लिये बहुत प्रसिद्ध है कि 'धर्मी अपने विश्वास के द्वारा जीवित रहेगा' (२ : ४)। इस पद में इब्रानी शब्द एमुनाह (emunah) का प्रयोग हुआ है। इसका और आमेन शब्द का मूल एक ही है। इस शब्द का सामान्यतया 'विश्वास योग्यता' अर्थ होता है। इस दृष्टि से इस पद का अर्थ यह होगा कि यदि धर्मी परमेश्वर के प्रति सच्चा और निष्ठा-वान रहे तो वह जीवित रहेगा। विश्वास योग्यता (परमेश्वर के सत्य को दृढ़ता

से मानते जाना) और विश्वास (परमेश्वर के सत्य को मानना या ग्रहण करना) दोनों ही भाव इसमें हैं। सुसमाचार के सत्य के प्रतिपादन में पौलुस हबक्कुक के इस शब्द के दूसरे अर्थ (सत्य को मानना या ग्रहण करना) में प्रयोग करता है (रो.१: १७)।

(५) हबक्कूक परमेश्वर के कुछ उदात्त या अतिभव्य गुणों को व्यक्त करता है। क्या तू अनादिकाल से परमेश्वर नहीं है ? (१ : १२)। 'तेरी आँखें ऐसी शुद्ध हैं कि तू बुराई को देख ही नहीं सकता' (१ : १३)। 'यहोवा अपने पवित्र मन्दिर में है; समस्त पृथ्वी उसके साम्हने शांत रहे, (२ : २०)।

(६) हबक्कूक की प्रार्थना में बाइबल के एक महान सत्य की अभिव्यक्ति की गई है। वह यह है कि परमेश्वर स्वयं अपनी समस्त आशिषों से महान है। अतः जब अन्य आशिषें ले ली जाती हैं—चाहे अंजीर के वृक्षों में फूल न लगें, और न दाखलताओं में फल लगें, जलपाई के वृक्ष से केवल धोखा पाया जाए' (३ : १७), तब भी विश्वासी के लिए आनंदित रहने का कारण बना रहता है—मैं यहोवा के कारण आनंदित और मगन रहूँगा, अपने उद्धारकर्ता परमेश्वर के द्वारा अति प्रसन्न रहूंगा' (३ : १८)। इसके अतिरिक्त परमेश्वर की उपस्थिति वह बल और तरुणाई की शक्ति प्रदान करती है जिसकी तुलना चपल हरिणों की स्वच्छंदता से की जाती है जो पहाड़ों के ऊँची चोटियों पर उछलते फिरते हैं (३ : १९)।

पैंतालीसवाँ अध्याय

सपन्याह

१. शीर्षक

इस पुस्तक का नाम सपन्याह नबी के नाम पर है। इब्रानी में 'त्सपन्याह' है। इसका अर्थ है 'परमेश्वर ढांप लेता है' अर्थात रक्षा करता है। सप्तत्ति अनुवाद में सफनीअस है। वुल्गाता में यही है। प्रारंभिक अक्षर में जो वैभिन्न्य है उसका कारण यह है कि इब्रानी अक्षर को दूसरी भाषा में लिखना कठिन है।

२. विषय सामग्री का सारांश

पुस्तक में यहोवा के दिन का एक सजीव चित्र है जिसमें उसे उन सब लोगों पर भयंकर जागतिक न्याय का दिन प्रस्तुत किया गया है जो परमेश्वर के धार्मिक कार्यों का विरोध करते हैं। साथ ही उसमें यह चित्र भी प्रस्तुत है कि इस्राएल से की गई प्रतिज्ञा की पूर्ति स्वरूप एक नवीन युग आएगा।

३. रूप रेखा

सपन्याह—जागतिक न्याय का नबी

(१) यहोवा का दिन (१–२)

(क) वह जागतिक न्याय का दिन होगा (१ : २–६) : यहोवा कहता है, 'मैं धरती के ऊपर से सब का अन्त कर दूंगा·······मनुष्य और पशु··· आकाश के पक्षियों और समुद्र की मछलियों का, और दुष्टों का भी अंत कर दूंगा······ इस स्थान में बाल के बचे हुओं को और याजकों समेत देवताओं के पुजारियों के नाम को नष्ट कर दूंगा'।

(ख) वह दिन यरूशलेम में अपराधियों की खोज का दिन होगा (१ : ७–१३) : यहोवा के यज्ञ के दिन, 'मैं हाकिमों और राजकुमारों को और जितने परदेश के वस्त्र पहिना करते हैं, उनको भी दण्ड दूंगा·········जो डेवड़ी को लांघते········उस समय मैं दीपक लिये हुए यरूशलेम में ढूँढ़-ढांढ़ करूंगा, और जो लोग दाखमधु के तलछट तथा मैल के समान बैठे हुए मन में कहते हैं कि यहोवा न तो भला करेगा न बुरा, उनको मैं दण्ड दूंगा।

से मानते जाना) और विश्वास (परमेश्वर के सत्य को मानना या ग्रहण करना) दोनों ही भाव इसमें हैं। सुसमाचार के सत्य के प्रतिपादन में पौलुस हबक्कुक के इस शब्द के दूसरे अर्थ (सत्य को मानना या ग्रहण करना) में प्रयोग करता है (रो.१: १७)।

(५) हबक्कूक परमेश्वर के कुछ उदात्त या अतिभव्य गुणों को व्यक्त करता है। क्या तू अनादिकाल से परमेश्वर नहीं है ? (१ : १२)। 'तेरी आँखें ऐसी शुद्ध हैं कि तू बुराई को देख ही नहीं सकता' (१ : १३)। 'यहोवा अपने पवित्र मन्दिर में है; समस्त पृथ्वी उसके साम्हने शांत रहे, (२ : २०)।

(६) हबक्कूक की प्रार्थना में बाइबल के एक महान सत्य की अभिव्यक्ति की गई है। वह यह है कि परमेश्वर स्वयं अपनी समस्त आशिषों से महान है। अतः जब अन्य आशिषें ले ली जाती हैं—चाहे अंजीर के वृक्षों में फूल न लगें, और न दाखलताओं में फल लगें, जलपाई के वृक्ष से केवल धोखा पाया जाए' (३ : १७), तब भी विश्वासी के लिए आनंदित रहने का कारण बना रहता है—मैं यहोवा के कारण आनंदित और मगन रहूँगा, अपने उद्धारकर्ता परमेश्वर के द्वारा अति प्रसन्न रहूंगा' (३ : १८)। इसके अतिरिक्त परमेश्वर की उपस्थिति वह बल और तरुणाई की शक्ति प्रदान करती है जिसकी तुलना चपल हरिणों की स्वच्छंदता से की जाती है जो पहाड़ों के ऊँची चोटियों पर उछलते फिरते हैं (३ : १९)।

पैंतालीसवाँ अध्याय

सपन्याह

१. शीर्षक

इस पुस्तक का नाम सपन्याह नबी के नाम पर है। इब्रानी में 'त्सपन्याह' है। इसका अर्थ है 'परमेश्वर ढांप लेता है' अर्थात रक्षा करता है। सप्तति अनुवाद में सफनीअस है। वुल्गाता में यही है। प्रारंभिक अक्षर में जो वैभिन्य है उसका कारण यह है कि इब्रानी अक्षर को दूसरी भाषा में लिखना कठिन है।

२. विषय सामग्री का सारांश

पुस्तक में यहोवा के दिन का एक सजीव चित्र है जिसमें उसे उन सब लोगों पर भयंकर जागतिक न्याय का दिन प्रस्तुत किया गया है जो परमेश्वर के धार्मिक कार्यों का विरोध करते हैं। साथ ही उसमें यह चित्र भी प्रस्तुत है कि इस्राएल से की गई प्रतिज्ञा की पूर्ति स्वरूप एक नवीन युग आएगा।

३. रूप रेखा

सपन्याह—जागतिक न्याय का नबी

(१) यहोवा का दिन (१–२)

(क) वह जागतिक न्याय का दिन होगा (१ : २–६) : यहोवा कहता है, 'मैं धरती के ऊपर से सब का अन्त कर दूंगा.......मनुष्य और पशु.... आकाश के पक्षियों और समुद्र की मछलियों का, और दुष्टों का भी अंत कर दूंगा...... इस स्थान में बाल के बचे हुओं को और याजकों समेत देवताओं के पुजारियों के नाम को नष्ट कर दूंगा'।

(ख) वह दिन यरूशलेम में अपराधियों की खोज का दिन होगा (१ : ७–१३) : यहोवा के यज्ञ के दिन, 'मैं हाकिमों और राजकुमारों को और जितने परदेश के वस्त्र पहिना करते हैं, उनको भी दण्ड दूंगा.......जो डेवड़ी को लांघते.......उस समय मैं दीपक लिये हुए यरूशलेम में ढूंढ़-ढांढ़ करूंगा, और जो लोग दाखमधु के तलछट तथा मैल के समान बैठे हुए मन में कहते हैं कि यहोवा न तो भला करेगा न बुरा, उनको मैं दण्ड दूंगा।

(ग) यहोवा का भयानक दिन निकट है (१ : १४–१८) : 'यहोवा का भयानक दिन निकट है, वह बहुत वेग से समीप चला आता है। ... वह रोष का दिन होगा वह संकट और सकेती का दिन''''वह बादल और काली घटा का दिन होगा'।

(घ) जब समय है तो महोवा की ओर लौट आओ (२:१:-६): हे निर्लज्ज जाति के लोग, इकट्ठे हो''''इससे पहले कि यहोवा का भड़कता हुआ क्रोध तुम पर आ पड़े''''हे पृथ्वी के नम्र लोगो, यहोवा को ढूँढ़ते रहो, धर्म को ढूँढ़ो, नम्रता को ढूँढ़ो संभव है तुम यहोवा के दिन में शरण पाओ'।

(च) वह जातियों के विनाश का दिन है (२ : ४–१५) : अज्जा, अश्कलोन, अशदोद और एक्रोन पर विनाश पड़ेगा–'समुद्रतीर पर रहने वालों पर हाय;''''''वही समुद्रतीर यहूदा के घराने के बचे हुओं को मिलेगा। ''''मोआब सदोम के समान और अम्मोनी अमोरा के समान हो जाएंगे। इसी प्रकार कूश और अश्शूर का विनाश होगा।

(२) इस्राएल के साथ यहोवा का व्यवहार (३)

(क) इस्राएल जाति विश्वासघात में बढ़ती गई (३ : १–७) : 'उसने मेरी नहीं सुनी, उसने ताड़ना से भी नहीं माना, उसने यहोवा पर भरोसा नहीं रखा''''''उसके भविष्यवक्ता व्यर्थ बकने वाले और विश्वासघाती हैं, उसके याजकों ने पवित्र स्थान को अशुद्ध किया है''''''यहोवा जो इसके बीच में है, वह धर्मी है, वह कुटिलता न करेगा; वह अपना न्याय प्रति भोर प्रगट करता है और चूकता नहीं''''''मैंने कहा, "अब तू मेरा भय मानेगी"''''''परन्तु वे सब प्रकार के बुरे बुरे काम यत्न से करने लगे।'

(ख) यहोवा के नये युग की स्थापना होगी (३ : ८–२०) : मैं देश देश के लोगों से एक नई और शुद्ध भाषा बुलवाऊंगा, कि वे सब के सब यहोवा से प्रार्थना करें और एक मन से कंधे से कंधा मिलाए हुए उसकी सेवा करें।''''''तू मेरे पवित्र पर्वत पर फिर कभी अभिमान न करेगी, क्योंकि मैं तेरे बीच में दीन और कंगाल लोगों का एक दल बचा रखूंगा'''''' इस्राएल के बचे हुए लोग न तो कुटिलता करेंगे और न झूठ बोलेंगे' (३ : ८ : १३)। 'हे सिय्योन, मत डर''''''तेरा परमेश्वर यहोवा तेरे बीच में है, वह उद्धार करने में पराक्रमी है''''''वह अपने प्रेम में तुमको संजीव करेगा[1]''''''मैं लंगड़ों को चंगा करूंगा, और बरबस निकाले हुओं को इकट्ठा करूंगा''''''मैं तुम्हें घर लौटा लाऊंगा (३ : १४–२०)।

[1] इतना अंश आर. एस. व्ही. से है

४. रचना, रचयिता, तिथि

पुस्तक की साहित्यिक अखंडता और उसके लेखक सपन्याह को सामान्यतया स्वीकार किया जाता है, क्योंकि इसकी विषय सामग्री केन्द्रीय विषय से अर्थात् 'यहोवा का दिन' से भली भांति संगुफित है। फिर भी यह कहा जाता है कि वे अंश, जिनमें अंतिम दिनों का दर्शन है, और जिनमें इस्राएल की भावी आशा पर बल दिया गया है, निर्वासनोत्तर है। इस प्रकार १, २, ३, ६, जिनमें जागतिक विनाश का चित्रण है, १ : ४–५ में प्रस्तुत सीमित विनाश का निर्वासनोत्तर विस्तृत रूप है। सिय्योन की आशा की परिपूर्ति संबंधी अंश भी (३ : १४–२०) किसी निर्वासनोत्तर संपादक का कार्य माना जाता है। यह ध्यान रखना चाहिये कि ऐसे प्रकरणों में निर्वासनोत्तर संपादन की मान्यता की समस्या इस प्रश्न पर निर्भर है कि क्या 'अंतिम दिनों' और 'भविष्य आशा' संबंधी विचारों को निर्वासनोत्तर काल से ही संबंधित माना जाना चाहिये ? इस संबंध में मीका नबी पर लिखी गई भूमिका के चौथे विचारबिंदु के अंतर्गत हमने अपने विचार व्यक्त किए हैं कि निर्वासन पूर्वकालीन नबियों में भी ऐसे विचार पाए जाते हैं। अतः इस परंपरागत मान्यता को अस्वीकार करने का कोई कारण नहीं कि यह पुस्तक एक अखंड पुस्तक हैं और कि उसका लेखक सपन्याह है। इस संदर्भ में इब्रानी दर्शन के इतिहास में सपन्याह का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है कि 'अंतिम दिनों' के संबंध में उसने ईश्वरीय न्याय की जागतिकता पर बल दिया है, और इस प्रकार एक प्रकाशितवाक्यात्मक दृष्टिकोण का प्रारंभ किया।

सपन्याह की तिथि साधारणतया इस कथन से निर्धारित की जाती है कि उसने यहूदा के राजा योशिय्याह के दिनों में नबूवत की (१ : १)। योशिय्याह ने ई. पू. ६४० से ६०९ तक राज किया। यह प्रश्न उपस्थित किया जाता है कि इस तीस वर्ष से ऊपर के समय में सपन्याह ने योशिय्याह के धर्म सुधार (ई. पू. ६२२) के पूर्व प्रचार किया अथवा पश्चात्, और कि लगभग ई. पू. ६२७ में जो सीथी आक्रमण हुआ, क्या वह नबी द्वारा प्रचारित जागतिक न्याय का तात्कालीन प्रसंग था ? यद्यपि ऐसे प्रश्नों के उत्तर संभाव्यता की ही परिधि में अभी तक हैं और कदाचित रहेंगे, इतना सामान्यतया स्वीकार किया जाता है कि सपन्याह ने धर्मसुधार के पहले नबूवत की और कि सीथी आक्रमण उसके संदेश का तात्कालीन प्रसंग था। अतः सपन्याह की तिथि लगभग ई. पू. ६२७ निर्धारित की जाती है। यह लगभग वह समय था जब यिर्मयाह ने अपना नबूवत कार्य आरंभ किया।

जीवन संबंधी टिप्पणी

यह बड़े महत्व की बात है कि जिस संपादक ने इस पुस्तक का शीर्षक लिखा (१ : १) उसने सपन्याह के पूर्वजों की चार पीढ़ियों को देकर उसे हिजकिय्याह से संबंधित किया है। किसी भी छोटे नबी के संबंध में ऐसा नहीं हुआ है। यह एक उचित तर्कणा जान पड़ती है कि यहां जिस हिजकिय्याह का उल्लेख है वह यहूदा का राजा हिजकिय्याह है (ई. पू. ७१५–६८७)। अतः सपन्याह राजपरिवार का था और योशिय्याह राजा का दूर का चचेरा भाई था। वह निसंदेह यरूशलेम का निवासी था।

६. धर्म शिक्षा

इस्राएल की महान नबूवत परंपरा में सपन्याह का स्थान है। यद्यपि वह अपने संदेश में यहोवा के दिन के प्रकाशनात्मक पक्ष पर विशेष बल देता है, तथापि उसका संदेश इस बात में ई. पू. आठवीं सदी के नबियों के समान है कि उसने उस दिन को नैतिक लेखाजोखा का दिन भी माना।

सपन्याह की प्रमुख शिक्षाएँ निम्नानुसार हैं :

(१) यहोवा का निकट आता हुआ दिन अनिवार्य है और वह जागतिक न्याय का दिन होगा। पुस्तक की अखंडता मानते हुए यही सपन्याह का प्रमुख विषय है। अंतिम समय में यहोवा का दिन आएगा (१ : ९; ३ : ९,११, २०)। इतिहास की समस्त प्रसामान्य प्रक्रिया के पश्चात् यह दिन यहोवा का ही कार्य होगा (१ : २,३,१४,१५,१७)। सारा जगत उसकी कार्य-परिधि होगा (१ : ३)। सपन्याह के दिनों में पलिश्तीन पर जो आक्रमण हुए उसमें यहोवा के दिन का पूर्वाभास है। इस आक्रमण में वह पलिश्ती नगरों (२ : ४–७) का विनाश और पड़ोसी जातियों (२ : ८–१५) की पराजय का वर्णन करता है। इस प्रकार सपन्याह द्वारा यहोवा के दिन का चित्रण प्रकाशनात्मक और ऐतिहासिक दोनों प्रकार का है।

(२) यहोवा अपने अभिप्राय की पूर्ति अपने लोगों के एक अनुशासित तथा शुद्ध किए हुए शेषांश द्वारा करेगा (३ : १३)। इस्राएल में बहुतों के ऊपर परमेश्वर का कठोर न्याय दण्ड आएगा, परंतु जो दुष्टता के हटाए जाने के और अभिमान के दूर किए जाने के द्वारा शुद्ध किए जाकर 'बचे हुए हैं' (३ : ११), जो परमेश्वर पर भरोसा करते हैं (३ : १५), वे परमेश्वर के प्रेम में संजीव किए जाएंगे ३ : १७, और पुनर्वसित किए जाएंगे (३ : २०)।

(३) विशेष अधिकारों में अधिक दायित्व और अधिक न्याय निहित है। निर्वाचित जाति होने के नाते यहोवा के दिन में इस्राएल कठिन दंड की प्रत्याशा करे (३ : १,२)।

(४) यहोवा पवित्र और धर्मी है, अतः वह अपने लोगों से पवित्र और धार्मिक जीवन की अपेक्षा करता है (२ : ३; ३ : ५)। वह आज्ञापालन, धार्मिकता और विनम्रता की अपेक्षा करता है (२ : ३)। उनके बीच में रहते हुए वह उनको धार्मिक आचरण का आदर्श है (३ : ५)।

सपन्याह में 'यहोवा का दिन' विषय (१ : १४–१६) १३ वीं शताब्दी के एक प्रसिद्ध लतीनी गीत का आधार बन गया। इसका लेखक केलानो का थोमा माना जाता है। उसका शीर्षक है क्रोध का दिन (Dies Irae)। उसकी प्रारम्भिक पंक्तियों का अनुवाद कुछ इस प्रकार है :

क्रोध का दिन, भयानक दिन !
जब संसार मिट जायगा, वह दिन,
जब सब आकाश लपेटे जाएँ,
सूखे खर्रे सदृश वे चिमड़ जाएँ,
बताया दिन, संत औ दर्शी ने,
दाऊद की वीणा, सिबिल की कृति ने।

छियालीसवां अध्याय

हाग्गै

१. शीर्षक

इस पुस्तक का नाम हाग्गै नबी के नाम पर रखा गया है। इसमें हाग्गै नबी के वचन संकलित हैं। इब्रानी नाम हाग्गै का अर्थ है 'पर्व से संबंधित'। (अरबी और उर्दु में 'हज्ज' शब्द से तुलना कीजिए। इस्लाम में हज्ज पर्व की यात्रा है)। सेपत्वागिता में इसका शीर्षक अग्गायिओस (Aggaios) है और बुल्गाता में अग्गेइयस। हिन्दी में इब्रानी नाम 'हाग्गै' लिया गया है।

२. विषय-सामग्री का सारांश

हाग्गै की पुस्तक में हाग्गै नबी की दिव्य वचन-माला है। बंधुवाई के पश्चात् जो यहूदी लोग मंदिर के पुनर्निर्माण के लिये आए थे उनके उत्साह वर्धन के लिये ये वचन कहे गए हैं। सब वचनों के संबंध में निश्चित तिथियां दी गई हैं।

३. रूपरेखा

हाग्गै—पुनर्निर्माण का नबी

(१) परमेश्वर के भवन को बनाने के लिये उद्बोधन (१:१–१५)

(क) परमेश्वर कहता है कि यह भवन बनाने का समय है (१:१–११)। तिथि ई. पू. १–६–५२०। "क्या तुम्हारे लिये अपने छतवाले घरों में रहने का समय है, जब कि यह भवन उजाड़ पड़ा है—तुमने बोया बहुत परंतु थोड़ा काटा....क्यों?....क्योंकि मेरा भवन उजाड़ पड़ा है।"

(ख) लोग मान जाते हैं और हाग्गै उन्हें प्रोत्साहित करता है (१:१२–१५): जरुब्बाबेल लोगों का अधिपति था। उसने और लोगों ने जब आज्ञा का पालन किया तो हाग्गै ने परमेश्वर की वाणी सुनाई, 'मैं तुम्हारे संग हूँ।'

(२) भवन की भावी महिमा (२:१–९)। तिथि ई. पू. २१–७–५२०। 'तुम में से कौन है, जिसने इस भवन की पहली महिमा देखी है?....क्या यह सच नहीं कि यह तुम्हारी दृष्टि में पहिले की अपेक्षा कुछ भी अच्छा

नहीं है ?....तौभी हे जरुब्बाबेल, हियाव बांध....हे यहोशू, हियाव बांध ....हे सब लोगो, हियाव बांधकर काम करो, क्योंकि मैं तुम्हारे संग हूं, सेनाओं के यहोवा की यही वाणी है ।....इस भवन की पिछली महिमा इसकी पहिली महिमा से बड़ी होगी ।'

(३) शुद्धता और आशिष का संबंध (२:१०–१९) । तिथि ई. पू. २४–९–५२० ।

(क) याजकीय विधि से तुलना (२:१०–१४) : याजकों का निर्णय यह है कि पवित्र वस्तु पास रखने से कोई पवित्र नहीं हो जाता, परंतु अशुद्ध वस्तु रखने से अशुद्ध अवश्य हो जाता है । (इसी प्रकार पवित्र भवन बनाने से ही कोई पवित्र नहीं हो जाता । परमेश्वर की आशिष प्राप्त करने के लिये इससे अधिक की आवश्यकता है ।)

(ख) आशिष प्राप्ति का रहस्य है परमेश्वर की ओर फिरना (२:१५–१९) : भवन की नींव पड़ी । उस समय से तुम मेरी ओर फिरे । इसलिये अनाज और फल की उपज अच्छी हुई । (अर्थात् केवल भवन बनाना ही नहीं, वरन तुम्हारा परमेश्वर की ओर फिरना और पवित्र जीवन बिताना ही तुम्हारी आशिष का कारण है) । 'आज के दिन से मैं तुम्हें आशिष देता रहूँगा ।'

(४) जरुब्बाबेल को प्रोत्साहन (२:२०–२३)। तिथि ई.पू. २४–९–५–२० मैं आकाश और पृथ्वी दोनों को कंपित करूंगा, और मैं राज्य-राज्य की गद्दी को उलट दूँगा.... मेरे दास जरुब्बाबेल, मैं तुझे लेकर अगूँठी के समान रखूँगा; क्योंकि मैंने तुझी को चुन लिया है, सेनाओं के यहोवा की यही वाणी है' ।

४. रचना, रचयिता, रचना तिथि

इस पुस्तक में हाग्गै के वचनों के साथ हाग्गै के विषय भी लिखा है । यह संभाव्य है कि किसी संपादक के पास नबी के वचन होंगे, और उनको उसने क्रमबद्ध वर्णन तथा व्याख्यात्मक टिप्पणियों के साथ प्रस्तुत कर दिया (उदा. १:१,१२:१५; २:१,१०,२०) । हाग्गै की नबूवत के बाद ही यह पुस्तक लिखी गई होगी ।

कुछ विद्वानों का विचार है कि पुस्तक की मूल क्रमिकता में २:१०–१४ के कारण कुछ अक्रम आ गया है । २:१०–१४ में जो पवित्रता और अशुद्धता के संबंध में याजकीय नियम आ गए हैं उनके कारण इस अंश के पूर्व और इस अंश के बाद में आनेवाले वर्णनों के बीच क्रम-भंग होता है । साथ ही २:१५ में नबी

ने जो प्रशंसा की है, वह १:१२–१५ के प्रोत्साहन के साथ संगत जान पड़ती है। इसलिये अनुमानिक मूलक्रम को बनाने के लिये २:१०–१४ को १:१२–१५ के बाद रखा जाता है। इस स्थिति में १:१५ की तिथि—"यह दारा राजा के दूसरे वर्ष के छठवें महीने के चौबीसवें दिन हुआ"—एक पृथक वचन का शीर्षक बन जाता है (२:१५–१९ का)।

उपरोक्त क्रम से जिसमें २:१०–१४ को आगे के पदों से पृथक किया जाता है, इस अंश की व्याख्या का प्रश्न उत्पन्न हो जाता है। यदि इस अंश को पृथक न किया जाए, तो २:१४ में 'यह प्रजा' और 'यह जाति' से यहूदी जाति का बोध होता है, जो भवन बनाने के लिये उभारे गए हैं। परंतु यदि २:१०–१४ को वर्तमान स्थान से अलग किया जाए और उस पर स्वतंत्र रूप से विचार किया जाए, तो यह माना जाता है कि उससे सामरियों की ओर संकेत होता है। इस दृष्टि से उसका अर्थ यह होगा कि भवन के बनने के कार्य में सामरियों की सहायता स्वीकार नहीं करना चाहिये, क्योंकि पवित्र यहूदी समाज अयहूदी समाज को अपनी पवित्रता नहीं दे सकता, और इसके उल्टे यह संभव है कि अयहूदियों की अशुद्धता से यहूदियों के कार्य की शुद्धता भ्रष्ट हो सकती है। इस व्याख्या से हाग्गै 'यहूदी पार्थक्य' का प्रतिनिधि नबी बन जाता है।

यह माना कि बंधुवाई से लौटने वाले यहूदियों तथा अन्य, जिनमें सामरी भी सम्मिलित थे, के बीच भेदभाव की पुष्टि नहेम्याह और एज्रा के विचारों से होती है; परन्तु जिस व्यक्ति ने वर्तमान क्रम की योजना की है उसके मन में २ : १०-१४ की उपरोक्त व्याख्या है ऐसा बोध हमें नहीं होता। हमारे विचार में वर्तमान क्रम ही मान्य है जिसमें एक उचित व्याख्या प्राप्त होती है।

तिथि–इस पुस्तक का संकलन हाग्गै की नबूवत के बाद ही हुआ होगा। हाग्गै के वचनों के लिये असाराधण रूप से निश्चित तिथियां दी गई हैं। इससे प्रतीत होता है कि ऐतिहासिक भावना बढ़ती जा रही थी, क्योंकि परमेश्वर की वाणी के क्षण ही मानवीय इतिहास के मूल समय हैं। हाग्गै के समस्त आलेखित वचन द्वारा प्रथम हुसतपसिस (ई. पू. ५२२-४८६) के दूसरे वर्ष में उसे परमेश्वर से मिले। अर्थात वे ई. पू. ५२० में, और वंसत ऋतु के विषुव (Equinox) से आरंभ कर छठवे महीने एलूल (अगस्त सितम्बर) में (१:१) तिशरी महीने (सितंबर-अक्टूबर) में (२:१); और किसलेव महीने (नवंबर-दिसंबर) में (२:१०,२०) में ये वचन मिले। महीनों के दिन भी वताए गए हैं। किसलेव के महीने में दो वचन प्राप्त हुए।

५. जीवनी संबंधी टिप्पणियां और पृष्ठभूमि

हाग्गै नबी के व्यक्तिगत जीवन संबंधी कोई जानकारी नहीं मिलती। परंतु यदि वह स्वयं को उन लोगों में मानता है जिन्होंने पहिला भवन देखा था (२:३) तो वह सचमुच बूढ़ा व्यक्ति रहा होगा। २ : १०-१४ में याजकीय निर्णयों के प्रयोग से यह संकेत होता है कि वह याजक था। परंतु इस तर्कणा में बड़ी कठिनाइयां हो सकती हैं।

हाग्गै और जकर्याह की भी नबूवतों के लिये जिन प्रमुख घटनाओं से ऐतिहासिक वातावरण बनता है वे निम्नानुरूप हैं :

ई. पू. ५३७-कुस्रू की आज्ञानुसार शेशबस्सर नामक प्रधान के साथ निर्वासितों का लौटना (५३६-५३०ई. पू.), (एज्रा. १:११)।

ई. पू. ५३७—जरुब्बावेल भवन बनाने का काम आरंभ करता है ; नींव भरी जाती है (एज्रा. ३:८, १०)।

ई. पू. ५२२—दारा प्रथम हुसतपसिस, कम्बुसिस के बाद राजा होता है, (ई. पू. ५३०-५२२) और पहले दो वर्ष विस्तृत विद्रोह दमन में लगाता है। राज्य की जड़ जमा लेने पर वह यहूदियों के प्रति वही उदार नीति अपनाता है जो कुस्रू ने अपनाई थी।

ई. पू. ५२०—हाग्गै और जकर्याह नबियों द्वारा प्रोत्साहन पाने पर भवन निर्माण का काम आगे बढ़ाया जाता है।

ई. पू. ५१६— भवन बनाने का काम समाप्त होता है (एज्रा. ६:१४-१५)।

६. धार्मिक शिक्षा

हाग्गै का संदेश एक ही आवश्यक कार्य या कर्तव्य से संबंधित है, जो उसके काल के लोगों के सामने था। वह कार्य था—परमेश्वर का भवन बनाना। यह कार्य सर्वाधिक महत्व का था। वह अत्यंत आवश्यक था। क्योंकि वह कार्य परमेश्वर की इच्छा और आज्ञा का कार्य था। वह भवन इस्राएल पर परमेश्वर के प्रकाशन का परमेश्वर द्वारा निर्धारित दृश्य केन्द्र था। अतएव भवन बनाने का अर्थ यह था कि लोग परमेश्वर के प्रकाशन को गंभीरता से ग्रहण करते और मानते हैं। नया नियम में जैसे ख्रिस्त में परमेश्वर का प्रकाशन प्रकट हुआ है, कुछ उसी प्रकार की भावना पुराने नियम में परमेश्वर के भवन के संबंध में मानी जा सकती है। भवन में मानो परमेश्वर स्थान और समय विशेष में लोगों को मिल सकता है। इस प्रकार हाग्गै नबी का यह संदेश, कि परमेश्वर का भवन बनाना उस समय की प्रमुख आवश्यकता थी,

इस चिरंतन सत्य को प्रस्तुत करता है कि हमारे जीवन में परमेश्वर प्रभु को उचित स्थान दिया जाना चाहिये, और कि उसका उचित स्थान वही है जो बाइबल में उसके स्वयं के प्रकाशन के आधार पर ही निर्धारित किया जा सकता है।

इस कार्य को करने के लिये हाग्गै ने लोगों को प्रोत्साहित किया। इसके लिये उसने लोगों को अनेक प्रकार से उद्बोधन दिया। उसने उन्हें इस बात के लिये लज्जित किया कि वे तो स्वयं अच्छे अच्छे घरों में रहते हैं, परन्तु परमेश्वर का भवन उजाड़ पड़ा है। उसने उनसे कहा कि उन्होंने परमेश्वर की उपेक्षा की इसीलिये भूमि की उपज पर आशिष की कमी है (१:५,६,९-११)। जब लोग भवन बनाने लगे, तो उसने यह कहकर उन्हें प्रोत्साहित किया कि परमेश्वर उनके साथ है (१:१३,२:५)। जब कुछ लोग निराश होने लगे कि पहिले भवन की तुलना में यह भवन कुछ नहीं है, तो हाग्गै ने परमेश्वर की भावी महिमा की आशा दिलाई (२:९)। उसने जरूब्बाबेल को यह कहकर उत्साह दिलाया कि परमेश्वर की योजना में जरुब्बाबेल का विशेष स्थान है।

सैंतालीसवां अध्याय

जकर्याह

१. शीर्षक

इस पुस्तक का नाम जकर्या नबी के नाम पर है । हाग्गै के समान जकर्याह ने भी लौटने वाले बंधुओं को अपना मन्दिर बनाने के लिए प्रोत्साहित किया । इब्रानी में इसका नाम जकर्याह है जिसका अर्थ है 'याह स्मरण करता है' । सप्तति अनुवाद और वुल्गाता में जकरीअस है । हिन्दी में इब्रानी रूप अपनाया गया है ।

२. विषय सामग्री का सारांश

जकर्याह की पुस्तक में मंदिर के पुर्ननिर्माण के समय जकर्या नबी के दिव्य वचन और दर्शन हैं । पुस्तक के उत्तरार्द्ध में वे नबूवतें और प्रकाशित-वाक्यात्मक दिव्यवचन हैं जिनमें जकर्याह के समय से पथक परिस्थितियों का प्रतिबिंब है ।

६. रूपरेखा

जकर्याह–भावी महिमा के दर्शनों का नबी

(१) जकर्याह के दिव्यवचन और (१–८)

(क) पश्चाताप के लिए याचना (१:१–६) ; 'यहोवा तुम लोगों के पुरखाओं से बहुत ही क्रोधित हुआ था.... सेनाओं का यहोवा यह कहता है, तुम मेरी ओर फिरो.... तब मैं तुम्हारी ओर फिरूंगा। ....अपने बुरे मार्गों से फिरो' ।

(ख) यहोवा की योजना के दर्शन (१:७–६:८)

(i) चार सवारों का दर्शन (१:७–१७) : घाटी के वृक्षों के बीच चार सवार खड़े हैं । आगेवाला लाल घोड़े पर, उसके पीछ लाल और सुरंग और श्वेत घोड़ों पर । वे परमेश्वर की ओर से गश्त लगाने वाले हैं और फिर समाचार देते हैं, 'हमने पृथ्वी पर सैर किया है, और क्या देखा कि सारी पृथ्वी में शान्ति और चैन है' । (अर्थात अभी समय नहीं आया,

पर आने वाला है) । यहोवा के दूत ने पूछा, 'हे सेनाओं के यहोवा, तू जो यरूशलेम और यहूदा के नगरों पर क्रोधित है, तू कब तक उन पर दया न करेगा' ? इसका उत्तर यह मिला, 'मुझे यरूशलेम और सिय्योन के लिये बड़ी जलन हुई है' ।

(ii) चार सींग और चार लोहार (१:१८–२१) : चार सींग दिखाई दिये, जो वे सशक्त जातियाँ हैं जो यहूदा के विरुद्ध हैं । तब उन सींगों को नष्ट करने के लिये चार लोहार आते हैं । वे यहोवा की ओर से दंड के साधन हैं ।

(iii) हाथ में नापने की डोरी लिए हुये एक दूत (२) : यरूशलेम को नापने के लिए एक पुरुष हाथ में नापने की डोरी लिए हुए है । एक दूत ने दूसरे दूत के द्वारा उस पुरुष के पास संदेश भेजा कि यरूशलेम शहरपनाह के बाहर-बाहर ही बसेगी । यहोवा की यह वाणी है, 'मैं आप उसके चारों ओर आग की सी शहरपनाह ठहरूंगा, और उसके बीच में तेजोमय होकर दिखाई दूँगा' (२:१–५) ।

'हे बाबुल जाति के साथ रहने वाली, सिय्योन को बचकर निकल भाग–हे सिय्योन, ऊँचे स्वर से गा और आनंद कर, क्योंकि देख मैं आकर तेरे बीच में निवास करूंगा, यहोवा की यही वाणी है (२:६–१३) ।

(iv) यहोशू महायाजक, जिस पर स्वर्ग की सभा में अभियोग लगाया गया है, मुक्त किया जाता है (३) यहोवा अभियोगी (शैतान) को यहोशू के संबंध में डांटता है । 'क्या यहोशू आग से निकाली हुई लकुटी के समान नहीं है' ? अर्थात क्या बंधुआई की आग में से निकला हुआ पुरोहित नहीं है ? यहोशू के मैले वस्त्र उतारे जाते हैं, सुन्दर वस्त्र पहिनाए जाते हैं, उसके सिर पर याजक के योग्य शुद्ध पगड़ी रखी जाती है, और उसे भवन में आने जाने का अधिकार एवं कर्तव्य सौंपे जाते हैं । एक पत्थर पर जिस पर सात आंखें बनी हैं, उसे खुदी हुई प्रतिज्ञा दी जाती है, 'मैं अपने दास शाख (डाली) को प्रकट करूंगा' ।

(v) दीवट और जलपाई के दो वृक्ष (४) : सात शाखोंवाला एक दीवट है । उसका कटोरा उसकी चोटी पर है जिसमें जलपाई का तेल है । उस कटोरे में जलपाई के दो वृक्षों की शाखाओं से तेल आता है । वृक्ष कटोरे की दोनों ओर हैं । (४:१–४) । जरूब्बाबेल के संबंध में यहोवा का यह वचन दिया जाता है : 'न तो बल से, न शक्ति से, परंतु मेरे आत्मा के द्वारा होगा, मुझ सेनाओं के यहोवा का यही वचन है' । यह आश्वासन

दिया जाता है कि जरुब्बाबेल यहोवा के भवन का निर्माण पूर्ण करेगा—'किसने छोटी बातों का दिन तुच्छ जाना है ? यहोवा अपनी आँखों से सारी पृथ्वी पर दृष्टि करके साहुल को जरुब्बाबेल के हाथ में देखेगा, और आनंदित होगा' (४:५–१०)। सात बत्तियां यहोवा की आँखें हैं जो सारी पृथ्वी पर दृष्टि करती हैं और जलपाई के दो वृक्षों की दो डालियां हैं वे 'तेल से भरे हुए (अभिषिक्त) वे दो पुरुष हैं जो सारी पृथ्वी के परमेश्वर के पास हाजिर रहते हैं' (४:११–१४)।

(vi) उड़ता हुआ पत्र (५:१–४) : एक विशाल पत्र उड़ता हुआ देख पड़ता है, जो चोरों और शपथ खानेवालों को खोजता रहता है। उस पत्र में शाप है, जो सारे देश पर आनेवाला है।

(vii) एपा-माप के बीच बैठी हुई स्त्री (५:५–११) : एक स्त्री, 'दुष्टता' एक एपा (दाना मापने का पात्र) में दबी हुई है। वह शिनार देश को ले जाई गई जहाँ उसकी पूजा की जायगी।

(viii) चार रथ (६:१–८) : पीतल के दो पहाड़ों के बीच से चार रथ निकले। उनमें लाल, काले, श्वेत और चितकबरे बादामी घोड़े हैं। वे पृथ्वी का गश्त लगाने जाते हैं। उत्तर की ओर (काले घोड़ों का रथ), पश्चिम की ओर (श्वेत), दक्षिण की ओर (चितकबरा)। यह शब्द आता है कि 'वे जो उत्तर देश की ओर जाते हैं, उन्होंने वहाँ मेरे प्राण को ठंडा किया है'।

(ग) शाख (डाली) को प्रतीकात्मक रूप से मुकुट पहिनाना (६ : ९–१५) : यहोवा जकर्याह को आज्ञा देता है कि कुछ लोगों से जो बाबुल से आकर उतरे हैं, सोना चांदी ले और मुकुट बनाकर उन्हें यहोशू महायाजक (जरुब्बाबेल) के सिर पर रख। और उससे यह कह, 'सेनाओं का यहोवा यों कहता है, उस पुरुष को देख जिसका नाम शाख (डाली) है....वही यहोवा के मंदिर को बनाएगा....अपने सिहासन पर विराजमान होकर प्रभुता करेगा। उसके सिहासन के पास एक याजक भी रहेगा और दोनों के बीच मेल की सम्मति होगी। और वे मुकुट.... मन्दिर में स्मरण के लिये बने रहें।

(घ) बेतेल से एक प्रतिनिधि मंडल (७ : १–८ : २३) :

(i) कर्तव्य संबंधी प्रश्न (७ : १–३) : बेतेलवासियों का एक प्रतिनिधिमंडल इसलिये आया कि यहोवा से विनती करें और याजकों से पूछें कि क्या हम पांचवें महीने जैसा निर्वासनकाल में उपवास करते

रहे हैं, इस समय भी वैसा ही करें (मंदिर के विनाश की स्मृति में उपवास किया जाता था) और सातवें महीने का भी उपवास रखें (गदल्याह के मारे जाने की स्मृति में उपवास किया जाता था) ?

(ii) जकर्याह का उत्तर (७ : ४–१४) : जकर्याह ने एक प्रश्न के द्वारा उत्तर दिया, 'जब वे इन सत्तर वर्षों के बीच पांचवें और सातवें महीनों में उपवास और विलाप करते थे तो क्या सचमुच मेरे (यहोवा) के लिये करते थे' ? तब वह पूर्ववर्ती नबियों के वचनों का स्मरण उन्हें कराता है, 'खराई से न्याय चुकाना....कृपा और दया से काम करना.... न अपने अपने मन में एक दूसरे की हानि की कल्पना करना' ।

(iii) यहोवा की ओर से वचनावलि (८) : 'सेनाओं का यहोवा यों कहता है : सिय्योन के लिये मुझे बड़ी जलन हुई...मैं सिय्योन में लौट आया हूँ... नगर के चौक खेलने वाले लड़के लड़कियों से भरे रहेंगे... मैं उनका परमेश्वर ठहरूंगा, यह सच्चाई और धर्म के साथ होगा ।...... तुम मत डरो, न तुम्हारे हाथ ढीले पड़ने पाएं....अब शांति के समय की उपज फला करेगी, और पृथ्वी अपनी उपज उपजाया करेगी, क्योंकि मैं इस प्रजा के बचे हुओं को इन सब का अधिकारी बना दूंगा ।.... उपवास के दिन....यहूदा के घराने के लिये हर्ष और आनंद और उत्सव के पर्वों के दिन हो जांएगे; इसलिये तुम सच्चाई और मेल मिलाप से प्रीति रखो ।....उन दिनों में भांति भांति की भाषा बोलने वाली सब जातियों में से दस मनुष्य एक यहूदी पुरुष के वस्त्र की छोर को यह कहकर पकड़ लेंगे कि हम तुम्हारे संग चलेंगे, क्योंकि हमने सुना है कि परमेश्वर तुम्हारे साथ है' ।

(२) मसीह की विजय के दिव्यवचन (९–११)

(क) विजयी मसीह आता है (९ : १–१२) : इस्राएल के शत्रु लज्जित किए जाएंगे । 'हे सिय्योन की बेटी, बहुत ही मगन हो....क्योंकि तेरा राजा तेरे पास आएगा वह धर्मी और उद्धार पाया हुआ है, वह दीन है, और गदहे पर नहीं, वरन गदही के बच्चे पर चढ़ा हुआ आएगा । मैं एप्रैम के रथ और यरूशलेम के घोड़े नाश करूंगा....हे आशा धरे हुए बंदियों, गढ़ की ओर फिरो ।...मैं तुमको बदले में दूना सुख दूंगा' ।

(ख) यहोवा अपने लोगों के लिये लड़ता है (९ : १३–१७) : 'मैं सिय्योन के निवासियों को यूनान के निवासियों के विरुद्ध उभारूंगा, और उन्हें वीर की तलवार सा कर दूंगा...उस समय उनका परमेश्वर यहोवा उनको

अपनी प्रजारूपी भेड़बकरियाँ जानकर उनका उद्धार करेगा; और वे मुकुटमणि ठहरके, उसकी भूमि से बहुत ऊँचे पर चमकते रहेंगे'।

(ग) यहोवा वर्षा का देने वाला है (१० : १–२) : 'यहोवा से वर्षा मांगो और वह उनको वर्षा देगा...गृहदेवता अनर्थ बात कहते और भावी कहने वाले झूठा दर्शन देखते हैं'।

(घ) विजय और घर लौटना (१० : ३–१२) : 'यहोवा अपने झुण्ड का हाल देखने को आएगा...उसी में से कोने का पत्थर, खूँटी, युद्ध का धनुष.. सब प्रधान प्रकट होंगे...वे लड़ेंगे क्योंकि यहोवा उनके संग रहेगा....मैं उन्हें मिस्र देश से लौटा लाऊँगा (प्तोलेमी राज्य) और उन्हें अश्शूर से इकट्ठा करूंगा (सेल्यूकी राज्य ?)'।

(च) पराजित अत्याचारी के लिये विलाप (११ : १–३) : 'हे सनौवरो, हाय हाय करो। क्योंकि देवदार गिर गया है....हेवाशान के बांज वृक्षो। हाय हाय करो, क्योंकि अगम्य वन काटा गया है'।

(छ) यहोवा के अच्छे मेषपाल का तुच्छ गिना जाना (११ : ४–१७) : यहोवा नबी से कहता है, 'घात होने वाली भेड़ बकरियों का चरवाहा हो जा। ....उनके अपने चरवाहे उन पर कुछ दया नहीं करते'। इसलिये नबी ने दो लाठियां लीं; एक का नाम अनुग्रह रखा, और दूसरी का नाम एकता ....और भेड़ बकरियों को चराने लगा। उसने उनके तीनों चरवाहों को नाश किया। तब नबी ने कहा, 'परंतु में उनके कारण अधीर था, और वे मुझ से घृणा करती थीं। तब मैंने उनसे कहा, मैं तुमको न चराऊँगा .....मैंने वह लाठी तोड़ डाली, जिसका नाम अनुग्रह था कि जो वाचा मैंने अन्य जातियों के साथ बांधी थी उसे तोड़ूँ (व्यापारियों ने) मेरी मजदूरी में चांदी के तीस टुकड़े तौल दिए तब मैंने (यहोवा की आज्ञा-नुसार) उन तीस टुकड़ों को लेकर यहोवा के घर में फेंक दिए। तब उसने अपनी दूसरी लाठी, जिसका नाम एकता था तोड़ डाली कि मैं उस भाई चारे के नाते को तोड़ डालूँ जो यहूदा और इस्राएल के बीच में है'।

नबी मूढ़ चरवाहे के हथियार लेता है 'हाय उस निकम्मे चरवाहे पर जो भेड़ बकरियों को छोड़ जाता है'।

(३) अंतिम दिनों संबंधी दिव्यवचन (१२–१४)

(क) विजय, विलाप, शुद्ध करना (१२ : १–१३ : ६) :

विजय : 'यहोवा यों कहता है,.......देखो मैं यरूशलेम की चारों ओर की सब जातियों के लिये लड़खड़ा देने के मद का कटोरा ठहरा दूँगा.......मैं उसे सब जातियों के लिये इतना भारी पत्थर बनाऊँगा, कि जो उसको उठाएंगे, वे बहुत ही घायल होंगे.......मैं यहूदा के अधिपतियों को ऐसा कर दूँगा, जैसी लकड़ी के ढेर में आग भरी अँगीठी... ...यहोवा पहले यहूदा के तंबुओं का उद्धार करेगा....और उस समय उनमें से जो ठोकर खाने वाला हो वह दाऊद के समान होगा, और दाऊद का घराना परमेश्वर के समान होगा, अर्थात यहोवा के उस दूत के समान जो उनके आगे आगे चलता था (१२ : १–९)।

अनुग्रह और विलाप : 'मैं दाऊद के घराने और यरूशलेम के निवासियों पर अपनी अनुग्रह करने वाली और प्रार्थना सिखाने वाली आत्मा उंडेलूँगा, तब वे मुझे ताकेंगे, जिसे उन्होंने बेधा है, और उसके लिये ऐसा रोयेंगे जैसे एकलौते पुत्र के लिये रोते-पीटते हैं.......उस समय यरूशलेम में इतना रोना-पीटना होगा जैसा मगिद्दोन की तराई में हदद्रिम्मोन में हुआ था (१२ : १० १४)।

शुद्धता : 'उसी समय....पाप और मलिनता धोने के निमित्त एक बहता हुआ सोता होगा....उस समय हरएक भविष्यवक्ता भविष्यवाणी करते हुए अपने-अपने दर्शन से लज्जित होंगे, और धोखा देने के लिये कंबल का वस्त्र न पहिनेंगे' (१३ : १–६)।

'तू उस चरवाहे को काट, तब भेड़ बकरियां तितर बितर हो जाएंगी; बची हुई एक तिहाई उसमें बनी रहेगी....उस तिहाई को मैं आग में डालकर ऐसा निर्मल करूँगा, जैसा रूपा निर्मल किया जाता है' (१३ : ७–९)।

(ख) प्रकाशनात्मक युद्ध और निष्पत्ति या पूर्णता (१४) : 'मैं सब जातियों को यरूशलेम से लड़ने के लिये इकट्ठा करूंगा ... नगर के आधे लोग बंधुआई में जाएंगे ... तब यहोवा निकलकर सब जातियों से लड़ेगा ... तब जलपाई का पर्वत पूरब से लेकर पश्चिम तक बीचोंबीच से फट जायगा ... तुम ऐसे भागोगे जैसे उस भुईडोल के डर से भागे थे जो यहूदा के राजा उज्जिय्याह के दिनों में हुआ था।

'उस समय ... लगातार एक ही दिन होगा ... सांझ के समय उजियाला होगा ... यरूशलेम से बहता हुआ जल फूट निकलेगा ... तब यहोवा सारी पृथ्वी का राजा होगा ... तब जितने लोग यरूशलेम पर चढ़नेवाली जातियों में से बचे रहेंगे वे प्रतिवर्ष राजा को, अर्थात सेनाओं के यहोवा को दंडवत करने

और झोंपड़ियों का पर्व मनाने जाया करेंगे ... उस समय घोड़ों की घंटियों पर भी लिखा रहेगा, "यहोवा के लिये पवित्र"।

४ रचना, रचयिता, तिथि

मत्ती २७ : ६ में जकर्याह ११ : १२–१३ पदों के लिये कहा गया है कि वह वचन यिर्मयाह भविष्यवक्ता के द्वारा कहा गया। यह विचित्र बात है। एक संभव स्पष्टीकरण यह है कि पहले सुसमाचार लेखक ने याद रखने में भूल की। दूसरा स्पष्टीकरण यह है कि जकर्याह की पुस्तक के उत्तरार्द्ध में जो दिव्यवचन हैं उनके और इन पदों के रचयिता के संबंध में मतभेद हैं। इस समस्या को सुलझाने के प्रयास से प्रारंभ कर, विद्वानों में साधारणतया यह माना जाता है कि पुस्तक के उत्तरार्द्ध (अध्याय ६–१४) में ऐसी राजनीतिक परिस्थितियों का प्रतिबिंब है, जो जकर्याह नबी के युग की परिस्थितियों से भिन्न हैं, क्योंकि जकर्याह नबी ने हाग्गै के समान, विशेषकर मंदिर के पुर्ननिमाण के विषय ही संबोधन किए हैं। १० : १०–११ में मिस्र और अश्शूर के विद्यमान रहने का संकेत है। इससे निर्वासन पूर्व तिथि की व्यंजना होती है। परंतु ६ : १३ में यूनान का उल्लेख है। जिससे ई. पू. ३३१–१६४ का समय व्यंजित होता है। इनकी एक संगति इस प्रकार बैठाई जाती है कि मिस्र और अश्शूरी को प्तोलेमी के मिस्र और सेल्यूकी के अराम का संक्षिप्त पर्याय माना जाए। अतः जकर्याह ६–१४ को सामान्यतया यूनानी काल का माना जाता है, और १–८ को फारसीकाल में (ई. पू. ५३७–३३१) मंदिर के पुर्ननिमाण काल का माना जाता है।

जकर्याह १–८ की तिथि दारा राजा के दूसरे वर्ष (१ : १) से चौथे वर्ष (७ : १) के बीच रखी जाती है, अर्थात ई. पू. ५२० से ५१८ के बीच। नबी के दिव्य वचन और दर्शन इस समय या इसके बाद ही लिखे गए होंगे।

जकर्याह ६–१४ की तिथि का निर्धारण अधिक कठिन है। यूनानी काल में (ई. पू. ३३१–१६४) सीरख की पुस्तक की तिथि ई. पू. १८० है। इस समय तक 'बारह की पुस्तक,' जिसमें जकर्याह की पुस्तक सम्मिलित है, प्रामाणिक धर्मशास्त्र स्वीकृत हो चुकी थी। अतः ई. पू. १८० के पूर्व यह पुस्तक लिखी जा चुकी थी। तिथि के संबंध में अधिक विशिष्ट सुझाव निम्नांकित है : (१) ई. पू. ३३३ में इस्सुस नामक स्थान में सिकंदर महान की विजय के तुरंत बाद ; (२) सिकंदर के उत्तराधिकारियों के आपसी युद्ध के समय (ई. पू. ३२३–२७८); (३) प्तोलेमी शासकों का काल (ई. पू. ३११–१६८); (४) अंतिओकुस तृतीय (ई. पू. २१८–२१७) द्वारा पलिश्तीन पर आक्रमण के

समय; (५) सीरख की तिथि की उपेक्षा करते हुए कुछ विद्वान इसकी तिथि मकाबी युद्ध (ई. पू. १६७) के समय रखते हैं।

यह मानते हुए कि सीरख की तिथि इसकी तिथि के निर्धारण में महत्व-पूर्ण है और बारह की पुस्तक के प्रामाणिक धर्मशास्त्र स्वरूप स्वीकृत होने में कुछ समय लगा होगा, हम जकर्याह की पुस्तक के ९–१४ अध्यायों की तिथि मोटे रूप से ई. पू. ३००–२५० के बीच निर्धारित कर सकते हैं। विभिन्न दिव्य वचन इस अवधि में भिन्न भिन्न समय आए होंगे।

५. जकर्याह की पुस्तक में समस्याएँ

(१) क्या जरुब्बाबेल मसीह है ?––जकर्याह नबी के दर्शन, भवन के पुनर्निमाण के ऐतिहासिक एवं मनोवैज्ञानिक वातावरण के संदर्भ में समझे जा सकते हैं। यहूदी विश्वास तथा जीवन-पथ की पुनर्स्थापना का प्रमुख भाग यही कार्य था। इसमें मसीह सम्मत युग के उदय के रूप में यहोवा के वचन की परिपूर्ति की आशा सम्मिलित है। कई दर्शनों से यह प्रकट होता है कि यहोवा अपनी उत्कृष्ट योजना कार्यान्वित कर रहा है, चाहे फिर निराशा के गर्त में पड़े हुए लोगों को यह दृष्टिगोचर न हो ! इस योजना में जरुब्बाबेल का महत्व-पूर्ण स्थान था। क्या जकर्याह जरुब्बाबेल को यहोवा द्वारा नियुक्त एक लोक-नेता मात्र मानता था, अथवा वह उसे वास्तव में चिर-प्रतीक्षित मसीह मानता था ? यहोशू महायाजक को बताया जाता है कि मेरा दास 'शाख' (डाली) आने वाला है (३ : ८)। उस दास और जरुब्बाबेल को दो 'अभिषिक्त जन' (४ : १४) माना जा सकता है। वे दोनों प्रभु के अनुग्रह के माध्यम हैं जिनसे यहूदी समाज (दीवट) को यहोवा जीवन पहुँचाता है। ६ : १२–१३ में शाख (डाली) अर्थात, मसीह को ऐसा प्रस्तुत किया गया है कि वह यहोवा के मन्दिर को बनाएगा, और महिमा पाएगा, और अपने सिंहासन पर विराजमान होकर प्रभुता करेगा। उसके सिंहासन के पास एक याजक रहेगा। पाठ में कुछ गड़बड़ी है, क्योंकि नबी को आदेश दिया जाता है कि वह यहोशू महायाजक के सिर पर मुकुट रखे (६ : ११)। साथ ही 'शाख' को याजक से पृथक माना गया है (६ : १३)। इसलिए कुछ विद्वान यह विचार करते हैं कि 'यहोसादाक का पुत्र यहोशू' (६ : ११) मूलरूपेण 'जरुब्बाबेल' था। यदि यह संशोधन स्वीकार किया जाये तो जकर्याह नबी को यह आदेश मिला कि राजा-मसीह के रूप में जरुब्बाबेल को मुकुट पहिनाया जाए, और यहोशू उसका सहायक महायाजक माना जाए। यह स्थिति जरुब्बाबेल को 'यहोवा का दास' (दे. ३ : ८) और यहोवा की 'अंगूठी' (हाग्गै २ : २३) मानने से सुसंगत जान पड़ती है।

यह भी अनुमान किया जाता है कि जब २ : १–५ में जकर्याह यरूशलेम के शहरपनाह के बाहर बसाए जाने के दर्शन की व्याख्या करता है, तो वह जरुब्बाबेल के यरूशलेम की शहरपनाह के बनाने के कार्य को ठीक कर रहा था। शहरपनाह बनाने का कार्य साधारणतया राजा के कार्य से संबद्ध था। यथार्थ में, दारा प्रथम ने जरुब्बाबेल की नियुक्ति अधिपति के पद पर की थी। परन्तु संभव है कि मसीह सम्मत राज्य की स्थापना की आशा इस समय बहुत तीव्र हो गई हो (दे. नहे. ६ : ७)। जरुब्बाबेल ने राजा के अधिकारों को ले लिया था, कदाचित इसीलिए फारसी शासकों ने उसे अलग कर दिया और परिणामस्वरूप इतिहास में वह विलीन हो गया। इस मान्यता के अनुसार, जकर्याह ने भूल से मसीह के रूप में जरुब्बाबेल पर अपनी आशाएँ लगा रखी थीं। इसीलिए जकर्याह को अपूर्ण आशाओं का नबी भी कहा जाता है।

इसके विपरीत जरुब्बाबेल के संबंध में यह विचार किया हो कि वह उसके युग में मसीह सम्मत कार्य को पूर्ण करने वाला है, और इसलिए उसे मसीह के पदों से विभूषित करना चाहिए। इसमें शंका नहीं कि नबी की मसीह सम्मत आशाएं जरुब्बाबेल के कार्य तक सीमित नहीं थीं, क्योंकि वह आध्यात्मिक राज्य की भी प्रतीक्षा कर रहा था (४ : ६; २ : १–५)। अन्य नबियों के समान, उसका संपूर्ण दृष्टिकोण उसके काल की ऐतिहासिक घटनाओं से परे था, यह मानते हुए भी कि ये घटनाएं अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। यद्यपि ऐतिहासिक घटनाओं की किसी रूप में पुनर्रचना के कारण जकर्याह जरुब्बाबेल के नेतृत्व की कुछ बातों से निराश हुआ, परंतु अपने संदेश के विस्तृत संदर्भ और दृष्टि-कोण में वह निराश नहीं हुआ। वह संदेश और दृष्टिकोण परमेश्वर की ओर से वचन के रूप में आगामी पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रहा।

(२) अयहूदियों के प्रति जकर्याह की भावना—एज्रा और नहेम्याह की पुस्तकों से यह विदित होता है कि यरूशलेम को लौटे हुए बंधुओं ने पुनर्निर्माण के कार्य में अपने पड़ौसियों से सहायता लेना स्वीकार न किया (एज्रा. : १–६, १०; नहे. ४ : २)। पड़ौसियों से बिलकुल पृथक जाति रहने की भावना उन्होंने अपनाई (नहे. १३ : २३–३०; एज्रा. १०)। इन पड़ौसियों में शोमरोनी लोग थे (एज्रा. ४ : १०; नहे. ४ : २)।

बेतेल से आने वाले प्रतिनिधि मंडल को उपवास के सम्बन्ध में जकर्याह ने जो उत्तर दिया (७ : १–१४), उसे कुछ विद्वान उत्तर के निवासियों को—मोटे रूप में शोमरोनियों को—झिड़की जैसा मानते हैं, मानो नबी कह रहा है कि तुम्हारे उपवासों का कोई महत्त्व नहीं है क्योंकि तुम्हारा धर्म व्यवस्था-

नुकूल नहीं है; तुम्हें वैसा अच्छा जीवन बिताना चाहिए, जैसा तुम्हें पूर्ववर्ती नबियों ने बताया था। इस प्रकार हाग्गै (दे. हा. २ : १०–१४) के समान जकर्याह भी यहूदी पृथकतावाद का एक प्रमुख प्रवर्तक माना जाता है।

इसके विपरीत, यह स्पष्ट नहीं है कि जकर्याह का उत्तर बेतेल के लोगों को झिड़की है। उस उत्तर को हम इस रूप में भी समझ सकते हैं कि वह सच्चे विश्वास के मूल तत्वों को मानने के लिये प्रबोधन था। यह भी स्पष्ट नहीं कि बेतेल के लोगों को उसी श्रेणी में रखा जाय जिसमें शोमरोन के लोगों को, क्योंकि बेतेल के लोग आध्यात्मिक निर्देशों के लिये यरूशलेम आते थे। इसी प्रकार, हाग्गै की पुस्तक के उस अंश की जिस पर उपरोक्त मान्यता आधारित है, दूसरी व्याख्या भी की जा सकती है (देखिये हाग्गै के अन्तर्गत विचारबिन्दु ४)। हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जकर्याह और हाग्गै दोनों ही महान नबूवतात्मक परंपरा के अंतर्गत हैं। सभी नबी किसी मात्रा में पृथकतावादी हैं। उतनी पृथकता सच्चे विश्वास की अद्वितीयता के रक्षण के लिये आवश्यक थी। जकर्याह और हाग्गै दोनों उस मात्रा से अधिक पृथकतावादी नहीं माने जा सकते।

६. जकर्याह नबी के संबंध में जानकारी

जकर्याह के व्यक्तित्व के संबंध में केवल इतनी जानकारी मिलती है कि वह इद्दो का पोता (१:१) अथवा उसका पुत्र था (एज्रा.५:१)। यदि इद्दो कोई याजक था जो जरुब्बाबेल के साथ बाबुल से यरूशलेम लौटा (नहे.१२:४), तो जब जकर्याह नबूवत करने लगा तो वह आयु में छोटा रहा होगा। इसके विपरीत, यदि इद्दो किसी याजकीय परिवार या गोत्र का नाम था (नहे.१२:१६), तो जकर्याह बंधुआई से लौटने वालों में उस गोत्र का प्रतिनिधि होगा। उसका नबूवत कार्य उसी समय आरंभ हुआ जब हाग्गै का हुआ, और उसकी अवधि दो वर्ष रही (ई. पू. ५२०-५१८)। प्रतीकात्मक क्रियाओं के प्रयोग से (६:९-१५) यशायाह, यिर्मयाह और यहेजकेल से पूर्ववर्ती नबियों का स्मरण हो जाता है; परंतु संदेश के लिये ऐसे दर्शनों के प्रयोग में, जिसमें दूत द्वारा व्याख्या की जाती है (१:९; ४:१) आगामी युग के प्रकाशनात्मक साहित्य की शैली का पूर्व परिचय मिलता है।

७. धर्म शिक्षा

जकर्याह की पुस्तक के प्रथम भाग अर्थात अध्याय १-८ में जकर्याह की प्रमुख शिक्षाएं निम्नलिखित हैं :

(१) यहोवा का अपने लोगों के मध्य रहना सर्वोत्तम महत्व की बात है। हाग्गै के समान, जकर्याह ने भी अपनी जाति के लोगों को मंदिर बनाने के लिये प्रोत्साहन किया (४:६;३:१३,१५; ८:३)। माना कि यह कार्य भौतिक और पार्थिव व्यवस्था के अंतर्गत था। पत्थर काटने वालों और राजों का कार्य था, फिर भी वह प्रकाशित धर्म के सनातन सत्यों से भी संबंधित था। कारण यह था कि जिस परमेश्वर ने अपने को काल और स्थान विशेष में प्रकाशित किया था, वह शाश्वत और सत्य परमेश्वर है। उसकी प्रकाशित इच्छा के अनुरूप हमारे मध्य उसके लिये निवास स्थान बनाना, हमारे उच्चतम विश्वास एवं कर्त्तव्य की अभिव्यक्ति है।

(२) अपने शुभ अभिप्राय में परमेश्वर सतर्क और यत्नशील है। जकर्याह ने अपना संदेश उन लोगों को दिया जो जीवन की कठिन परिस्थितियों के कारण हताश थे (८:१०); और परमेश्वर की सामर्थ के प्रति शंका करने की स्थिति में थे। अपने दर्शनों के द्वारा उसने ऐसा उत्तर दिया जो उनके लिये अत्यंत आवश्यक था। फारसी भेदियों तथा सैनिक अध्यक्षों के समान, जो साम्राज्य शासन में राजा के कार्यकर्ता थे और जो सदा सजग रहते थे, परमेश्वर के दूत भी गश्त लगाते हुए पृथ्वी का निरीक्षण करते हैं (१:८-१७; ४:१०; ६:४-८) और उसके कार्यकर्त्ता उसकी इच्छा को कार्यान्वित करते हैं (१:१८-१७; ६:१-८)। परमेश्वर अपनी योजना को व्यावहारिक रूप देता चलता है (२:१-५,६-१३) और अपने लोगों की चिंता करता है (२:६; ८:१-८)।

(३) परमेश्वर यह चाहता है कि हृदय से नैतिक आचरण करें। उसे वे उपवास प्रिय हैं जो उसके लिये रखे जाते हैं (७:५) और जिनके साथ सदाचरण भी है (७:६)। जकर्याह ई. पू. आठवीं सदी के नबियों के वचनों को इन शब्दों में प्रतिध्वनित करता है, 'खराई से न्याय चुकाना, और एक दूसरे के साथ कृपा और दया से काम करना, न तो विधवा पर अंधेर करना, न अनाथों पर, न परदेशी पर, और न दीन जन पर, और न अपने अपने मन में एक दूसरे की हानि की कल्पना करना' (७:६-१०; दे.८:१६)। मसीहसम्मत राज्य आने की एक शर्त यह है कि पाप से शुद्ध हों (३:६)। पाप को दूर करने के लिये उसकी पूरी खोज की जायगी (५:१-४) और वह दूर किया जायगा (५:५-११)।

(४) परमेश्वर के लिये सब कुछ सम्भव है। वह अयोग्य लोगों का भी उपयोग करता और उन्हें समर्थ करता है यहोशू याजक के पद के अयोग्य था। परंतु उसकी अयोग्यता दूर की जाती है,और वह परमेश्वर की बुलाहट के अनुसार

शुद्ध किया जाता है (३:१-५)। मनुष्य जिसको तुच्छ जानता है परमेश्वर उसे मूल्यवान बनाकर उससे अपने अभिप्राय की पूर्ति कराता है (४:१०)।

(५) जकर्याह ने मसीह सम्मत युग की आशा का समर्थन किया। उसने अपने लोगों को उभारा कि वे उस समय की प्रभु द्वारा दी गई प्रतिज्ञा पर आस्था रखें जब इस्राएल दंड के माध्यम से शुद्ध होकर और पाप से मुक्त हो कर—इस्राएल ही नहीं, वरन् समस्त मानवजाति शुद्ध होकर (८:२०–२३) सिय्योन में प्रकाशनानुसार परमेश्वर की आज्ञाओं के अनुरूप जीवन व्यतीत करेगी, और परमेश्वर की समस्त भलाई का आनंद प्राप्त करेगी (८:११–१३, १९)।

जकर्याह की पुस्तक के उत्तरार्द्ध अर्थात ९–१४ अध्यायों में जकर्याह मसीह संबंधी आशा को प्रधानता देता है। इस शिक्षा में वह अपने पूर्ववर्ती नबियों की शिक्षा का अनुसरण करता है और कुछ नवीन तथ्यों को भी प्रस्तुत करता है। मसीहसम्मत युग शान्ति का युग होगा (९:१०)। सिय्योन में सब जातियाँ यहोबा को मानेंगी (१४:१६)। यरूशलेम, अर्थात (बाइबलगत प्रकाशन का स्थान) सारे संसार के लिए आशिष का स्रोत होगा (१४:८)। मसीहसम्मत युग की विशेषता होगी कि सब पवित्रता में पूर्ण समर्पित होंगे। घोड़ों की घंटियों पर भी यह लिखा होगा 'यहोवा के लिए पवित्र' (१४:-२०)। इस सनातन राज्य की स्थापना के पूर्व कठिन संघर्ष और हृदय-परीक्षण होगा। इस्राएल के शत्रु जो दुष्टता के प्रतीक हैं—बड़ी सफलता प्राप्त करेंगे (१४:१–२)। परंतु परमेश्वर सिय्योन के लिए युद्ध करेगा (१४:३; ९:१–१७; १४:४) और एक शेषांश को बचाएगा (१३:८–९)। वही परमेश्वर के शाश्वत राज्य की नवीन व्यवस्था का मूल अंश होगा (१४:६)। शत्रुओं के दमन को युद्ध की निर्दय शब्दावली में आलंकारिक भाषा में व्यक्त किया गया है (९:१५; १०:५; १२:४)। यह कठोर वर्णन परमेश्वर के न्याय-दंड की कठोरता के अनुरूप है।

मसीह सम्मत युग के पूर्व एक और बात होगी। वह यह है कि अच्छा मेषपाल तुच्छ गिना जाएगा और दुःख उठाएगा (१३:७) और वाचा तोड़ी जाएगी (११:१०)। तुच्छ गिने गए रखवाले की मजदूरी तीस शेकेल दी जाती है (११:१२)। यह इब्रानी दास का भी मूल था (नि. २१.३२)। यह पैसा परमेश्वर के भवन में फेंक दिया जाता है। इसका प्रतीकार्थ यह है कि परमेश्वर को आज्ञाओं के प्रति समस्त उत्तरदायित्व को तुच्छ जाना गया (११:१३)। कदाचित भविष्य के नबी का चिन्ह जो १३:६ में प्रस्तुत है,

'तब उससे पूछा जाएगा, तेरी छाती में ये घाव कैसे हुए, तब वह कहेगा, ये वे ही हैं जो मेरे प्रेमियों के घर में मुझे लगे हैं' —यह चिन्ह भी कदाचित मसीह के स्थानापन्न दुःखभोग की ओर ही इंगित करता है। नये नियम के लेखकों ने निश्चित रूप से यह देखा कि यीशु ख्रिस्त के तुच्छ गिने जाने और मृत्यु में ये बातें पूरी हुईं (मत्त. २६:१४; २७: ९, १०; मर. १४:२७)।

अड़तालीसवां अध्याय

मलाकी

१ शीर्षक

इब्रानी में इस पुस्तक का शीर्षक मलाकी है। इस शब्द का अर्थ है 'मेरा संदेश वाहक या दूत'। सेपत्वागिंता में शीर्षक मलकीआस है। प्रारंभिक पद में इसका पर्याय 'उसका संदेशवाहक' दिया गया है। वुलगाता में सेपत्वागिंता का अनुसरण किया गया है। यह निश्चित नहीं है कि यह शब्द मलाकी व्यक्ति का नाम माना जाए अथवा 'नबी' का पर्याय माना जाए, क्योंकि नबी का भी अर्थ संदेशवाहक होता है। इस संबंध में यहूदी परंपरा स्पष्ट नहीं है, क्योंकि तारगुम में प्रथम पद में एज्रा है और बाबुली तालमुद में मोर्दकै को इसका रचयिता माना गया है।

यदि इस पुस्तक के रचयिता का कोई नाम नहीं है, तो इसे जकर्याह के उत्तरार्द्ध (९-१४) के साथ अनाम नबूवतों की एक और इकाई माना जा सकता है। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि हम यह स्मरण रखें कि मूल इब्रानी पाठ में वर्तमान अध्याय-विभाजन नहीं थे, तो यह दृष्टिगोचर होगा कि 'बारह की पुस्तक' के अंत में अनाम दिव्यवचनों का एक संकलन होगा जिनको तीन समूहों में रखा जा सकता है —जक॰ ९-११; १२-१४; और मलाकी। ये तीनों ही 'यहोवा का भारी वचन' या ऐसे ही शब्दों से प्रारंभ होते हैं।

सुविधा के लिये मलाकी को व्यक्ति के नाम स्वरूप उपयोग में लाया गया है। रचयिता का नाम अवश्य होगा। वह हमें ज्ञात नहीं। अतः उसे मलाकी ही क्यों न कहा जाय ?

२ विषय सामग्री का सारांश

मलाकी की पुस्तक में नबूवतात्मक कथोपकथन है, जिसमें इस्राएल को वाचा की और परमेश्वर की योग्य आराधना की उपेक्षा करने के पाप के लिये फटकार दी जाती है। पुस्तक के अंत में यह भविष्यवाणी है कि यहोवा के भयानक दिन से पहिले एलिय्याह लोगों के हृदयों को तैयार करने को आएगा।

३. रूपरेखा

मलाकी—वाचागत निष्ठा का नबी

(१) परमेश्वर ने इस्राएल से प्रेम किया है (१:१:५) 'यहोवा यह कहता है, मैंने तुमसे प्रेम किया है, परंतु तुम पूछते हो, तूने किस बात में हमसे प्रेम किया है? परमेश्वर के प्रेम का प्रमाण यह है कि यद्यपि एसाव (एदोम) ज्येष्ठ भाई था, तथापि वह उजाड़ा गया, परंतु याकूब (यहूदा) छोटा होते हुए बचाया गया।

(२) इस्राएल ने परमेश्वर के प्रेम को तुच्छ जाना है (१:६-४:३)

(क) परमेश्वर के नाम का अपमान किया गया है (१:६-२:९) 'यदि मैं पिता हूँ तो मेरा आदर मानना कहां है? यदि मैं स्वामी हूँ तो मेरा भय मानना कहां?' याजक परमेश्वर के नाम का अपमान इस रीति से करते हैं कि वे उसकी वेदी पर अशुद्ध भोजन और कलंकित पशु चढ़ाते हैं—अन्य जातियाँ भी सर्वत्र शुद्ध भेंट चढ़ाती हैं (१:६-१४)। यदि तुम न सुनो और मन लगा कर मेरे नाम का आदर न करो ....तो मैं तुमको शाप दूँगा....कि लेवी के साथ मेरी बंधी हुई वाचा बनी रहे। वह मेरे नाम से अत्यंत भय खाता था। उसको मेरी सच्ची व्यवस्था कंठ थी....वह शांति और सीधाई से मेरे साथ साथ चलता था, और बहुतों को अधर्म से लौटा ले आया था। क्योंकि याजक को चाहिये कि वह अपने ओठों से ज्ञान की रक्षा करे, और लोग उसके मुँह से व्यवस्था पूछें, क्योंकि वह सेनाओं के यहोवा का दूत है' (२:१-९)।

(ख) विवाह अपवित्र किया गया है (२:१०-१६): 'हम क्यों एक दूसरे का विश्वासघात करके अपने पूर्वजों की वाचा को तोड़ देते हैं? यहूदा ने बिराने देवता की कन्या से विवाह करके यहोवा के पवित्र स्थान को अपवित्र किया है....इसलिये तुम अपनी आत्मा के विषय में चौकस रहो, और तुममें से कोई अपनी जवानी की स्त्री से विश्वासघात न करे। क्योंकि इस्राएल का परमेश्वर यहोवा यह कहता है कि मैं स्त्री-त्याग से घृणा करता हूँ।'

(ग) परमेश्वर के न्याय के विषय में तुमने शंका की है (२:१७-३:५): 'तुम कहते हो कि न्यायी परमेश्वर कहां है?....परमेश्वर वाचा के दूत को न्यायार्थ भेजेगा और वह उन दुष्टों को ऐसा पाएगा जैसा आग रूपे को शुद्ध करती है।

(घ) तुमने दशमांश और भेटों में परमेश्वर को धोखा दिया है (३:६-१२) : 'क्या मनुष्य परमेश्वर को धोखा दे सकता है ? देखो, तुम मुझे धोखा देते हो''''''सारे दशमांश को भंडार में ले आओ, और सेनाओं का यहोवा यह कहता है कि ऐसा करके मुझे परखो कि मैं आकाश के झरोखे तुम्हारे लिये खोल कर तुम्हारे ऊपर अपरंपार आशिष की वर्षा करता हूँ कि नहीं' ।

(च) तुम अपने विश्वास के प्रति विश्वासघात की भावना रखते हो (३:१३-४:३): 'तुमने कहा है कि परमेश्वर की सेवा करनी व्यर्थ है । हमने उसके बताए हुए कामों को पूरा किया''''इससे क्या लाभ हुआ ?''''जो यहोवा का भय मानते और उसके नाम का सम्मान करते थे, उनके स्मरण के निमित्त उसके सामने एक पुस्तक लिखी जाती थी । सेनाओं का यहोवा यह कहता है कि जो दिन मैंने ठहराया है, उस दिन वे लोग मेरे निज भाग ठहरेंगे (३:१३-१८)''''सब अभिमानी और सब दुराचारी लोग अनाज की खूँटी बन जाएंगे; और उस आने वाले दिन में भस्म हो जायेंगे''''परन्तु तुम्हारे लिये, जो मेरे नाम का भय मानते हों, धर्म का सूर्य उदय होगा और उसकी किरणों के द्वारा चंगे हो जाओगे ; और तुम निकलकर पाले हुए बछड़ों की नाईं कूदोगे और फांदोगे ।'

(३) विश्वस्त रहो और प्रतीक्षा करते रहो (४:४–६)

'मेरे दास मूसा की व्यवस्था स्मरण रखो''''देखो, यहोवा के उस बड़े और भयानक दिन के आने से पहले, मैं तुम्हारे पास एलिय्याह नबी को भेजूँगा । और वह माता-पिता के मन को उनके पुत्रों की ओर, और पुत्रों के मन को उनके माता-पिता की ओर फेरेगा ।'

४. रचना, रचयिता, तिथि

रचना––पुस्तक की साहित्यिक अखंडता सामान्यतया स्वीकार की जाती है, क्योंकि सारी पुस्तक में एकसी शब्दावली, दृष्टिकोण और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है । फिर भी, कुछ विद्वानों का विचार है कि ४:४–६ पद इस पुस्तक का उपसंहार इतना नहीं, जितना वे पूरी 'बारह की पुस्तक' का उपसंहार हैं । कुछ विद्वान यह भी विचार करते हैं कि २:११–१२ पद स्त्री-त्याग के सीधे निन्दात्मक कथनों का विस्तारमात्र है ।

इस पुस्तक की एक विशेषता यह है कि इसमें कथोपकथन में अत्यंत कलात्मकता है । संभव है कि निर्वासनोत्तर काल में एक प्रकार का बुद्धिवाद आया हो, जिसमें आचरण के लिये कोरे नबूवतात्मक आदेश के बजाय तर्कणा की माँग

की गई हो और उस माँग की पूर्ति स्वरूप इस साहित्यिक रूप का प्रारंभ हुआ हो।

रचयिता—शीर्षक के संबंध में हम यह कह चुके हैं कि इसके अतिरिक्त कि कदाचित् लेखक का नाम मलाकी हो, इस पुस्तक का लेखक अज्ञात है। यह भी अनिश्चित है कि लेखक का नाम मलाकी था।

तिथि—इस पुस्तक की विषय सामग्री में प्रतिबिंबित ऐतिहासिक परिस्थिति से ही इसकी तिथि का निर्धारण होता है। यहूदा किसी हाकिम के अधिकार में है (१:८)। लोगों का धार्मिक जीवन बहुत ही असंतोषजनक है। याजकों के जीवन की दृष्टि से (१:६–२:८) और लोगों के जीवन की दृष्टि से भी। लोग दशमांश और भेंटों के प्रति उदासीन हैं (३:८)। अन्य जातियां भी शुद्ध भेंट देते हैं परंतु ये नहीं (१:११)। स्त्री-त्याग एक खुला कार्य है (२:११–१५)। विदेशियों के साथ विवाह जाल बन गया है। (२:११–१६)। याजक लोग हारून के वंश न कहलाकर 'लेवी की वाचा' से बंधे हुए कहलाते हैं, जिससे यह संकेत मिलता है कि रचयिता याजकीय संहिता (Priestly Code) में प्रस्तुत मूसा की व्यवस्था से उतना नहीं जितना व्यवस्था विवरण में प्रस्तुत मूसा की व्यवस्था से परिचित था। यह विचार किया जाता है कि ये सब परिस्थितियां ऐसी थीं, जैसी नहेम्याह के युग में थीं जिसने यहूदा के नैतिक एवं धार्मिक जीवन में इस प्रकार की त्रुटियों को सुधारने का प्रयत्न किया (नहे.१३:१०–२९) और जो फारसी राजा के शासन में यहूदा में हाकिम था।

नहेम्याह दो बार यहूदा का हाकिम नियुक्त हुआ। एक बार ई. पू. ४४५ में। दूसरी बार ई. पू. ४३३ में। कुछ विद्वान इन दोनों तिथियों के बीच मलाकी की पुस्तक की तिथि मानते हैं। नहेम्याह का इस पुस्तक में कहीं भी उल्लेख नहीं है। अतः यह अधिक उचित जान पड़ता है कि उसकी तिथि नहेम्याह के पहिली बार हाकिम नियुक्त किये जाने के पूर्व मानी जाये। इस मान से उसकी तिथि लगभग ई. पू. ४५० मानी जा सकती है।

५. धर्मशिक्षा

मलाकी की पुस्तक की केन्द्रीय शिक्षा यह है कि वाचा के प्रति निष्ठावान होना महत्वपूर्ण बात है। यहोवा ने इस्राएल को चुना और उसके साथ वाचा बांधी है (२:१०)। यह इस्राएल के प्रति यहोवा के प्रेम का चिन्ह है (१:२)। लेवी के वंश के साथ बांधी हुई वाचा में भी वही वाचा विशेषरूप से व्यक्त होती है (२:४,५)। इस्राएल जाति का सबसे बड़ा दायित्व यह है कि वह उस वाचा के प्रति निष्ठावान रहे, जिससे वह परमेश्वर के साथ बंधी हुई है।

उसका पाप यह है कि इस बंधन में जो उसका कर्तव्य है, उसको उसने नहीं निभाया है या उसकी उपेक्षा की है।

वाचा के प्रति निष्ठा पवित्रस्थान की सेवा और उपासना में व्यक्त होती है। याजक इस सेवा के लिये नियुक्त होते हैं। यदि वे वेदी पर निष्खोट बलि नहीं चढ़ाते हैं तो वे परमेश्वर का निरादर करते हैं (१:६–१४)। इससे हमें शिक्षा मिलती है कि परमेश्वर की उपासना में हमें अपना सर्वश्रेष्ठ लाना चाहिए। जो धर्मसेवक मन्दिर में आराधना संचालन के लिये नियुक्त किए जाते हैं, उनका विशेष दायित्व यह होता है कि वे वाचा के साथ सुसंगत रीति से मन्दिर की आराधना का संचालन करें, क्योंकि वाचा में परमेश्वर ने अपने पवित्र स्वभाव को प्रकाशित किया किया है। इस सम्बन्ध में दशमांश और भेटों को कर्तव्य की उपेक्षा करने का अर्थ है परमेश्वर को धोखा देना और लूटना (३:८)।

वाचा के साथ नैतिक दायित्व भी हैं, क्योंकि परमेश्वर धार्मिक परमेश्वर है। सच्चाई, दूसरों के साथ सच्चा व्यवहार, दीन दरिद्र स्थिति वालों के साथ दया का बर्ताव करना (३:५) वाचा के प्रति निष्ठावान होने के अंश हैं। मूसा की व्यवस्था में वाचागत कर्तव्य प्रस्तुत हैं (४:४)। सत्य के इस प्रकाशन के प्रति आज्ञापालन वाचा के प्रति निष्ठावान होने के तुल्य है।

परमेश्वर की वाचा के प्रति निष्ठावान के सिक्के की दूसरी ओर मनुष्यों के बीच वाचाओं के प्रति निष्ठावान रहना है, विशेषकर पुरुष और स्त्री के बीच विवाह की वाचा में। मलाकी बड़े ही कठोर शब्दों में विवाह की वाचा को दूषित करने, विशेषकर स्त्री-त्याग करने की घोर निंदा करता है (२:१० –१६)। विवाह के समय पुरुष और स्त्री के बीच वाचा का साक्षी परमेश्वर है (२:१४)। इस विषय पर मलाकी की शिक्षा यीशु ख्रिस्त की शिक्षा के लिये मार्ग प्रशस्त करती है (मर. १०:२–१२)।

मलाकी की पुस्तक से हमें यह शिक्षा भी मिलती है कि अन्य धर्मों के अनुयायियों में उनके ईश्वरों के प्रति जो सच्ची भक्ति-भावना मिलती है उस भावना का हम आदर करें। वे अपनी उपासना में सच्चे परमेश्वर को ढूँढ़ने और उसके प्रति अपने हृदय की भावना की धूप जलाने का प्रयास करते हैं। वह अंतिम आशा के दर्शन में यह भी प्रस्तुत करता है कि किसी दिन अन्य जातियों के उपास्य की पूर्णता एक ही सच्चे परमेश्वर में होगी जिसके लिये परमेश्वर का दूत मार्ग तैयार करता है। साथ ही नबी इस्रालियों को यह उद्-बोधन देता है कि यदि अन्य धर्मी अपने उपास्य ईश्वर के प्रति सच्चे हृदय से

भक्ति करते हैं, तो चूँकि इस्राएली एक ही सच्चे परमेश्वर यहोवा की आराधना करते हैं, इसलिये उनकी वाचागत आराधना पूर्ण सच्चाई और धार्मिकता के साथ होनी चाहिये (१:११)।

वाचा के प्रति आज्ञापालन भविष्य के परिपेक्ष्य में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है और आवश्यक भी। भविष्य में न्याय की क्रांति तथा उद्धार की आशा भी है। जो परमेश्वर की वर्तमान व्यवस्था और उसके आदेश (३:१३) के मूल्य पर शंका करते हैं, उनको वाचा के आने वाले दूत (३:१) और स्मृति की पुस्तक (३:१६) का स्मरण कराया जाता है। परन्तु परमेश्वर को मिलाप और उद्धार करने की अभिलाषा है। लोगों को शुद्ध करने (३:३) तथा व्यक्ति व्यक्ति के बीच ठीक सम्बन्ध स्थापित करने (४:६) के द्वारा उसका दूत मार्ग तैयार करेगा। उस दूत को एलिय्याह नबी कहा गया है (४:५)। यह नबी इस्राएल के उन महान नबियों में सर्व प्रथम है जिन्होंने विश्वास की रक्षा की। इस प्रकार बड़ी ही विचित्र रीति से इस्राएली लोग यूहन्ना बपतिस्मा देने वाले के आने के लिए तैयार किए गए, जिसने आकर प्रभु यीशु ख्रिस्त के लिये मार्ग तैयार किया (मर. १:२)।

परिशिष्ट (क)

कालानुक्रम सारणी

पलिश्तीन	मिस्र	मेसोपोतामिया
ई. पू. ५००० यरीहो, प्राचीनतम दुर्गबद्ध नगर	तिनीकाल ई. पू. २९०० –२७००; पहला और दूसरा वंश	सुमेरी काल ई. पू. ३०००–२४००
	प्राचीन राज्य २७००-२२००; तीसरे से छठवें वंश। सूची स्तम्भ (पिरामिड)	सुमेरी अक्कादी काल २४००–२०२५ जिस के बीच गुतियुम बर्बर शासन हुआ २२५०–२१००
	प्रथम मध्यंतरीय काल २२००–१९८९ सातवें से ग्यारहवें वंश	
अब्रहाम तथा कुलपतियों का युग	मध्यराज्य ई. पू. १९८९ –१७७६; बारहवाँ वंश	प्राचीन बाबेली काल ई. पू. २०२५ – ९००. छठवाँ राजा हमुराबी था (१७२८–१६८६)
	द्वितीय मध्यंतरीय काल १७७६–१५७० तेरहवें से सतरहवें वंश	
इब्रानियों का मिस्र में प्रवास ल. ई. पू. १७००	हुकसोस का आक्रमण ल. १७०० नवीन राज्य (साम्राज्य) ई. पू. १५७०–१०९०; अठारहवें से बीसवें वंश हुकसोस का निष्कासन १५६०	हित्ती लोगों का बाबुल पर आक्रमण ल. ई. पू. १६०० कस्सी काल १५००–११२३

	तुतमोसिस प्रथम १५२५–१४९५ (हतशेपसुत १४८६–१४६९)	
	तुतमोसिस द्वितीय १४९५–१४९०	
(निर्गमन—इस मान्यता पर कि १३०० से पूर्व हुआ)	तुतमोसिस तृतीय महान १४९०–१४३६, आमेनोपिस द्वितीय १४३६–१४२६, आमेनोपिस तृतीय भव्य १४२३–१३७७, आमेनोपिस चतुर्थ (आकेन आतोन) १३७७–१३६०	
	(तेल एल-अर्मना काल १३७५–१३६०)	
इब्रानियों का दमन (नि. १:८).	सेती प्रथम १३१९–१३०१; उन्नीसवाँ वंश	
निर्गमन १३००–१२९०.	रामसेस द्वितीय १३०१–१२३४	
यहोशू का यरोही लेना १२५०; पलिश्तीन पर आक्रमण	मरनेप्ताह १२३४—१२२७; पलिश्तीन में इस्राएल को हराता है	
विजय तथा न्यायी काल १२५०–१०४२	१२२९ (मरनेप्ताह का स्तम्भ)	

समुद्री जातियों का आक्रमण १२००–१०८५

पलिश्ती (समुद्री जाति) पलिश्तीन में बसते हैं।	रामसेस तृतीय ११९५–११६४ ; समुद्री जातियों को पलिश्तीन की ओर पीछे हटाता है मिस्री सत्ता का ह्रास	नबूकदरेस्सर प्रथम ११४६–११२३ बाबुल की सत्ता को पुनर्जीवित करता है।

इब्रानी राजतंत्र		पड़ौसी जातियाँ
शाऊल १०४२–१००२ दाऊद का वंश १००२–५८७, दाऊद १००२–९६२ (हेब्रोन में ७ वर्ष, बाद में यरूशलेम में) सुलैमान ९६२–९२२ (भवन निर्माण ९५९–९१५)		
	इस्राएल राज्य	
रहूबियाम ९२२–९१५, यारोबाम का विद्रोह	यारोबाम का वंश ९२२–८७६ यारोबाम प्रथम ९२२–९०१ नादाब ९०१–९००	मिस्र का शेशोंक (शीशक), बाईसवाँ वंश, पलिश्तीन पर आक्रमण करता है ९१८ (१ रा. १४:२५)
यहूदा राज्य	बाशा का वंश ९००–८७६ बाशा ९००–८७७	
अब्बियाम ९१५–९१३ आसा ९१३–८७३ यहोशापात ८७३–८४९	एला ८७७ – ८७६ (जिम्री ८७६) ओम्री का वंश ८७६–८४२ ओम्री ८७६–८६९ अहाब ८६९–८५०	अरशूर का शलमनेस्सर तृतीय (८५९–८२४) कारकर पर अहाब और उसके साथी राजाओं को पराजित करता है (शलमनेस्सर का स्तंभ लेख)
यहोराम ८४९–८४२ अहज्याह ८४२	अहज्याह ८५०–८४९ योराम ८४९–८४२	
येहू का विद्रोह ८४२		
	येहू का वंश ८४२–७४५	८४१ येहू अरशूर के राजा शलमनेस्सर तृतीय

अतल्याह रानी ८४२–८३७	येहू ८४२–८१५	को कर देता है
योआश ८३७–८००	यहोआहाज ८१५–८०१	
अमस्याह ८००–७८३	योआश ८०१–७८६	
अजर्याह (उजिय्याह) ७८३–७४२	यारोबाम द्वितीय ७८६–७४६	
(योताम शासक ७५०–७४२)	जकर्याह ७४६–७४५	
योताम राजा ७४२–७३५	पतन के राजा	
	शल्लूम ७४५	
	मनहेम ७४५–७३८	७३८ मनहेम अश्शूर के राजा पुल (तिग्लत्पिलेसेर तृतीय) को भेंट देता है (७४५–७२७)
	पकह्याह ७३८–७३७	
आहाज ७३५–७१५	पेकह ७३७–७३२	७३४ पेकह एवं अराम के रसीन द्वारा यरूशलेम का घेरा
	होशे ७३२–७२४	७३२ तिग्लत्पिलेसेर तृतीय पलिश्तीन पर आक्रमण करता है और होशे को राजा बनाता है। होशे अश्शूर के राजा शलमनेस्सर पंचम को भेंट देता है (७२७–७२२)
	७२१ अश्शूर का राजा सारगोन द्वितीय (७२२–७०५) तीन वर्ष के घेरे के पश्चात शोमरोन को ले लेता है।	
	इस्राएल राज्य का अन्त	
हिजकिय्याह ७१५–६८७		७०१ अश्शूर का राजा सन्हेरीब (७०५–६८१) यहूदा पर आक्रमण करता है।

मनश्शे (६८७–६४२)

अश्शूर का राजा अशूर बनीपाल (६६९–६२६) मनश्शे को बन्दी बनाता है

आमोन ६४२–६४०
योशिय्याह ६४०–६०९
६२२ योशिय्याह का धर्म सुधार

६१२ नीनवे का पतन। बाबुलियों का अधिकार अश्शूरी राजा ६०९ तक लड़ते रहे। अश्शूरी साम्राज्य का अन्त।

यहोआहाज ६०९

६०९ फिरौन-निको सत्ताइसवाँ वंश (साईन) मगिद्दो में योशिय्याह को मार डालता है; यहोआहाज को बन्दी बनाता है। यहोयाकीम को राजा बनाता है।

यहोयाकीम ६०९–५९८

६०५ बाबुल का राजा नबूकदनेस्सर द्वितीय (६०५–५६२) कर्कमीश में निको को हराता है और सर्वोपरि सत्ता बन जाता है।
५९९ नबूकदनेस्सर ३०३२ यहूदियों को बंधुआई में ले जाता है (यिर्म. ५२:२८)

यहोयाकीन ५९८

५९८ नबूकदनेस्सर याहोयाकीन को बंदी बनाता है और सिदकिय्याह को राजा बनाता है।
'बंधुवाई का प्रारंभ'

सिदकिय्याह ५९८–५८७

५८८ यरूशलेम घेरा जाता है; ८३२ यहूदी बंधुआई में ले जाए गए (यि. ५२:२९).

५८७ नबूकदनेस्सर द्वारा १८ महीनों के घेरे के बाद यरूशलेम नष्ट किया जाता है। यहूदा राज्य का अन्त। इब्रानी राजतन्त्र का अन्त। नबूकदनेस्सर गदल्याह को हाकिम बनाता है।

बाबुल में बंधुआई (निर्वासन) ५८७–५३७	५८३ नबूकदनेस्सर ७४५ यहूदियों को बंधुआई में ले जाता है (यि. ५२:३०)
	५६२ बाबुल का राजा एवीलमरोदक (५६२–५६०) बन्दी यहोयाकीन का सम्मान करता है।
	५३९ फारस का राजा कुस्रू (५३९–५३०) बाबुल पर विजय प्राप्त करता है।
	बाबुली साम्राज्य का अन्त

पलिश्तीन	पड़ोसी जातियाँ या राष्ट्र
फारसी काल	५३८ कुस्रू यहूदी बंधुओं के लौटने की आज्ञा निकालता है।
५३७ शेशबस्सर के अधीन यहूदी लौटते हैं। जरुब्बाबेल भवन निर्माण करने का असफल प्रयास करता है	कम्बूसिस ५३०–५२२
५२०–५१६ भवन का पुनर्निर्माण	दारा प्रथम ५२२–५८६; मिस्र पर विजय
	क्षयर्ष प्रथम (अहासुरस) ४८६–४६५
४५८ एज्रा यरूशलेम को आता है	अतर्क्षत्र प्रथम लोंगीमानुस ४६५–४२४
४४५–४३३ नहेम्याह हाकिम है	
४३३ नहेम्याह का लौटना और यरूशलेम को दूसरी बार आना	क्षयर्ष द्वितीय ४२४–४२३
	दारा द्वितीय ४२३–४०४
	अतर्क्षत्र द्वितीय म्नेमोन ४०४–३५८
	अतर्क्षत्र तृतीय ३५८–३३८
	अरसेस ३३८–३३६
	दारा तृतीय कोदोमानुस (३३६–३२३)
	३३१ सिकंदर महान (३३६–३२३) अरबला में फारसियों को पराजित करता है
	फारसी राज्य का अंत

यूनानी काल

३३१–३२३ सिकंदर महान के अधिकार में पलिश्तीन

सिकंदर महान के पश्चात प्तोलेमी प्रथम (३२३–२८३) और सिल्युकुस प्रथम निकातोर (३१२–२८०) मिस्र में प्तोलेमी राज्य और अराम में सेल्यूकी राज्य स्थापित करते हैं।

३२१–१९८ प्तोलेमी के अधिकार में पलिश्तीन

१९८–१६७ सेल्युकियों के हाथ में पलिश्तीन

१९८ पनियन के युद्ध में सेल्युकियों ने प्तोलेमियों से पलिश्तीन ले लिया

१६७ मकाबी विद्रोह

१६७ अन्तीओकुस चतुर्थ एपिफनेस (१७४–१६३) यहूदियों को सताता है और भवन को अपवित्र करता है।

मकाबी काल

मकाबी यहूदा १६६–१६०;

१६४ भवन शुद्ध किया जाता है

योनातान १६०–१४२

१५२ योनातान महायाजक बनता है

शिमोन १४२–१३४

अराम का दिमित्रियुस द्वितीय (१४५–१३९) शिमोन को मान्य करता है।

हसमोनी काल

योहन हुरकानुस प्रथम १३४–१०४

यहूदा अरिस्तोबुलुस प्रथम १०४–१०३

सिकंदर यन्नयुस १०३–७६

सिकंदरा रानी ७६–६७

अरिस्तोबुलुस द्वितीय ६७–६३

६५ सूरिया रोमी प्रांत बन जाता है। सेल्युकी वंश का अंत। ६३ रोमी सेनाध्यक्ष यरूशलेम ले लेता है। उसके पश्चात यहूदी शासक नाम के ही राजा रहे।

हुरकानुस द्वितीय ६३–४०	६० प्रथम त्रिकतंत्र: पोम्पी, कैसर, क्रेस्सुस
अन्तीगोनुस मत्तथियास ४०–३७	४३ द्वितीय त्रिकतंत्र: एन्तोनी, आक्तवियुस, लेपिदुस
हेरोदेस महान ३७–४	३१ औगुस्तुस (आक्तेवियुस) रोमी सम्राट बन जाता है (ई. पू. ३१–१४ ई. स.)
यीशु ख्रिस्त का ई. पू. ४ की बसंत के पहले जन्म	

परिशिष्ट (ख)

पुरातत्व और पुराना नियम

अधुनातन काल में पुरातत्व के अध्ययन से पुराने नियम पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ा है। प्राचीन संस्कृतियों के कुछ ध्वंसावशेष रह जाते हैं, जैसे प्राचीन खंडहर, आधार, शिलालेख, समाधियां, अलंकार, आभूषण, गृहवस्तुएं, मिट्टी के बर्तनों के टुकड़े आदि। पुरातत्व इन प्राचीन ध्वंसावशेषों के माध्यम से प्राचीन संस्कृतियों का अध्ययन है। कभी कभी ये वस्तुएं सरलता से दिखाई पड़ती हैं, जैसे धरती पर पड़े हुए माटी-बर्तनों के टुकड़े। परंतु कई बार और विशेषकर यदि वस्तुएं कुछ मूल्यवान हुई तो वे भग्नावशेषों की परतों के बीच या मिट्टी में दबी हुई रहती हैं और उन्हें खोदना पड़ता है।

प्राचीन मिस्र के ध्वस्त मंदिर, राज भवन और कबरों में कई चित्रात्मक खुदे हुए लेख मिले हैं। दीर्घ काल तक यात्री लोग इनसे आकर्षित होते रहे और आश्चर्य की भावना से अभिभूत होते रहे। इनका अर्थ किसी की समझ में नहीं आता था और वे जादुई चित्र या सजावट माने जाते रहे। परंतु १७९९ ई. में नेपोलियन मिस्र के विरुद्ध लड़ाई कर रहा था। उस समय सिकन्दरिया नगर के निकट रोसेट्टा नामक शिला (Rosetta Stone) पायी गई। उस पर तीन लिपियों में लेख हैं। ये प्राचीन मिस्री स्मारकों की, प्रवाही मिस्री लिपि जिसे दिमोतिक (Demotic) कहते हैं, और यूनानी लिपि हैं। यूनानी ज्ञात लिपि थी। एक फ्रांसीसी विद्वान जे. एफ. शेम्पोलियन ने इन ज्ञात लिपि के सूत्र से अन्य दो लिपियों को पहिचाना और इस आधार पर मिस्र के प्राचीन स्मारकों की कुंजी मिली। इस प्रकार प्राचीन मिस्र के इतिहास एवं साहित्य की जानकारी प्राप्त हुई।

अज्ञात प्राचीन भाषाओं के कोष के लिये इसी प्रकार एक कुंजी १८३५ ई. में प्राप्त हुई, जब एक अंग्रेज तरुण विद्वान एच. रॉलिन्सन वर्तमान इराक में बहिस्तान की ऊंची चट्टान पर अपनी जान की बाजी लगाकर चढ़ा और वहाँ से एक त्रिभाषीय शिलालेख की अनुमुद्रा बना लाया। इसके आधार पर उसने प्राचीन फारस की भाषा को पढ़ा। इसके पश्चात् १८५१ में परसोपुलिस नगर में एक अन्य त्रिभाषीय शिलालेख की सहायता से वह दोनों लेखों के कीलाक्षर लिपि के अंशों को पढ़ने में सफल हुआ। कुछ वर्ष पश्चात् नीनवे में अशूरबनी-

पाल के महान ग्रंथालय का अनुसंधान हुआ और कीलाक्षर लिपि की इस कुंजी से उस ग्रंथालय को समझने में बहुत बड़ी सहायता प्राप्त हुई । उस ग्रंथालय की पुस्तकें मिट्टी की पटियां हैं ।

लगभग इसी समय पलिश्तीन में अनुसंधान कार्य आरंभ हुआ । पहले तो ऊपरी सतह पर जो कुछ था उससे ही यह कार्य आरंभ हुआ । १८३२-५२ में एक अमरीकी विद्वान ई. रॉबिन्सन ने बाइबल उल्लिखित नगरों और गाँवों का वर्तमान स्थानों या खंडहरों के साथ एकीकरण का प्रयास किया । १८६५ में ब्रिटेन में पलिश्तीन अनुसंधान निधि (Palestine exploration fund) का निर्माण हुआ । 'दाऊद के नगर यबूस के स्थान को जानने के लिये सी. वारेन ने यरूशलेम की पूर्वी पहाड़ी पर खुदाई की । पश्चिमी पलिश्तीन का सर्वेक्षण सी. आर कोन्डर और एच. एच. किचनर ने किया । परिणामस्वरूप पलिश्तीन का सुप्रसिद्ध विशाल नक्शा बनाया जा सका ।

बाइबलगत देशों में यत्र तत्र कई ऊंचे टीले हैं जो प्राचीन बसे हुए स्थान जैसे प्रतीत होते हैं । उसकी खुदाइ करने से पुरातत्वज्ञों को कई महत्वपूर्ण वस्तुएं मिली हैं, जैसे माटी बर्तन, सिक्के, आभूषण के टुकड़े आदि । परन्तु इन टीलों पर मानव-निवास का साधारण प्रमाण उन टीलों की मिट्टी है, की जिसमें मिट्टी के पात्रों के छोटे छोटे टुकड़े भरे पड़े हैं। ये सदियों से वहाँ फेंके जाते रहे, क्योंकि मिट्टी के बर्तन टूटने पर या बेकाम हो जाने पर फेंके जाते हैं । भारत के गाँवों में भी हम यही बात देखते हैं । कचरा फेंका जाता रहा है और छोटे छोट टीले गाँव के पास बनते आए हैं । १८९० में पलिश्तीन में वैज्ञानिक अनुसंधान आरम्भ हुआ । डबल्यु. एम. फ्लिडर्स पीत्री ने तेल-एल-हेसी (एग्लोन ?) में खुदाई करते हुए यह बताया कि मिटटी के पात्रों के इन मूल्य रहित टुकड़ों का कालानुसार विभिन्नता की दृष्टि से अध्ययन किया जा सकता है । अर्थात, आबादी के एक काल के मटका टुकड़ों को दूसरे काल के टुकड़ों से अलग किया जा सकता है । एक ही प्रकार के टुकड़ों को सावधानीपूर्वक एक बार ही अलग करने से पित्री एक इतिहास काल सेउससे पूर्व के इतिहास काल तक खुदाई कर सका । कई टीलों पर इस प्रकार खुदाई करने के पश्चात विभिन्न काल के मिट्टी के पात्रों के रूपों की तुलना की जा सकी और विभिन्न कालों को सहसंबंधित किया जा सका । इसके साथ ही यदि कोई सिक्का या कोई लेख खुदाई में मिला (क्योंकि उन दिनों में लोग टिप्पणी लिखने अथवा रसीदें लिखने के लिये मिट्टी के पात्रों के टुकड़े काम में लाते थे) तो यह इस बात का प्रमाण था कि जिन टुकड़ों में इस रूप के लेखादि पाए गए वे लगभग एक ही काल के होंगे । इस प्रकार संपूर्ण पलिश्तीन के संबंध में धीरे धीरे एक 'मिट्टीपात्र तिथिपत्र बनाया गया । अन्य देशों के

संबंध में भी ऐसा ही तिथिपत्र बनाया गया। जब कभी भी कहीं नई खुदाई हुई तो सरलता से इस मिट्टी-पात्र तिथिपत्र के द्वारा उसका समय निर्धारण किया जा सका। जितनी अधिक पुरातत्वज्ञ इस दिशा में खुदाई करते जाते हैं, उतना ही अधिक सिद्ध यह तिथिपत्र होता जाता है।

किसी प्राचीन स्थल की खुदाई की प्रक्रिया निम्नानुरूप होती है: पहले एक सीधी नाली खोदी जाती है, जब तक कि कोई तल्ला या मंजिल का फर्श न मिल जाए। तब उस फर्श पर जो कुछ है उसे सावधानीपूर्वक उठाया जाता है। जो वस्तुएं मिलती हैं उनका या तो मूल स्थिति में चित्र बना लिया जाता है और फोटो ले ली जाती है। स्वभावतया ये सब वस्तुएं उन लोगों की होंगी जो उस तल्ले पर रहते थे। इसके पश्चात दूसरे तल्ले की खोज की जाती है। यह कदाचित छः आठ इंच नीचे ही हो। यह पिछली परत की वस्तुओं के युग से पहले के युग की मानी जाती हैं। इस प्रकार परत परत या मंजिल मंजिल खुदाई की जाती है, और वह निवास के एक काल से दूसरे काल की खुदाई होती है। इस सारी प्रक्रिया में बड़े धैर्य और कौशल की आवश्यकता होती है। इसमें सर्वेक्षण, चित्र बनाने, फोटो लेने, ऐतिहासिक तथा भाषा शास्त्रीय ज्ञान की आवश्यकता होती है। श्रमिकों को लगाना, उनका निरीक्षण करना, वस्तुएं रखने के स्थान और रहने के स्थान तो सामान्यतया करना ही पड़ता है। तेल-एत-मुत्तेसेल्लीन (मगिद्दो) में १४ वर्ष (१९२५–३९) में खुदाई हुई और लाखों रुपये लगे। आजकल किसी को वहाँ की सरकार खुदाई का कार्य करने की अनुमति उस समय तक नहीं देती जब तक कि उसे यह निश्चय न हो जाए कि खुदाई करने के इच्छुक के पास पर्याप्त धनराशि और कौशल है।

प्रथम विश्व-युद्ध (१९१४–१८) के पश्चात पलिश्तीन पर ब्रिटिश का अधिकार था। उन्होंने पुरावशेष (antiquities) विभाग की स्थापना की और प्राचीन स्थलों की खुदाई को बड़ा प्रोत्साहन दिया। मगिद्दो के अतिरिक्त, जिसका उल्लेख ऊपर हुआ है, अश्कलोन, बेतसान, साऊल का गेबा, ओपेल (दाऊद का नगर), गिरासा, शीलोह, शेकेम, मिस्पा, दबीर, शरूहेन, बेत-शेमेश, यरीहो, बेत-एग्लान, बेत-सूर, सामरिया, ऐ, बेतेल, लाकीश और एस्योनगेबेर नामक स्थानों की खुदाई की गई। उत्तरी मेसोपोतेमिया में नूजी पाठ खुदाई में प्राप्त हुए।

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात खुदाई का कार्य फिर चालू किया गया। इस समय में कैसरिया, नया नियम का यरीहो, पुराने नियम का यरीहो, दीबोन, दोतान, हजोर, मसादा, गिबोन और गत स्थानों को सम्मिलित किया गया। इनमें से कुछ में तो अभी तक खुदाई चल रही है।

१९२९ में उत्तरी सूरिया में एक महत्वपूर्ण खोज हुई, जब रास एस-शम्रा अंतरीप के निकट प्राचीन नगर उगरित का पता चला। वहाँ एक मंदिर का पुस्तकालय और उसमें सैकड़ों मृत्तिका-पटियाँ प्राप्त हुई। इनके लेखों की लिपि कीलाक्षर लिपि थी, परंतु शीघ्र ही यह पता चला कि इस लिपि की भाषा आज तक की पांडुलिपियों की सामान्य भाषा अक्कादी से भिन्न है। जर्मनी और फ्रांसीसी विद्वानों को शीघ्र ही इस भाषा के स्वरूप को पहचानने में सफलता मिली और उन्हें पता चला कि यह वर्णमालात्मक कीलाक्षर लिपि है (अक्कादी भाषा पदात्मक है, वर्णमालात्मक नहीं), और कि इसकी भाषा उत्तरी कनानी या उगरित भाषा है, जो बाइबल की प्राचीन इब्रानी से इतनी अधिक मिलती है जितनी अन्य कोई प्राचीन भाषा नहीं। इसके फलस्वरूप कनानी देवी देवताओं की—एल, अशेरा, बाल, अनत, यम अथवा सागर राजकुमार—कथा कहानियों पर प्रकाश पड़ा है। भजनों में कुछ ऐसी पंक्तियां हैं जिनका उगरित कविताओं के साथ साम्य बड़ा रोचक है।

१९४७ में मृत्यु सागर कुंडल पत्र (Dead Sea Scrolls) मिले। इनकी प्राप्ति अत्यंत महत्वपूर्ण है। मृत्यु सागर के उत्तरी किनारे के निकट एक गुफा में पहले कुछ कुंडलपत्र मिले। कुमरान नामक स्थान में एसेन समाज के ध्वंसावशेषों के निकट ही ये पाए गए। चोर बाजारी के लिए कुछ लोगों ने इनके अलग अलग भाग किए। कोई २० वर्ष पूर्व अरब-इस्राएल युद्ध के कारण इनका भली भाँति विज्ञापन नहीं हो पाया। इस कारण अभी कुछ वर्ष ही हुए हैं कि इनका पूर्ण संग्रह किया गया और इनका अध्ययन किया गया। ये कुंडल पत्र एसेन धर्म संघ के विशाल पुस्तकालय के भाग हैं। यह संघ और पुस्तकालय कुमरान में थे। यशायाह की पुस्तक की एक प्रति उनमें प्राप्त हुई, जिसकी तिथि लगभग ई. पू. ९० है। इससे यशायाह की पुस्तक के मूल पाठ के संबंध में प्रमाण मिलता है। अन्य कुंडलों में अनुशासन नियमावलि, धन्यवाद-भजन और हबक्कूक पर टीका है। इन कुंडल पत्रों के अतिरिक्त अन्य पुस्तकों के सैकड़ों टुकड़ों का ढेर भी वहाँ मिला। इन टुकड़ों को शृंखलाबद्ध करने का विशाल कार्य यरूशलेम में अभी तक चल रहा है।

पुरातत्व ने निम्नलिखित रूपों में पुराने नियम के अध्ययन में योगदान दिया है: (१) शीलोम शिलालेखों, मोआबी शिला और सामरिया तथा लाकीश के ऑस्ट्रका (घड़ों के लिखे हुए टुकड़े) जैसे अनुसंधानों के द्वारा निर्वासन-पूर्व काल की इब्रानी भाषा के संबंध में हमारा ज्ञान समृद्ध हुआ है। (२) इस्राएल के इतिहास का उसकी पड़ोसी जातियों के इतिहास के संदर्भ में अध्ययन किया जा सकता है। उदाहरणार्थ निर्गमन, यहोशू द्वारा पलिश्तीन

की विजय, अश्शूरी और बाबुली लोगों के बीच युद्ध और इतिहास में मिस्र की भूमिका आदि का अध्ययन किया जा सकता है। अश्शूरियों के अभिलेखों के द्वारा विशेषरूप से इस्राएल के इतिहास को समझने में सहायता मिली है। (३) इस्राएल जाति की पड़ौसी जातियों की संस्कृति, प्रथाओं तथा धर्म पर भी पुरातत्व से बहुत प्रकाश पड़ा है। नूजी पटियों से अब्रहाम के युग पर प्रकाश पड़ा है। उगरित मूलपाठों के द्वारा हम कनानियों के धर्म को अधिक समझ सकते हैं, जिसके साथ पुराने नियम में प्रस्तुत विश्वास को लगातार संघर्ष करना पड़ा था। पुरातत्व के आधार पर सुलैमान की महत्ता कम नहीं हुई वरन् उसमें चार चांद लग गए हैं। इस पृष्ठभूमि के कारण इस्राएल के अद्वितीय विश्वास पर और अधिक गहनता से विचार करने में अध्येता को सहायता मिलती है।

परिशिष्ट (ग)

हिन्दी में संक्षिप्त रूप

१— धर्मशास्त्र की पुस्तकों के नाम

उत्पत्ति—	उ॰	मीका—	मी॰
निर्गमन—	नि॰	नहूम—	नहू॰
लैव्यव्यवस्था—	लै॰	हबक्कूक—	हब॰
गिनती —	गि॰	सपन्याह—	सप॰
व्यवस्था विवरण—	व्य॰	हाग्गै—	हा॰
यहोशू—	यहो॰	जकर्याह—	ज॰
न्यायियों—	न्य॰	मलाकी—	मल॰
रूत—	रू॰	मत्ती—	मत्त॰
शमूएल—	श॰	मरकुस—	मर॰
राजाओं—	रा॰	लूका—	लू॰
इतिहास—	इ॰	यूहन्ना—	यू॰
एज्रा—	एज्र॰	प्रेरितों के काम—	प्रे॰
नहेम्याह—	नहे॰	रोमियों—	रो॰
एस्तेर—	एस॰	कुरिंथियों—	कुर॰
अय्यूब—	अय॰	गलतियों—	गल॰
भजनसंहिता—	भ॰	इफिसियों—	इफ॰
नीति वचन—	नी॰	फिलिप्पियों—	फिलि॰
सभोपदेशक—	सभ॰	कुलुस्सियों—	कुल॰
श्रेष्ठगीत—	श्रे॰	थिस्सलुनीकियों—	थि॰
यशायाह—	यश॰	तीमुथियुस—	तीम॰
यिर्मयाह—	यि॰	तीतुस—	तीत॰
विलापगीत—	वि॰	फिलेमोन—	फिले॰
यहेजकेल—	यहे॰	इब्रानियों—	इब्र॰
दानिय्येल—	दा॰	याकूब—	या॰
होशे—	हो॰	पतरस—	पत॰
योएल—	योए॰	यूहन्ना—	यू॰
अमोस—	आ॰	यहूदा—	यहू॰
ओबद्याह—	ओ॰	प्रकाशित वाक्य—	प्रक॰
योना—	योन॰		

२—अपक्रिफा अर्थात ज्ञानवर्धक ग्रंथ

ज्ञानवर्धक ग्रंथ—	ज्ञा०	मकावी—	मक०
एस्द्रस—	एस्द०	मनश्शे की प्रार्थना—	मन०
तीन युवकों का गीत—	ती.यु.	यिर्मयाह का पत्र—	यि०प०
तोबित—	तो०	यूदित—	यूद०
सुलेमान का प्रज्ञाग्रंथ—	प्रज्ञ०	शेष एस्तेर—	शे०ए०
बारूक—	बा०	सीरख—	सी०
बेल और अजगर—	बे०	सुसन्ना—	सु०

३— हिन्दी अनुवाद

हिन्दी प्रचलित अनुवाद— हि० प्र०
हिन्दी संशोधित अनुवाद— हि० सं०

४—अंग्रेजी संक्षिप्त रूपों के हिन्दी अनुवाद या रूप

A. D. —	ई० स०	R. S. V.—	आर. एस. वी.
A. V. —	ए० वी०	R. V. —	आर. वी.
B. C. —	ई० पू०	Septuagint (LXX) सेपत्वागिता, सप्तति अनुवाद	सेप.
C. —	ल०		
cf —	तु०	Vid	दे.
eg. —	उदा०	Vulgate, वुलगाता	वु.
f. or ff.—	क्र०		
N. E. B. —	एन० इ० बी०		
q. v. —	जो० दे०		